श्री कुन्दकुन्दाचार्य विरचित–समयसार (प्राकृत) परसे

राजमल्लीय–

समयसार कलश टीका।

(कविवर बनारसीदासजी कृत नाटकसमयसार सहित)

टीकाकार—

श्रीमान् ब्रह्मचारी सीतलप्रसादजी,

नियमसार, प्रवचनसार, समयसार, पंचास्तिकाय, तत्त्वभावना, समाधिशतक, इष्टोपदेश आदिके टीकाकार तथा गृहस्थ धर्म, चेलना रानी, आत्म धर्म, सुलोचना चरित्र, पांच प्रान्तोंके जैनस्मारक, निश्चयधर्मका मनन, अनुभवानंद, प्रतिष्ठासारसंग्रह आदिरके सम्पादनकर्ता।

९५

प्रकाशक—

मूलचन्द किसनदास कापड़िया,

मालिक, दिगम्बर जैन पुस्तकालय—सूरत।

उसमानाबाद (सोलापुर) निवासी–
श्रीमान् सेठ नेमचंद बालचंद वकीलकी ओरसे
"जैनमित्र" के ३१ वें वर्षके ग्राहकोंको भेंट।

प्रथमावृत्ति] वीर सं० २४५७ [प्रति ११००×२००

मूल्य–रु० ३–०–०

भूमिका।

"समयसार परमागम" प्राकृत भाषामें श्री कुन्दकुन्दाचार्य रचित वर्तमान उपलब्ध जैन साहित्यमें एक प्राचीनतम व सर्वोत्कृष्ट आत्महित द्योतक ग्रंथराज है। इसकी संस्कृत वृत्ति श्री अमृतचन्द्र आचार्यने बहुत विद्वता व प्रेमसे लिखी है। उस वृत्तिके मध्यमें विद्वान आचार्यने गाथाओंका भाव खींचकर संस्कृतमें श्लोक भी रच दिये हैं जिनको कलश कहते हैं। इस समयसार कलशोंको संग्रह कर हिन्दी भाषामें सबसे प्राचीन टीका राजमल्लजीने की है। इसीको पढ़कर प्रसिद्ध अध्यात्मरसिक श्री० पंडित बनारसीदासजीने कवित्त छंद बनाए हैं। हमको बहुत उत्कंठा थी कि राजमल्ल कृत टीकाका दर्शन प्राप्त करें। इनही कलशोंकी एक संस्कृत टीका विजयकीर्ति महाराजके शिष्य भ० शुभचंद्रजीने वि० सं० १५७३ में रची थी जो हिन्दी टीका सहित परमाध्यात्म तरंगिणीके नामसे मुद्रित होचुकी है उसके आधार पर यह राजमल्लीय टीका नहीं है-यह स्वतंत्र रूपसे राजमल्लजीसे रचित है।

इसी वर्ष हमारा गमन सागर (मध्यप्रांतमें) हुआ, वहां सेठ जवाहरलालजी समैयाने इस राजमल्ल कृत टीकाकी एक प्रति हमको दिखलाई। उसको पढ़कर मेरा मन मोहित होगया। उनसे वह प्रति स्वाध्यायार्थ लेली। जैसा जैसा मैं स्वाध्याय करता था राजमल्लजीकी अद्भुत विद्वताका परिचय पाता था। फिर अन्य भंडारोंमें भी खोज करनेसे इसकी प्रतियें दृष्टिगोचर हुईं। बासौदा स्टेट ग्वालियरके प्राचीन भंडारमें तथा अंकलेश्वर जिला भरुच निवासी देशसेवक भाई छोटालाल घेलाभाई गांधीके घरके पुस्तकालयमें भी दर्शन हुए।

इस वर्ष धाराशिव उर्फ ऊसमानाबादमें जिनवाणी प्रेमी सेठ नेमचन्द बालचन्द वकीलकी प्रेरणासे मैं वर्षाऋतुमें ठहरा तब मेरे अँतरंगने प्रेरणा की कि मैं इस राजमल्ल कृत टीकाका प्रकाश करादूं जिससे समयसारके रसिक पाठकोंको विशेष लाभ हो और राजमल्लजीके परिश्रमकी सफलता हो। तब मैंने तीन प्रतियोंको सामने रखकर उसकी प्रतिलिपि करनी प्रारम्भ की। (१) सागरवाली प्रति जो वि० सं० १८६९ की लिखित स्थान मिरजापुरकी है। (२) ब्र० पार्श्वदास द्वारा बासौदाके प्राचीन भंडारकी प्रति जिसपर लिपि संवत नहीं है, लिखित प्राचीन है। (३) भाई छोटेलाल अंकलेश्वर द्वारा वि० सं० १७७९ की। यह तीसरी प्रति बहुत शुद्ध लिखी हुई थी। तथा इस प्रतिके अंतमें लेखकने जो वर्णन दिया है उससे पाठक समझेंगे कि पहले ग्रंथको पढ़नेके लिये मिलना कितना दुर्लभ था। वह वर्णन इस प्रकार है-

"इति श्री नाटक समयसार कलशा अमृतचंद्र कृत टीका तथा बनारसीदास कृत भाषा बंध कवित्त समाप्त-एही ग्रंथकी प्रति एक ठौर देखी थी वाके पास बहुत प्रकार करि मांगी वे-वा प्रति लिखनको वांचनको नहीं दीनी, पीछे पांच भाई मिलि विचार कीयो जो ऐसी प्रति होवै तो बहोत अच्छो ऐसो विचारके तीन प्रति जुदी२ देखिके अर्थ विचारिकै अनुक्रमै २ समुच्चय लिखी है। दोहा-समयसार नाटक अकथ, अनुभवरस भंडार। याको रस जो जानही, सो पावे भवपार॥ १॥ चौपाई-अनुभौरसके रसियाने, तीन प्रकार एकत्र वखाने। समयसार कलशा अति नीका, राजमल्लि सुगम यह टीका॥ २॥ ताके अनुक्रम भाषा कीनी, बनारसी ग्याता रस लीनी। ऐसा ग्रन्थ अपूरव पाया, तासैं सबका मनहिं लुभाया॥३॥ दोहा-सोई ग्रंथके लिखनको, किये बहुत परकार। वांचनको देवै नहीं, जो कृपी रत्न भंडार॥ ४॥ मानसिंघ चिंतन कियो, क्यों पावै यह ग्रंथ। गोविन्दसों इतनी कही, सरस सरस यह ग्रंथ॥ ५॥ तब गोविंद हर्षित भयो, मन विचि घरि हुल्लास। कलसा टीका अर कवित्त, जेजे थे तिहिं पास॥ ६॥ चौपाई-जो पंडितजन वांचो सोई, अधिको ऊंचो चौकस जोई। आगे पीछे अधिको ओछो, देखि विचार सुगुणसे पूछो॥७॥ अलप अलपसी है मति मेरी, मनमें धरूं उछाह घनेरी। जो विन भुजा समुद्रह तरनों, है अनादिपनो नहिं वरनो॥ ८॥ इहि विधि ग्रंथ लिखायो नीको, समयसार सबके सिर टीको। सतरहसे पंचोत्तरं मानो, फागुन कृष्ण सप्तमी मानो॥९॥ इति संपूर्णम्-संवत १७७६ वर्षे फाल्गुन वदी ८ सोमवासरे लिखियो-बाई मोरी ज्ञानावरणी क्षयनिमित्त लिखापितं श्रीरस्तु"

सागरकी प्रतिको देखकर व इस अंकलेश्वरकी प्रतिसे मिलान कर ग्रन्थकी लिपि की गई तथा हरएक श्लोकके राजमल्ल कृत अर्थके पीछे जहां उचित समझा कम व अधिक भावार्थ आजकलकी हिन्दीमें लिख दिया जिससे पढ़नेवालोंको कठिनता न हो तथा फिर बनारसीदास कृत छंद भी संग्रह कर दिये। राजमल्लजीकी विद्वता टीकाके ध्यानसे पढ़नेसे ही झलकती है।

बादशाह अकबरके समयमें राजमल्लजी हुए हैं। उस समयकी भाषा कैसी प्रचलित थी-यह भाषा जैपुरके आसपासकी विदित होती है यह ज्ञान भाषाके इतिहास जाननेवालोंको भले प्रकार होजाय इसलिये उनके ही वाक्योंमें जैसीकी तैसी टीका प्रकाश करना ही उचित समझा। थोड़ेसे शब्द नीचे दिये जाते हैं इनको ध्यानमें रखनेसे राजमल्ल कृत टीकाके समझनेमें बड़ी सुगमता होगी-

छै=है। कहुं=को। तिहितैं=इसलिये। योहू=यह भी। तीहे=उसको। म्हाको=हमारा। किस्यो छै=कैसी है। जिहिको=जिसका। तिहिको=उसको। तेहमाहे=तिनमें। कहेवा योग्य छै=कहना योग्य है। पाखे=विना। एनै=इस। करिसी=करेगी। किहीके=किसीके।

जानिज्यो=जानना। जातहै=क्योंकि। इस्यो=ऐसा। इस्यो ही=ऐसा ही। काहूको=किसीका। सारो=चारा-इलाज। किसी छै=कैसी है। तहिं=से। करिस्ये=करेगा। किसु छै=कुछ है। फुनि=फिर। पीयाथैं=पीनेसे। तेही=वे ही। जिस्यो छै=जैसा है। तिस्या=तैसा। कार्यो=क्या। सोई=उसीको या वही। कह्यो छै=कहा है। जावाको=जानेको। केता=कितना। न्यौंव=ज्ञान, समझ। इहिको=इसको। जेतो=जितना। किस्या छै=कैसा है। जिहिं=जिसने। क्यों नहीं=कुछ नहीं। परि=परंतु। कहाकरि=क्या करके-कैसे। छतो ही छै=ऐसा ही है। एवं कहिवेकरि=ऐसा कहनेसे। इत्यादि शब्दोंको ध्यानमें रखनेसे राजमल्ल कृत टीकाको पढ़नेमें कोई कठिनता नहीं होसक्ती है।

अब हमें यह देखना है कि राजमल्लजी कब हुए हैं। समयसार टीकामें कुछ भी परिचय नहीं है। लिपि कर्ताने पांडे राजमल्ल ऐसा शब्द लिखा है। सागरकी प्रतिके अंतमें है "इति श्री परमागम समयसार नाटक श्री अमृतचंद्र आचार्य कृत कलश, पांडे राजमल्ल कृत भाषा टीका, बनारसीदास कृत कवित्त एवं त्रिविधि नाम ग्रन्थ समाप्तः॥

हमने पंचाध्यायी, लाटी संहिता व इस टीकाकी कथनशैलीका जो मिलान किया तो हमको यही अनुमान होता है कि इस समयसार भाषा टीकाके कर्ता भी वही कवि राजमल्ल हैं जिन्होंने पंचाध्यायी व लाटीसंहिता लिखी है। इसके लिये नीचे लिखे कारण हैं—

(१) बनारसीदासजीने जो कवित्त छंद बनाए हैं उनकी रचनाका समय यह दिया है—

सोरहसै तिराणवे बीते, आसु मास सित पक्ष वितीते। तेरसी रविवार प्रमाणा, ता दिन ग्रन्थ समापत कीना ॥३७॥ सुख निधान शकबंधनर, साहिब साहकिराण। सहस साहि सिर मुकुट मणि, साहजहां सुलतान ॥३८॥

इससे प्रगट है कि इस ग्रंथको बनारसीदासजीने बादशाह शाहजहांके राज्यमें संवत १६९३ में रचा था। शाहजहांका राज्य सन् १६२७ से १६५८ तक रहा है अर्थात् वि० सं० १६८० से १७१५ तक रहा है। कवि बनारसीदासने राजमल्ल कृत टीकाको देखकर कवित्त बनाए—उनके कथनसे विदित होता है कि बनारसीदासके समयमें यह न थे किन्तु बहुत पहले होगए हैं। जैसा उनके इन छंदोंसे प्रगट है—

पांडे राजमल्ल जिनधर्मी, समयसार नाटकके मर्मी; तिन्हें ग्रंथकी टीका कीनी, बालबोध सुगम करि दीनी॥ २३॥ इहि विधि बोध वचनिका फैली, समयसार अध्यातम शैली। प्रगटी जगमांही जिनवानी, घरघर नाटक कथा बखानी ॥ २४ ॥ नगर आगरे मांहि विख्याता। कारण पाई भये बहु ज्ञाता। पंच पुरुष अति निपुण प्रवीने, निसदिन ज्ञान कथा रस भीने ॥२५॥ रूपचंद पंडित प्रथम, द्वितिय चतुर्भुज नाम। तृतिय भगौतीदास नर, कौरपाल गुण धाम ॥२६॥ धर्मदास ये पंच जन, मिलि बैठहि इकठौर। परमारथ चरचा करें, इनके कथा न और ॥२७॥

इससे झलकता है कि राजमल्ल कृत टीका बहुत पहलेसे प्रचलित थी—पठन पाठनमें

आरही थी। राजमल्लने लाटीसंहितामें अपना समय बादशाह अकबरका दिया है व वि० सं० १६४१में लाटीसंहिताको पूर्ण किया है। बादशाह अकबरका राज्यकाल सन् १५५६से १६०५ अर्थात् संवत १६०३ से १६६२ तक था। तथा यह कवि जैपुरसे ४० मील वैराटनगरमें थे जब इन्होंने लाटीसंहिता रची। समयसारकी भाषा लिखनेवाले अन्य कोई विद्वान अकबरके समयमें व शाहजहांके पहले प्रसिद्ध नहीं हुए हैं। कवि राजमल्लकी भाषा उस समयकी जैपुरी बोली थी जिसे उन्होंने समयसार टीकामें झलकाया है।

(२) बनारसीदासजीने इनको पांडे राजमल्ल इसलिये लिखा है कि यह काष्ठासंघी भट्टारककी आम्नायके पंडित थे। जैसा लाटीसंहिताके प्रथम अध्याय व अंतप्रशस्तिसे प्रगट है। भट्टारकोंके पंडितोंको पांडे कहनेका रिवाज है। कविने लिखा है कि लोहाचार्यकी काष्ठासंघ आम्नायमें कुमारसेन भट्टारक हुए। उनके बाद क्रमसे हेमचन्द्र, पद्मनंदी, यशस्कीर्ति, क्षेमकीर्ति कविके समयमें क्षेमकीर्ति भट्टारक थे। जिनकी प्रशंसा नीचेके श्लोकमें कविने दी है—

तत्पट्टेऽस्त्यधुना प्रतापनिलयः श्रीक्षेमकीर्तिर्मुनिः। हेयाहेयविचारचारुचतुरो भट्टारकोष्णांशुमान्॥
यस्यप्रोषधपारणादिसमये पादोदबिन्दूत्करै—। र्जातान्येव शिरांसि धौतकलुषाण्याशाम्बराणां नृणाम्॥

इससे यह पांडेके नामसे प्रसिद्ध होगए थे, यद्यपि आपको उन्होंने कवि ही लिखा है।

(३) कथनशैलीको देखते हुए विदित होगा कि पंचाध्यायीमें जिस वैभाविक शक्तिका उल्लेख नीचेके पद्यमें किया है उसीका कथन समयसार टीकामें भी आया है—

न परं स्यात्परायत्ता सती वैभाविकी क्रिया। यस्मात्सतोऽसती शक्तिः कर्तुमन्येन शक्यते॥ ६२॥

भावार्थ—यह वैभाविकी शक्ति पराधीन नहीं है—यह जीवकी शक्ति है क्योंकि शक्ति यदि सत् न हो तो कोई उसे उत्पन्न नहीं कर सक्ता है।

समयसार टीकामें राजमल्लजीने सर्वविशुद्ध अधिकारमें "न जातु रागादिनिमित्तभावम्" इस श्लोककी टीकामें लिखा है—" जीवद्रव्य अशुद्ध परिणाम मोह रागद्वेष रूप परिणवै छे तिहिको उपादान कारण छे, जीव द्रव्य मांहे अंतर्गर्भित विभावरूप अशुद्ध परिणमन शक्ति"।

किसी अन्य भाषा टीकाकारने वैभाविकी शक्तिका इतना स्पष्ट कथन नहीं किया है इससे दोनोंका कर्ता एक ही राजमल्ल विदित होते हैं। दूसरा प्रमाण यह है कि आत्मामें सर्व गुण इसतरह व्यापक हैं जैसे आमके पुद्गलमें वर्ण गंध रस स्पर्श। यह दृष्टांत पंचाध्यायीमें भी है और समयसार टीकामें भी है। देखें अंत अधिकार व्याख्या " न द्रव्येण खंडयामि " आदिकी।

लिखा है "यथा एक आम्रफल स्पर्श रस गंध वर्ण विराजमान पुद्गलको पिंड छे...." ऐसा ही पंचाध्यायीमें कहा है—" स्पर्शरसगंधवर्णा लक्षणभिन्ना यथा रसालफले कथमपि ही पृथक्कर्तुं न तथा शक्यास्त्वखंडदेशभाक्॥ ८३॥ इससे भी दोनोंका भाव, ज्ञान, व

वक्तव्य एक समान हैं। इत्यादि कारणोंसे हमको तो अबतक यही निश्चय होता है कि कवि राजमल्ल व पांडे राजमल्ल दोनों एक ही हैं।

अन्य विद्वान इस समयसार ग्रंथको पूर्ण पढ़कर विचार करें। जो विद्वता पंचाध्यायी-में है वही विद्वता इस टीकामें झलक रही है।

अध्यात्मप्रेमी इसे पढ़कर स्वानुभवको प्राप्त करें इसी भावसे इसको प्रकाशनार्थ लिखा गया है।

कातिकवदी १ वी० सं० २४५५ शनिवार
ता० १९-१०-२९
धाराशिव (उसमानाबाद)

ब्रह्मचारी सीतलप्रसाद।

विषयसूची।

श्रीमान् सेठ नेमचन्द बालचन्दजी वकील-उसमानाबाद।

[इस शास्त्रको "जैनमित्र" के ग्राहकोंको भेटमें देनेवाले दानी नररत्न]

जैनविजय प्रिन्टिंग प्रेस-सूरत।

श्री सेठ नेमचन्द वालचन्द वकील और उनके कुटुम्बका जीवनपरिचय।

इस ग्रंथको प्रकाश करनेमें विपुल आर्थिक सहायता देनेवाले श्री० सेठ नेमचंद वालचंद वकील धाराशिव (उसमानाबाद) जिला शोलापुर निवासी दशाहूमड़ जातिके दिगंबर जैन-शोलापुर जिलेमें माननीय धनवान सद्गृहस्थ हैं। इस समय आप कई लक्षके धनी हैं। आपके बड़े बाबा रतनचंदजी गुजरातके जादर ग्राम संस्थान ईडरसे व्यापार निमित्त धाराशिवमें आकर वसे थे उस समय उनके पास मात्र २) की पूंजी थी।

रतनचन्दजीके पुत्र कस्तूरचन्दजी हुए। कस्तुरचन्दजीके दो पुत्र हुए-वालचन्द और अमीचन्द। सेठ कस्तूरचंदजी वि० सं० १९०० के अनुमान जब शिखरजीकी यात्रार्थ गए थे और उनका वहीं स्वर्गवास होगया था तब सेठ वालचन्दजीकी आयु १६ वर्षकी थी। उस समय बहुतसा कर्ज माथेपर था। वालचन्दजी व्यापारमें कुशल थे। संवत १९०८ तक तो स्थिति साधारण रही। धीरे धीरे सब करजा चुका दिया गया फिर २५-२६ वर्षमें इतनी आर्थिक उन्नति की कि घराना लक्षपति गिना जाने लगा तब सेठ वालचंदजीने अपने घरका मकान २० हजारकी लागतका बनवाया। वालचंदजीके चार पुत्र थे-रामचंद, नानचंद, नेमचंद, और माणिकचंद। सर्व ही व्यापारमें कुशल हुए। रामचन्दजी मराठी फारसी उर्दू जानते थे। इनका देहांत सं० १९६६ में ४४ वर्षकी आयुमें होगया। इनके सुपुत्र फूलचंदजी बी० ए० एल एल० बी० वकील अब विद्यमान हैं। जिनकी आयु अब ३० वर्षकी है। नानचंदजी संस्कृत, उर्दू, मराठी व जैनधर्मके भी ज्ञाता थे, वकील थे व मराठीमें अच्छी कविता करते थे। आपने मराठी कवितामें द्रव्यसंग्रह, श्रावक प्रतिक्रमण व रविवार व्रत कथा रची है। आपका स्वर्गवास ५९ वर्षमें वि० सं० १९८५ में होगया। आपके मोतीचन्द व हीराचन्द दो सुपुत्र थे। दोनों युवावयमें कालवश हुए। मोतीचन्दके पुत्र विनयकुमार अब विद्यमान है।

इस चारित्रके मुख्य नायक श्री० नेमचन्दजी गु० कार्तिक वदी १२ सं० १९३० को जन्मे थे। आप मराठी, उर्दू, हिन्दी, गुजराती, संस्कृत, इंग्रेजीके ज्ञाता व वकालत तथा व्यापारमें अति कुशल हैं। आपको बाल्यावस्थासे धर्मका ज्ञान न था परन्तु सं० १९५०के अनुमान सेठ रामगोपाल खंडेलवाल श्रावकने आपको स्वाध्यायका नियम कराया, तबसे आपको जैनधर्मकी रुचि हुई। संवत १९५५ में आपने पद्मनंदीपच्चीसी संस्कृत ग्रंथका मराठी व गद्य पद्यमें अनुवाद पं० कृष्णजी जोशीसे कराया व स्वयं उसकी हिन्दी करके

उसको प्रसिद्ध किया। उस समय आप संस्कृत नहीं जानते थे। फिर आपने संस्कृत व्याकरण व साहित्यका व धर्मशास्त्रका अच्छा अभ्यास कर लिया।

आपके दो विवाह हुए। दोनों पत्नी अब नहीं हैं। पहली पत्नीसे छः लड़किये व दो लड़के जन्मे जिनमेंसे मात्र दो लड़कियोंकी शादी कर सके। बड़ी लड़की राजूबाईका देहान्त होगया। उसके दो पुत्र व एक पुत्री सजीवित हैं। छोटी लड़की माणकबाई हीराचंद दीपचंद अक्कलकोटके पुत्र रावजीको विवाही गई थी। वह १८ वर्षकी आयुमें ही विधवा होगई तब वह संस्कृत व धर्म कुछ नहीं जानती थी, परन्तु सेठ नेमचन्दजीने पुत्रीको अपने घरमें रखकर संस्कृत व धर्मकी स्वयं शिक्षा दी व इतनी योग्य कर दी कि वह आज संस्कृत सुगम श्लोकका अर्थ कर लेती है व सर्वार्थसिद्धि तथा गोम्मटसार समझती हैं। इनकी आयु अब ३६ वर्षकी है। सेठ माणिकचन्दजीकी आयु ५३ वर्षकी है। यह मराठी, उर्दू, हिन्दी जानते हैं। आपकी धर्मपत्नी अब नहीं है। दो पुत्र व एक पुत्री मौजूद हैं। पुत्र कुमुदचंद बी० ए० में व विमलचंद ९वीं में पढ़ते हैं। पुत्री फूलबाई विवाहित है।

सेठ बालचंदजीके भाई अमीचंदके पुत्र हीराचंद हुए। संवत १९५७ तक ये सम्मिलित थे। फिर इन्होंने अपना कार्य व्यवहार पृथक् कर लिया। धाराशीवमें सेठ हीराचन्द अमीचन्दका भी घर माननीय धनवान सद्गृहस्थ गिना जाने लगा। सेठ बालचंदजीके सुपुत्रोंमें बराबर ऐक्य रहा। सेठ बालचन्दजीका देहांत सम्वत् १९६१ में हुआ। पश्चात् चारों भाइयोंने व्यापारमें बराबर उन्नति की है। सेठ नेमचंदजी धाराशिवमें प्रसिद्ध प्रथम नंबरके वकील हैं। आप वकालतमें भी अच्छा धन कमाते हैं। मराठी गद्य भी बहुत अच्छा लिखते हैं। आपने सप्त तत्त्व और गुणस्थान चर्चा नामकी मराठीमें एक पुस्तक प्रकाशित की है। व अभी गोम्मटसार कर्मकाण्डका स्वाध्याय करते हुए आप उसका संक्षिप्त विवरण मराठीमें लिख रहे हैं। आप गुणग्राही व स्वतंत्र विचारक हैं। जैनसमाजके सर्व ही समाचारपत्रोंको पढ़ते रहते हैं। सर्वदेशी शिक्षासंस्थाओंमें भी सहाय करते रहते हैं। आपने सकुटुम्ब दो दफे श्री सम्मेदशिखरजीकी व एक दफे श्री गोम्मटस्वामीकी यात्रा की। सं० १९४९ में आपने श्री सम्मेदशिखरजीकी उपरैली कोठीके मंदिरजीमें ७०४) देकर संगममरका पत्थर लगवाया। आप व आपके भाइयोंको विद्याका बड़ा ही प्रेम है। इसलिये उन्होंने श्री कुन्थलगिरि देशभूषण कुलभूषण ब्रह्मचर्याश्रमको २०००), महावीर ब्रह्मचर्याश्रम कारंजाको ३०००), श्राविकाश्रम बंबईको १०००), गोपाल जैनसिद्धांत विद्यालय मोरेनाको ६००) व स्याद्वाद महाविद्यालय काशीको ५००) दान किये हैं। इसके सिवाय विद्या संस्थाओंको जो ५००) से कमकी फुटकल रकमें दीं उनका उल्लेख यहांपर नहीं किया गया है। कुन्थलगिरजी क्षेत्रके प्रबंधार्थ भी ५००) दान किया है।

सेठ नेमचंदजीको जिनवाणीके प्रकाशका इतना प्रेम है कि आपने २०००) देकर कलकत्तेकी जैनसिद्धान्तप्रकाशिनी संस्था स्थापित कराई, जिससे गोम्मटसार ऐसे महान् ग्रन्थका प्रकाश हुआ व माणिकचंद ग्रन्थमालामें आपने ७००) देकर संस्कृत हरिवंशपुराण प्रगट कराया व और भी सहायता ग्रन्थ प्रकाशनमें दी। इस समय आप श्री अमितगति आचार्यकृत "पञ्चसंग्रह" ग्रन्थका हिन्दी भाषांतर पंडित वंशीधरजी शास्त्री शोलापुर द्वारा प्रकाश करा रहे हैं। जिसमें करीब १॥ हजार खर्च होंगे तथा इस समयसार राजमल्लीय टीकाके प्रकाशनमें आपने बड़ी भारी सहायता देकर इस ग्रन्थको जैनमित्रके ग्राहकोंको मुफ्त वितरण कराया है। आपके कुटुम्बने १६०००) लगाकर धाराशिवमें एक रमणीक मंदिर श्री श्री आदिनाथस्वामीका निर्माण कराया है। आप बड़े उदारचित, विद्याप्रेमी व जिनवाणीभक्त हैं। स्वाध्याय व सामायिकमें नित्य लौलीन हैं। आपकी भावना है कि श्री धवल जयधवलादि महाग्रन्थोंका भी लाभ भाषाटीका द्वारा सर्व जैनसमाजको होजावे। इस समय आप ६७ वर्षके हैं व अपने गृही धर्मसाधनमें रत हैं–गोम्मटसारका सूक्ष्मतासे मनन करते हैं। आपने अमितगतिकृत सामायिक पाठका मराठी भाषांतर भी कवितामें किया है।

आपका जिनवाणी प्रेम सारे जैनसमाजको अनुकरणीय है। व जैनमित्रके पाठकोंको इतना बड़ा ग्रन्थ उपहारमें मिलनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है उसके कारणभूत आप ही हैं। आप चिरायु होकर विशेष धर्मसाधन, जिनवाणीसेवा, व परोपकार करनेमें अपना जीवन वितावे, यही हमारी आंतरिक भावना है।

नोट–इस ग्रन्थकी कुल १३०० प्रतियां प्रगट की गई हैं जिनमेंसे ११०० 'मित्र'के ग्राहकोंको भेटमें दी गई हैं व शेष विक्रयार्थ अलग निकाली गई हैं।

सूरत
वीर सं० २४५७
पौष सुदी ३। } मूलचन्द किसनदास कापड़िया–प्रकाशक।

शुद्धाशुद्धिपत्र ।

पृष्ठ	ला०	अशुद्ध	शुद्ध
२	६	जाणितो	जाणिवो
,,	१४	जानता भवता जाननहारी	जानतां अनुभवतां जाननहाराको
३	२६	अडील	अडोल
४	२१	शकोन	को सौन
,,	,,	कमर	करम
,,	२२	घुलत	घुलत
५	१९	धुन	धन
८	२१	कुनि	फुनि
१०	६	समता	भ्रमता
१६	२	तण छे	झूठा छे
,,	२२	यथार्थ	पर्याय
,,	२६	मुणहि	मुणहि
,,	२७	व्रहु	लहु
१९	१६	वृथा	पृथग्
,,	२९	आपुनयो	आपुनपो
२१	८	क्षैके	जैसे
,,	१७	दह्यो	रह्यो
२२	११	तहु	कहु
२५	२७	णिच्छयवाण	णिच्छयणाएण
२६	७	दर्शया	दर्शन
२९	११	अथा	अप्पा
,,	१६	व्यान	ध्यान
३१	४	कुनि	फुनि
४०	२१	अंतर झूठी	अंतर गूझी
,,	२२	सब झूठी	सब गूझी
,,	२५	यावद्व्रत्तिमत्यन्त	यावद्वृत्तिमत्यन्त
४२	२४	आयो पर जायो	आपो पर जान्यो
४३	९	शुद्ध नाहीं	शुद्ध
४४	१३	मोह उयह	मोक्ष उयह
४७	१२	कायो	कादो
,,	२०	विभवता	विभावता
४८	५	याम्नो	धाम्नो
५०	१७	उयादेव	उपादेय
५२	१२	खांजे	खाड़ो
५६	१६	सुद	सुद्ध
५७	९	अकुलता	आकुलता
,,	२९	ज्ञातहिं	जातहिं
५८	३	परिणायो	परिणयो
६१	१३	दूणो	इणो
६२	५	याद करि	पाय करि
६५	२२	अनुमान	अनुभाग
६८	२०	आत्माको	आत्माके
८३	८	योगाभिलाप	भोगाभिलाष
८५	१७	अशक्त	आशक्त
८६	३	मुक्ता	मुक्त्वा
८७	४	विभाग	विभाव
,,	१२	कल्पनाके दिये	कल्पना करिये
,,	१७	तपको	मनको
९८	२५	देह	देय
९९	१९	प्रतिबोध	प्रबोध
१०१	१०	यदि वृंहणार्थम्	परिवृंहणार्थम्
१०३	२१	रूझत	झूझत
१०४	४	एक कहतां	एवं कहतां
१०५	१०	परिणवैयो	परिणवै थो
,,	२९	मान	आन
११०	२३	यति	याते
१११	१०	छौड़े छे	दौड़े छे
,,	२०	दोषको	दोष तो
११४	१०	ऐसो	ऐसा
११६	७	हटावै छे	जावै छे
११९	२०	प्रदेश इसो	प्रदेशहूँ सो
१२२	९	जन्तुं	जेतुं
१२५	२६	कृतः	कुतः
,,	२८	एक	एवं
१२८	८	द्रध्य	द्रव्य
,,	१५	परिणमन छे	परिणाम न छे
,,	२१	बन्ध नहीं	बन्ध वही
,,	३१	दश	दशा

पृष्ठ	ला०	अशुद्ध	शुद्ध
१३३	२५	करि सकाय	कहीं सकाय
१३५	२१	जातिपनो	जीतिपनो
„	२५	जीनराशी	जीवराशि
„	२८	नीतिपनो	जीतिपनो
१४०	१९	एकता	तकता
१४३	५	तिथि	थिति
„	१९	वहुहि	वहुरि
„	२५	कहं	कइ
१४५	१९	लाभका लाभ	लाभ या अलाभ
१४८	२६	ये योगी	हे योगी
१४९	१९	उदय आयो	उदय आपो
१५५	२४	मरम मरम	मरम मरण
१५८	२५	मरि चूनो	मरि चूरो
१६२	१९	त्युपयोगः	त्युपभोगः
१६३	३	सांग्री	सामग्री
१६४	२६	परेसौं	परसौं
१६६	१९	ममेसतः	ममेत्यंतः
१६९	९	विराजने	विराधने
१७२	१५	अरंजक	रंजक
„	२१	फललिप्सुः	फललिप्सुः ना
१८३	२५	यानी	ग्यानी
१८४	२८	गूढ	मूढ
१८५	११	परपोष	परदोष
१८६	५	अजृंभणेत	उज्जृंभणेत
१९१	४	वनमें	वैनमें
„	१७	परम	भरम
१९४	२२	कठोठी	कठोती
१९६	६	निवाऊं	जिवाऊं
१९७	६	करामति	करामात
१९८	३	कहता	करता
१९९	२८	यत्प्रभावत्	यत्प्रभावात्
२०४	८	स्वभावको	स्वभाव
२०५	१	संचुके	सकुचे
„	५	धूहे	थूहे
„	२०	असूझत	अरूझत
२०७	४	मेषको	भेषको
„	५	मोहीसोंतोहीसों	मोहीसों न तोहीसों
२०८	२५	पूर्ण ज्ञान	पूर्ण ज्ञानं
२०९	१४	भेदज्ञानकदि	भेदज्ञानकरि
२११	१९	पोरी	पीरी
११४	४	आपनशीली	व्यापनशीली
२१५	१	दो पर	दोष
२१७	२२	पृथग् लक्षण	पृथग् लक्षणाः
२१९	१७	पराजय	परजाय
„	२५	पुद्गल पुद्गणा	पुद्गल वर्गणा
२२०	२१	अतीव	अतीत
२२३	४	अनुसौ	अनुसौं
२२६	११	अन्यच	अन्यत्र
२२८	९	कर्तुत्वं	कर्तृत्वं
„	„	स्वाभावो	स्वभावो
„	१७	मिथ्यात्व	मिथ्यात्वं
२२९	२९	परकामना	परकासना
२३०	८	गणदेवांह	गणधरदेवांह
२३१	१६	उत्यादि	इत्यादि
२३३	२८	सुद्धिणे	सुद्धि ण
२३४	२७	कर्तु	कर्तं
२३८	१५	कृतिः	श्रुतिः
२४०	३२	चारित्र मोह एका	चारित्रमोहका
२४१	९	पावें	पावै
„	२९	जंजरनि	जंजीरनि
२४५	१६	मुक्तिवशतः	युक्तिवशतः
„	३०	देह	देय
२४७	२२	विचरे	विचारे
२५१	६	जैनोंके	जीवोंके
२५४	१९	वोध्ये	वोधं
२५६	१२	सम्यग्दष्टी	सम्यग्दृष्टी
२५७	७	त्यक्त।	व्यक्ता
२५८	२२	कह्यो	कथ्यो
२६२	६	पुद्गलज्ञान	शुद्ध ज्ञान
२६६	६	कोपर लहे	कोमल है

पृष्ठ	ला०	अशुद्ध	शुद्ध
२७०	१५	अल्पर्थ	अत्यर्थ
२७१	१२	विस्तर	विस्तार
,,	२४	उद्वस	उद्वास
२७४	२	अष्ट रिद्धि	अष्ट महारिद्धि
२८४	१३	अनुभता	अनुभवतां
२८८	२८	ज्ञायं	ज्ञानं
२८९	१	अमिप्राय	अभिप्राय
२९१	१२	कांतिकी	कांतिकरि
२९३	२१	निरुद्र	निरुद्ध
२९६	२९	अस्यन्विजकालतः	अस्य निजकालतः
३०३	३	एकांक्तवादी	एकांतवादी
३०४	६	ज्ञापक	ज्ञायक
३०६	१५	भरितवस्थ	भरितावस्थ
३११	६	मर्म	भर्म
,,	१८	गए	भए
३१३	३	मयी	मयि
३१५	१९	गुणेशों	गुणांशों
३१७	८	अरथ अरव	अक्खर अरथ

पृष्ठ	ला०	अशुद्ध	शुद्ध
३१७	२९	ममै छे	मभै छे
३१९	२१	भावोपहृति	भवोपहृति
३२०	१	भावोपहृति	भवोपहृति
३२१	७	होती	जेती
३२२	१८	उभै	उभय
३२४	१२	द्वादशों ढं	द्वादशांग
३२५	११	चवि	छवि
३२६	१०	कल्पल्व	अलरूप
,,	२८	मूषण	भूषण
३२८	५	क्षपषट्	क्षपषट् वेदे इक जो, क्षायक वेदक सोय, षट्
३२८	५	रुकविदे	इकविदे
३३१	१७	चलाल्ल	चलाचल
,,	२१	उपसममें	उपसमें
,,	,,	यथाख्त	यथाख्यात
३३२	१०	जरा खेद	जरा स्वेद
३३४	२१	संकृत	संस्कृत
३३६	१४	यह	सह

श्रीवीतरागाय नमः

राजमल्लीय—

समयसार कलश टीका।

मंगलाचरण।

अर्हत्सिद्धाचार्य गुरु, साधु परम गुणवान। वंदहुं मन वच कायसे, होय विघ्नकी हान ॥१॥
ऋषभदेव अति वीरलों, चौवीसों जिनराय। धर्म प्रवर्तक तीर्थगुरु, वंदहुं उर उमगाय ॥२॥
गौतम गणधरको नमूं, नमि सुधर्म मुनिराय। जंबुस्वामि त्रयकेवली, नमहुं परम सुखदाय ॥३॥
कुंदकुंद आचार्यको, जिन निज तत्त्व लखाय। दर्शायो निज वचनसे, नमहुं स्वगुण उर ध्याय ॥४॥
सुधाचंद्र आचार्यको, सुमरूं वारम्वार। अध्यातम रचना करी, ज्ञान पूर्ण भवहार ॥ ५ ॥

उत्थानिका—श्री कुंदकुंद महाराजने श्री समयसार प्राकृत ग्रंथकी अपूर्व रचना की, उसका भाव लेकर श्री अमृतचंद्र आचार्यने संस्कृत कलश रचे व उनकी भाषाटीका परम विद्वान राजमलजीने रची थी, उसीका संशोधन व विस्तार स्वपर हेतु किया जाता है—

नमः समयसाराय स्वानुभूत्या चकाशते।
चित्स्वभावाय भावाय सर्वभावान्तरच्छिदे ॥ १ ॥

खंडान्वय सहित अर्थ—भावाय नमः भाव शब्दे कहिजे पदार्थ, पदार्थ संज्ञा छै सत्त्वे[1] स्वरूप कहु। तिहितै यो अर्थ ठहरायो जो कोई शास्वतो वस्तुरूप, तिहैं म्हाको नमस्कार। सो वस्तुरूप किसो छै चित्स्वभावाय चित् कहिजै ज्ञान चेतना सोई छै स्वभाव सर्वस्व जिहिको तिहिको म्हाको नमस्कार। इहि विशेषण कहतां दोइ समाधान हुइ छै। एकु तो भाव कहतां पदार्थ, ते पदार्थ केई चेतन छै, केई अचेतन छै, तिहि मांहि चेतन पदार्थ नमस्कारु करिवा योग्य छै इसो अर्थ उपजै छै। दुजो समाधान इसो जो यद्यपि वस्तुको गुण वस्तु माहै गर्भित छै, वस्तु गुण एक ही सत्त्व[2] छै। तथापि भेद उपजाइ कहिवा योग्य छै। विशेषण कहिवा पैषि[3] वस्तुको ज्ञान उपजै नहीं। पुनः किंविशिष्टाय भावाय और किसो छै भाव। समयसाराय—यद्यपि समय शब्दका बहुत अर्थ छै। तथापि एनै अवसर[4] समय शब्दे सामान्यपनै जीवादि सकल पदार्थ जानिवा। तिहि मांहैं जो कोई सार छै। सार कहतां उपादेय[5] छै, जीव वस्तु तिहिकौ म्हाको नमस्कारु। इहि विशेषणको यो भावार्थ—सारपनो जानी चेतन पदार्थनै

१–जिसकी सत्ता या मौजूदगी सदा पाई जावे। २–द्रव्य और उसके गुण एक ही स्थानमें रहते है, अलग नहीं पाए जासके। ३–विना। ४–यहांपर। ५–ग्रहण करने लायक।

नमस्कार प्रमाण राख्यो। असारपनो जानि अचेतन पदार्थनैं नमस्कारु निषेध्यो। आगे कोई वितर्क करिसी जो सर्व ही पदार्थ अपना अपना गुणपर्याय विराजमान छे स्वाधीन छे। कोई किहीके आधीन नहीं। जीव पदार्थको सारपनो क्यों घटे छे। तिहिके समाधानकरिवाकहु दोई विशेषण कह्या। पुनः किंविशिष्टाय भावाय और किसो छे भाव स्वानुभूत्या चकासते, सर्वभावांतरच्छिदे च। एने अवसर स्वानुभूति कहतां निराकुलत्व लक्षण शुद्धात्म परिणमनरूप अतीन्द्रिय सुख जाणितो। तिहिरूप चकासते–अवस्था छे जिहिकी। सर्वभावांतरच्छिदे–सर्व भाव कहतां, अतीत अनागत वर्तमान पर्याय सहित अनंतगुण विराजमान जावंत जीवादि पदार्थ तिहिको अंतरछेदी–एक समय माहे जुगपत् प्रत्यक्षपने जानन शील जो कोई शुद्ध जीव वस्तु तिहिको म्हाको नमस्कारु। शुद्ध जीव कहु सारपनो घटे छे, सार कहतां हितकारी। असार कहतां अहितकारी। सो हितकारी सुख जानिज्यो, अहितकारी दुख ज्यानिज्यो। जातहि अजीव पदार्थ पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल कहुं[1] अरु संसारी जीव कु सुखु नहीं, ज्ञानु[2] भी नहीं अरु तिहिको स्वरूप जानतां जाननहारा जीव कुं भी सुखु नहीं ज्ञानु भी नहीं, तिहिते इनको सारपनो घटे नहीं। शुद्ध जीव कहु सुखु छे, ज्ञानु भी छे, तिहिके जानतां भवतां जाननहारी सुखु छ ज्ञान भी छ तिहिते शुद्ध जीवको सारपनो घटे छे॥ १॥

भावार्थ–श्री अमृतचंद्र आचार्यने इस श्लोकमें शुद्ध आत्माको इसलिये नमस्कार किया है कि उस आत्मामें कोई कर्मका मैल नहीं है इसलिये वह सर्वज्ञ व सर्वदर्शी है तथा वीतराग है। सर्वज्ञ वीतराग होकर भी वह निरंतर अपने आत्मा हीमें मग्न रहते हुए आत्मीक स्वाधीन सुखका स्वाद लेते रहते हैं। छः द्रव्योंके समुदायरूप लोकमें शुद्ध आत्माएं ही परम हितकारी हैं क्योंकि जैसे वे शुद्ध ज्ञान व आनन्दके स्वामी हैं वैसे जो उनको जानकर उनके स्वरूपका अनुभव करता है उसको भी आत्मज्ञान व आनन्द होता है। आचार्यकी अंतरंग भावना ही यह है कि हमारा आत्मा स्वाधीन होकर परमात्मा होजाय इसलिये जो स्वाधीन शुद्ध परमात्मा हैं उनको नमस्कार किया है। अर्थात् उनहीके शुद्ध गुणोंको अपने मनमें धारण करके उनसे गाढ़ भक्ति उत्पन्न की है। भक्तकी गाढ़ भक्ति ही उसकी परिणतिको उन्नत बनानेमें कारण होती है।

सूचना–पंडित बनारसीदासजीने राजमल्ल कृत टीकाको देखकर नाटक समयसार ग्रंथ बनाया है सो भी इसी जगह दिया गया है। मूल संस्कृत श्लोकोंके अनुसार छंद रचे हैं। कहीं कहीं विशेष भी रचना की है। आदिमें भूमिका रूप जो विशेष कथन किया है वह नीचे प्रमाण है:—

१–को। २–आत्मज्ञान।

अथ श्री पार्श्वनाथजीकी स्तुति—करम भरम जग तिमिर हरन खग, उरग लखन पग सिवमग दरसि ॥ निरखत नयन भविकजल वरषत हरषत अमित भविकजन सरसि ॥ मदन कदन जित परम धरमहित, सुमरत भगत भगत सब डरसि ॥ सजल जलदतन मुकुट-सपत फन, कमठदलनजिन नमत बनरसि ॥ १ ॥

समस्तलघु एकस्वर काव्य—सकल करम खल दलन, कमठ सठ पवन कनक नग ॥ धवल परम पद रमन, जगतजन अमल कमल खग ॥ परमत जलधर पवन, सजलघन समतन समकर ॥ परअघ रजहर जलद, सकलजन नत भव भयहर ॥ यमदलन नरकपद क्षयकरन, अगम अतट भव जलतरन ॥ वर सबल मदन वन हर दहन, जयजय परम अभयकरन ॥२॥

पुनः सवैया ३१ सा—जिन्हके वचन उर धारत युगल नाग, भये धरनिंद पदमावती पलकमें ॥ जाके नाममहिमासों कुधातु कनककरे पारसपाखान नामी भयोहै खलकमें ॥ जिन्हकी जनमपुरी नामके प्रभाव हम, आपनों स्वरूप लख्यो भानुसो भलकमें ॥ तेई प्रभु पारस महारसके दाता अब, दीजे मोहिसाता दृगलीलाकी ललकमें ॥ ३ ॥

अथ श्रीसिद्धकी स्तुति—अविनाशी अविकार परमरस धाम है ॥ समाधान सरवंग सहज अभिराम है ॥ शुद्धबुद्ध अविरुद्ध अनादि अनंत है ॥ जगत सिरोमणि सिद्ध सदा जयवंत है ॥ ४ ॥

अथ श्रीसाधुकी स्तुति—ग्यानको उजागर सहज सुखसागर, सुगुन रतनागर विरागरस भऱ्यो है ॥ सरनकी रीत हरे मरनको भै न करे, करनसों पीठदे चरण अनुसऱ्यो है ॥ धरमको मंडन भरमको विहंडनजु, परम नरम व्हैके करमसो लऱ्यो है ॥ ऐसो मुनिराज भूवलोकमें विराजमान, निरखी बनारसी नमस्कार कऱ्यो है ॥ ५ ॥

अथ सम्यग्दृष्टीकी स्तुति—भेदविज्ञान जग्यो जिन्हके घट, सीतल चित्त भयो जिम चंदन ॥ केलि करे शिव मारगमें, जगमाहि जिनेश्वरके लघुनंदन ॥ सत्यस्वरूप सदा जिन्हके, प्रगट्यो अवदात मिथ्यात निकंदन ॥ शांत दशा तिनकी पहिचानि, करे करजोरि बनारसी वंदन ॥ ६ ॥ स्वारथके सांचे परमारथके सांचे चित्त, सांचे सांचे वैन कहे सांचे जैनमती है ॥ काहूके विरुद्धी नांही परजाय बुद्धि नांही, आतमगवेषी न गृहस्थ है न यती है ॥ रिद्धिसिद्धि वृद्धि दीसे घटमें प्रगट सदा, अंतरकी लछिसों अजाची लक्षपती है ॥ दास भगवंतके उदास रहै जगतसों, सुखिया सदैव ऐसे जीव समकिती है ॥ ७ ॥ जाके घटप्रगट विवेक गणधरकोसो, हिरदे हरख महा मोहको हरतु है ॥ सांचा सुख मानें निज महिमा अडोल जानें, आपुहीमें आपनो स्वभावले धरतु है ॥ जैसे जलकर्दम कुतकफल भिन्न करे, तैसे जीव अजीव विलछन करतु है ॥ आतम सगति साधे ग्यानको उदो आराधे, सोई समकिती भवसागर तरतु है ॥ ८ ॥

मिथ्यादृष्टि–धरम न जानत बखानत भरमरूप, ठौरठौर ठानत लराई पक्षपातकी ॥ भूल्यो अभिमानमें न पावधरे धरनीमें, हिरदेमें करनी विचारे उतपातकी ॥ फिरे डांवाडोलसो करमके कलोलनिमें, व्हैरही अवस्थाज्यूं वभूल्याकेसे पातकी ॥ जाकीछाती तातीकारी कुटिल कुवाती भारी, ऐसो ब्रह्मघाती है मिथ्याती महापातकी ॥ ९ ॥

दोहा—वंदौं सिवअवगाहना, अर वंदो सिवपंथ ।
जसु प्रसाद भाषा करो, नाटक नाम गिरंथ ॥ १० ॥

अब कविवर्णन–चेतनरूप अनूप अमूरत, सिद्धसमान सदापद मेरो ॥ मोह महातम आतम अंग, कियो परसंग महा तम घेरो ॥ ज्ञानकला उपजी अब मोहिं, कहूं गुणनाटक आगम केरो ॥ जासु प्रसाद सिधे सिवमारग, वेंगि मिटे घटवास वसेरो ॥ ११ ॥

अब कवि लघुता वर्णन–जैसे कोऊ मूरख महासमुद्र तरिवेको, भुजानिसो उद्युत भयोहै तजि नावरो ॥ जैसे गिरि ऊपरि विरखफल तोरिवेको, वामन पुरुष कोऊ उमगे उतावरो ॥ जैसे जल कुण्डमें निरखी ससि प्रतिबिंब, ताके गहिवेको कर नीचो करे टावरो ॥ तैसे मैं अल्पबुद्धि नाटक आरंभ कीनो, गुनी मोही हँसेंगे कहेंगे कोऊ बावरो ॥ १२ ॥ जैसे काहू रतनसौ वींध्यो है रतन कोऊ, तामें सूत रेसमकी डोरी पोयगई है ॥ तैसे बुद्ध-टीकाकरी नाटक सुगमकीनो, तापरि अल्पबुद्धि सुधी परनई है ॥ जैसे काहू देशके पुरुष जैसी भाषा कहै, तैसी तिनहूके बालकनि सीखलई है ॥ तैसे ज्यौ गरंथको अरथ कह्यो गुरु त्योंही, मारी मति कहिवेको सावधान भई है ॥ १३ ॥ कबहू सुमती व्है कुमतिको विनाश करै, कबहू विमलज्योति अंतर जगति है ॥ कबहू दयाल व्है चित्त करत दयारूप, कबहू सुलालसा व्है लोचन लगति है ॥ कबहू कि आरती व्है प्रभु सनमुख आवै, कबहू सुभारती व्है बाहरि बगति है ॥ धरे दशा जैसी तब करे रीति तैसी ऐसी, हिरदे हमारे भगवंतकी भगति है ॥ १४ ॥ मोक्ष चलिवे शकोन करमको करेवोन, जाके रस भाने बुध लोनज्यौं धुलत है ॥ गुणको गरंथ निरगुनको सुगमपंथ, जाको जस कहत सुरेश अकुलत है ॥ याहीके जु पक्षीते उड़त ज्ञानगगनमें, याहीके विपक्षी जगजालमें रुलत है ॥ हाटकसो विमल विराटकसो विसतार, नाटक सुनत हिये फाटक खुलत है ॥ १५ ॥

दोहा–कहूं शुद्ध निश्चय कथा, कहूं शुद्ध व्यवहार । मुकति पंथ कारन कहूं, अनुभौको अधिकार ॥ १६ ॥ वस्तु विचारत ध्यावतें, मन पावै विश्राम । रस स्वादत सुख ऊपजै, अनुभौ याको नाम ॥ १७ ॥ अनुभौ चिंतामणि रतन, अनुभव है रस कूप । अनुभौ मारग मोक्षको, अनुभौ मोक्ष स्वरूप ॥ १८ ॥

सवैया ३१ सा–अनुभौके रसको रसायण कहत जग, अनुभौ अभ्यास यह तीरथकी ठौर है ॥ अनुभौकी जो रसा कहावै सोई पोरसासु, अनुभौ अधोरसासु ऊरधकी दौर

है ॥ अनुभौकी केलि इह कामधेनु चित्रावेलि, अनुभौको स्वादपंच अमृतको कौर है ॥ अनुभौ करम तोरे परमसो प्रीति जोरे, अनुभौ समान न धरम कोऊ और है ॥ १९ ॥

दोहा—चेतनवंत अनंतगुण, पर्यय शक्ति अनंत । अलख अखंडित सर्वगत, जीवद्रव्य विरतंत ॥ २० ॥ फरस वर्ण रस गंधमय, नरदपास संठान । अनुरूपी पुद्गल दरव, नभ प्रदेश परवान ॥ २१ ॥ जैसे सलिल समूहमें, करै मीनगति कर्म । तैसें पुद्गल जीवकों, चलन सहाई धर्म ॥ २२ ॥ ज्यौं पंथी ग्रीषम समैं, बैठे छाया मांहि । त्यौं अधर्मकी भूमिमें, जड़ चेतन ठहरांहि ॥ २३ ॥ संतत जाके उदरमें, सकल पदारथ वास । जो भाजन सब जगतको, सोई द्रव्य आकाश ॥ २४ ॥ जो नवकरि जीरन करै, सकल वस्तुथिति ठांनि, परावर्त वर्तन धरै, कालद्रव्य सो जानि ॥ २५ ॥ समता रमता उरधता, ज्ञायकता सुखभास । वेदकता चैतन्यता, ये सब जीवविलास ॥ २६ ॥ तनता मनता वचनता, जड़ता जड़संमेल । लघुता गरुता गमनता, ये अजीवके खेल ॥ २७ ॥ जो विशुद्धभावनि बंधै, अरु ऊरध मुख होई । जो सुखदायक जगतमें, पुन्य पदारथ सोई ॥२८॥ संक्लेश भावनि बंधै, सहज अधोमुख होई । दुखदायक संसारमें, पापपदारथ सोई ॥ २९ ॥ जोई कर्म उदोत धरि, होइ क्रियारस रत्त । करषै नुतन कर्मको, सोई आश्रव तत्व ॥ ३० ॥ जो उपयोग स्वरूप धरि, वरतै जोग विरत्त । रोकै आवत करमकों, सो है संवर तत्व ॥ ३१ ॥ पूरव सत्ताकर्म करि, थिति पूरण जो आऊ । खिरवेकौं उद्दित भयो, सो निर्जरा लखाउ ॥ ३२ ॥ जो नवकर्म पुरानसौं, मिलै गंठिदिढ होइ । शक्ति बढ़ावे बंशकी, बंध पदारथ सोइ ॥ ३३ ॥ थितिपूरन करि कर्म जो, खिरै बंधपद भान । हंसअंस उज्वल करै, मोक्षतत्व सो जान ॥३४॥ भाव पदारथ समय धन, तत्व वित्त वसु दर्व । द्रविण अर्थ इत्यादि बहु, वस्तु नाम ये सर्व ॥३५॥

अब शुद्ध जीवद्रव्यके नाम कहे हैं—परमपुरुष परमेस परमज्योति, परब्रह्म पूरण परम परधान है ॥ अनादि अनंत अविगत अविनाशी अज, निरदुंद मुकत मुकुंद अमलान है ॥ निराबाध निगम निरंजन निरविकार, निराकार संसार सिरोमणि सुजान है ॥ सरवदरसी सरवज्ञ सिद्धस्वामी शिव, धनी नाथ ईश जगदीश भगवान है ॥ ३६ ॥

अब संसारी जीवद्रव्यके नाम कहे हैं—चिदानंद चेतन अलख जीव समेसार, बुद्धरूप अबुद्ध अशुद्ध उपयोगी है ॥ चिद्रूप स्वयंभू चिनमूरति धरमवंत प्राणवंत प्राणी जंतु भूत भव भोगी है ॥ गुणधारी कलाधारी भेषधारी, विद्याधारी, अंगधारी संगधारी योगधारी जोगी है ॥ चिन्मय अखंड हंस अक्षर आतमराम, करमको करतार परम वियोगी है॥३७॥

दोहा—ख विहाय अंबर गगन, अंतरीक्ष जगधाम । व्योम वियत नभ मेघपथ, ये अकाशके नाम ॥ ३८ ॥ यम कृतांत अंतक त्रिदश, आवर्ती मृतथान । प्राणहरण आदि-

तंतनय, कालनाम परवान ॥ ३९ ॥ पुन्य सुकृत ऊर्ध्ववदन, अकररोग शुभकर्म। सुखदायक संसारफल, भाग बहिर्मुख धर्म ॥ ४० ॥ पाप अधोमुख येन अघ, कंपरोग दुखधाम। कलिल कलुष किल्विष दुरित, अशुभ कर्मके नाम ॥ ४१ ॥ सिद्धक्षेत्र त्रिभुवन मुकुट, शिवथल अविचल सुक्त स्थान। मोक्ष मुक्ति वैकुंठ सिव, पंचम गति निरवान ॥ ४२ ॥ प्रज्ञा धिषना सेमुषी, धी मेधा मति बुद्धि। सुरति मनीषा चेतना, आशय अंश विशुद्धि ॥ ४३ ॥ निपुण विचक्षण विबुधवुध, विद्याधर विद्वान। पटु प्रवीण पंडित चतुर, सुधी सुजन मतिमान ॥४४॥ कलावंत कोविद कुशल, सुमन दक्ष धीमंत। ज्ञाता सज्जन ब्रह्मविद, तज्ञ गुणीजन संत ॥४५॥ मुनि महंत तापस तपी, भिक्षुक चारित धाम। जती तपोधन संयमी, व्रती साधु रिष नाम ॥ ४६ ॥ दरस विलोकन देखनों, अवलोकन द्रिगचाल। लखन द्रिष्टि निरखन जुवन, चितवन चाहन भाल ॥४७॥ ज्ञान बोध अवगम मनन, जगतभान जगजान। संयम चारित आचरन, चरन वृत्ति थिरवान ॥४८॥ सम्यक सत्य अमोघ सत, निःसंदेह निरधार। ठीक यथातथ उचित तथ, मिथ्या आदि अकार ॥४९॥ अनथारथ मिथ्या मृषा, वृथा असत्य अलीक। मुधा मोघ निःफल वितथ, अनुचित असत अठीक ॥५०॥

॥ इति श्रीसमयसारनाटकमध्ये नाममाला सूचनिका सम्पूर्ण ॥

मूल श्लोकानुसार छंद—शोभित निज अनुभूति युत, चिदानंद भगवान।
सार पदारथ आतमा, सकल पदारथ जान ॥ १ ॥

अब आत्माको वर्णन करि सिद्ध भगवानको नमस्कार।

सवैया २३ सा—जो अपनी द्युति आप विराजित, है परधान पदारथ नामी ॥ चेतन अंक सदा निकलंक, महा सुख सागरको विसरामी ॥ जीव अजीव जिते जगमें तिनको गुण ज्ञायक अंतरजामी ॥ सो सिवरूप बसे सिवनायक, ताहि विलोकि नमै सिवगामी ॥

अनुष्टुप छंद—अनन्तधर्मणस्तत्त्वं पश्यन्ती प्रत्यगात्मनः।
अनेकान्तमयी मूर्त्तिर्नित्यमेव प्रकाशताम् ॥ २ ॥

खंडान्वय सहित अर्थ—नित्यमेव प्रकाशतां—नित्य कहता सदा त्रिकाल, प्रकाशतां कहता प्रकाश कहु करहु। इतना कहता नमस्कार कियौ। सो कौन, अनेकांतमयीमूर्तिः—न एकांतः अनेकांतः, अनेकांत कहतां स्याद्वाद, तिहिमयी कहतां सोई छै, मूर्त्ति कहतां स्वरूप जिहिकौ, इसी छै सर्वज्ञकी वाणी कहतां दिव्यध्वनि। एने अवसर आशंका उपजै छै। कोई जानिसे¹, अनेकांत तो संशय छै, संशय मिथ्या छै। तिहि प्रति इसो समाधान कीजै। अनेकांत तो संशयको दूरिकरण शील छै अरु वस्तुस्वरूप कह साधन शील छै। तिहिको व्यौरो—जो कोई सत्ता स्वरूप वस्तु छै, सो द्रव्य गुणात्मक छै, तिहि माहें जो सत्ता अभेद-

१—जानैगा।

पने द्रव्य रूप कहिजै छे सोई सत्ता भेदपनेकरि गुण रूप कहिजै छे। इहि कौ नाउ अनेकान्त कहिजै। वस्तु स्वरूप अनादिनिधन इसौ ही छे। काहूकौ सारो नहीं। तिहितै अनेकांत प्रमाण छे। आगे जिहि वाणी कहु नमस्कार कियो सो वाणी किसी छे प्रत्यगात्मनस्तत्त्वं पश्यंती–प्रत्यगात्मा कहतां सर्वज्ञ वीतराग, तिहिको व्यौरो, प्रत्यगु भिन्न भिन्न कहतां द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म तहि रहित छे आत्मा जीवद्रव्य जिहिकौ सो कहिजै प्रत्यगात्मा तिहिकौ तत्त्व कहिजे स्वरूप, ताकहुं पश्यंती अनुभवनशील छै। भावार्थ–इस्यो जोकोई वितर्क करिसे दिव्यध्वनि तौ पुद्गलात्मक छे अचेतन छै, अचेतनने नमस्कारु निषिद्ध छै। तीहे प्रति समाधान करिवाके निमित्त यो अर्थ कह्यो जो वाणी सर्वज्ञ स्वरूप अनुसारिणी छै। इसो मानिवा पापे (विना) भी बने नहीं। ताकौ व्यौरो–वाणी तो अचेतन छे। तिहि सुनतां जीवादि पदार्थको स्वरूपज्ञान ज्यो उपजे छ त्यौंही जानिज्यौ, वाणीकौ पूज्यपणो भी छे। किंविशिष्टस्य प्रत्यगात्मनः किसौ छै सर्वज्ञ वीतराग। अनंतधर्म्मणः अनंत कहतां अति बहुत छै, धर्म्म कहतां गुण जिहिको इसो छै, भावार्थ–इसौ जो कोई मिथ्यावादी कहै छे परमात्मा निर्गुण छे गुण विनाश हूवा परमात्मापणो होइ छे सो इसो मानिवो झूठो छे। जिहितै गुण विनश्यां द्रव्यको भी विनाशु छै॥ २॥

भावार्थ–इस श्लोकमें श्री अमृतचन्द्र आचार्यने सर्वज्ञ भगवानकी वाणीको नमस्कार किया है जो परद्रव्य गुण व पर्यायोंसे भिन्न शुद्ध आत्माके स्वरूपको झलकानेवाली है तथा जिसमें वस्तुके अनंत स्वभावोंको भिन्न२ अपेक्षासे यथार्थ बताया गया है। हरएक द्रव्य अस्तिरूप भी है नास्तिरूप भी है। स्वद्रव्यादि चतुष्टयकी अपेक्षा अस्तिरूप है पर द्रव्यादिचतुष्टयकी अपेक्षा नास्तिरूप हैं। एक वस्तुकी भिन्न सत्ता तब ही सिद्ध होगी जब उसमें अन्य वस्तुओंकी सत्ताका नास्तित्व या अभाव हो। इसी तरह हरएक द्रव्य नित्यरूप भी है, अनित्यरूप भी है। द्रव्य व गुणोंके सदा बने रहनेकी अपेक्षा द्रव्य नित्य है–उनमें अवस्थाओंके नित्य पलटाने रहनेकी अपेक्षा द्रव्य अनित्य है। हरएक द्रव्य एक रूप भी है–अनेक रूप भी है। अनेक गुणपर्यायोंका समुदाय रूप अखंड द्रव्य होनेकी अपेक्षा द्रव्य एकरूप है, अनेक गुणोंसे सर्वत्र व्यापक होनेकी अपेक्षा द्रव्य अनेक रूप है। आत्मा एक है वही आत्मा ज्ञानापेक्षा ज्ञानरूप, वीर्यगुण अपेक्षा वीर्यरूप, चारित्रगुण अपेक्षा चारित्र रूप, सम्यक्त गुण अपेक्षा सम्यक्त रूप, सुखगुण अपेक्षा सुखरूप इत्यादि। द्रव्यको यथार्थ बतानेवाली जिनवाणी है। हरएक स्वभावको स्यात् या कथंचित् या किसी अपेक्षासे कहनेवाली है इसलिये इस वाणीको स्याद्वाद वाणी कहते हैं। विना अनेक अपेक्षाओंसे द्रव्यको समझे यथार्थ ज्ञान नहीं हो सक्ता है।

सवैया २३सा—जोगधरी रहै जोगसुं भिन्न, अनंत गुणातम केवलज्ञानी ॥ तासु हृदै द्रहसों निकसी, सरिता समव्है श्रुत सिंधु समानी ॥ याते अनंत नयातम लक्षण, सत्य सरूप सिद्धांत बखानी ॥ बुद्ध लखे दुरबुद्ध लखेनहि, सदा जगमाहि जगे जिनवाणी ॥ ३ ॥

मालिनीछंद—परपरिणतिहेतोर्मोहनाम्नोऽनुभावादविरतमनुभाव्यव्याप्तिकल्माषितायाः।
मम परमविशुद्धिः शुद्धचिन्मात्रमूर्त्तेर्भवतु समयसारव्याख्ययैवानुभूतेः ॥३॥

खंडान्वय सहित अर्थ—मम परमविशुद्धिर्भवतु—शास्त्र कर्ता छै अमृतचंद्रसूरि सो कहै छै, मम कहतां मोकहु, परम विशुद्धि कहतां शुद्ध स्वरूप प्राप्ति ताको ब्यौरो-परम कहतां सर्वोत्कृष्ट, विशुद्धि कहतां निर्मलता, भवतु कहतां होउ। कया समयसारव्याख्यया—सम यसार कहतां शुद्ध जीव तिहीकी व्याख्या कहतां उपदेश तिहि कहतां हम कहु शुद्धस्वरूपकी प्राप्ति होउ। भावार्थ इसो जो यह शास्त्र परमार्थरूप छै। वैराग्योत्पादक छै। भारत रामायणकी नाई राग वर्द्धक न छै। किंविशिष्टस्य मम किसोछौ हौं। अनुभूतेः अनुभूति कहतां अतीन्द्रिय सुख सोई छै स्वरूप जिहिको इसोछौं। पुनः किंविशिष्टस्य मम औरु किसोछौं शुद्धचिन्मात्रमूर्त्तेः, शुद्ध कहतां रागादि उपाधि रहित, चिन्मात्र कहतां चेतना मात्र, मूर्ति कहतां स्वभाव छै जिहिकौ इसोछौं। भावार्थ इसो—द्रव्यार्थिक नय करि द्रव्य स्वरूप इसो ही छै। पुनः किं विशिष्टस्य मम, औरु किसो छौंहौं अविरतमनुभाव्यव्याप्तिकल्माषितायाः—अविरतं कहतां निरंतरपनै अनादि संतानरूप, अनुभाव्य कहतां विषयकषायादिरूप अशुद्ध चेतना, तिहिसौं छै व्याप्ति कहतां तिहिरूप विभाव परिणमन इसो छै। कल्माषिता कहतां कलंकपनौ जिहिको इसो छै। भावार्थ इसो जो पर्यायार्थिक नय करि जीव वस्तु अशुद्धपनै अनादिको परिणयो छै, तिहि अशुद्धपणा के विनाशु होतां जीव वस्तु ज्ञानस्वरुप, सुख स्वरुप छै। आगे कोई प्रश्न करे छैं। जीव वस्तु अनादि तहि अशुद्धपनैं परिणयोछैं, तहां निमित्त मात्र किछु छै कै न छै। उत्तरु इसो निमित्त मात्र कुनि छै, सोकौन, सोई कहिजै छै। मोहनाम्नोनुभावात्—मोह नाम कहता पुद्गल पिंडरूप आठ कर्म्म माहैं मोह एक कर्म्म जाति छै तिहिकौ अनुभाव कहतां उदय, उदय कहतां विपाक अवस्था। भावार्थ इसो—रागादि अशुद्ध परिणामरूप जीवद्रव्य व्याप्यव्यापक रूप परिणवै छै, पुद्गल पिंडरूप मोह कर्म्मको उदय निमित्त मात्र छै। जैसे कोई धतूरो पीया थै घूमै छै, निमित्त मात्र धतुराकौ वाकु छै। किंविशिष्टस्य मोहनाम्नः—किसौ छ मोह नाम कर्म्म परपरिणतिहेतोः—पर कहतां अशुद्ध, परिणति कहतां जीवको परिणाम तिहिको हेतु कारण छै। भावार्थ इसो—जीवका अशुद्ध परिणामको निमित्त इसौ रस लेय मोहकर्म्म बंधै छै पाछै उदय देता निमित्त मात्र होय छै ॥ ३ ॥

भावार्थ—आचार्य कहते हैं कि मैं इस समयसार ग्रंथकी व्याख्या इसलिये करता हूं

कि मेरा भाव वीतरागरूप शुद्ध होजावे। यद्यपि मैं स्वभावसे शुद्ध ज्ञानचेतनामय हूं तथापि अनादि कालसे कर्मोंके बंधनमें होनेसे मोहकर्मके उदयके कारण रागी द्वेषी होरहा हूं। वास्तवमें प्रत्येक भव्य जीवका हित इसीमें है कि उसको शुद्ध आत्मीक भावका स्वाद आया करे, क्योंकि इस स्वादमें अनुपम आनन्द है व इससे आत्माके पूर्वबद्ध कर्म भी झड़ते हैं। रागद्वेषमय भावोंमें सच्चा सुख नहीं व इनसे आत्मा कर्मोंसे बंधता है। आत्माके सच्चे स्वरूपके ध्यान, मनन, विचार, पठनपाठन आदिसे परिणति निर्मल होती है, इसलिये इस आध्यात्मिक समयसार ग्रन्थका विवेचन करनेसे अवश्य भावोंकी शुद्धता होगी। ऐसा गाढ़ निश्चय आचार्यने प्रकाशित किया है।

छप्पैछंद—हूं निश्चय तिहुं काल, शुद्ध चेतनमय मूरति। पर परणति संयोग, भई जड़ता विस्फुरति। मोहकर्म पर हेतु पाद, चेतन पर रच्चय। ज्यों धतूर रस पान करत, नर बहुविध नच्चय। अब समयसार वर्णन करत, परम शुद्धता होहु मुझ। अनयास बनारसीदास कहीं, मिटो सहज भ्रमकी अरुझ ॥४॥

मालिनीछंद—उभयनयविरोधध्वंसिनि स्यात्पदाङ्के जिनवचसि रमन्ते ये स्वयं वान्तमोहाः।
सपदि समयसारं ते परं ज्योतिरुच्चैरनवमनयपक्षाक्षुण्णमीक्षन्त एव ॥४॥

खंडान्वय सहित अर्थ—ते समयसारं ईक्षंत एव—ते कहतां आसन्न भव्य जीव, समयसार कहतां शुद्ध जीव, ईक्षंत एव कहतां प्रत्यक्षपनै प्राप्ति होय। सपदि कहतां थोरा ही काल माहे। किस्यौ छै शुद्ध जीव, उच्चैः परंज्योतिः—अतिशय मान ज्ञान ज्योति, औरु किस्यौ छै। अनवं—अनादि सिद्ध छै, औरु किस्यौ छै, अनयपक्षाक्षुण्णं—अनयपक्ष कहतां मिथ्यावाद तिहिकरि अक्षुण्णं कहतां अखंडित। भावार्थ—इसो जो मिथ्यावादी बौद्धादि झूठी कल्पना बहुत भांति करै छै, तथापि तेही झूठा छै। आत्मतत्त्व जिसौ छै तिसौ ही छै। आगे ते भव्यजीव क्यौ करता शुद्ध स्वरूप पावहिं छै सोई कहिजै छै। ये जिनवचसि रमंते—ये कहतां आसन्न भव्यजीव, जिनवचसि कहतां दिव्यध्वनि करि कह्यो छै उपादेयरूप शुद्ध जीव वस्तु, तिहि विषै रमंते कहतां सावधान पणै रुचि श्रद्धा प्रतीति करै छै। व्यौरो—शुद्ध जीव वस्तु कहु प्रत्यक्षपनै अनुभव करै छै तिहिको नाम रुचि श्रद्धा प्रतीति छै। भावार्थ—इसो जो वचन पुद्गल छै तिहिकी रुचि करतां स्वरूपकी प्राप्ति नाहीं। तिहितै वचन करि कहिजै छै जे कोई उपादेय वस्तु तिहिको अनुभव करतां फल प्राप्ति छै। किसौ छै जिनवचन—उभयनयविरोधध्वंसिनि—उभय कहतां दोय, नय कहतां पक्षपात, विरोध कहतां परस्पर वैरभाव। व्यौरो—एक सत्व कहुं द्रव्यार्थिकनय द्रव्यरूप, सोई सत्व कहुं पर्यायार्थिकनय पर्यायरूप कहै। तिहिवै परस्पर विरोध छै। तिहिको ध्वंसिनि कहतां मेटनशील छै। भावार्थ इसौ—दोऊ नय विकल्प छै। शुद्ध जीव स्वरूपको अनुभव निर्विकल्प छै। तिहितै शुद्ध जीव वस्तुको अनु-

१-क्या उपाय।

भव होतां दोऊ नय विकल्प झूठा छे। और किसौ छै जिन वचन, स्यात्पदांके-स्यात् कहतां स्याद्वाद, स्याद्वाद कहतां अनेकांत, तिहिकौ स्वरूप पाछौ कह्यो छे सोई छै। अंक कहतां चिन्ह जिहिके इसौ छै। भावार्थ इसौ, जो कछु वस्तु मात्र छै सो तो निर्भेद छै। सो वस्तु मात्र वचनकरि कहतां जो कोई वचन बोलिजै सोई पक्षरूप छै। किसा छै आसन्नभव्यजीव स्वयं वांतमोहाः-स्वयं कहतां सहजपनै, वांत कहतां वम्यो छै, मोह कहतां मिथ्यात्व, मिथ्यात्व कहतां विपरीतपनो इसो छै। भावार्थ-इसौ जो अनंत संसार जीव कहुं ममता जाय छै। ते संसारी जीव एक भव्यराशि छै एक अभव्यराशि छै। तिहि माहे अभव्यराशि जीव त्रिकाल ही मोक्ष जावाकौ अधिकारी नहीं। भव्यजीव माहे केताएक जीव मोक्ष जावा योग्य छै। तिहिकौ मोक्ष पहुंचि याकौ काल परिमाण छै। व्यौरौ-यह जीव इतना काल बीत्या मोक्ष जासै इसौ न्यौधु केवलज्ञान माहे छै। सो जीव संसार माहे भमतां भमतां जब ही अर्धपुद्गलपरावर्त मात्र रहै छै तब ही सम्यक्त उपजवा योग्य छै। इहिकौ नाव काल लब्धि कहिजै। यद्यपि सम्यक्तरूप जीव द्रव्य परिणवै छै, तथापि काललब्धि पाषै कोड़ि उपाय जो कीजे तौ पुनि जीव सम्यक्तरूप परिणमन योग्य नहीं। इसौ नियम छै। तिहितै जानिवौ सम्यक्त वस्तु जतन साध्य नहीं। सहज रूप छै ॥ ४ ॥

भावार्थ-इस श्लोकमें आचार्यने बताया है कि शुद्ध आत्मस्वरूपकी प्राप्तिका उपाय जिनवाणी द्वारा कहे हुए तत्वोंका विचार करते हुए उनमेंसे आत्माके यथार्थ स्वरूपको लक्ष्य करके उसीका बारबार मनन करना है। आत्माकी भावना भाते हुए अकस्मात् अनंतानुबंधी कषाय और मिथ्यात्वका उपशम होजाता है और इस जीवको स्वयं सम्यग्दर्शनका लाभ हो जाता है, उसी समय आत्माके शुद्ध स्वरूपका अनुभव होजाता है। सम्यग्दर्शनकी प्राप्तिमें क्षयोपशम, विशुद्धि, देशना, प्रायोग्य और करणलब्धि ये पांच लब्धियें कारण बताई हैं। इनमें मुख्य करणलब्धि है। जिन विशुद्ध चढ़ते हुए आत्मविचाररूप भावोंसे अवश्य अंतर्मुहूर्तके भीतर मिथ्यात्वादि प्रकृतियोंका उपशम होकर सम्यक्त होजावे उन परिणामोंकी प्राप्तिको ही करणलब्धि कहते हैं। इस स्थिति प्राप्त करनेका मुख्य उपाय देशनालब्धि है। अर्थात् जिनेन्द्र कथित तत्वोपदेशका प्रेमी होकर तत्वोंका मनन करना है। तत्वोंके मननके साधारण रूपसे चार उपाय बड़े हितकारी हैं। प्रथम अरहंत सिद्ध परमात्माकी भक्ति, आत्मज्ञानी गुरुकी सेवा करके आत्मबोध प्राप्ति, जिनवाणीका पठन, मनन, व धारणा, एकांतमें प्रातः और संध्याकाल बैठकर कुछ देरतक सामायिक करना अर्थात् रागद्वेष छोड़कर व समताभावमें तिष्ठकर आत्मा अनात्मासे भिन्न है इस भेद विज्ञानका विचार करना। इन उपायोंका करना ही हमारा पुरुषार्थ है। इनहीके द्वारा सम्यक्त होगा परन्तु वह समय तब ही आयगा जब संसार निकट होगा। यदि सर्वज्ञके ज्ञानकी अपेक्षा अर्ध पुद्गल

परावर्त्तसे अधिक काल मोक्ष जानेमें होगा तो सम्यक्त न होगा। इस हीका नाम काललब्धि है। यह ध्यानमें रखना चाहिये कि विना प्रतिपक्षी कर्मोंके उपशमके सम्यक्त कभी नहीं होगा। उन कर्मोंका उपशम तत्वविचारसे ही होगा। यह तत्वविचार किसी जीवको परके उपदेशसे व किसीको आप हीं अन्य किसी निमित्तसे होसक्ता है। टीकाकारका प्रयोजन यह नहीं है कि हम आलसी बने रहें व यह समझते रहें कि जब सम्यक्त होना होगा तो हो जायगा। यह भाव घोर अज्ञानमय है, हमें तो अपनी शक्तिके अनुसार जो कुछ उपाय तत्वोंके मननका हो सो करना ही चाहिये। जब अवसर आयगा तब यही उपाय फलदाई हो जायगा। जैसे धनप्राप्तिके लिये आजीविका करते व रोगशमनके लिये औषधि लेते परन्तु उनकी सफलता तब ही होती जब अंतरायकर्म हटता व सातावेदनीयका उदय आता है। तब ही हमको धनका लाभ होता व रोग मिट जाता है। भावार्थ—यह है कि हम सबको परम रुचिके साथ जिनवाणीके द्वारा स्वपर तत्वोंका विचार करना उचित है। श्री अमृतचन्द्र आचार्यका यह भाव है कि इसी लिये मैं इस समयसार ग्रन्थका मनन करता हूं जिससे शुद्ध आत्माका अनुभव होसके।

सवैयो ३१ सा—निहचेमें एकरूप व्यवहारमें अनेक, याही नै विरोधनें जगत भरमायो है। जगके विवाद नाशिवेको जिनआगम है, ज्यामें स्यादवादनाम लक्षण सुहायो है ॥ दरसनमोह जाको गयो है सहजरूप, आगम प्रमाण ताके हिरदेमें आयो है। अनयसो अखंडित अनूतन अनंत तेज, ऐसो पद पूरण तुरंत तिन पायो है ॥ ५ ॥

मालिनीछंद-व्यवहरणनयः स्याद्यद्यपि प्राक्पदव्यामिह निहितपदानां हन्त हस्तावलम्बः।
तदपि परममर्थं चिच्चमत्कारमात्रं, परविरहितमन्तः पश्यतां नैप किञ्चित ॥५॥

खंडान्वय सहित अर्थ—व्यवहरणनयः यद्यपि हस्तावलंबः स्यात्—व्यवहरण नय कहतां जेतो कथनो, ताको व्योरो—जीव वस्तु निर्विकल्प छे। सो तो ज्ञान गोचर छे। सोई जीव वस्तु कह्यौ चाहिजे। तब योंही कहतां आवे, जिहिको गुण दर्शन ज्ञान चारित्र सो जीव। जो कोई बहुत साधिक है तोभी योंही कहनो॥ इतनो कहिवाको नाम व्योहार छे। इहां कोई आशंका करिसी जो वस्तु निर्विकल्प छे तिहि विषे विकल्प उपजावना अयुक्त छे। तहां समाधानु इसो जो व्योहारनय हस्तावलम्ब छे। हस्तावलंब कहतां ज्यो कोई नीचौ परयौ हो तौ हाथ पकरि ऊंचौ कीजे छे। त्योंही गुण गुणीरूप भेद कथनो ज्ञानु उपजिवाको एकु अंग छे, ताको व्योरो—जीवको लक्षण चेतना, इतनो कहतां पुद्गलादि अचेतन द्रव्य तहि भिन्नपनेकी प्रतीति उपजे छे। तिहि तहि जब तांई अनुभव होय तितनें गुण गुणी भेदरूप कथनो ज्ञानको अंग छे। व्यवहारनय ज्यांको हस्तावलम्ब छे ते किसा छे। प्राक्पदव्यामिह निहितपदानां—इह कहतां विद्यमान प्राक् पदवी कहतां ज्ञान

ऊपजतां आरंभ अवस्था, तिहि विषै, निहित पदानां, निहित कहतां स्थाप्यो छै, पद कहतां सर्वस्व जिहि इसा छै। भावार्थ—इसौ जेकोई सहज तहि अज्ञानी छै। जीवादि पदार्थको द्रव्य गुणपर्याय स्वरूप जानिवाका अभिलाषी छै तिनकौ गुण गुणी भेदरूप कथनौ योग्य छैं। तदपि एष न किंचित्—यद्यपि व्यवहारु नय हस्तावलम्ब छै, तथापि क्यों नहीं। न्यौंधु करतां झुठौ छे। ते जीव किसा छै जिनहि व्यौहारनय झुठौ छै। चिच्चमत्कारमात्रं अर्थं अंतःपश्यतां—चित् कहतां चेतना चमत्कार कहतां प्रकाश, मात्र कहतां इतनौ ही छै, अर्थ कहतां शुद्ध जीव वस्तु, अंतःपश्यतां कहतां प्रत्यक्षपनै अनुभवे छे। भावार्थ इसौ—जो वस्तुको अनुभव होतां वचनको व्यवहारु सहज ही छूटै छै। किसो छै वस्तु। परमं—परम कहतां उत्कृष्ट छै उपादेय छै। और किस्यो छै वस्तु। परविरहितं—पर कहतां द्रव्यकर्म नोकर्म भावकर्म तिहि तहि विरहित करतां भिन्न छै ॥ ५ ॥

भावार्थ—यहां यह बताया गया है कि जिसको शुद्ध आत्माका अनुभव है—व जिसने शुद्धात्माका यथार्थ स्वरूप समझ लिया है उसको फिर समझानेकी जरूरत नहीं है। समझानेका उपाय यही है जो व्यवहारनयके द्वारा अभेद वस्तुके भीतर भी गुण व गुणी भेद करके समझाया जाय। इसलिये जिनको शुद्धात्माका बोध नहीं है उनके लिये यह व्यवहारनय बोध करानेके लिये आलम्बन रूप है। विना इसका आश्रय लिये वस्तुका कथन हो नहीं सक्ता। क्योंकि विकल्पोंके भीतर आत्मानुभव नहीं, व निजानन्द नहीं। इसी लिये आचार्य खेद प्रगट करते हैं जो व्यवहारनयका सहारा लेना पड़ता है। आत्महित तो मात्र शुद्ध स्वरूपके अनुभव हीमें है ॥ ५ ॥

सवैया २३ सा—ज्यों नर कोऊ गिरे गिरिसो तिहि, होइ हितू जु गहैं दृढबाही। त्यौं बुधको विवहार भलौ, तवलौ जवलौ सिव प्रापति नाहीं॥ यद्यपि यो परमाण तथापि, सधै परमारथ चेतन माही। जीव अव्यापक है परसो, विवहारसु तो परकी परछाहीं ॥ ६ ॥

शार्दूलविक्रीडितछंद—एकत्वे नियतस्य शुद्धनयतो व्याप्तुर्यदस्यात्मनः
पूर्णज्ञानघनस्य दर्शनमिह द्रव्यान्तरेभ्यः पृथक्।
सम्यग्दर्शनमेतदेवनियमादात्मा च तावानयम्
तन्मुक्त्वा नवतत्त्वसन्ततिमिमामात्मायमेकोऽस्तु नः ॥ ६ ॥

खंडान्वय सहित अर्थ—तत् नः अयं एकः आत्मा अस्तु—तत् कहतां तिहि कारण तहि, नः कहतां हम कहु, अयं कहतां विद्यमान छै, एकः कहतां शुद्ध, आत्मा कहतां चेतन पदार्थ, अस्तु कहतां होउ। भावार्थ—इसौ जो जीव वस्तु चेतना लक्षण तौ सहजही छै। परि मिथ्यात्व परिणाम करि भम्यो होतो अपना स्वरूप कहु नहीं जानै छै। तिहिसहि अज्ञानी ही कहिजे। विहितहि इसौ कह्यौ जो मिथ्या परिणामके गयां थी यौही जीव

अपना स्वरूपकों अनुभवन शीली होहु। किं कृत्वा कहाकरि कहि, इमां नवतत्वसंततिं मुक्त्वा—इमां कहता आगै कहिजै छे। नवतत्व कहतां जीवाजीवास्रव बंध संवर निर्जरा मोक्ष पुण्य पाप, तिहिकी संतति कहतां अनादि सम्बन्ध तिहि कहु, मुक्त्वा कहतां छांडि करि। भावार्थ इसो—जो संसार अवस्थां जीव द्रव्य नव तत्वरूप परिणयौछे, सो तो विभाव परणति छे। तिहितै नवतत्व रूप वस्तुकौ अनुभव मिथ्यात्व छै। यदस्यात्मनः इह द्रव्यान्तरेभ्यः पृथक् दर्शनं नियमात् एतदेव सम्यग्दर्शनं। यत कहतां जिहि कारण तिहि, अस्यात्मनः कहतां यही जीवद्रव्य, द्रव्यांतरेभ्यः पृथक् कहतां सकल कर्मोपाधि तहि रहित जिसौ छे, इह दर्शनं कहतां तिसौही प्रत्यक्षपनै अनुभव, नियमात् कहतां निश्चय सौं, एतदेव सम्यग्दर्शनं कहतां यहै सम्यग्दर्शन छे। भावार्थ—इसौ जो सम्यग्दर्शन जीवकौं गुण छै। सो गुण संसारावस्था विभाव परिणयौ छे, सोई गुण जब स्वभाव परिणवै तब मोक्षमार्ग छै। व्यौरो। सम्यक्तभाव होतां नूतन ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्माश्रव मिटै छै, पूर्वबद्ध कर्म निर्जरे छै। तिहितहि मोक्षमार्ग छे। इहां कोई आशंका करिसे मोक्षमार्ग सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तीन्यो मिल्यातै छे। उत्तरु इसौ जो शुद्ध जीव स्वरूप अनुभवतां तीन्यो ही छे। किसौ छे शुद्ध जीव, शुद्धनयतः एकत्वे नियतस्य—शुद्ध नयतः कहतां निर्विकल्प वस्तुमात्र एनै दृष्टि देखतां, एकत्वे कहतां शुद्धपनौ, नियतस्य कहतां तिहिरूप छे। भावार्थ—इसौ जो जीवको लक्षण चेतना। सो चेतना तीन प्रकार—एक ज्ञान चेतना, एक कर्म चेतना, एक कर्मफल-चेतना, तिहि माहे ज्ञानचेतना, शुद्धचेतना, बाकी अशुद्धचेतना। तिहि तहि अशुद्धचेतना रूप वस्तुको स्वादु सर्व जीवहकौ अनादिकौ छतौ ही छै। तिहिरूप अनुभव सम्यक्त नहीं। शुद्धचेतना मात्र वस्तु स्वरूप आस्वाद आवे तौ सम्यक्त छै। और किसौ छे जीव वस्तु। व्याप्तुः—कहतां आपणां गुणपर्यायकौ लीयौ छे। एतै कहिवे करि शुद्धपनो दिखायौ। कोई आशंका करिसौ जो सम्यक्तगुण जीव वस्तुकौं भेद छै कै अभेद छै। उत्तरु इसौ जो अभेद छे। आत्मा च तावानयं—अयं कहता यह, आत्मा कहतां जीव वस्तु, तावान् कहतां सम्यक्त गुण मात्र छै ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस श्लोकमें निश्चय सम्यग्दर्शनका स्वरूप बताया गया है। सम्यग्दर्शन आत्माका गुण है व आत्माके सर्व प्रदेशोंमें व्यापक है। जिस समय शुद्ध आत्माका आत्मा-रूप यथार्थ अनुभव या स्वाद आता है उसी समय सम्यक गुण प्रकाशमान होता है। नव तत्वोंके व्यवहारमें आत्माका स्वरूप कर्मबंध सहित विचारमें आता है। इसलिये इस विचारको भी त्यागकर सर्व कर्मोपाधि रहित परम शुद्ध आत्मद्रव्यको जो अनुभव करना वही सम्यक्तका विलास करना है।

सवैया ३१ सा.—शुद्धनय निहचै अकेला आप चिदानंद, आपने ही गुण परजायको गहत हैं। पूरण विज्ञानघन सो है व्यवहार माहि, नव तत्वरूपी पंच द्रव्यमें रहत है॥ पंचद्रव्य नवतत्व न्यारे जीव न्यारो लखे सम्यक दरस यह और न गहत है। सम्यक दरस जोइ आतम सरूप सोइ, मेरे घट प्रगटो बनारसी कहत हैं॥ ७॥

अनुष्टुप छन्द—अतः शुद्धनयायत्तं प्रत्यग्ज्योतिश्चकास्ति तत्।
नवतत्त्वगतत्वेऽपि यदेकत्वं न मुञ्चति॥ ७॥

खंडान्वय सहित अर्थ- अतः तत् प्रत्यग्ज्योतिश्चकास्ति—अतः कहतां इहां तै आगे, तत् कहतां सोई, प्रत्यग्ज्योति कहतां शुद्धचेतना मात्र वस्तु, चकास्ति कहतां शब्दद्वारा युक्ति करि कहिजे छै। किसौ छै वस्तु। शुद्धनयायत्तं—शुद्धनय कहतां वस्तुमात्र, आयत्त कहतां आधीन। भावार्थ इसौ—जिहि कै अनुभवतां सम्यक्त होइ छै शुद्ध स्वरूप कहिजै छै। यदेकत्वं न मुंचति-यत् कहतां जो शुद्ध वस्तु, एकत्वं कहतां शुद्धपनौ, न मुंचति कहतां नहीं छोड़े छै। इहां कोई आशंका करिसे जो जीव वस्तु जब संसार तहि छूटे छै तब शुद्ध होइ छै। उत्तरु इसौ जीव वस्तु द्रव्य दृष्टि विचारयौ होतौ त्रिकाल ही शुद्ध छै। सोई कहिजै छै। नवतत्त्वगतत्वेऽपि—नवतत्त्व कहतां जीवा जीवाश्रव बंध संवर निर्जरा मोक्ष पुण्य पाप, गतत्वेऽपि कहतां तिहिरूप परिणयौ छै। तथापि शुद्ध स्वरूप छै। भावार्थ— इसौ जो—ज्यौं अगनि दाहक लक्षण छै, काष्ठ तृण, छाणा आदि देह समस्त दाह्यको दहै छै, दहतौ होतौ आगि दाह्याकार होई छै। परि तिहिकौ विचारु छ। जौतौ काष्ठ तृण छानाकी आकृति माही देखिजै तौ काठकी आगि, तृणकी आगि, छानाकी आगि यौ कहिवौ साचौ ही छै। जौ आगिकी उष्णता मात्र विचारिजै तौ उष्ण मात्र छै। काठकी आगि, तृणकी आगि, छानाकी आगि इसा समस्त विकल्प झूठा छै। त्योंही नवतत्त्व रूप जीवका परिणाम छै। ते परिणाम केई शुद्धरूप छै केई अशुद्धरूप छै। जो नौ परिणामही माहो देखिजै तौ नव ही तत्त्व साचा छै। जो चेतना मात्र अनुभव कीजै तौ नव ही विकल्प झूठा छै॥ ७॥

भावार्थ—यहां यह बताया है कि यह आत्मा कर्मबंधके संयोगसे आश्रवबंधादि रूप या नवतत्त्व रूप व्यवहार नयसे कहलाता है। आत्मामें बंध है, आत्माकी मुक्ति होती है यह सब कथन व्यवहार नयसे या पर्यायकी दृष्टिसे है। जब निश्चय नयसे या द्रव्यकी दृष्टिसे देखा जावे तो आत्माके न बंध है न मोक्ष है। यह बिलकुल भिन्न शुद्ध ज्ञानानंदमय परम वीतरागी ही झलकेगा। जैसे निमकके दस बीस व्यंजन बनाये—उनमें निमक अनेक रूपमें फैल गया है। यदि व्यंजनके सम्बन्धकी अपेक्षा देखा जावे तो निमक नानारूप है परन्तु यदि निश्चयनयसे मात्र लवणके स्वादकी दृष्टिसे देखा जावे तो लवण बिलकुल अलग

है वैसे ही स्वानुभवीको उचित है कि कर्मोंके मध्य पड़े हुए अपने या परके आत्माको शुद्ध द्रव्यरूप ही अनुभव करे।

सवैया ३१ सा.—असे तृण काष्ट वास आरने इत्यादि और, ईंधन अनेक विधि पावकमें दहिये। आकृति विलोकत कहावे आगि नानारूप, दीसे एक दाहक स्वभाव जब गहिये॥ तैसे नव तत्वमें भयो है बहु भेषी जीव, शुद्धरूप मिश्रित अशुद्धरूप कहिये। जाहीक्षण चेतना सकतिको विचार कीजे, ताहीक्षण अलख अभेदरूप लहिये॥ ८॥

मालिनीछन्द—चिरमितिनवतत्त्वच्छन्नमुन्नीयमानं कनकमिव निमग्नं वर्णमालाकलापे।
अथ सततविविक्तं दृश्यतामेकरूपं प्रतिपदमिदमात्मज्योतिरुद्योतमानम्॥८॥

खंडान्वय सहित अर्थ-आत्मज्योतिर्दृश्यतां—आतम कहतां जीवद्रव्य, तिहिकी ज्योति कहतां शुद्ध ज्ञान मात्र, दृश्यतां कहतां सर्वथा अनुभव हु। किसी छै आत्मज्योति, चिरमितिनवतत्त्वच्छन्नं, अथ सततविविक्तं—एने अवसर नाट्यरसकी नाई एक जीव वस्तु आश्चर्यकारी अनेक भावरूप एक ही समय दिखाइ जै छै। एही कारण तहि इहि शास्त्रको नाम नाटक समयसार छै। सोई कहिजे छै। चिरं कहतां अमर्याद काल। इति कहतां जो विभावरूप रागादि परिणाम पर्यायमात्र विचारिजे तदा ज्ञान वस्तु नवतत्त्वच्छन्नं—नव तत्व कहतां पूर्वोक्त जीवादि तिहिरूप, छन्नं कहतां आच्छादित। भावार्थ—इसो जो जीव वस्तु अनादिकाल तहि धातु पाषाणकी संयोगई नाई कर्म पर्यायसे मिल्यो ही चल्यो आयो छे, मिल्याथकी रागादि विभाव परिणाम सहु व्याप्त व्यापकरूप आपुणपे परिणवे छै। सो परिणमन देखिजे, जीवको स्वरूप न देखिजै, तो जीव वस्तु नवतत्त्वरूप छै इसो दृष्टि आवे, इसौ फुनि छै, सर्वथा झूठ नहीं। जातैं विभाव रागादि परिणाम शक्ति जीव ही महि छै। अथ कहतां दूजो पक्ष, सोई जीव वस्तु द्रव्यरूप छै, आपणा गुणपर्याय विराजमान छै। जो शुद्ध द्रव्य स्वरूप देखिजै, पर्याय स्वरूप न देखिजै तो किसो छै, सततविविक्तं—सतत कहतां निरंतरपने, विविक्तं कहतां नव तत्व विकल्प तहिं रहित छै। शुद्ध वस्तुमात्र छै, भावार्थ इसौ जो शुद्ध स्वरूपको अनुभव सम्यक्त छै। और किसो छै आत्मज्योति वर्णमालाकलापे कनकमिवनिमग्नं—वर्णमाला कहतां दोइ अर्थ। एक तो बनवारी। दूजे पक्ष, वर्ण कहतां भेद, माला कहतां पंक्ति। भावार्थ—इसो जो गुण गुणी भेदरूप भेद प्रकाश, कलाप कहतां समूह, तिहिते इसो अर्थ उपज्यो जैसे एक ही सोनो वान भेद करि अनेकरूप कहिजै छै तैसे एक ही जीववस्तु द्रव्यगुण पर्यायरूप अथवा उत्पाद व्यय ध्रौव्यरूप करि अनेकरूप कहिजै छै। अथ कहतां दूजे पक्ष प्रतिपदं एकरूपं—प्रतिपदं कहतां जावंत भेद गुण पर्यायरूप अथवा उत्पादव्यय ध्रौव्यरूप अथवा दृष्टांतकी अपेक्षा वान भेद। त्यां भेदह विषै फुनि, एकरूपं कहतां आपुणपे ही छै, वस्तु

विचारतां भेदरूप फुनि वस्तु ही छै, वस्तु तहिं भिन्न भेदु किछु वस्तु नहीं छै। भावार्थ— इसौ जो सुवर्ण मात्र देखिजै नहीं, वानभेद मात्र देखिजै तौ वानभेद छै, सोनाकी शक्ति इसी फुनि छै। जो वानभेद देखिजै नहीं केवल सुवर्ण मात्र देखिजै तौ वानभेद तृण छै। तैसे जो शुद्ध जीव वस्तु मात्र देखिजै नहीं, गुणपर्याय मात्र उत्पादव्यय ध्रौव्य मात्र देखिजै तौ गुणपर्याय छै, उत्पाद व्यय ध्रौव्य छै। जीव वस्तु इसौ फुनि छै। जो गुणपर्याय भेद, उत्पाद व्यय ध्रौव्य भेद देखिजै नहीं, वस्तु मात्र देखिजै तौ समस्त भेद झूठा छै। इसौ अनुभव सम्यक्त छै। और किसौ छै आत्मज्योति, उन्नीयमानं—कहतां चेतना लक्षण करि जानी जै छै, तिहितै अनुमान गोचर फुनि छै। अथ दूजे पक्ष, उद्योतमानं—कहतां प्रत्यक्ष ज्ञानगोचर छै। भावार्थ—इसौ जो भेदबुद्धिकरता जीव वस्तु चेतना लक्षणकरि जीव कह जानै छै। वस्तु विचारतां इतनौ विकल्प फुनि झूठौ। शुद्ध वस्तु मात्र छै। इसौ अनुभव सम्यक्त छै॥ ८॥

भावार्थ—जैसे एक ही सोनेके अनेक आभूषण बनाए जावें तब उनके कड़ा, कंठी, कर्णफूल, मुद्रिका आदि अनेक भेद होजाते हैं। जो भेद दृष्टि या पर्यायदृष्टि या व्यवहार-दृष्टि करि देखा जावे तौ ये भेद अवश्य देखनेमें आवेंगे परन्तु जो मात्र सुवर्णकी दृष्टिसे देखा जावेगा तो सब आभूषणोंमें एक सुवर्ण ही अभेदरूपसे दीखनेमें आयगा इसी तरह आत्माके पुद्गलके सम्बन्धसे अनेक भेदरूप होगए हैं जैसे संसारी, एकेंद्रिय, द्वेंद्रिय, तेंद्रिय, चौन्द्रिय, पंचेंद्रिय मनुष्य, देव, नारकी, रागी, द्वेषी, श्रावक, मुनि, आदि व आश्रव, बंध, संवर, निर्जरा आदि व्यवहार दृष्टिसे देखा जावे तो ये सब भेद आत्मामें हैं ऐसा ही दिखनेमें आयगा परंतु जो निश्चयनय या अभेददृष्टिसे देखा जावेगा तौ इन सब पर्यायोंमें आत्मा एकरूप ही परम शुद्ध झलकता हुआ दिखाई देगा। इस संसारी जीवने अनादिकालसे आत्माको भेदरूप ही अनुभव किया—मैं नर मैं पशु मैं सुखी मैं दुखी मैं रोगी मैं शोकी ऐसा ही मानता रहा कभी भी आत्माका असली स्वभाव ध्यानमें नहीं लिया इसलिये आचार्य कहते हैं कि अब तो यथार्थ दृष्टि गौण करो व बंद करो तथा निश्चयदृष्टिसे देखो तो हरएक पदमें शुद्ध आत्मद्रव्य ही अनुभवमें आयगा। यही अनुभव सम्यक्त है—व परम कार्यकारी है। श्री योगीन्द्रदेव योगसारमें कहते हैं—

दोहा—जो णिम्मल अप्पा मुणहिं छंडवि सहु ववहारु।
जिणसामी एहउ भणइ लहु पावहि भवपारु॥ ३७॥

भावार्थ—जो सर्व व्यवहारको छोड़कर निर्मल आत्माका अनुभव करता है वह शीघ्रही संसार पार होजाता है ऐसा जिनेन्द्रने कहा है॥ ८॥

सवैया ३१ सा.—जैसे पनवारीमें कुधातुकें मिलाप हेम, नानाभांति भयौ पै तथापि एक नाम है। कसीके कसोटी लीक निरखे सराफ ताहि, वानके प्रमाणकरि लेतु देतु दाम है॥ तैसे ही अनादि पुद्गलसौं संजोगी जीव, नवतत्वरूपमें अरूपी महा धाम है। दीसे अनुमानसौं उद्योतवान ठौरठौर, दूसरो न और एक आतमा ही राम है॥ ९॥

मालिनीछंद—उदयति न नयश्रीरस्तमेतिप्रमाणं क्वचिदपि च न विद्मो याति निक्षेपचक्रं।
किमपरमभिदध्मो धाम्नि सर्वंकषेऽस्मिन्ननुभवमुपयाते भाति न द्वैतमेव॥९॥

खंडान्वय सहित अर्थ-अस्मिन् धाम्नि अनुभवमुपयाते द्वैतमेव न भाति-अस्मिन् कहतां यह जो है स्वयं सिद्ध, धाम्नि कहतां चेतनात्मक जीव वस्तु, तिहिकौ अनुभव कहतां प्रत्यक्षपने आस्वाद, उपयाते कहतां आये संते, द्वैत कहतां यावत् सूक्ष्म स्थूल अंतर्जल्प बहिर्जल्प रूप विकल्प, न कहतां नहीं, भाति कहतां शोभै छै। भावार्थ इसौ जो अनुभव प्रत्यक्ष ज्ञानु छै, प्रत्यक्ष ज्ञान कहतां वेद्य वेदक भावपणै आस्वादरूप छै। सो अनुभव, परसहायतहि निरपेक्षपणै छै। इसौ अनुभव यद्यपि ज्ञानविशेष छै तथापि सम्यक्त सौं अविनाभूत छै जो सम्यग्दृष्टि कहुं होई, मिथ्यादृष्टि कहुं न होई इसौ निहचौ छै। इसौ अनुभव होतां जीव वस्तु आपणा शुद्ध स्वरूप कहु प्रत्यक्षपने आस्वादै छै। तिहितहि जेते काल अनुभव छै तेते काल वचन व्यवहारु सहज ही रहै छै[1] जातहि वचन व्यवहारु तौ परोक्षपनै कथक छै। सो जीव प्रत्यक्षपनै अनुभवशील छै। तिहितै वचन व्यवहारताई कछु रही नाहीं। किसौ छै जीव वस्तु। सर्वंकषे—सर्व कहतां जावंत विकल्प, कषे कहतां क्षयकरणशील छै। भावार्थ—इसौ जैसे सूर्य प्रकाश अन्धकार तहि सहज ही भिन्न छै। तैसे अनुभव फुनि समस्त विकल्प रहित ही छै। इहां कोई प्रश्न करिसे जो अनुभव होता कोई विकल्प रहे छै कै निजै नाम समस्त ही विकल्प मिटै छे। उत्तरु इसो जो समस्त ही विकल्प मिटै छै, सोई कहिजै छै। नयश्रीरपि न उदयति प्रमाणमपि अस्तमेति न विद्मः निक्षेपचक्रमपि क्वचित् याति अपरं किं अभिदध्मः—जिहि अनुभव आएसंते प्रमाणनय निक्षेप फुनि झूठा छै। तहां रागादि विकल्पहंकी कौनु कथा। भावार्थ—इसौ जो रागादि तौ झूठा ही छै, जीव स्वरूप तहि बाहिरा छै। प्रमाणनय निक्षेप बुद्धि करि थे केई जीव द्रव्यका द्रव्य गुणपर्याय रूप अथवा उत्पादव्यय ध्रौव्य रूप भेद कीजै छै ते समस्त झूठा छै। एता समस्त झूठा होता। जो क्यौ वस्तुकौ स्वाद छै सौ अनुभव छै। प्रमाण कहतां युगपत् अनेक धर्म ग्राहक ज्ञान, सो फुनि विकल्प छै, नय कहतां वस्तुकौ एकु कोई गुण ग्राहक ज्ञानु, सो फुनि विकल्पु छै। निक्षेप कहतां उपचार घटनारूप ज्ञानु सो फुनि विकल्प छै। भावार्थ—इसौ जो अनादि तहि जीव अज्ञानी छै। जीवस्वरूपकहु नहीं जानै छै। तिहिकौं जब जीवसत्वकी

1—बंद होजाता है।

प्रतीति आनी चाहिजे, तब ज्योंही प्रतीत आवे त्योंही वस्तु स्वरूप साधिजे। सो साधवौ गुण गुणी ज्ञान द्वार होई दूजौ उपाय तौ कोई नहीं छै। तिहितहिं वस्तु स्वरूप गुण गुणी भेदरूप विचारता प्रमाणनय निक्षेप विकल्प उपजै छै। ते विकल्प प्रथम अवस्था भलाही छै। तथापि स्वरूपमात्र अनुभवतां झूठा छै।

भावार्थ-यहां बताया गया है कि शुद्ध आत्मस्वरूपका अनुभव विकल्परहित है। उपयोग जो अन्य अनेक विषयोंमें दौड़ा करता है रुक करके आत्माके ही ऊपर जम जाना अनुभव है। जैसे आम्रका स्वाद लेते हुए एकाग्रता होती है वैसे शुद्ध आत्माका सच्ची श्रद्धा द्वारा व स्पष्ट व निःसंशय ज्ञानद्वारा स्वाद लेते हुए एकाग्रता होती है। उस समय यह आत्मा अपनेसे ही आपका स्वाद लेता है। ऐसी दशामें अनुभव करनेवालेके स्वादमें सिवाय अपने ही आत्माके और कोई विषय नहीं आता है। वह मानों निज स्वरूपमें अद्वैत होजाता है। जैसे मादक पदार्थसेवी मदसे चूर हो एक ही रंगमें मस्त होजाता है वैसे आत्मानुभवी आत्मानन्दमें भरपूर हो एक ही रसमें लीन होजाता है। उस समय कोई प्रकारके विचार नहीं रहते हैं। प्रमाण नय निक्षेप आदि आत्माके ज्ञान प्राप्त करनेके साधन हैं, अनुभव दशाके पहले इनका उपयोग होसक्ता है परन्तु स्वानुभवके समय इनका पता भी नहीं चलता है। यही स्वानुभव परम उपादेय है। इसका लाभ करना ही एक बुद्धिमानका कर्तव्य है। स्वात्मानुभव करनेके पहले साधक इसतरह भावना करता है। जैसा कल्लाण लोयणामें कहा है:—

इक्को सहावसिद्धो सोहं अप्पा वियप्पपरिमुक्को।
अण्णोणमज्झसरणं सरणं सो एक्क परमप्पा॥ ३५॥

भावार्थ-जो सर्व विकल्पोंसे रहित एकरूप स्वभावसिद्ध आत्मा है सो ही मैं हूं, मैं और किसीकी शरणमें नहीं जाता हूं, एक शुद्धात्मा ही मेरे लिये शरण है।

सवैया ३१ सा—जैसे रवि मंडलके उदै महि मंडलमें, आतम अटल तम पटल विलातु है॥ तैसे परमातमको अनुभौ रहत जोलों, तोलों कहूं दुविधान कहुं पक्षपात है॥ नयको न लेस परमाणको न परवेस, निक्षेपके वंसको विध्वंस होत जातु है॥ जेजे वस्तु साधक है तेऊ वहां बाधक है, बाकी रागद्वेषकी दशाकी कोन बातु है॥ १०॥

उपजातिछंद-आत्मस्वभावं परभावभिन्नमापूर्णमाद्यन्तविमुक्तमेकं।
विलीनसङ्कल्पविकल्पजालं प्रकाशयन् शुद्धनयोऽभ्युदेति॥ १०॥

खंडान्वय सहित अर्थ-शुद्धनयः अभ्युदेति-शुद्धनय कहतां निरुपाधि जीववस्तु स्वरूपोपदेश, अभ्युदेति कहतां प्रगट होई छै, कायौ करता होतौ, एकं प्रकाशयन् एकं कहतां शुद्ध स्वरूप जीव वस्तु तिहिकौ, प्रकाशयन् कहतां निरूपतै संतै। किसो छै शुद्ध

जीव स्वरूप। आद्यंतविमुक्तं—आदि कहतां यावंत पाछिलो काल, अंत कहतां आगामि काल, तिहि करि विमुक्त कहतां रहित छे। भावार्थ—इसो जो शुद्ध जीव वस्तुकी आदि भी नहीं अंतु भी नहीं। इसो स्वरूप सुचे। तिहिको नाम शुद्ध नय कहिजे। और किसो छे जीव वस्तु। विलीनसंकल्पविकल्पजालं—विलीन कहतां विलाइ गया छे, संकल्प कहतां रागादि परिणाम, विकल्प कहतां अनेक नय विकल्परूप ज्ञानका पर्याय जिहिको इसो छे। भावार्थ—इसो जो समस्त संकल्प विकल्पतहि रहित वस्तुस्वरूपको अनुभव सम्यक्त छे। किसा छे शुद्ध जीव वस्तु, परभावभिन्नं—कहतां रागादि भावोंसे भिन्न छे और किसा छे आपूर्णम् कहतां अपने गुणोंसे परिपूर्ण छे। और किसा छे आत्मस्वभावं—कहतां आत्माका निज भाव छे।

भावार्थ—शुद्ध निश्चयनय वह दृष्टि है जिससे कोई पदार्थ बिलकुल शुद्ध परद्रव्यके संयोग रहित देखी जासके। इस दृष्टिसे देखते हुए यह आत्मा अनादि अनन्त, सर्व रागादि विकार व सर्व भेदरहित एक अखंड ज्ञानानंदमय परम स्वभावधारी ही दिखता है। इसी दृष्टिके पुनः पुनः अभ्याससे स्वानुभव होता है। श्री नागसेन मुनि तत्वानुशासनमें कहते हैं कि इस तरह अपने आत्माका मनन करो—

सद्द्रव्यमस्मि चिदहं ज्ञातादृष्टा सदाप्युदासीनः।
स्वोपात्तदेहमात्रस्ततः पृथग् गगनवदमूर्त्तः॥ १५३॥

भावार्थ—मैं सत्त नित्य पदार्थ हूं, चैतन्यमई, ज्ञातादृष्टा व सदा ही उदासीन हूं। शरीर प्रमाण आकारधारी होकर भी आकाशके समान अमूर्तीक हूं॥ १०॥

अडिल्ल छन्द—आदि अंत पूरण स्वभाव संयुक्त है। पर स्वरूप पर जोग कलपना मुक्त है॥ सदा एकरस प्रगट कही है जैनमें। शुद्ध नयातम वस्तु विराजे वैनमें॥ ११॥

मालिनीछंद—न हि विदधति बद्धस्पृष्टभावादयोऽमी स्फुटमुपरितरन्तोऽप्येत्य यत्र प्रतिष्ठां।
अनुभवतु तमेव द्योतमानं समंताज्जगदपगत मोहीभूय सम्यक्स्वभावं॥११॥

खंडान्वय सहित अर्थ—जगत तमेव स्वभावं सम्यक् अनुभवतु—जगत कहतां सर्व जीव राशि, तं कहतां पूर्वोक्त, एव कहतां निहचा सौ, स्वभावं कहतां शुद्ध जीव वस्तु, सम्यग् कहतां ज्यों छे त्यों, अनुभवतु कहतां प्रत्यक्षपनै स्वसंवेदन रूप आस्वादहु। किसा होई करि आस्वादहु। अपगतमोहीभूय—अपगत कहतां गयो छे, मोह कहतां शरीरादि परद्रव्य सेती एकत्व बुद्धि जांह की इसो, भूय कहतां होइ करि। भावार्थ—इसो जो संसारी जीव कहुं संसार मांहे [illegible] ता अनंतकाल गयो। एनै जीव शरीरादि परद्रव्य स्वभाव थो। परि आपुनयो ही जानि प्रवर्त्यो। सो जब ही यह विपरीत बुद्धि छूटै, तब ही जीव शुद्ध स्वरूप अनुभव योग्य होइ। किसो छे शुद्ध स्वरूप। समंतात् द्योतमानं—समंतात्

कहतां सर्व्व प्रकार, द्योतमानं कहतां प्रकाशमान छे। भावार्थ–इसौ जो अनुभव गोचर होतां किछू भ्रांति न छै। इहां कोई प्रश्न करै छे जो जीव तो शुद्ध स्वरूप कह्यौ, औरु योंही छै, परि रागद्वेष मोह रूप परिणाम अथवा सुखदुःखादि रूप परिणाम कहु कौन करै छे, कौन भोगवे छे। उत्तरु इसौ जो करतां तो जीव करै छे, भोगवे छै, परि यह परिणति विभावरूप छै, उपाधिरूप छ, तिहितै निजस्वरूप विचारतां, जीवको स्वरूप नहीं इसौ कहिजै छै। किसौ छै शुद्धस्वरूप। यत्र अमी बद्धस्पृष्टभावादयः प्रतिष्ठां न हि विदधति–यत्र कहतां जिहि शुद्धात्मस्वरूप विषै, अमी कहतां छता छे, बद्धस्पृष्टभावादयः–बद्ध कहतां अशुद्ध रागादिभाव, स्पष्ट कहतां परस्पर पिंडरूप एक क्षेत्रावगाह। आदि शब्दतहि अन्यभाव, अनियतभाव, विशेषभाव, संयुक्तभाव जानिवा। तहां अन्यभाव कहतां नरनारक तिर्यचदेव पर्यायरूप, अनियत कहतां असंख्यात प्रदेश सम्बन्धी संकोच विस्तार रूप परिणमन, विशेष कहतां दर्शन ज्ञान चारित्र रूप भेद कथन, संयुक्त कहतां रागादि उपाधि सहित, इत्यादि छै जे विभाव परिणाम, ते समस्त भाव शुद्धस्वरूप विषै, प्रतिष्ठां कहतां शोभा, नहि विधति कहतां नहीं धरे छे। भावार्थ–इसौ बद्ध स्पष्ट अन्य, अनियत, विशेष, संयुक्त इसा छे विभाव परिणाम ते समस्त संसारावस्था जीवका छे, शुद्धजीवस्वरूप अनुभवतां जीवका नहीं। किसा छे बद्धस्पष्टादि लिभाव भाव स्फुटं कहतां प्रगटपने, एत्य अपि–ऊपज्या होता छता ही छे। तथापि उपरितरंतः ऊपर ही ऊपर रहे छे। भावार्थ–इसौ जो जीवको ज्ञानगुण त्रिकालगोचर छे त्यों रागादि विभावभाव जीव वस्तु सौ त्रिकालगोचर नहीं छे। यद्यपि संसारावस्था छता ही छे। तथापि मोक्षावस्था सर्वथा नहीं छे। तातहि इसौ निहचौ जो रागादि जीव स्वरूप नहीं।

भावार्थ–इस श्लोकमें आचार्यने प्रेरणा की है कि हे जगतके जीवों! आत्माके सिवाय सम्पूर्ण पर पदार्थोंसे मोहको हटाकर अपने शुद्ध स्वभावका भलेप्रकार निश्चिन्त होकर स्वाद लो। जिस आत्माके स्वभावमें न तो कर्मोंका बंध है न स्पर्श है। जैसे कमलका पत्ता जलके भीतर होकर भी जलसे भिन्न है वैसे आत्मा इन कर्मादिसे भिन्न है। यह आत्मा अपनी अनन्त नर नारकादि पर्यायोंमें भी वही द्रव्य है, अन्यरूप नहीं हुआ। जैसे मिट्टी घट प्याला अनेक रूप बनकर भी मट्टी ही है। जैसे समुद्र तरंग रहित निश्चल भासता है ऐसे ही यह आत्मा संकोच विस्तार रहित अपने आत्मप्रदेशोंमें थिर झलकता है। जैसे सुवर्ण अपने गुण भारीपन पीलेपन आदिसे अभेद है वैसे यह आत्मा अपने ज्ञान दर्शनादि गुणोंसे अभेद सामान्य रूप है। जैसे अग्नि संयोग विना जल उष्ण न होकर शीतल है वैसे यह आत्मा मोहकर्मके विना रागद्वेष न प्राप्त करके परम वीतराग है। इसतरह अपने आत्माको एकाकार परम शुद्ध अनुभव करो।

श्री देवसेनाचार्य तत्वसारमें कहते हैं—

झाणेण कुणउ भेयं पुग्गलजीवाण तहय कम्माणं।
घेत्तव्वो णियअप्पा सिद्धसरूवो परो बंभो ॥ २५ ॥

भावार्थ—ध्यानके बलसे पुद्गलोंका कर्मोंका व जीवोंका भेद करो फिर अपने आत्माको सिद्धस्वरूपी परम ब्रह्मरूप अनुभव करो।

कवित्त—सतगुरु कहे भव्यजीवनसो, तोरहु तुरत मोहकी जेल॥ समकितरूप गहो आपनो गुण, करहु शुद्ध अनुभवको खेल॥ पुद्गलपिंड भावरागादिक, इनसो नहीं तिहारो मेल॥ ये जड़ प्रगट गुपत तुम चेतन, जैसे भिन्न तोय अरु तेल॥ १२ ॥

शार्दूलविक्रीडितछंद—भूतं भान्तमभूतमेव रभसा निर्भिद्य बन्धं सुधी-
र्यद्यन्तः किल कोऽप्यहो कलयति व्याहत्य मोहं हठात्।
आत्मात्मानुभवैकगम्यमहिमा व्यक्तोऽयमास्ते ध्रुवं
नित्यं कर्मकलङ्कपङ्कविकलो देवः स्वयं शाश्वतः॥ १२ ॥

खंडान्वय सहित अर्थ—अयं आत्मा व्यक्तः आस्ते—अयं कहतां यौंही, आत्मा कहतां चेतना लक्षण जीव, व्यक्तः कहतां स्वस्वभाव रूप, आस्ते कहतां होई। किसौ होई। नित्यं कर्मकलंकपंकविकलः—नित्यं कहतां त्रिकालगोचर कर्म कहतां अशुद्धपनी तिहिरूप कलंक कहतां कालौंसि सोई, पंक कहतां कादौ, तिहितहि, विकल कहतां सर्वथा भिन्न इसो होइ। और किसौ होइ, ध्रुवं—कहतां चारि गति भमिवा तै रह्यो। और किसौ छै देवः कहतां त्रैलोक्य करि पुज्य छै। और किसौ छै स्वयं शाश्वतः—कहतां द्रव्यरूप छतौ ही छै। और किसौ होइ—आत्मानुभवैकगम्यमहिमा—आत्मा कहतां चेतन वस्तु तिहिकौ अनुभव कहतां प्रत्यक्षपनै आस्वाद तिहि करि, एक कहतां अद्वितीय, गम्य कहतां गोचर छै, महिमा कहतां वड़ाई जिहिकी, इसौ छै। भावार्थ—इसौ जो जीवकौ ज्यौं एक ज्ञानु गुण छै त्यौं एकु अतिन्द्रिय सुख गुणु छै। सो सुख गुण संसारावस्था अशुद्धपणा थकी प्रगटरूप आस्वादरूप नहीं, अशुद्धपणा गया थकै प्रगट होइ छै। सो सुख अतिन्द्रिय परमात्माकौ छै। तिहि सुखकौ कहिवाकौ कोई दृष्टांत चारिगति माहै नहीं। जातहिं चारयौं गति दुःखरूप छै। तिहितैं इसौ कह्यौ जो तिहिकौ शुद्धस्वरूप अनुभव छै सो जीव परमात्मा। जीवका सुखकौ जानिवा योग्य छै। जिहितै शुद्ध स्वरूप अनुभवतां अतीद्रिय सुख छै इसौ भाव सूच्यौ। कोई प्रश्न करै छै। किसौ कारण करतां जीव शुद्ध होई छै। उत्तरु इसौ जो शुद्धकौ अनुभव करतां शुद्ध होई छै। किल यदि कोपि सुधीः अंतः कलयति—किल कहतां निहचैसौ, यदि जो, कोपि कहतां कोई जीव, अंतः कलयति कहतां शुद्ध स्वरूप कहु निरंतरपनै अनुभवै, किसौ छै जीव, सुधीः कहतां शुद्ध छै बुद्धि जाकी। किं कृत्वा—

कार्यों करि अनुभवै। रभसा वंधं निर्भिद्य रभसा कहतां तेही काल, बंधं कहतां द्रव्य पिंड रूप मिथ्यात्व कर्म्म, निर्भिद्य कहतां उदय मेटि करि अथवा मूलतंहि सत्ता मेटि करि तथा हठात् मोहं व्याहत्य—हठात् कहतां माटीपनै, मोहं कहतां मिथ्यात्त्वरूप जीवका परिणाम, व्याहत्य कहतां मूल तहि उखारिकरि। भावार्थ—इसो अनादिकालको मिथ्यादृष्टी ही जीव काललब्धि पाया सम्यक्त ग्रहण काल पहिले तीनि करण करै छै। ते तीनि करण अंतर्मुहूर्त मांहि होहि छे। करण करतां द्रव्य पिंड रूप मिथ्यात्वकर्मकी शक्ति मिटै छै। तिहि शक्तिके मिटतां भाव मिथ्यात्त्वरूप जीवका परिणाम मिटै छे। यथा धतूराकौ रस पाक मिटतां गहि-लाई मिटै छै। किसो छै बंध अथवा मोह। भूतं भांतं अभूतं एव—एव कहतां निहचौ, भूतं कहतां अतीत काल सम्बन्धी, भांतं कहतां वर्तमान काल सम्बन्धी, अभूतं कहतां आगामि काल सम्बन्धी। भावार्थ- इसौ जो त्रिकाल संस्कार रूप छै शरीरादि सौ एकत्व बुद्धि तिहिके मिटतां जो जीव शुद्ध जीव तहु अनुभवै सो जीव कर्म्म तहि मुक्त होई निहचा सेती ॥१२॥

भावार्थ—यहां बताया है कि जो बुद्धिमान भेद ज्ञानके द्वारा अपने आत्माको तीन कालके बंधके संस्कारसे रहित मानकर व मोहभावको दूर करके अपने भीतर अनुभव करता है उसको यही झलकता है कि मैं आत्मा नित्य ही सर्व कर्मके मैलसे रहित परम देव हूं। वास्तवमें मेरी महिमा अनुभव गोचर है। उसको कोई उपमा नहीं दी जासक्ती न उसका वचनोंसे वर्णन ही होसक्ता है। वास्तवमें जिसको देखना, जानना, श्रद्धना व अनुभव करना या स्वाद लेना है वह आप ही है। जब शुद्ध निश्चय नयके बलसे अपनेको परमात्मा रूप गाढ़ भावनाके द्वारा भाया जायगा तब स्वयं स्वानुभव प्राप्त हो जायगा। आचार्य भावना करते हैं कि ऐसा ही आत्मा सदा हमारे अनुभवमें आवे।

श्री योगेन्द्रदेव योगसारमें कहते हैं—

जो जिण सोहउं सोजिहउं एहउ भाउ णिभंतु।
मोक्खहकारण जोइया अण्णु ण तंतु ण मंतु ॥७४॥

भावार्थ—जो जिन परमात्मा हैं वही मैं हूं, वही ही मैं हूं ऐसी ही भावना भ्रांति छोड़ करके सदा करे। हे योगी। यही मोक्षका उपाय है, और कोई न मंत्र है न तंत्र है।

सवैया ३१ सा—कोऊ बुद्धिवंत नर निरखे शरीर घर, भेदज्ञान दृष्टीसो विचार वस्तु वास तो॥ अतीत अनागत वरतमान मोहरस, भीग्यो चिदानंद लखे बंधमें विलास तो॥ बंधको विदारी महा मोहको स्वभाव डारि, आतमको ध्यान करे देखे परगास तो॥ करम कलंक पंक रहित प्रगटरूप, अचल अबाधित विलोकें देव सासतो ॥ १३ ॥

वसंततिलका—आत्मानुभूतिरिति शुद्धनयात्मिका या ज्ञानानुभूतिरियमेव किलेति बुद्ध्वा।
आत्मानमात्मनि निवेश्य सुनिःप्रकम्पमेकोऽस्ति नित्यमवबोधघनः समन्तात् ॥१३॥

खंडान्वय सहित अर्थ—आत्मा सुनिःप्रकंपं एकोस्ति—आत्मा कहतां चेतन द्रव्य, सुनिःप्रकंपं कहतां अशुद्ध परिणमन तहि रहित, एकः कहतां शुद्ध, अस्ति कहतां होई छे। किसौ छे आत्मा। नित्यं समंतात् अवबोधघनः—नित्यं कहतां सदाकाल, समंतात् कहतां सर्वांग, अवबोध कहतां ज्ञान गुण तिहिको घन कहतां समूह छे, ज्ञानपुंज छे। किं कृत्वा—कायौंकरिके आत्मा शुद्ध होई छे। आत्मना आत्मनि निवेश्य—आत्मना कहतां आपुनपै, आत्मनि कहतां आपनैं ही विषै, निवेश्य कहतां प्रविष्ट होई करि। भावार्थ—इसौ जो, आत्मानुभव परद्रव्य सहाय रहित छे। तिहितै आपुनपै ही आपुनु करि आत्मा शुद्ध होई छे। इहां कोई प्रश्न करे छे जो एनै अवसर तौ इसौ कह्यो जो आत्मानुभव करतां आत्मा शुद्ध होइ छे। कहीं एक कह्यो जो ज्ञान गुण मात्र अनुभव करतां शुद्ध होइ छे, सो विशेष कायौ परयौ। उत्तर इसौ जो विशेष तौ कांई न छे—या शुद्ध नयात्मिका आत्मानुभूतिः इति किल इयं एव ज्ञानानुभूतिः इति बुद्ध्वा—या कहतां जो, आत्मानुभूतिः कहतां आत्म-द्रव्यको प्रत्यक्षपनै आस्वाद। किसी छे अनुभूति, शुद्ध नयात्मिका, शुद्ध नय कहतां शुद्ध वस्तु सोई छे आत्मा कहतां स्वभाव जिहिको, इसी छे। भावार्थ—इसौ जो निरुपाधि पनै जीवद्रव्य जिसौ छे तिसौ ही प्रत्यक्षपनै आस्वाद आवै इहिको नाम शुद्धात्मानुभव कहीजे। किल कहतां निहचैं, इयं एव कहतां यही कही जो आत्मानुभूति सोई ज्ञानानुभूतिः इति बुद्ध्वा कहतां जानिकरके एतावन्मात्र। भावार्थ—इसौ जो जीव वस्तुको प्रत्यक्षपनै आस्वाद, तिहिसौं नामकरि आत्मानुभव इसौ कहिजे अथवा ज्ञानानुभव इसौ कहिजे, नाम भेद छे वस्तुभेद नहीं। इसौ जानि आत्मानुभव मोक्षमार्ग छे। एनै अवसरि और भी संशय जाइ छे। जो कोई जानिसे, द्वादशांग ज्ञान क्यौ अपूर्व लब्धि छे। तांहीप्रति समाधान इसौ—जो द्वादशांग ज्ञानु फुनि विकल्प छे। तिहि मांहे फुनि इसौ कह्यौ छे जो शुद्धात्मानुभूति मोक्षमार्ग छे तिहिहिं शुद्धात्मानुभूति होता शास्त्र पढ़िवाकी अटक किछू नांहीं।

भावार्थ—इसमें यह बताया है कि सम्यग्ज्ञानका अनुभव वहीं है जहां शुद्ध आत्माका अनुभव है। ऐसा समझकर आत्माको अपने ही द्वारा अपने आत्माके भीतर प्रवेश करके अविनाशी ज्ञानमई आत्माका निश्चलपने अनुभव करना चाहिये। श्री नागसेन मुनि तत्वानुशासनमें कहते हैं—

> कर्मजेभ्यः समस्तेभ्यो भावेभ्यो भिन्नमन्वहं।
> ज्ञस्वभावमुदासीनं पश्येदात्मानमात्मना ॥ १६४ ॥

भावार्थ—ज्ञानीको उचित है कि अपने आत्माके द्वारा अपने आत्माको ज्ञान स्वभाव, परम वीतराग व सर्व कर्म कृत भावोंसे भिन्न सदा अनुभव करे।

सवैया २३ सा—शुद्ध नयातम आतमकी, अनुभूति विज्ञान विभूति है सोई ॥ वस्तु विचारत एक पदारथ, नामके भेद कहावत दोई ॥ यो सरवंग सदा लखि आपुहि, आतम ध्यान करे जब कोई ॥ मेटि अशुद्ध विभावदशा तब, सिद्ध स्वरूपकी प्रापति होई ॥ १४ ॥

पृथ्वीछंद-अखण्डितमनाकुलं ज्वलदनन्तमन्तर्बहिर्महः परममस्तु नः सहजमुद्विलासं सदा।
चिदुच्छलननिर्भरं सकलकालमालम्बते यदेकरसमुल्लसल्लवणखिल्यलीलायितं ॥१५॥

खंडान्वय सहित अर्थ—तत् परमं महः नः अस्तु—तत् कहतां सोई, महः कहतां शुद्ध ज्ञान मात्र वस्तु, नः कहतां हम कहुं, अस्तु कहतां होउ। भावार्थ—इसौ शुद्ध स्वरूपकौ अनुभव उपादेय, आन समस्त हेय। किसौ छै महः, परमं कहतां उत्कृष्ट छै, और किसौ छै महः अखंडितं—खंडित नहीं छै, परिपूर्ण छै। भावार्थ—इसो जो इंद्रियज्ञान खंडित छै, सो यद्यपि वर्तमान काल तिहिरूप परिणयौ छै तथापि स्वरूप अतीन्द्रिय ज्ञानु छै। और किसौ छै। अनाकुलं—आकुलता तहि रहित छै। भावार्थ—इसौ जो—यद्यपि संसारावस्था कर्मजनित सुख दुःख रूप परिणवै छै तथापि स्वाभाविक सुख स्वरूप छै। और किसौ छै, अंतर्बहिर्ज्वलत्—अंतः कहतां माहे, बहिः कहतां बाहिर, ज्वलत कहतां प्रकाशरूप परिणवै छै। भावार्थ—इसौ जीव वस्तु असंख्यात प्रदेश छै। ज्ञानु गुणु सर्व प्रदेश एकसौ परिणवै छै। कोई प्रदेश घाटि बाढ़ि नहीं छै। और किसौ छै, सहजं—स्वयं सिद्ध छै। और किसौ छै, उद्विलासं—कहतां आपणा गुण पर्याय सौं धाराप्रवाह रूप परिणवै छै। और किसौ छै, यत् महः सकलकालं एकरसं आलम्बते—यत् कहतां जो, महः कहतां ज्ञानु पुंज, सकलकालं कहतां त्रिकाल ही, एकरसं कहतां चेतना स्वरूपकहु, आलम्बते कहतां आधारभुत छै। किसौ छै एकरस, चिदुच्छलननिर्भरं—चित् कहतां ज्ञान, उच्छलन कहतां परिणमन, तिहिकरि निर्भरं कहतां भरितावस्थ छै। और किसौ छै एकरस, लवणखिल्यलीलायितं—लवण कहतां क्षाररस तिहिकी खिल्य कहतां कांकरु तिंहिकी लीला कहतां परिणति, आयितं कहतां तिहिकै नांई छै स्वभाव जिहिकौ। भावार्थ—इसौ जो जैसे लौनकी कांकरि सर्वांग ही क्षार छै तैसे चेतन द्रव्य सर्वांग ही चेतन छै॥ १४ ॥

भावार्थ—ज्ञानी ऐसी भावना भाता है कि मुझे उस आत्मस्वभावका अनुभव प्राप्त हो जिस आत्माका ज्ञान एक स्वभावरूप अखण्डित है। उसमें मति ज्ञानादिके भेद नहीं है व जिसमें किसी प्रकारके राग द्वेषका क्षोभ नहीं, जो आत्मानन्दको देनेवाला है तथा जो आत्माके सर्व आकारमें सर्व जगह परिपूर्ण प्रकाशमान है व जिसके समान और कोई तेज इस लोकमें नहीं है। जिसके प्रकाशके लिये किसी परवस्तुकी सहायताकी जरूरत नहीं है व जिसमें चेतनाका एक सामान्य स्वाद ऐसा भरा हुआ है जसे लोणकी डलीमें खारपन भरा होता है। स्वानुभव ही परमानन्दमई एकरस उसीका स्वाद हमें निरन्तर प्राप्त हुआ करे।

श्री योगेन्द्रदेव योगसारमें कहते हैं—

सुद्ध पएसह पूरियउ लोयायास पमाणु।
सो अप्पा अणुदिण मणहु पावहु लहु णिव्वाण ॥ २३ ॥

भावार्थ—जो अपने लोकाकाश प्रमाण असंख्यात प्रदेशोंमें परम शुद्ध है ऐसे ही आत्माको रातदिन मनन करो जिससे शीघ्र निर्वाणका लाभ होवे ॥

सवैया ३१ सा—अपने ही गुण परजायसो प्रवाहरूप, परिणयो तिहूं काल अपने आधारसो। अंतर बाहिर परकाशवान एकरस, क्षीणता न गहे भिन्न रहे भौ विकारसो ॥ चेतनाके रस, सरवंग भरिरह्या जीव, जैसे लूण कांकर भर्यो है रस क्षारसो। पूरण स्वरूप अति उज्जल विज्ञानघन, मोको होहु प्रगट विशेष निरवारसो ॥ १५ ॥

अनुष्टुप—एष ज्ञानघनो नित्यमात्मा सिद्धिमभीप्सुभिः।
साध्यसाधकभावेन द्विधैकः समुपास्यताम् ॥ १५ ॥

खंडान्वय सहित अर्थ—सिद्धिमभीप्सुभिः एष आत्मा नित्यं समुपास्यतां—सिद्धि कहतां सकल कर्म क्षय लक्षण मोक्ष, अभीप्सुभिः कहतां मोक्ष कहुं उपादेय करि अनुभवै छे जे जीव तिन कहु उपादेय इसौ जो, एष कहतां आपनौ, आत्मा कहतां शुद्ध चैतन्यद्रव्य, नित्यं कहतां सदाकाल, समुपास्यतां कहतां अनुभव करिवो। किसौ छे आत्मा, ज्ञानघनः ज्ञान कहतां स्वपर ग्राहक शक्ति तिहकौ घन कहतां पुंज छे। और किसौ छे। एकः—कहतां समस्त विकल्प रहित छे। और किसौ छे, साध्यसाधकभावेन द्विधा—साध्य कहतां सकल कर्मक्षय लक्षण मोक्ष, साधक कहतां मोक्ष कारण शुद्धोपयोग लक्षण शुद्धात्मानुभव, इसौ भाव कहतां दोइ अवस्था भेद करि द्विधा कहतां दोइ प्रकार छे। भावार्थ—इसौ जो एक ही जीवद्रव्य कारणरूप तौ अपुनपैही परिणवैछे, कार्यरूप तो अपुनपै ही परिणवै छे। तिहितैं मोक्ष जातां कोई द्रव्यांतरको सारो नहीं। तिहितै शुद्धात्मानुभव कीजै।

भावार्थ—यहां बताया है कि मोक्ष आत्माका स्वरूप है जिसको साधन करना है। व मोक्षका साधन व उपाय भी आत्मा ही है। जब यह आत्मा स्वानुभवरूप वर्तता है तब वहां निश्चय रत्नत्रय अर्थात् मोक्षमार्ग विद्यमान है। उपादान कारण ही कार्यका मुख्य साधन होता है इसलिये आत्मा पूर्वभाव साधक उत्तर भाव साध्य है। ऐसा जान शुद्धोपयोग वर्तनेका पुरुषार्थ सदा ही करते रहना चाहिये। श्री देवसेनाचार्य आराधनासारमें कहते हैं—

दंसणणाणचरित्ता णिच्छयवाएण हुंति ण हु भिण्णा।
जो खलु सुद्धो भावो तमेव रयणत्तयं जाण ॥ ८० ॥

भावार्थ—सम्यग्दर्शन ज्ञानचारित्र निश्चयनयसे भिन्न नहीं है। जो कोई आत्माका एक शुद्ध भाव है उस हीको रत्नत्रय वास्तवमें जानो।

कवित्त—जहां ध्रुवधर्म कर्मक्षय लच्छन, सिद्ध समाधि साध्यपद सोई। शुद्धोपयोग जोग महि मंडित, साधक ताहि कहे सब कोई॥ यो परतक्ष परोक्ष स्वरूपसो, साधक साध्य अवस्था दोई। दुहुको एक ज्ञान संचय करि, सेवे सिवं बंछक थिर होई॥ १६॥

अनुष्टुप—दर्शनज्ञानचारित्रैस्त्रित्वादेकत्वतः स्वयम्।
मेचकोऽमेचकश्चापि सममात्मा प्रमाणतः॥ १६॥

खंडान्वयसहित अर्थ—आत्मा मेचकः—आत्मा कहतां चेतन द्रव्य, मेचक कहतां मैल्यौ छे। किसा पै मैल्यो छे, दर्शनज्ञानचारित्रैस्त्रित्वात्- दर्शन कहतां सामान्यपने अर्थ-ग्राहकशक्ति, ज्ञान कहतां विशेषपने अर्थ ग्राहकशक्ति। चारित्र कहतां शुद्धत्व शक्ति। इसी शक्ति भेद करतां एकु जीव तीनिप्रकार होइ छे। तिहितै मैलौ कहिजै इसौ व्यवहार छे। आत्मा अमेचकः— आत्मा कहतां चेतनद्रव्य, अमेचक कहतां निर्मल छे। किसा छे निर्मल छे। स्वयं एकत्वतः—स्वयं कहतां द्रव्यकौ सहज एकत्वतः कहतां निर्भेद छे, इसौ निश्चय-नय कहिजै। आत्मा प्रमाणतः समं मेचकः अमेचकोपि च—आत्मा कहतां चेतनद्रव्य समं कहतां एक ही वार, मेचकः अमेचकोपि च—मैलो फुनि छे निर्मल फुनि छे। किसाथकी, प्रमाणतः प्रमाण कहतां युगपत् अनेक धर्म ग्राहक ज्ञान। तिहितै प्रमाण दृष्टि देखतां, एक ही वार जीवद्रव्य भेदरूप फुनि छे, अभेदरूप फुनि छे॥

भावार्थ—वस्तुको अभेद एकरूप देखना निश्चय दृष्टि है, उसे अनेक गुण व स्वभाव रूप देखना व्यवहारदृष्टि है। दोनों रूप एक समयमें एक साथ देखना प्रमाणदृष्टि है। आत्मामें दर्शन, ज्ञान व चारित्रगुण हैं इसलिये अनेकरूप है। टीकाकार राजमलजीने दर्शनके अर्थ सामान्य ग्राहक उपयोग किया है। जब कि इसका अर्थ सम्यग्दर्शन गुण भी होसक्ता है। दोनों ही अर्थ करनेमें कोई बाधा नहीं। आत्मा अपने इन गुणोंसे अभेद है इसलिये आत्मा एकरूप है। एकरूप अनुभव करना स्वानुभवका साधक है। श्री योगेन्द्राचार्य परमात्मप्रकाशमें कहते हैं—

जीवहिं मोक्खहिं हेउवरु—दंसणणाणचरित्तु।
ते पुण तिण्णवि अप्पुमुणि, णिच्छइ एह उवुत्तु॥ १३७॥

भावार्थ—जीवके लिये मोक्षका कारण निश्चय सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र हैं वे उन तीनोंको ही निश्चयनयसे आत्मा जानो ऐसा कहा गया है।

कविता—दरसन ग्यान चरण त्रिगुणातम, समलरूप कहिये विवहार। निहचै दृष्टि एक रस चेतन, भेद रहित अविचल अविकार॥ सम्यक्दशा प्रमाण उभयनय, निर्मल समल एक ही वार। यौं समकाल जीवकी परिणति, कहे जिनेंद गहे गणधार॥ १७॥

अनुष्टुप—दर्शनज्ञानचारित्रैस्त्रिभिः परिणतत्वतः।
एकोऽपि त्रिस्वभावत्वाद्व्यवहारेण मेचकः॥ १७॥

खंडान्वयसहित अर्थ—एकोपि व्यवहारेण मेचकः—एकोपि कहतां द्रव्यदृष्टि करि शुद्ध छे जीवद्रव्य, तौ फुनि व्यवहारेण—गुण गुणीरूप भेद दृष्टि करि, मेचकः कहतां मलो छे। सो फुनि किसाथकी त्रिस्वभावत्वात्—त्रि कहतां दर्शन ज्ञान चारित्र तीनि सोई छे स्वभाव कहतां सहज गुण जिहिका, तिहिथी। सो फुनि किसा थी। दर्शनज्ञानचारित्रैः त्रिभिः परिणतत्वतः—कहतां दर्शन ज्ञान चारित्र तीन गुणरूप परिणवे छे तिहितै भेद-बुद्धि फुनि घटै छे।

भावार्थ—व्यवहारसे देखा जावे तो आत्मा दर्शन ज्ञान चारित्र तीनरूप होकर मेचक या अनेक प्रकार है।

दोहा—एकरूप आतम दरब, ज्ञान चरण दग तीन। भेदभाव परिणाम यो, विवहारे सु मिलन ॥१८॥

अनुष्टुप—परमार्थेन तु व्यक्तज्ञातृत्वज्योतिषैककः।
सर्वभावान्तरध्वंसिस्वभावत्वादमेचकः ॥ १८ ॥

खंडान्वय सहित अर्थ-तु परमार्थेन एककः अमेचकः-तु कहतां पुनः दूजौ पक्ष सुनौ, परमार्थेन कहतां शुद्ध द्रव्यदृष्टि करि, एककः कहतां शुद्ध जीव वस्तु। अमेचकः कहतां निर्मल छे, निर्विकल्प छे। किसौ छे परमार्थ—व्यक्तज्ञातृत्वज्योतिषा—व्यक्त कहतां प्रगट छे, ज्ञातृत्व कहतां ज्ञानमात्र, ज्योति कहतां प्रकाश स्वरूप जहां इसो छे। भावार्थ—इसो जो शुद्ध निर्भेद वस्तु मात्र ग्राहक ज्ञानु निश्चयनय कहिजै। तिहि निश्चयनय करि जीव पदार्थ सर्व भेदरहित शुद्ध छे। और किसाथकी शुद्ध छे। सर्वभावांतरध्वंसिस्वभा-वत्वात्-सर्व कहतां समस्त द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म अथवा परद्रव्य ज्ञेयरूप इसा छे, भावांतर कहतां उपाधिरूप विभावभाव तिहिकौ, ध्वंसि कहतां मेटनशील छे, स्वभाव कहतां निज स्वरूप जिहिकौ, इसा स्वभाव थकी शुद्ध छे।

भावार्थ—शुद्ध निश्चयनयकी अपेक्षा आत्माको एकाकार व सर्व परभावसे रहित परम शुद्ध ही अनुभव करना योग्य है—

दोहा—यदपि समल व्यवहार सो, पर्यय शक्ति अनेक। तदपि नियत नय देखिये, शुद्ध निरंजन एक ॥ १९ ॥

अनुष्टुप—आत्मनश्चिन्तयैवालं मेचकामेचकत्वयोः।
दर्शनज्ञानचारित्रैः साध्यसिद्धिर्न चान्यथा ॥ १९ ॥

खंडान्वयसहित अर्थ—मेचकामेचकत्वयोः आत्मनः चिंतया एव अलं--मेचक कहतां मलीन, अमेचक कहतां निर्मल, इसौ छे, दोइ नय पक्षपातरूप। आत्मनः कहतां चेतन द्रव्यकौ, चिंतया कहतां विचारु, तेनै विचारै। अलं कहतां पूरौ होउ। इसौ विचारता फुनि साध्य सिद्धि नहीं, एव कहतां इसौ निहचौ जानिवौ। भावार्थ--इसौ जो श्रुतज्ञान करि

आत्मस्वरूप विचारतां बहुत विकल्प उपजै छे, एक पक्ष विचारतां आत्मा अनेकरूप छे, दूजै पक्ष विचारतां आत्मा अभेदरूप छे। इसौ विचारतां फुनि स्वरूप अनुभव नहीं। इहां कोई प्रश्न करै छे, विचारतां तौ अनुभव नहीं, अनुभव क्यां छे। उत्तरु इसौ जो। प्रत्यक्षपनै वस्तुको आस्वाद करतां अनुभवै छे। सोइ कहिजै छे। दर्शनज्ञानचारित्रैः साध्यसिद्धिः दर्शन कहतां शुद्ध स्वरूपको अवलोकन, ज्ञान कहतां शुद्ध स्वरूपको प्रत्यक्ष जानपनौ, चारित्रं कहतां शुद्ध स्वरूपको आचरण, इसौ कारण कहतां, साध्यसिद्धिः–साध्य कहता सकल कर्मक्षय लक्षण मोक्ष, तिहिकी सिद्धि कहतां प्राप्ति होई। भावार्थ–इसौ जो शुद्ध स्वरूपको अनुभव करतां मोक्षकी प्राप्ति छे। कोई प्रश्न करै छे जो इतनौ ही मोक्षमार्ग छे, कै कांई औरु भी मोक्षमार्ग छै। उत्तरु इसौ जो इतनौ ही मोक्षमार्ग छे। न चान्यथा–च कहतां पुनः, अन्यथा कहतां अन्य प्रकार, न कहतां साध्यसिद्धि नहीं।

भावार्थ–यहां यह बताया है कि नयद्वारा भेद अभेदरूप चिंतवन करनेसे स्वानुभव नहीं होगा। सर्व विकल्पोंको छोडकर जब एक अपने ही शुद्ध आत्मस्वरूपको श्रद्धा व ज्ञानपूर्वक स्वादमें लिया जायगा व आत्म सन्मुख हुआ जायगा, परसे मोह रागद्वेष हटाया जायगा, समता भावमें तन्मय होजायगा तब ही स्वानन्दामृत रसका पान होगा। यही स्वानुभव है, यही मोक्षमार्ग है इसको छोड़कर और कोई भी मोक्षका साधन नहीं होसक्ता है।

श्री योगेन्द्राचार्य परमात्मप्रकाशमें कहते हैं—

पिच्छइ जाणइ अणुचरइ अप्पे अप्पउजोजि। दंसण णाण चरित्त जिउ, मोक्खहिं कारण सोजि ॥१३८॥

भावार्थ–जो आप अपनेका श्रद्धान, ज्ञान व आचरण करता है वह सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रमई आत्मा मोक्षका कारण है।

दोहा–एक देखिये जानिये, रमि रहिये इक ठौर। समल विमल न विचारिये, यहै सिद्धि नहि और ॥ २० ॥

मालिनीछंद–कथमपि समुपात्तत्रित्वमप्येकताया, अपतितमिदमात्मज्योतिरुद्गच्छदच्छम्।
सततमनुभवामोऽनन्तचैतन्यचिह्नम् न खलु न खलु यस्मादन्यथा साध्यसिद्धिः ॥२०॥

खंडान्वयसहित अर्थ–इदं आत्मज्योतिः सततं अनुभवामः–इदं कहतां प्रगट छे, आत्मज्योतिः कहतां चैतन्य प्रकाश, सततं कहतां निरंतरपनै, अनुभवामः कहतां प्रत्यक्षपनै आस्वाद करां छां। किसौ छै आत्मज्योति, कथमपि समुपात्तत्रित्वं अपि एकतायाः अपतितम्–कथमपि कहतां व्यवहारदृष्टि करि, समुपात्त कहतां ग्रह्यो छै, त्रित्वं कहतां तीनि भेद जिहि इसौ छै तथापि एकतायाः कहतां शुद्धपनै थकी, अपतितं कहतां नहीं परै छे। औरु किसौ छे आत्मज्योति, उद्गच्छत् कहतां प्रकाशरूप परिणवै छे, औरु किसौ छे, अच्छं–कहतां निर्मल छै, औरु किसौ छे, अनंतचैतन्यचिन्हं–अनंत कहतां अति बहुत, चैत-

न्य कहतां ज्ञान सोई छे चिन्हं कहतां लक्षणजिहिको इसौ छे। कोई आशंका करै छे जो अनुभव बहुत करि दिढ़ायों सो कार्यो कारण। यस्मात् अन्यथा साध्यसिद्धिः न खलु न खलु-यस्मात् कहतां जिहि कारण तहि, अन्यथा कहतां अन्य प्रकार, साध्यसिद्धिः कहतां स्वरूपकी प्राप्ति, न खलु न खलु, कहतां नाहीं नाहीं इसौ निहचौ छे।

भावार्थ-यहां फिर भी दृढ़ किया है कि यद्यपि भेदरूप कथन करनेवाली व्यवहार दृष्टिसे आत्माको दर्शनरूप, ज्ञानरूप व चारित्ररूप देखा जाता है तथापि यह आत्मा इन तीनोंसे अभेद एक ही अखंड, ज्ञान समुदाय, परम निर्मल पदार्थ है। ऐसा ही अनुभव उचित है। इसी तरह हम भी आत्माका स्वाद लेते हैं यदि तुम मोक्षार्थी हो तो तुम भी आत्माका इसी तरह स्वाद लो। क्योंकि मोक्षकी सिद्धिका यही उपाय है अन्य कोई उपाय नहीं होसक्ता है। श्री देवसेनाचार्य आराधनासारमें कहते हैं—

जइ इच्छहि कम्मखयं सुण्णं धारेहि णियमणो झत्ति। सुण्णीकयम्मि चित्ते णूणं अप्पा पयासेई ॥ ७४॥

भावार्थ-यदि कर्मका नाश करना चाहते हैं तो अपने मनको शीघ्र ही संकल्प विकल्पोंसे शून्य करो। मनको परभावरहित करनेपर ही निश्चयसे आत्माका प्रकाश होता है।

सवैया ३१ सा—जाके पद सोहत सुलक्षण अनंत ज्ञान, विमल विकाशवंत ज्योति लह लही है। यद्यपि त्रिविधिरूप व्यवहारमें तथापि, एकता न तजे यो नियत अंग कही है॥ सो है जीव कैसीहू जुगतिके सदीव ताके, ध्यान करवेकूं मेरी मनसा उमगी है। जाते अविचल रिद्धि होत और भांति सिद्धि, नाहीं नाहीं नाहीं यामे धोखो नाही सही है ॥ २१ ॥

मालिनीछंद-कथमपि हि लभन्ते भेदविज्ञानमूलामचलितमनुभूतिं ये स्वतो वान्यतो वा।
प्रतिफलननिमग्नानन्तभावस्वभावैर्मुकुरवदविकाराः संततं स्युस्त एव ॥ २१ ॥

खंडान्वयसहित अर्थ-ये अनुभूतिं लभंते-ये कहतां जे केई निकट संसारी जीव, अनुभूति कहतां शुद्ध जीव वस्तुको आस्वाद। लभंते कहतां पावहिं छे। किसी छे अनुभूति, भेदविज्ञानमूलां-भेद कहतां स्वस्वरूप परस्वरूप दोइ करिवौ इसौ छे विज्ञान कहतां जानपनो सोई छे, मूल कहतां सर्वस्व जिहिको इसौ छे, और किसौ छे। अचलितं कहतां स्थिरतारूप छे। इसी अनुभूति क्यों पाइजे छे। कथमपि स्वतो वा अन्यतो वा-कथमपि कहतां अनन्त संसार भ्रमतां क्यों ही करि काल लब्धि प्राप्त होइ छे तब सम्यक्त उपजै छे, तब अनुभव होइ छे, स्वतो वा कहतां मिथ्यात्व कर्मके उपशमतां विना ही उपदेश अनुभव होइ छे, अन्यतो वा कहतां अंतरंग मिथ्यात्व कर्मको उपशमु होइ छे. बहिरंग गुरु समीप सुत्रको उपदेश पाइ करि अनुभव होइ छे। कोई प्रश्न करै छे। जे अनुभव पावै छे ते अनुभव पायांथकी किसा छे। उत्तरु इसौ जो निर्विकार छे, सोई कहिजे छे। त एव सततं मुकुरवत् अविकाराः स्युः-त एव कहतां तेई जीव, सततं कहतां निरंतरपनै, मुकुरवत्

कहतां आरीसाकी नाई, अविकाराः कहतां रागद्वेष तिहि रहित, स्युः कहतां छे। किसाथी निर्विकार छे। प्रतिफलननिमग्नानंतभावस्वभावैः—प्रतिफलन कहतां प्रतिविम्बरूप निमग्न कहतां गर्भित छे, अनंतभाव कहतां सकल द्रव्य तिहिके, स्वभाव कहतां गुणपर्याय, तिहिकरि निर्विकार छे। भावार्थ—इसौ जो, जिहि जीवको शुद्ध स्वरूप अनुभवै छे ताका ज्ञानमां सकल पदार्थ उद्दीपे छे, भाव कहतां गुणपर्याय तिहिकरि निर्विकाररूप अनुभव छे त्यांहका ज्ञानमाहैं सकल पदार्थ गर्भित छे॥ २१॥

भावार्थ—यहां बताया है कि स्वात्मानुभव होनेका उपाय भेदविज्ञानकी प्राप्ति है। आत्माका असली स्वाभाव अलग है अनात्माका स्वभाव अलग है, इस ज्ञानको भेदविज्ञान कहते हैं। जब सम्यग्दर्शनरूपी गुण आत्मामें प्रकाशमान होता है तब यह भेदविज्ञान यथार्थ होता है तब ही स्वानुभव होता है। अनन्तानुबन्धी कषाय और मिथ्यात्वके उपशम होनेसे अनादिकालीन मिथ्यादृष्टीको सम्यक्त होजाता है उसमें कारण दो हैं—यातो स्वयं विना उपदेशके जातिस्मरणसे, वेदनाको अनुभव करते हुए, व देवविभूति देखकर व समवशरण व मूर्ति देखकर इत्यादि कारणोंसे होता है या आत्मज्ञानी गुरुके उपदेश व शास्त्राभ्याससे होता है। जिसको स्वानुभव होता है। उसका ज्ञान बड़ा ही निर्मल होता है, जैसे दर्पणमें पदार्थ जैसे हैं वैसे झलकते हैं परन्तु दर्पण उनसे विकारी व अन्यरूप नहीं होता है—जैसाका तैसा बना रहता है तैसे स्वानुभवीके ज्ञानमें अन्य द्रव्योंके गुणपर्याय जैसेके तैसे झलकते हैं परन्तु वह ज्ञानी उनसे रागद्वेष मोह नहीं करता है। अपने स्वच्छ वीतराग स्वभावको भिन्न ही अनुभव करता है। व्यवहारमें कार्य करते हुए, राज्यपाट करते हुए भी भरत चक्रवर्तीकी तरह अंतरंग मनको नहीं जोड़ता है। जैसे कि पूज्यपादस्वामीने समाधिशतकमें कहा है—

आत्मज्ञानात्परं कार्यं न बुद्धौ धारयेच्चिरम्। कुर्यादर्थवशात्किंचिद्वाक्कायाभ्यामतत्परः ॥ ५० ॥

भावार्थ—आत्मज्ञानके सिवाय अन्य कार्यका चिंतवन बुद्धिमें दीर्घकालतक ज्ञानी नहीं रखता है। प्रयोजनवश कुछ काम करना पड़े तो वचन और कायसे करता है उनमें मनको आशक्त नहीं करता है। कर्मोंके उदयसे साताकारी व असाताकारी पदार्थोंके सम्बन्ध होने पर भी न तो वह ज्ञानी उन्मत्त होता है और न खेदखिन्न होता है। स्वानुभवीके ज्ञानमें यह जगत नाटकतुल्य भासता है। वह ज्ञाता दृष्टा रहता है—उनमें स्वामित्व नहीं रखता है।

सवैया २३ सा—कै अपनो पद आप संभारत, कै गुरुके मुखकी सुनि बानी॥ भेदविज्ञान जग्यो जिन्हके, प्रगटी सुविवेक कला रजधानी॥ भाव अनंत भये प्रतिबिंबित, जीवन मोक्षदशा ठहरानी॥ ते नर दर्पण जो अविकार, रहे थिररूप सदा सुख दानी॥ २२॥

मालिनीछंद—त्यजतु जगदिदानीं मोहमाजन्मलीढं रसयतु रसिकानां रोचनं ज्ञानमुद्यत्। इह कथमपि नात्माऽनात्मना साकमेकः किल कलयति काले क्वापि तादात्म्यवृत्तिम् ॥२२॥

खंडान्वय सहित अर्थ–जगत मोहं त्यजतु–जगत् कहतां संसार जीव राशि, मोहं कहतां मिथ्यात्व परिणाम, त्यजतु कहतां सर्वथा छोड़हु, छोडिवाको अवसर किसौं, इदानीं कहतां तत्काल। भावार्थ–इसौ जो शरीरादि परद्रव्य सहु जीवकी एकत्व बुद्धि छती छे। सो सूक्ष्म काल मात्र कुनि आदर करिवा योग्य नहीं, किसौ छे मोह आजन्मलीढं–आजन्म कहतां अनादिकाल तहि, लीढं कहतां लाग्यौ छै। ज्ञानं रसयतु ज्ञान कहतां शुद्ध चैतन्य वस्तु, रसयतु कहतां स्वानुभव प्रत्यक्षपनै आस्वादहु। किसौ छे ज्ञान, रसिकानां रोचनं–रसिक कहतां शुद्ध स्वरूपका अनुभवशील छे जे सम्यग्दृष्टी जीव तिन कहु, रोचनं कहतां अत्यन्त सुखकारी छे। और किसौ छे ज्ञानु, उदयत् कहतां त्रिकाल ही प्रकाशरूप छे। कोई प्रश्न करै छे जो इसौ करतां कार्यसिद्धि किसी होइ। उत्तर कहिजै छे। इह किल एकः आत्मा अनात्मना साकं तादात्म्यवृत्ति क्वापि काले कथमपि न कलयति–इह कहतां मोहकौ त्यागु, ज्ञान वस्तुको अनुभव इसौ वारम्बार अभ्यास करतां, किल कहतां निःसंदेहपनै, एकः कहतां शुद्ध छे, आत्मा कहतां चेतनद्रव्य, अनात्मा कहतां द्रव्यकर्म भावकर्म नोकर्म जावंत विभाव परिणाम, साकं कहतां तिहि सैती छे जो, तादात्म्यवृत्ति कहतां जीवको कर्मकौ बंधरूप एक क्षेत्र सम्बन्ध, क्वापि कहतां कौन हूं अतीत अनागत वर्त्तमान सम्बन्धी, काले कहतां समय घड़ी पहर दिन वरस कथमपि कहतां किसी ही तरह, न कहतां नहीं, कलयति कहतां तिहिरूप ठहराइ। भावार्थ–इसौ जो जीव द्रव्य धातु पाषाण संयोगकी नांई पुद्गल कर्म स्यौ मिल्यौ ही चल्यौ आयो, मिलआथको मिथ्यात्व रागद्वेष रूप विभाव चेतन परिणाम इसौ परिणवतौ ही आयो, यौं परिणवतां इसो दशा निपजी जो जीवद्रव्यकौ निजस्वरूप छे, केवलज्ञान केवलदर्शन अतींद्रिय सुख केवल वीर्य सोतौ जीवद्रव्य आपणा स्वरूप तहि भ्रष्ट हुओ तथा मिथ्यात्वरूप विभाव परिणाम परिणमतौ होतौ ज्ञानपनौ फुनि छूट्यो, जो जीवको निज स्वरूप अनंत चतुष्टय छे, शरीर सुख दुःख मोह राग द्वेष इत्यादि समस्त पुद्गल कर्मकी उपाधि छे, जीवकौ स्वरूप नहीं इसी प्रतीति फुनि छूटी, प्रतीति छूटतां जीव मिथ्यादृष्टि हुओ, मिथ्यादृष्टि होतौं ज्ञानावरणादि कर्म्मबंध करण शील हुओ। तिहि कर्म्मबंधकौ उदय होतां जीव च्यार गति मांहै भमै छे। इसै प्रकारै संसारकी परिपाटी। इसा संसार मांहे भमतां कोई भव्य जीवको जब निकट संसार आनि रहै छे, तब जीव सम्यक्त ग्रहै छे। सम्यक्त ग्रहतां पुद्गलपिंडरूप मिथ्यात्वकर्मोंको उदय मिटै छे, तथा मिथ्यास्वरूप विभाव परिणाम मिटै छे। विभाव परिणामकै मिटतां शुद्ध स्वरुपकौ अनुभव होइ छे। इसी सामग्री मिलतां जीवद्रव्य, पुद्गलकर्मतहि तथा विभाव परिणाम तहि सर्वथा भिन्न होइ छे। जीवद्रव्य आपणा अनंतचतुष्टयकौ प्राप्त होइ छे। दृष्टांत इसौ जो जैसे सोनौ

धातु पाषाणमांहै ही मिल्यो आयौ छे तथापि आगिकौ संजोग पाया थै पाषाण तहिं सोनौ भिन्न होइ छे ॥ २२ ॥

भावार्थ–यहां यह बताया है कि ऐ जगतके प्राणियों! जिस मिथ्याबुद्धिसे तुमने पर द्रव्योंको अपना मानकर रागद्वेष करके कर्मका बन्धनकर संसारमें वारवार जन्ममरण करके घोर संकट उठाए हैं उस मोहमई भावको बिलकुल भी न रक्खो तुर्त निकाल दो और उस अपने आत्माके निर्मल ज्ञानमई स्वरूपका स्वाद लो जिसका स्वाद स्वयं अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय व साधुगण सदा लेते हुए परमानन्दका लाभ करते हैं। क्या तुम नहीं समझते कि दो द्रव्योंका मिश्रण संसार है, ये दोनों द्रव्य अपने अपने स्वभावसे बिलकुल भिन्न हैं। जीवका स्वभाव अन्य है अजीवका अन्य है इनमें कभी भी एकपना नहीं होसक्ता। जीवकी जाति शुद्ध ज्ञानानंद मई सिद्ध समान है। इसी स्वरूपका अनुभव आत्माको अपने कार्यका साधन करनेवाला है। ऐसा ही अनुभव करना योग्य है। जैसा–श्री देवसेनाचार्यने आराधनासारमें कहा है—

सुक्खमओ अहमेको सुद्धप्पाणाणदंसणसमग्गो अण्णे जे परभावा ते सव्वे कम्मणा जणिया ॥१०३॥

भावार्थ–मैं एक हूं, शुद्ध आत्मा हूं, आनन्दमई हूं, ज्ञानदर्शनसे परिपूर्ण हूं। अन्य जो रागादि भाव व अवस्थाएं हैं सो सर्व कर्म द्वारा पैदा होती हैं मेरा स्वरूप नहीं है।

सवैया २३ सा—याही वर्तमानसमें भव्यनको मिट्यो मोह, लग्यो है अनादिको पग्यो है कर्ममलसो। उंदै करे भेदज्ञान महा रुचिको निधान, ऊरको उजारो भारो न्यारो दुंद दलसो॥ जाते थिर रहे अनुभौ विलास गहे फिरि, कबहूं अपना यौ न कहे पुद्गलसो। यह करतूती यो जुदाइ करे जगतसो, पावक ज्यो भिन्न करे कंचन उपल सो ॥ २३ ॥

मालिनीछंद–अयि कथमपि मृत्वा तत्वकौतूहली सन्ननुभव भवमूर्त्तेः पार्श्ववर्ती मुहूर्त्तम्।
पृथगथ विलसंतं स्वं समालोक्य येन त्यजसि झगिति मूर्त्या साकमेकत्वमोहं ॥२३॥

खंडान्वय सहित अर्थ–अयि मूर्तेः पार्श्ववर्ती भव, अथ मुहूर्तेः प्रथग् अनुभव–अयि कहतां भो भव्यजीव, मूर्तेः कहतां शरीरतहिं, पार्श्ववर्ती कहतां भिन्न स्वरूप, भव कहतां होहु। भावार्थ–इसौ जो अनादिकालतहिं जीव द्रव्य एक संस्काररूप चल्यो आयौ। सो जीव इसौ कहि प्रतिबोधिजै छे, जो भो जीव, एता छे जे शरीरादि पर्याय ते समस्त पुद्गल कर्मका छै, थारा नहीं। तिहितैं एता पर्याय थैं आपनपो भिन्न जानि। अन्य कहतां भिन्न जानि करि, मुहूर्त्त कहतां थोरो ही काल, प्रथक् कहतां शरीरतहिं भिन्न चेतन द्रव्य, अनुभव कहतां प्रत्यक्षपनैं आस्वाद करहु। भावार्थ–इसौ जो शरीर तो अचेतन छे, विनश्वर छे, शरीरतहिं भिन्न कोई तौ पुरुष छे इसौ जानपनौ इसी प्रतीति मिथ्यादृष्टि जीवहंको फुनि होइ छे परि साध्यसिद्धि तौ कांई नहीं। जब जीवद्रव्यको द्रव्यगुण पर्याय स्वरूप प्रत्यक्ष

पनौं आस्वाद आवै तब सम्यग्दर्शन ज्ञानचारित्र छै, सकल कर्म क्षय लक्षण मोक्ष फुनि छै। किसो छै अनुभवशील जीव, तत्त्वकौतूहलीसन्–तत्त्व कहतां शुद्ध चैतन्य वस्तु, तिहिकौं, कौतूहली कहतां स्वरूप देख्यो चाहे छै, इसौ सन् कहतां होतौ संतो, अरु किसौ होय करि कथमपि मृत्वा–कथमपि कौन हूं प्रकार करि कौन हू उपाय करि, मृत्वा कहतां मरहू करि शुद्ध जीव स्वरूपकौ अनुभव करहु। भावार्थ–इसौ जो शुद्ध चैतन्यकौ अनुभव तौ सहज साध्य छै, जतन साध्य तौ नहीं छै। परि इतनौ कहतां अत्यंत उपादेयपनौ दिढ़ायौ। इहां कोई प्रश्न करै छै, जो अनुभव तौ ज्ञानमात्र छै, तिहि करि जो कछु कार्यसिद्धि छै सो फुनि उपदेश करि हूं कहिजै छै। येन मूर्त्या साकं एकत्वमोहं झगिति त्यजसि–येन कहतां जिहि शुद्ध चैतन्य अनुभवकरि, मूर्त्या कहतां जावत छै द्रव्यकर्म भावकर्म नोकर्म कर्मरूप पर्याय, साकं कहतां त्यहं सौ छे, एकत्वमोहं कहतां एक संस्कार रूप, अहं देव, अहं मनुष्य, अहं तिर्यंच, अहं नारक, इत्यादि, अहं सुखी, अहं दुःखी इत्यादि, अहं क्रोधी, अहं मानी इत्यादि, अहं यति, अहं गृहस्थ इत्यादि रूप छै प्रतीति इसौ छे। मोह कहतां विपरीतपनौ, तिहिंकौ, झगिति कहतां अनुभव होत मात्र, त्यजसि कहतां भो जीव! आपणी ही बुद्धि-करि तूंही छाड़िसे। भावार्थ–इसौ जो अनुभव ज्ञानमात्र वस्तु छै, एकत्व मोह मिथ्यात्व द्रव्यको विभाव परिणाम छे, तौ फुनि इनकहुं आपुसमाहैं कारण कार्यपनौ छे। तिहिकौ व्यौरौ–जिहिंकाल जीवकौ अनुभव होय छे, तिहिंकाल मिथ्यात्व परिणमन मिटै छै, सर्वथा अवश्य मिटै छे। जिहिंकाल मिथ्यात्व परिणमन मिटै छे, तिहिंकाल अवश्य अनुभवशक्ति होय छे। मिथ्यात्व परिणमन ज्यों मिटै छै त्यों कहिजे छे स्वं समालोक्य–स्वं कहतां आपणो शुद्ध चैतन्य वस्तुकहुं, समालोक्य कहतां स्वसंवेदन प्रत्यक्षपनै आस्वाद करि। किसौ छे शुद्ध चेतन, विलसंतं–कहतां अनादि निधन प्रगटपनै चेतनारूप परिणवै छै॥ २३॥

भावार्थ–यहां बताया गया है कि हरएक स्वहित वांछकको प्रमाद छोड़कर व हर प्रकारका पुरुषार्थ करके आत्मतत्वका रुचिवान होना चाहिये। आत्माके मननके लिये पठन व सुसंगति आदि उपायोंको करना चाहिये। दो घड़ी नित्य एकांतमें बैठकर भेदविज्ञानके बलसे सर्व आत्मासे भिन्न द्रव्य, गुणपर्यायोंसे व रागादि वैभाविक भावोंसे उदासी लाकर मात्र अपने ही आत्माके शुद्ध स्वभावमें तन्मय होकर स्वात्मानुभवका अभ्यास करना चाहिये। इसी अभ्याससे अनादिकालका मिथ्यात्वमई अज्ञान मिटेगा–शुद्ध सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति होगी। जो आत्मस्वतंत्रताके लिये रामबाण उपाय है। श्री देवसेनाचार्य आराधनासारमें कहते हैं–

तम्हा दंसण णाणं चारित्तं तह तवो य सो अप्पा। चइऊण रायदोसे आराहउ सुद्धमप्पाणं॥ १०॥

भावार्थ–सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र व तप ये चारों ही निश्चयसे आत्मारूप हैं। इसलिये सबसे रागद्वेष छोड़के शुद्ध आत्माकी ही आराधना करो।

सवैया ३१ सा—बनारसी कहे भैया भव्य सुनो मेरी सीख, केहूं भांति कैसेहूके ऐसा काज कीजिये। एकहू मुहूरत मिथ्यात्वको विध्वंस होइ, ज्ञानको जगाय अंस हंस खोज लीलिये॥ वाहीको विचार वाको ध्यान यह कौतूहल, योंही भर जनम परम रस पीजिये। तजि भववासको विलास सविकाररूप, अंत करि मोहको अनंतकाल जीजिये॥ २४॥

शार्दूलविक्रीड़ितछंद–कान्त्यैव स्नपयन्ति ये दशदिशो धाम्ना निरुन्धन्ति ये,
धामोद्दाममहस्विनां जनमनो मुष्णन्ति रूपेण ये।
दिव्येन ध्वनिना सुखं श्रवणयोः साक्षात्क्षरन्तोऽमृतम्,
वन्द्यास्तेऽष्टसहस्रलक्षणधरास्तीर्थेश्वराः सूरयः॥ २४॥

खंडान्वय सहित अर्थ–इहां कोई मिथ्यादृष्टि कुवादि मतांतर थापै छै जो जीव शरीर एक ही वस्तु छै। ज्यों जैन मानै छै जो शरीर तहि जीवद्रव्य भिन्न छै त्यों नहीं, एक ही छै, जातहि शरीरकौ स्तवन करता आत्माको स्तवन होइ छै, इसौ जैन फुनि मानै छै ते तीर्थेश्वराः वंद्याः–ते कहतां अवश्य छतां छै तीर्थेश्वराः कहतां तीर्थंकर देव, वंद्याः कहतां त्रिकाल नमस्कार करण जोग्य छै। किसा छै ते तीर्थंकर, ये कांत्या एव दश-दिशः स्नपयंति–ये कहतां तीर्थंकर, कांत्या कहतां शरीरकी दीप्ति, एव कहतां निहचासौं, दश कहतां पूर्व पश्चिम, उत्तर दक्षिण, चारि दिशा, चारि कोण रूप विदिशा, ऊर्द्ध अधः इसी छै, दिश कहतां दिशा, स्नपयंति कहतां परवालै छै अथवा पवित्र करै छै। इसा छै जे तीर्थंकर ताहकौं नमस्कारु छै। इसौ कह्यौ, सोतौ शरीरकौ वर्णन कीयो, तिहितै म्हांहै प्रतीति उपजी जो शरीर जीव एक ही छै। औरु किसौ छै तीर्थंकर ये धाम्ना उद्दाम महस्विनां धाम निरुंधंति–ये कहतां तीर्थंकर, धाम्ना कहतां शरीरके तेजकरि, उद्दाम कहतां उग्र छै महस्विनां कहतां तेजस्वी छै जे कोड़ि सूर्य्य तिहिकौ धाम कहतां प्रताप, निरुन्धंति कहतां रोकहि छै। भावार्थ–इसौ जो तीर्थंकरके शरीरै इसी दीप्ति छै, इसा जो कोटि सूर्य होता तौ कोटि ही सूर्यकी दीप्ति रुकती। इसा छै जे तीर्थंकर, इहां फुनि शरीर हीकी बड़ाई कही। औरु किसा छै तीर्थंकर ये रूपेण जनमनो मुष्णंति–ये कहतां तीर्थं-कर, रूपेण कहतां शरीरकी शोभाकरि जन कहतां सर्व जेता देव मनुष्य तिर्यंच तहंकौ मनः कहतां अंतरंग, मुष्णंति कहतां चोरी लै छै। भावार्थ–इसौ जो जीव तीर्थंकर शरीरकी शोभा देखिकरि जैसो सुख मानहि छै तैसो सुख त्रैलोक्यमांहे अन्य वस्तु देखतां नहीं मानै छै। इसा छै तीर्थंकर, इहां फुनि शरीरकी बड़ाई छै। औरु किसा छै तीर्थंकर। ये दिव्येन ध्वनिना श्रवणयोः साक्षात् सुखं अमृतं क्षरंतः–ये कहतां तीर्थंकरदेव, दिव्येन कहतां समस्त त्रैलोक्यमांहे उत्कृष्ट छै इसी जो, ध्वनिना कहतां निरक्षरी वाणी, तिहिं करि, श्रवणयोः कहतां सर्व जीवका छै जे कर्णेंद्रिय त्यहंकौ, साक्षात् कहतां तिहिकाल, सुखं अमृतं

कहतां सुखमई शांतरस, क्षरन्तः कहतां बरसे छे। भावार्थ-इसौ जो तीर्थंकरकी वाणी सुनतां सर्व जीवहंकों वाणी रुचे छे, बहुत जीव सुखी होइ छे, इसा छे तीर्थंकर, इहां फुनि शरीरकी बड़ाई छे। और किसा छे तीर्थंकर। अष्टसहस्रलक्षणधराः-अष्ट कहतां आठकरि अधिक, सहस्र कहतां एकहजार छे इतना छे, लक्षण कहतां शरीरकी चिन्ह त्यहकौं, धराः कहतां सहज ही छे ज्यहकी, इसा छे जे तीर्थंकर। भावार्थ-इसौ जो तीर्थंकरका शरीर संख, चक्र, गदा, पद्म, कमल, मगर, मच्छ, ध्वजा इत्यादि। इसी आकृति रेखा परे छे समस्त गण्या थकी एकहजार आठ आगला होइ छे। इहां फुनि शरीरकी बड़ाई छे। और किसा छे तीर्थंकर। सूरयः कहतां मोक्षमार्गकौं उपदेश करे छे, इहां फुनि शरीरकी बड़ाई छे। तिहितें जीव शरीर एक ही छे। म्हांहे जो इसी प्रतीति छे। कोई मिथ्या मत इसौ माने छे। तिण प्रति उत्तर इसौ आगे कहिसी। ग्रंथको कर्त्ता जो वचन व्यवहार मात्र जीव शरीर एकपनौ कहिजे छे। तिहितें इसौ कह्यो जो शरीरको स्तोत्र सो तो व्यवहार मात्र जीवकों स्तोत्र छे। द्रव्यदृष्टि देखतां जीव शरीर भिन्न भिन्न छे। तिहितें जिसौ कह्यो स्तोत्र सो निर्ने नाम झूठा छे। जो शरीरका गुण कहतां जीवकी स्तुति नहीं होई छे। जीवकौ ज्ञान-गुण स्तुति करतां स्तुति होय छे। कोई प्रश्न करे छे ज्यौं नगरका स्वामी राजा छे तिहितें नगरस्तुति करतां राजाकी स्तुति होय छे त्योंही शरीरको स्वामी जीव छे, तिहितें शरीरकी स्तुति करतां जीवकी स्तुति होय छे। उत्तर इसौ यो स्तुति नहीं होय छे। राजाका निज-गुणकी स्तुति करतां राजाकी स्तुति होय छे त्योंही जीवकी निज चैतन्य गुण स्तुति करतां जीवकी स्तुति होय छे इसी कहिजे छे॥ २४॥

भावार्थ-यहां यह बताया है कि तीर्थंकर भगवानके शरीर व बाहरी प्रभावका वर्णन तीर्थंकर भगवानके आत्माका वर्णन नहीं है इसलिये ऐसी स्तुति व्यवहार स्तुति है, निश्चय स्तुति नहीं है। यद्यपि ऐसी स्तुति करनेवालेका प्रयोजन तीर्थंकर भगवानकी ही प्रशंसा करना है परंतु इसमें लक्ष्य आत्माके शुद्ध गुणोंपर नहीं रहता इससे यह व्यवहार स्तुति है।

सवैया ३१ सा—जाके देह द्युतिसों दसो दिशा पवित्र भई, जाके तेज आगे सब तेजवंत रुके हैं॥ जाको रूप निरखि थकित महा रूपवंत, जाके वपु वाससों सुवास और लुके हैं॥ जाकी दिव्यधुनि सुनि श्रवणको सुख होत, जाके तन लच्छन अनेक आय ढुके हैं॥ तेई जिनराज जाके कहे विवहार गुण, निश्चय निरखि शुद्ध चेतनासों चुके हैं॥ २५॥

आर्या-प्राकारकवलिताम्बरमुपवनराजीनिगीर्णभूमितलं।
पिबतीव हि नगरमिदं परिखावलयेन पातालं॥२५॥

खंडान्वय सहित अर्थ-इदं नगरं परिखावलयेन पातालं पिबति इव-इदं कहतां प्रत्यक्ष छे, नगर कहतां राजग्राम, परिखा कहतां खाई, वलयेन कहतां नगर पासे वेढ़

तिहिकरि, पातालं कहतां अधोलोक, पिबति कहतां पीवै छे। इव कहतां इसी ऊंडी खाई छे। किसौ छे नगर। प्राकारकवलिताम्बरं-प्राकार कहतां कोट, तिहिंकरि कवलित कहतां निगिल्यो छे, अंबर कहतां आकाश जिहिं इसौ नगर छे। भावार्थ-इसौ जो कोट अति ही ऊंचो छे। और किसौ छे नगर। उपवनराजीनिगीर्णभूमितलं-उपवन कहतां नगर समीप बाग, तिहिकी राजी कहतां नगरके चहुंदिशि बाग, निगीर्ण कहतां तिहिकरि रुंध्यौ छे, भूमितलं कहतां समस्त भुइ जहां इसौ छे नगर। भावार्थ-इसौ जो नगरके बारै घनाबाग छे। इसी नगरकी स्तुति करतां राजाकी स्तुति नहीं होय छे। इहां खाई कोट बागकौ वर्णन कीयौ। सो तौ राजाकौ गुण नहीं। राजाकौ गुण छै दान पौरूष जानपनौ त्यहंकी स्तुति करतां राजाकी स्तुति होय छै।

भावार्थ-इस श्लोकसे दृष्टांत दिया है कि यद्यपि नगरकी प्रशंसासे व्यवहारसे राजाकी प्रशंसा होती है तथापि निश्चयसे नहीं होती है; क्योंकि राजाके गुण राजाके ही पास हैं वे उसके बाहर नहीं मिल सक्ते।

सवैया ३१ सा-ऊंचे ऊंचे गढके कांगुरे यों विराजत हैं, मानो नभ लोक गीलिवेको दांत दियो है॥ सोहे चहुंओर उपवनकी सघनताई, घेरा करि मानो भूमि लोक घेरि लियो है॥ गहरी गंभीर खाई ताकी उपमा बताई, नीचो करि आनन पाताल जल पियो है॥ ऐसा है नगर यामें नृपको न अंग कोउ, योंही चिदानंदसों शरीर भिन्न कियो है॥ २६॥

आर्या-नित्यमविकारसुस्थितसर्वांगमपूर्वसहजलावण्यं।

अक्षोभमिव समुद्रं जिनेन्द्ररूपं परं जयति॥ २६॥

खंडान्वय सहित अर्थ-जिनेन्द्ररूपं जयति-जिनेन्द्र कहतां तीर्थंकर तिहिंको रूप कहतां शरीरकी शोभा, जयति कहतां जयवंत होउ, किसौ छे, नित्यं-कहतां आयुपर्यंत एक रूप छे, और किसौ छे। अविकारसुस्थितसर्वांगं-अविकार कहतां नहीं छै विकार बालपनौ तरुणपनौ बूढ़ापणौ जिहिंकै। तिहिंकरि सुस्थित कहतां समाधान छे सर्वांग कहतां सर्व प्रदेश जिहिका इसा छै। और किसौ छे जिनेन्द्ररूप, अपूर्वसहजलावण्यं-अपूर्व कहतां आश्चर्यकारी छै, सहज कहतां विनाही यतन किया शरीरसौ मिल्या छे लावण्य कहतां शरीरका गुण जिहिका इसौ छै। और किसौ छै, समुद्रमिव अक्षोभं-समुद्रमिव कहतां समुद्रकी नाईं, अक्षोभं कहतां निश्चल छै। भावार्थ-इसौ जो यथा वायु तहिं रहित समुद्र निश्चल छै तथा तीर्थंकरको शरीर निश्चल छै। इसौ प्रकार शरीरकी स्तुति करतां आत्माकी स्तुति नहीं होय छै। जिहितहिं शरीरका गुण आत्माविषै नहीं। आत्माको ज्ञान गुण छै। ज्ञान गुणकी स्तुति करतां आत्माकी स्तुति होय छै।

भावार्थ—यहां भी तीर्थंकरकी शरीरकी महिमा बताकर यह दिखाया है कि यह निश्चय स्तुति नहीं है।

सवैया ३१ सा—जामें बालपनो तरुनापो वृद्धपनो नाहि, आयु परजंत महारूप महाबल है ॥ बिनाही यतन जाके तनमें अनेकगुण, अतिसै विराजमान काया निरमल है ॥ जैसे विन पवन समुद्र अविचलरूप, तैसे जाको मन अरु आसन अचल है ॥ ऐसे जिनराज जयवंत होउ जगतमें, जाके सुभगति महा मुकतिको फल है ॥ २७ ॥

दोहा—जिनपद नांहि शरीरको, जिनपद चेतनमांहि ।
जिनवर्णन कछु और है, यह जिनवर्णन नांहि ॥ २८ ॥

शार्दूलविक्रीडितछंद—एकत्वं व्यवहारतो न तु पुनः कायात्मनो निश्चया-
न्नुः स्तोत्रं व्यवहारतोऽस्ति वपुषः स्तुत्या न तत्तत्त्वतः ।
स्तोत्रं निश्चयतश्चितो भवति चित्स्तुत्यैव सैवं भवे-
न्नातस्तीर्थकरस्तवोत्तरबलादेकत्वमात्माङ्गयोः ॥ २७ ॥

खंडान्वय सहित अर्थ—अतस्तीर्थंकरस्तवोत्तरबलात् आत्मांगयोः एकत्वं न भवेत्—अतः कहतां इहिकारणतहिं, तीर्थंकर कहतां परमेश्वर, तिहिको स्तव कहतां शरीरकी स्तुति करतां आत्माकी स्तुति इसौ कहै यौ मिथ्यामति जीव तिहिको उत्तर कहतां शरीरकी स्तुति करतां आत्माकी स्तुति नहीं। आत्माका ज्ञानगुणकी स्तुति करतां आत्माकी स्तुति छै। इसौ उत्तर तिहिंको बल कहतां गयौ छै संदेह तिहिथकी, आत्मा कहतां चेतन वस्तु। अंग कहतां जावंत कर्मकी उपाधि, त्यंहकौ एकत्वं कहतां एक द्रव्यपनौ न कहतां नहीं, भवेत् कहतांहोय छे। आत्माकी स्तुति ज्यों होय छे त्यों कहिजै छै। सा एवं—सा कहतां जीवस्तुति, एवं कहतां ज्यों मिथ्यादृष्टी कहै थो त्यों नहीं। ज्यों अब कहिजे छे त्योंही छै। कायात्मनोः व्यवहारतः एकत्वं तु न निश्चयात्—काय कहतां शरीरादि, आत्मा कहतां चेतन द्रव्य त्यहं दुवै कहु, व्यवहारतः कहतां कथन मात्र करि, एकत्वं कहतां एकपनौ छै। भावार्थ—इसौ यथा सुवर्ण रूपौ दोऊं ओटिकरि एक रैणी कीजै छै। सो कहतां तौ सगलो सुवर्ण ही कहिजै छै। तथा जीव कर्म अनादितहिं एक क्षेत्र संबंधरूप मिल्या आया छै तिहितहिं कहतां जो जीव ही कहिजे छै, तु कहतां दूजै पक्ष, न कहतां जीवकर्म एकपनौं नहीं। सौ किसौ पक्ष, निश्चयात् कहतां द्रव्यका निज स्वरूपकौं विचारतां। भावार्थ—इसौ यथा सुवर्णरूपौ यद्यपि एक क्षेत्र मिल्या छै, एक पिंडरूप छै। तथापि सुवर्ण पीरौ, भारौ, चिकणौ इसा आपणा गुण लियो छे। रूपौ फुनि आपनौं श्वेतगुण लीयां छै। तिहितैं एकपनौ कहिवौ झूठौ छे तथापि जीवकर्म यद्यपि अनादितहिं एक बंध पर्यायरूप मिल्या आया छै एक पिंडरूप छे तथापि जीवद्रव्य आपणा गुण ज्ञान विराजमान छै। कर्म फुनि पुद्गल

द्रव्य आपणा अचेतन गुण लीया छै। तिहितहिं एकपनो कहिवौ झूठौ छे। तिहितै स्तुति होतां भेद छै। व्यवहारतः वपुषः स्तुत्यानुः स्तोत्रं अस्ति न तत् तत्त्वतः—व्यवहारतः कहतां बंध पर्याय रूप एक क्षेत्रावगाह दृष्टि देखतां, वपुषः कहतां शरीरकी, स्तुत्या कहतां स्तुति करि, नुः कहतां जीवकी, स्तोत्रं कहतां स्तुति, अस्ति कहतां होय छे, न कहतां दूजे पक्ष नहीं होय छे, तत् कहतां स्तोत्र किसातहिं नहीं होय छे। तत्वतः कहतां शुद्ध जीव-द्रव्य स्वरूप विचारतां। भावार्थ–इसौ यथा श्वेत सुवर्ण इसौ यद्यपि कहिवावालौ छे तथापि श्वेत गुणरूपकौ छै। तिहितै सुवर्ण श्वेत इसौ कहिवौ झूठौ छै। तथा "वे रत्ता वे सांवलां वे नीलुप्पलवन्न। मरगजवन्ना दोवि जिन, सोलह कंचन वन्न। भावार्थ—दो तीर्थंकर रक्त-वर्ण दो कृष्ण, दो नील दो पन्ना व १६ सुवर्णरंग हैं। यद्यपि इसौ कहिवाकौ छे। तथापि श्वेत रक्त पीतादि पुद्गल द्रव्यकौ गुण छै जीवकौ गुण न छे। तिहितै श्वेत रक्त पीत कहतां जीव नहीं, ज्ञानगुण कहतां जीव छे। कोई प्रश्न करे छे–शरीरकी स्तुति करतां तो जीवकी स्तुति क्यों होय छे, उत्तरु इसौ चिद्रूप कहतां होय छे। निश्चयतः चित्स्तुत्या एवं चितः स्तोत्रं भवति–निश्चयतः कहतां शुद्ध जीव द्रव्यरूप विचारतां, चित् कहतां शुद्ध ज्ञानादि तिहिंकी स्तुति कहतां वारंवार वर्णन स्मरण अभ्यास तिहिं करतां, एव कहतां निःसंदेह, चितः कहतां जीव द्रव्यकी, स्तोत्रं कहतां स्तुति, भवति कहतां होय छे। भावार्थ–इसौ यथा पीरौ भारौ चीकणौ सुवर्ण इसौ कहतां सुवर्णकी स्वरूप स्तुति छै। तथा केवली किसा छै–इसा छे जहां प्रथमहीं शुद्ध जीव स्वरूपकी अनुभव कहतां इंद्रिय विषय कषाय जीत्या छे पीछे मूलतिहिं क्षिपाया छे। सकल कर्म क्षय कहतां केवलज्ञान, केवलदर्शन, केवल वीर्य, केवल सुख विराजमान छता छै, इसौ कहतां जानतां अनुभवतां केवलीकी गुणस्वरूप स्तुति होय छै, तिहितै इसौं अर्थ ठहरायौ जो जीवकर्म एक नहीं भिन्न २ छे। ब्योरो–जीवकर्म एक होता तौ इतनी स्तुति भेद किसा है होतौ।

भावार्थ–यहां यह बताया है कि यदि कोई यह सुनकर जैसा कि टीकाकारने वेरत्ता आदि गाथामें कहा है कि २४ तीर्थंकरोंमेंसे दो रक्तवर्ण दो कृष्णवर्ण दो नीलवर्ण व दो हरित पन्नेके रंग व १६ सुवर्ण रंग थे, ऐसा मानने लगे कि शरीर ही आत्मा है आत्मा कोई भिन्न पदार्थ नहीं है उसके लिये यह बताया है कि शरीरकी स्तुति व्यवहारस्तुति है। व्यवहारमें एक वस्तुको दूसरे रूप कह दिया जाता है जैसे घीका घड़ा, सोनेकी तलवार। ऐसा कहनेसे मट्टीका घड़ा न घीका बना होसक्ता है न लोहेकी तलवार सोनेकी बनी होसकी है परंतु घड़ेमें घीका सम्बन्ध होनेसे घीका घड़ा व तलवारमें सोनेकी म्यानका सम्बन्ध होनेसे सोनेकी तलवार ऐसा लौकिक जनोंका कहना है। इसीतरह तीर्थंकरोंकी प्रशं-सामें उनके शरीरोंका व बाहरी विभूतिका वर्णन भी मात्र लौकिक व्यवहार है। तीर्थंकरकी

आत्माके साथ उनका सम्बन्ध होनेसे वे भी उसी तरह आदरणीय होजाते हैं। जैसे राजाके बैठनेसे राज्य सिंहासन, मुनिके तप करनेसे तपोभूमि। परन्तु इस स्तुतिसे तीर्थंकरोंकी आत्माकी प्रशंसा नहीं समझनी चाहिये। निश्चय व सच्ची स्तुति तब ही होगी जब यह वर्णन किया जायगा कि तीर्थंकर वीतराग, सर्वज्ञ, व अनन्त सुखी व अनन्त वीर्यवान हैं। आत्मा व शरीरका बिलकुल प्रथकपना है। आत्मा बिलकुल शुद्ध परम वीतराग ज्ञान वर्न, अखण्ड व अविनाशी है। शरीर जड़, नाशवंत, पुद्गल परमाणुओंके समुदायसे रचा है। वास्तवमें शुद्ध आत्मा ही तीर्थंकर भगवान हैं। जितने जीव हैं सब स्वभावसे शुद्ध हैं ऐसा ही योगेन्द्राचार्यने श्री परमात्मप्रकाशमें कहा है:—

जीवा सयलवि णाणमय जम्मणमरणविमुक्क जीवपएसहिं सयल सम, सयलवि सगुणहिं एक्क॥ २४॥

भावार्थ—सबही जीव ज्ञानमई हैं, जन्म मरणसे रहित हैं—प्रदेशोंमें भी सब बराबर हैं व अपने सर्व गुणोंकी अपेक्षा भी सब एकरूप हैं।

सवैया ३१ सा—जामें लोकालोकके स्वभाव प्रतिभासे सब, जगी ज्ञान शकति विमल जैसी आरसी॥ दर्शन उद्योत लियो अंतराय अंत कियो, गयो महा मोह भयो परम महा ऋषी॥ सन्यासी सहज जोगी जोगसूं उदासी जामें, प्रकृति पच्यासी लगरही जरि छारसी॥ सोहै घट मंदिरमें चेतन प्रगटरूप ऐसो जिनराज ताहि वंदत बनारसी॥ २९॥

कवित्त—तनु चेतन व्यवहार एकसे, निहचै भिन्न भिन्न है दोई॥ तनुकी स्तुति विवहार जीवस्तुति, नियतदृष्टि मिथ्या थुति सोइ॥ जिन सो जीव जीव सो जिनवर, तनुजिन एक न माने कोइ॥ ता कारण तिनकी जो स्तुति, सो जिनवरकी स्तुति नाहीं होइ॥ ३०॥

मालिनीछंद-इति परिचिततत्त्वैरात्मकायैकतायां नयविभजनयुक्त्यात्यन्तमुच्छादितायाम्।
अवतरति न बोधो बोधमेवाद्य कस्य स्वरसरभसकृष्टः प्रस्फुरन्नेक एव॥२८॥

खंडान्वय सहित अर्थ-इति कस्य बोधः बोधं अद्य न अवतरति-इति कहतां इसे प्रकार भेद करि समझाए संते, कस्य कहतां त्रैलोक्य मांहि इसौ कौनु जीव छे जिहिंकौं, बोधः कहतां ज्ञानशक्ति, बोधं कहतां स्वस्वरूपकहुं प्रत्यक्षपनें अनुभवशील, अद्य कहतां आजताईं फुन, न कहतां नहीं, अवतरति कहतां परिणमनशील होय। भावार्थ-इसौ जो जीवकर्मकौ भिन्नपनौं अति ही प्रगट करि दिखायो इसौ सुनतां जिहिं जीव कहुं ज्ञान उपजे नहीं, तिहिकौ ओलंहनौ। कसति, किसे प्रकार भेदकरि समझाए संते। सोई भेद प्रकार दिखाइजे छै। आत्मकायैकतायां परिचिततत्त्वैः नयविभजनयुक्त्या अत्यंत उच्छादितायां—आत्मा कहतां चेतन द्रव्य, काय कहतां कर्मपिंड तिहिंकी, एकता कहतां एकत्वपनौं। भावार्थ—इसौ जो जीवकर्म अनादि बंध पर्यायरूप एक पिंड छे, परिचिततत्त्वैः कहतां सर्वज्ञैः, ब्यौरो-परिचित कहतां प्रत्यक्षपनें जान्या छे, तत्त्व कहतां जीवादि सकल

१-मागरछितपनो।

द्रव्य त्यहका गुण पर्याय; उक्ताते कहिनै परिचित तत्व, नय कहतां द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक पक्षपात, तिहिकौ विभजन कहतां विभाग भेद निरूपन, युक्त्या कहतां भिन्न स्वरूप वस्तुकौ साधिवौ, तिहिकरि, अत्यन्त कहतां अति ही निःसंदेहपनै; उच्छादितायां कहतां यथा ढांकी निधि प्रगट कीजै तथा जीवद्रव्य छतो ही छे परिकर्म संयोग करि ढांक्याकौं मरण उपजै थो सो भ्रांति परम गुरुश्री तीर्थंकरकौ उपदेश सुनतां मिटै छे, कर्मसंयोग तहिं भिन्न शुद्ध जीव स्वरूपकौ अनुभव होय छै, इसौ अनुभव सम्यक्त्त छे। किसौ छे बोध, स्वरस रभसकृष्टः-स्वरस कहतां ज्ञान स्वभाव तिहिको रभस कहतां उत्कर्ष अति ही समर्थपनौ तिहिकरि कृष्ट कहतां पूज्य छे, औरु किसौ छे, प्रस्फुटन् कहतां प्रगटपनै छे, औरु किसौ छे, एक एव-एक कहतां चैतन्यरूप, एव कहतां निहचाइसौ छे।

भावार्थ-यहां बताया है कि सर्वज्ञ भगवानने व उनके द्वारा परम गुरुओंने जब द्रव्यार्थिक नय व पर्यायार्थिक नयसे आत्माका व अनात्माका भिन्न २ स्वरूप बता दिया तब कौन ऐसा मूर्ख है जिसके हृदयमें भेदज्ञान न पैदा होवे और स्वानुभवकी प्राप्ति न होजावे? जैसे किसीके घरमें निधि गड़ी थी उसको पता न था, किसी जानकारने दया करके उसको पता बता दिया तब वह क्यों नहीं खोदकर अपनी निधिको देखेगा व पाकर प्रसन्न होगा? इसी तरह श्री गुरुके द्वारा समझाए जानेपर अवश्य आत्माका सच्चा स्वरूप हृदयमें झलक जायगा तब यह स्पष्ट रूपसे अनुभव होगा कि मैं एक शुद्ध परमज्ञान ज्योतिमय अविनाशी आत्मद्रव्य हूं जैसा श्री देवसेनाचार्य आराधनासारमें कहते हैं—

णिच्चो सुक्खसहावो जरमरणविवज्जिओ सयारूवी णाणी जम्मण रहिओ इक्कोहं केवलो सुद्धो॥ १०४॥

भावार्थ-मैं अविनाशी, सुख स्वभाव मई, जन्म जरा मरण रहित, सदा ही अमूर्तिक ज्ञान स्वरूप असहाय, एक शुद्ध पदार्थ हूं।

सवैया २३ सा—ज्यों चिरकाल गड़ी वसुधा महि, भूरि महानिधि अंतर गूठी॥ कोउ उखारि धरे महि ऊपरि, जे दृगवंत तिने सब झूठी॥ त्यों यह आतमकी अनुभूति, पड़ी जड़भाव अनादि अरूझी॥ नै जुगतागम साधि कही गुरु, लछन वेदि विचक्षण बूझी॥ ३१॥

मालिनीछंद-अवतरति न यावद्वृत्तिमत्यन्तवेगादनवमपरभावत्यागदृष्टान्तदृष्टिः।
झटिति सकलभावैरन्यदीयैर्विमुक्ता स्वयमियमनुभूतिस्तावदाविर्बभूव॥२९॥

खंडान्वय सहित अर्थ-इयं अनुभूतिः तावत् झटिति स्वयं आविर्बभूव-इयं कहतां विद्यमान छे, अनुभूतिः कहतां शुद्ध चैतन्य वस्तुकौ प्रत्यक्षपनै जानपनौ, तावत् कहतां तितनै काल तांई, झटिति कहतां तेही समय; स्वयं कहतां सहज ही आपनैं ही परिणमन रूप, आविर्बभूव कहतां प्रगट हुई। किसी छे अनुभूति, अन्यदीयैः सकलभावैः विमुक्ता-अन्य कहतां शुद्ध चैतन्यस्वरूप तहिं भिन्न छे। ये द्रव्यकर्म, भावकर्म नोकर्म तिहिं

सम्बन्धी छे। जावंत सकलभावैः, सकल कहतां जावंत छे गुणस्थान मार्गणास्थान रूप राग द्वेष मोह इत्यादि अति बहुत विकल्प छे, इसा जे भाव कहतां विभाव रूप परिणाम तिहिं करि विमुक्त कहतां सर्वथा रहित छे। भावार्थ–इसौ जो जावंत छे विभाव परिणाम विकल्प अथवा मन वचन उपचार करि द्रव्यगुण पर्याय भेद, उत्पाद व्यय ध्रौव्यभेद तिहिं विकल्प तिहि रहित शुद्ध चेतना मात्रको आस्वाद रूप ज्ञान तिहिको नाम अनुभव कहिजै छे। सो अनुभव ज्यों होय छै त्यों कहिजै छे। यावत् अपरभावत्यागदृष्टांतदृष्टिः अत्यंत-वेगात् अनवदृत्तिं न अवतरति। यावत् कहतां जेतैकाल जिहिंकाल, अपरं कहतां शुद्ध चैतन्य मात्र तिहिं भिन्न छै जे समस्त भाव कहतां द्रव्यकर्म भावकर्म नौकर्म तिहिंकौ त्याग कहतां समस्त झूठा छे, जीवको स्वरूप नहीं छै, इसौ प्रत्यक्षपनै आस्वादरूप ज्ञान तिहिको दृष्टांत कहतां कोई पुरुष धोबीका घर तिहिं आपणा वस्त्रके धोखै परायो वस्त्र आयौ त्योंही विना न्योंव कीया पहिर करि अपनौ जाण्यौ, पछे जो कोई यो वस्त्रको धणी तेहनै अंचुलि पकड़ करि इसौ कह्यौ जो यह तो वस्त्र म्हारो छै और कह्यो म्हारो ही छे। इसौ सुनतां तेनै चीन्हा, देख्या, जानौ, म्हारो तो चीन्हा मिल्या नहीं। तिहितैं निहचासायौ वस्त्र म्हारौ तो नहीं परायौ छै, इसी प्रतीति होतां त्याग हुओ घटै छै। वस्त्र पहरा ही छै तथापि त्याग घटै छे। जिहितै स्वागित्वपनो छुट्यो। तथा अनादिकाल तहिं जीव मिथ्यादृष्टी छे तिहितैं कर्म्म संजोग जनित छै। जे शरीर दुःख सुख रागद्वेषादि विभाव पर्याय त्या हैं अपुनौही करि जानै छे और तेही रूप प्रवर्तें छे। हेय उपादेय नहीं जानै छे। इसौ प्रकार अनंतकाल भमतां थोरो संसार आनि रहै और परम गुरुको उपदेश पावै। उपदेश इसौ जो भो जीव एता छै जे शरीर सुख दुःख राग द्वेष मोह ज्यह कौं तू अपनौ करि जानै छे और रत हुओ छे ते तौ सगला ही थारा नहीं। अनादि कर्मसंयोगकी उपाधि छे, इसी वारवार सुनतां जीव वस्तुकौ विचारु उपज्यो, जो जीवको लक्षण तो शुद्ध चिद्रूप छे, तिहितें इतनी उपाधि तौ जीवकी नहीं। कर्म संयोगकी उपाधि छै। इसौ निहचौ जिहिं काल आयौ तिहिं काल सकल विभावभावकौ त्याग छे: शरीर सुख दुःख ज्योंही था त्यौंही छे परिणामहं करि त्याग छे। जिहिं स्वामित्वपने छूट्यो, इहिको नाम अनुभव छे, इहिंको नाम सम्यक्त छे। इसा दृष्टांतकी नाई उपजी छे, दृष्टि कहतां शुद्ध चिद्रूपकौं अनुभव जिहिंको इसौ छै कोई जीव अनवं कहतां अनादिकाल तहिं चली आई छे, वृत्तिं कहतां कर्मपर्याय सौ एकत्वपनो संस्कारु, न कहतां नहीं अवतरति कहतां तद्रूप परिणवै छे। भावार्थ इसौ जो कोई जानिसै जेता छे शरीर सुखदुःख रागद्वेष मोह त्यहंकी त्यागबुद्धि किछु अन्य छे, कारणरूप छैं, शुद्ध चिद्रूपमात्रको अनुभव किछु अन्य छे, कार्यरूप छे। तीहं प्रति उत्तरु इसौ जो रागद्वेष मोह शरीर सुख दुःखादि

विभाव पर्यायरूप परिणवे थो जीव, जैंही काल इसौ अशुद्ध परिणमन संस्कार छूटयो तेंही काल इहिंको अनुभव छे। तिहिको व्योरो–जो शुद्धचेतना मात्रको आस्वाद आया पाछै अशुद्ध भाव परिणाम छुटे नहीं। औरु अशुद्ध संस्कार छुटयो पाछे शुद्ध स्वरूपको अनुभव होय नहीं। तिहि तें जो क्यों छे सो एक ही काल, एक ही वस्तु एक ही ज्ञान, एक ही स्वादु छे, आगे जिहकौं शुद्ध अनुभव छे सो जीव जिसौ छे तिसौही कहिजे छे ॥२९॥

भावार्थ–यहां यह झलकाया है कि जिस समय शुद्ध आत्मस्वरूपसे भिन्न रागादि भावोंको, द्रव्यकर्मोको व शरीरादिको पहचाना जाता है उसी समय अपने स्वरूपका सच्चा सच्चा श्रद्धान ज्ञान व अनुभव होजाता है। जैसे अंधकारके अभाव व प्रकाशके सद्भावका एक समय है, वैसे अज्ञान व मिथ्यात्वके हटनेका व सच्चे ज्ञान व सम्यक्त भावके उपजनेका एक ही समय है। यद्यपि परसे एकत्वकी बुद्धि अनादिकालसे चली आरही है परंतु एक दफे भी अपने असल स्वभावकी पहचान हुई कि वह झट मिट जाती है। जैसे अंधेकी आंख खुल जाती है वैसे उसकी भेद ज्ञानकी आंख खुल जाती है। यह अपना जीव अभी कर्मोंके मध्य व शरीरके मध्य व कर्मजनित अवस्थाओंके मध्य बैठा है तौभी ज्ञान चक्षुद्वारा यह अपना जीव बिलकुल भिन्न शुद्ध चैतन्यमात्र झलक जाता है–स्वात्मानुभव होजाता है तब ही परका स्वामित्व मिट जाता है। अपने स्वरूप रूपी धनका स्वामीपना दृढ़ होजाता है। उस समय यह दिव्यज्ञान पैदा होजाता है जैसा श्री आराधनासारमें कहा है–

ण य अत्थि कोवि वाहीण य मरणं अत्थि मे विसुद्धस्स। वाही मरणं काए तम्हा दुःखं ण मे अत्थि ॥१०२॥

भावार्थ–मैं शुद्ध स्वरूप सदा रहनेवाला हूं न मुझे कोई रोग होता है न मेरा मरण होता है, यह रोग व मरण तो शरीरमें है इसलिये मुझे कोई दुःख नहीं है, मैं सदा आनन्दमई हूं।

सवैया ३१ सा—जैसे कोऊ जन गयो धोबीके सदन तिनि, पहरयो परायो वस्त्र मेरो मानिरह्यो है। धनी देखि कह्यो भैय्या यह तो हमारो वस्त्र, चीन्हो पहचानत ही त्यागभाव लह्यो है॥ तैसें ही अनादि पुदगल सों संजोगी जीव, संगके ममत्व सों विभाव तामें वह्यो है। भेद ज्ञान भयो जब आपो पर जायो तब, न्यारो परभावसों सुभाव निज गह्यो है॥

त्रोटकछंद–सर्वतः स्वरसनिर्भरभावं चेतये स्वयमहं स्वमिहैकं।
नास्ति नास्ति मम कश्चन मोहः शुद्धचिद्घनमहोनिधिरस्मि ॥ ३० ॥

खंडान्वयसहित अर्थ–इह अहं एकं च स्वयं चेतये–इह कहतां विभाव परिणाम छूट्या छे, अहं कहतां हौं छौं जो अनादि निधन चिद्रूप वस्तु, एकं कहतां समस्त भेद बुद्धि तिहि रहित शुद्ध वस्तु मात्र इसौ छे, स्वं कहतां शुद्ध चिद्रूप मात्र वस्तु तिहैं, स्वयं कहतां परोपदेश पाये हीं आपुनवे स्वसंवेदन प्रत्यक्ष रूप, चेतये कहतां हम हैं, फुनि इसौ स्वादु

आवे छे। किसो छे शुद्ध चिद्रूप वस्तु। सर्वतः स्वरसनिर्भरभावं—सर्वतः कहतां असंख्यात प्रदेशनि विषें, स्वरस कहतां चैतन्यपनौं, तिहिंकरि निर्भर कहतां संपूर्ण छै, भाव कहतां सर्वस्व जिहिको इसो छे। भावार्थ—इसो जो कोई जानिसै जैनसिद्धांतको वारंवार अभ्यास करतां दृढ़ प्रतीति होय छै तिहेको नाम अनुभव छै, सो योंतो नहीं—मिथ्यात्व कर्मको रस पाक मिटतां मिथ्यात्व भावरूप परिणमन मिटे छै तब वस्तुस्वरूपको प्रत्यक्षपनैं आस्वाद आवे छे तिहिको नाम अनुभव छे। और अनुभवशील जीव ज्यों अनुभवै छे त्यों कहिजे छै। मम कश्चन मोहो नास्ति नास्ति—मम कहतां म्हारे, कश्चन कहतां द्रव्यपिंडरूप अथवा जीव सम्बन्धी भाव परिणमनरूप, मोह कहतां जावंत विभावरूप अशुद्ध परिणाम, नास्ति नास्ति कहतां सर्वथा नाहीं नाहीं—इसो तो जिसो छै तिसो कहिजे छे। शुद्ध नांहीं, चिद्घनमहोनिधिरस्मि—शुद्ध कहतां समस्त विकल्प तहिं रहित इसो, चित् कहतां चेतनपनो तिहिकों, घन कहतां समूह इसो छै मह कहतां उद्योत तिहिकी निधि कहतां समुद्र, अस्मि कहतां इसो हौं छो। भावार्थ—इसौं जो कोई जानिसें सर्वहीको नास्तिपनौं होय छै। तिहिंते इसौ कह्यो जो शुद्ध चिद्रूप मात्र वस्तु छतो छै॥

भावार्थ—इसका भाव यह है कि भेदज्ञानी जब आत्माका अनुभव करता है तब उसके भीतर शुद्ध आत्मीक स्वरूपका स्वाद ही आता है। उसको यह झलकता है कि न मोहनीय कर्म न रागादि मोहभाव अन्य विकल्प मेरा स्वभाव है, मैं तो ज्ञानानन्द मय एक अखंड पदार्थ शांतरससे परिपूर्ण हूं। इसी दशाका वर्णन आराधनासारमें है—

सुण्णज्झाणपइट्ठो जोई ससहावसुक्खसंपण्णो। परमाणंदे थक्को भरियावत्थो फुडं हवइ॥ ७७॥

भावार्थ—जो योगी शून्य निर्विकल्प ध्यानमें प्रवेश करता है अर्थात् स्वानुभव करता है वह अपने आत्मीक स्वभावसे उत्पन्न सुखमें मगन होता हुआ प्रगटपने पूर्ण कलशकी तरह परमानन्दसे भरा हुआ होता है।

आडल्ल छंद—कहे विचक्षण पुरुष सदा हूं एक हों। अपने रससूं भर्यो आपकी टेक हों॥
मोहकर्म मम नांहि नांहि भ्रमकूप है। शुद्ध चेतना सिंधु हमारो रूप है॥ ३२॥

मालिनीछंद—इति सति सह सर्वैरन्यभावैर्विवेके स्वयमयमुपयोगो बिभ्रदात्मानमेकं।
प्रकटितपरमार्थैर्दर्शनज्ञानवृत्तैः कृतपरिणतिरात्माराम एव प्रवृत्तः॥ ३१॥

खंडान्वय सहित अर्थ—एवं अयं उपयोग। स्वयं प्रवृत्तः—एवं कहतां निहचां सौ, अनादि निधन छै, अयं कहतां यही, उपयोगः कहतां जीवद्रव्य, स्वयं कहतां शुद्ध पर्याय रूप जैसो द्रव्य हुतो तैसो, प्रवृत्तः कहता प्रगट हुओ। भावार्थ—इसो जो जीवद्रव्य शक्ति-रूप तो शुद्ध थो अरि कर्म संजोगपनें अशुद्धरूप परिणयो थो, अशुद्धपनाके गयां जिसो थो तिसो हूओ, किसो होतां शुद्ध हुओ। इति सर्वैरन्यभावैः सह विवेके सति—

इति कहतां पूर्वोक्त प्रकार, सर्वैः कहतां शुद्ध चिद्रूप मात्र तहिं भिन्न छे, जावंत समस्त इसा छे जे, अन्य भावैः कहतां द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म, सह कहतां त्यइं सौ, विवेके कहतां शुद्ध चेतन्य तहिं भिन्नपनौ, सति कहतां होत संते। भावार्थ–इसौ, यथा सुवर्णका पन्ना पकाएं तहिं, कालिमा गया थैं सहज ही सुवर्णमात्र रहे छे तथा मोह रागद्वेष विभाव परिणाम मात्रके गए संते सहज ही शुद्ध चेतन मात्र रहे छे। किसौ होतो संतो प्रगट होय छे जीव वस्तु, एकं आत्मानं बिभ्रत्–एकं कहतां निर्भेद निर्विकल्प चिद्रूप वस्तु इसौ छे। आत्मानं कहतां आत्मस्वभाव तिहिंकौ, बिभ्रत् कहतां विहिरूप परिणयौ छे। और किसौ छे आत्मा–दर्शनज्ञानवृत्तैः कृतपरिणतिः–दर्शन कहतां श्रद्धा रूचि प्रतीति, ज्ञान कहतां जानपनौ, चारित्र कहतां शुद्ध परिणति, इसौ जो रत्नत्रय तिहिसौ, कृत कहतां कीना छे, परिणति कहतां परिणमन जिहिं इसौ छे। भावार्थ–इसौ जो मिथ्यात्वपरिणतिकौ त्यागु होतां शुद्ध स्वरूपकौ अनुभव होतां साक्षात रत्नत्रय घटै छे। किसा छे दर्शन ज्ञान चारित्र, प्रकटितपरमार्थैः–प्रकटित कहतां प्रगट कियौ छे, परमार्थ कहता सकल कर्म क्षय लक्षण मोक्ष ज्यह इसा छे। भावार्थ–इसो जो "सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः" इसौ कहिवौ तो सर्व जैन सिद्धांत मांहे छे। और योही प्रमाण छे। और किसौ छे शुद्ध जीव–आत्मारामं–आत्मा कहतां अपुनपौ सोई छे। आराम कहतां क्रीड़ावन जिहिंकौ इसौ छे। भावार्थ–इसौ जो अशुद्ध अवस्था चेतन पर सहु परिणवै थो। सो तौ मिटयो। साम्प्रत स्वरूप परिणमन मात्र छे।

भावार्थ–यहां कहा है कि जब सब प्रकार आत्मासे भिन्न जो भाव हैं उनसे भेदविज्ञान होजाता है तब अपने आत्माके ज्ञानमें आप एक आत्मा ही झलकता है। अर्थात एक आत्मा ही अनुभव गोचर होता है। उस अनुभवरसमें निश्चय सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तीनों ही गर्भित हैं। इसीसे स्वानुभव मोक्ष मार्ग है। तब आत्मा अपने ही आत्मारूपी उपवनमें रमण करके आनन्द लिया करता है। दूसरा अर्थ यह होसक्ता है कि इस तरह स्वानुभव करते करते सर्व विभावोंसे व परद्रव्योंसे छूटकर यह आत्मा परमात्मा होजाता है तब सदाकाल आप आपमें ही कल्लोल किया करता है। स्वानुभव ही ध्यानकी अग्नि है। जैसा आराधनासारमें है:–

लवणव्व सलिलजोए झाणेचित्तं विलीयए जस्स। तस्स सुहासुहडहणो अप्पा अणलो पयासेइ ॥८४॥

भावार्थ–जैसे पानीमें निमक घुल जाता है उसी तरह जिसका चित्त आत्मध्यानमें लय होजाता है उसीके वह ध्यानाग्नि पैदा होती है जो शुभ व अशुभ कर्मोंको जला देती है।

सवैया ३१ सा—तत्वकी प्रतीतिसों लख्यो है निजपरगुण, दग ज्ञान चरण त्रिविधी परिणयो है। विसद विवेक आयो आछो विसराम पायो, आपुहीमें आपनो सहारो सोधि लयो है॥ कहत

बनारसी महत पुरुषारथको, सहज सुभावसों विभाव मिटि गयो है। पनाके पकाये जैसे कंचन विमल होत, वैसे शुद्ध चेतन प्रकाश रूप भयो है ॥ ३४ ॥

उपेन्द्रवज्रा छंद–मज्जंतु निर्भरममी सममेव लोका आलोकमुच्छलति शान्तरसे समस्ताः। आप्लाव्य विभ्रमतिरस्करिणीं भरेण प्रोन्मग्न एष भगवानवबोधसिन्धुः ॥ ३२ ॥

खंडान्वयसहित अर्थ–एष भगवान् प्रोन्मग्नः–एष कहतां सदाकाल प्रत्यक्षपनै छे चेतन स्वरूप इसौ, भगवान कहतां जीवद्रव्य, प्रोन्मग्न कहतां शुद्धांग स्वरूप दिखाय करि प्रगट हूओ। भावार्थ–इसौ जो इहि ग्रंथकौ नाम नाटक कहतां अखारो तहां फुनि प्रथम ही शुद्धांग नाचै छे तथा यहां फुनि प्रथम ही जीवकौ शुद्ध स्वरूप प्रगट हुओ। किसौ छे भगवान्। अववोधसिंधुः–अवबोध कहतां ज्ञान मात्र तिहिंकौ, सिन्धुः कहतां पात्र छे। अखारा विषैं फुनि पात्र नाचै छे यहां फुनि ज्ञानपात्र जीव छै। ज्यों प्रगट हुओ त्यों कहिजे छे। भरेण विभ्रमतिरस्करिणीं आप्लाव्य–भरेण कहतां मूल तहिं उखारि दूर कीनौ सो कौन विभ्रम कहतां विपरीत अनुभव मिथ्यात्वरूप परिणाम सोई छे, तिरस्करिणीं कहतां शुद्ध स्वरूप आच्छादन शील अंतर्जमनिकौ तिहिंको आप्लाव कहतां मूल तहिं दूरिकरि। भावार्थ–इसौ जो अखारे विषैं फुनि प्रथमही अंतर्जमनिका कपराकी होय छे तिहैं दूरिकरि शुद्धांग नाचै छे। इहां फुनि अनादिकाल तहिं मिथ्यात्व परिणति छे तिहिंकै छूटतां शुद्ध स्वरूप परिणवै छे। शुद्ध स्वरूप प्रगट होता जो क्यों छे सोई कहिजे छे। अमी समस्तलोकाः शांतरसे समं एव मज्जन्तु–अमी कहतां विद्यमान छे। जे समस्त कहतां जावंत, लोकाः जीवराशि, शांतरसे कहतां अतीन्द्रिय सुख गर्भित छे। शुद्ध स्वरूपको अनुभव तिहिं विषैं, सम एव कहतां एक ही वार ही, मज्जंतु कहतां मग्न होहु, तन्मय होहु। भावार्थ–इसौ जो अखारे विषैं फुनि शुद्धांग दिखावै छे, वहां जेता केता देखनहारा एक ही वार मग्न होइ देखहिं छे तथा जीवकौ स्वरूप शुद्धरूप दिखावो होतो सर्वेही जीवहिंकौ अनुभव करिवा योग्य छे। किसौ छे शांत रस, आलोकमुच्छलति आलोक कहतां समस्त त्रैलोक्य माहे उच्छलति कहतां सर्वोत्कृष्ट छे, उपादेय छे अथवा लोकालोकको ज्ञाता छे, अनुभव ज्यों छे त्यो कहिजे छे। निर्भरं–कहतां अति ही मग्नपनौ छै।

भावार्थ–इस श्लोकका यह भाव है कि जैसे कोई नाटकमें कोई खेलनेवाला पात्र[2] किसी शृंगार या वीर रसको ऐसा दिखाता है कि सारी सभा मुग्ध होजाती है। वह पात्र यर्वनिका[1] परदेको हटाकर बाहर आता है तब सभा उसके मनोहर रूपको देखकर प्रसन्न होजाती है। वैसे ही आचार्यने इस अध्यात्म नाटक समयसारमें जगतके लोगोंके सामने जो मिथ्यात्वका परदा पड़ा था, जिसके कारण शुद्धात्माका दर्शन नहीं होता था उसको हटाकर

१–परदा। २–नाटकका पात्र।

सर्व प्रकार अशुद्धतासे रहित परम शुद्ध ज्ञाता दृष्टा आत्माका असली स्वरूप यकायक दिखा दिया। तथा उस शुद्धात्माके स्वरूपमें ऐसा शांत रस भरा है कि वह समस्त लोकमें फैल गया है। इसलिये सर्व लोक भी इस ही शांत रसके आनंदको लेकर तृप्त होवें। कहनेका तात्पर्य यह है कि शुद्धात्मानुभव करते ही अपने भीतर ज्ञानमय परमात्माका दर्शन होजाता है और ऐसा अनुपम शांत भाव झलकता है कि फिर उसको सर्वत्र शांति ही शांति मालूम होती है। ऐसा स्वात्मानुभव हरएकको करके परमानंदका लाभ लेना चाहिये। इस नाटक समयसार ग्रन्थके द्वारा मिथ्यात्वका परदा दूर करना चाहिये। वास्तवमें शुद्धात्माके समान और कोई सुन्दर वस्तु नहीं है। जैसा परमात्मप्रकाशमें कहा है:—

अप्पा मिल्लिवि णाणियंह अण्णु ण सुन्दरु वत्थु। तेण ण विसयहंमणु रमइ जाणंतहं परमत्थु ॥२०४॥

भावार्थ—ज्ञानियोंको आत्माके सिवाय और कोई वस्तु सुन्दर नहीं भासती है, इसी लिये परमार्थको अनुभव करते हुए उनका मन विषयोंमें नहीं रमता है।

सवैया ३१ सा—जैसे कोउ पातर बनाय वस्त्र आभरण, आवत आखारे निसि आडोपट करिके॥ दुहुओर दीवटि सवारि पट दूरि कीजे, सकल सभाके लोक देखे दृष्टि धरिके॥ तैसे ज्ञान सागर मिथ्यात ग्रंथि भेदि करी, उमग्यो प्रगट रह्यो तिहुं लोक भरिके॥ ऐसो उपदेश सुनि चाहिये जगत जीव, शुद्धता संभारे जग जालसों निकरिके ॥ ३५ ॥

इति श्री नाटक समयसार कलसा राजमल्लि टीकाको जीवद्वार समाप्त। इति प्रथमो अध्यायः।

अजीव अधिकार ॥ २ ॥

शालिनीछंद—जीवाजीवविवेकपुष्कलदृशा प्रत्याययत्पार्षदा—
नासंसारनिबद्धबन्धनविधिध्वंसाद्विशुद्धं स्फुटत् ॥
आत्मारामनन्तधाममहसाध्यक्षेण नित्योदितं।
धीरोदात्तमनाकुलं विलसति ज्ञानं मनोह्लादयत् ॥ १ ॥

खंडान्वय सहित अर्थ—ज्ञानं विलसति—ज्ञानं कहतां जीव द्रव्य, विलसति कहतां जिसो छै तिसो प्रगट होय छै। भावार्थ—इसो जो विधिरूप करि शुद्धांग तत्स्वरूप जीव निरूप्यो सोई जीव प्रतिषेध रूप कहिजे छै। तिहिको व्यौरो—शुद्ध जीव छै, टंकोत्कीर्ण छै, चिद्रूप छै इसो कहिवो विधि कहिजे छै। जीवको स्वरूप गुणस्थान नहीं, कर्म नोकर्म जीवका नहीं, भावकर्म जीवका नहीं, इसो कहिवो प्रतिषेध कहिजे, किसो होतो ज्ञान प्रगट होय छै। मनो आल्हादयत्—मनः कहतां अंतःकरणेंद्रिय तिहिकौं, आल्हादयत् कहतां आनन्द करतो संतो। और किसो हो तो। विशुद्धं—कहतां आठ कर्म तहिं रहितपनैं स्वरूप सहु परिणयोछै। और किसौ होतो, स्फुटत्—कहतां स्वसं-

वेदन प्रत्यक्ष छे, औरु किसौ होतो। आत्मारामं-कहतां स्वस्वरूप सोई छै आराम कहतां क्रीड़ा वन जिहिंको इसौ छे। औरु किसौ होतो, अनंत धाम-अनंत कहतां मर्याद तहिं रहित इसौ छे, धाम कहतां तेजपुंज जिहिंको इसौ छे। औरु किसौ होतो, अध्यक्षेण महसा नित्योदितं-अध्यक्षेण कहतां निरावरण प्रत्यक्ष इसौ छे, महसा कहतां चैतन्य शक्ति तिहिंकरि नित्योदितं कहतां त्रिकाल शाश्वतो छे प्रताप जिहिंको इसौ छे, औरु किसौ होतो। धीरोदात्तं-धीर कहतां अडोल छे, इसौ उदात्त कहतां सब तहिं बड़ौ इसौ छे। औरु किसौ होतो, अनाकुलं-कहतां इन्द्रियजनित सुख दुख तहिं रहित अतीन्द्रिय सुख विराजमान छे। इसौ जीव ज्यों प्रगट हुओ त्यों कहिजे छे, आसंसारनिबद्धबंधनविधिध्वंसनात्-आसंसार कहतां अनादिकाल तहिं, निबद्ध कहतां जीव सौं मिली आई छे इसी, बंधनविधि कहतां ज्ञानावरण कर्म, दर्शनावरण कर्म, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र, अन्तराय, इसा छे द्रव्यपिंडरूप आठ कर्म तथा भावकर्मरूप छे रागद्वेष मोह परिणाम इत्यादि छे बहुत विकल्प तिहिंकौं, ध्वंसनात् कहतां विनाश, तिहिंथकी जीवस्वरूप जिसौ कह्यौ तिसौ छे। भावार्थ इसौ जो यथा जल कार्यौ जिहिंकाल एकत्र मिल्या छे तैंही काल जो स्वरूपको अनुभव कीजे तौ कादौ जल तहिं भिन्न छे। जल आपणो स्वरूप छे। तथा संसारावस्था जीव कर्मबंध पर्यायरूप एक क्षेत्र मिल्या छे, ते ही अवस्था जो शुद्ध स्वरूप अनुभव कीजै तौ समस्त कर्म जीव स्वरूप तहिं भिन्न छे, जीवद्रव्य स्वच्छ स्वरूप जिसौ कह्यौ तिसौ छे। इसी बुद्धि ज्यों उपजी त्यों कहिजे छे। यत्पार्षदान् प्रत्याययत्-कहतां जिहिं कारण तहिं, पार्षदान् कहतां गणधर मुनीश्वर तिहिं कहुं, प्रत्याय कहतां प्रतीति उपजाय करि, किसे करि प्रतीति उपजी सोई कहिजे छे। जीवाजीवविवेकपुष्कलदृशा-जीव कहतां चेतन द्रव्य, अजीव कहतां जड़ कर्म नोकर्म भावकर्म त्यहकौं, विवेक कहतां भिन्न भिन्न पणौ इसौ छे, पुष्कल कहतां विस्तीर्ण, दृशा कहतां ज्ञानदृष्टि तिहिंकरि, जीवकर्मको भिन्न भिन्न अनुभव करतां जीव जिसौ कह्यौ तिसौ छे॥ १ ॥

भावार्थ-यहां बताया है कि तत्वज्ञानीके ज्ञानमें जीव व अजीवके भेद ज्ञानका प्रकाश होते हुए जैसे मैले पानीको देखकर पानीका स्वच्छ स्वभाव मैलसे भिन्न दिखता है वैसे अपने ही शुद्ध आत्माका स्वभाव समस्त कर्म नोकर्म भावकर्मसे भिन्न झलकता है। तब जो निराकुल आनन्द आता है वह वचनातीत है। अनादिकालसे जो वस्तु छिपी थी वह प्रगट होजाती है। भेदज्ञानकी यह महिमा है।

दोहा-जीवतत्व अधिकार यह, प्रगट कह्यो समझाय।
अब अधिकार अजीवको, सुनो चतुर मन लाय॥ १॥

सवैया ३१ सा—परम प्रतीति उपजाय गणधर कीसी, अंतर अनादिकी विभवता विदारी है॥

भेदज्ञान दृष्टिसों विवेककी, शकति साधि, चेतन अचेतनकी दशा निरवारी है॥ करमको नाश करि, अनुभौ अभ्यास धरि, हियेमें हरखि निज उद्धता संभारी है॥ अंतराय नाश गयो शुद्ध परकाश भयो, ज्ञानको विलासताकों वंदना हमारी है॥ २॥

मालिनीछंद–विरम किमपरेणाकार्यकोलाहलेन स्वयमपि निभृतः सन् पश्य षण्मासमेकं। हृदयसरसि पुंसः पुद्गलाद्भिन्नधाम्नो ननु किमनुपलब्धिर्भाति किं चोपलब्धिः॥२॥

खंडान्वयसहित अर्थ–विरम अपरेण अकार्य्यकोलाहलेन किं–विरम कहतां भो जीव विरक्त होहु हठांत मति करहि, अपरेण कहतां मिथ्यात्वरूप छे, अकार्य कहतां कर्मबंध कहुं करहि छे, इसो जे, कोलाहलेन कहतां झूठा विकल्प तिहिंकौ ब्यौरो–कोई मिथ्यादृष्टी जीव शरीर कहु जीव कहै छे, केई मिथ्यादृष्टी जीव आठ कर्म कहु जीव कहै छे, केई मिथ्यादृष्टी जीव रागादि सूक्ष्म अध्यवसाय सो जीव कहै छे–इत्यादि नाना प्रकार बहुत विकल्प करे छे। भो जीव ते समस्त ही विकल्प छोड़ि, जातहि झूठा छे। निभृतः सन् स्वयं एकं पश्य–निभृतः कहतां एकाग्ररूप, सन् कहतां होतो संतो, एकं कहता शुद्ध चिद्रूप मात्र, स्वयं कहतां स्वसंवेदन प्रत्यक्षपनै, पश्य कहतां अनुभव करहु। षण्मासं–कहतां विपरीतपनौं ज्यौं छुटे त्यौंही छोड़ि करि। अपि–कहतां वारंवार बहुत कहा कहैं। इसौ अनुभव करतां स्वरूप प्राप्ति छे। इसौ कहिजे छे। ननु हृदयसरसि पुंसः अनुपलब्धिः किं भाति–ननु कहतां भो जीव, हृदय कहतां मन सोई छे, सरसि कहतां सरोवर तिहि विषे छे। पुंसः कहतां जीवद्रव्य तिहिकी, अनुपलब्धिः कहतां अप्राप्ति। किं भाति कहतां शोभै छै कां यौ। भावार्थ–इसौ जो शुद्ध स्वरूपकौ अनुभव करतां स्वरूपकी प्राप्ति न होय यौंतौ नहीं च उपलब्धिः–च कहतां छै तौ यौं छै, उपलब्धिः कहतां अवश्य प्राप्ति होय, किसौ छे पुंसः। पुद्गलात् भिन्नधाम्नः–पुद्गलात् कहतां द्रव्यकर्म भावकर्म नोकर्म तिहिं तिहिं भिन्न छे चेतनरूप छे, धाम कहता तेजपुंज जिहिंको इसौ छे।

भावार्थ–यहां कहा है कि हे भाई! तू बहुत बकवादमें न पड़, वृथा ही समय व शक्तिको खोता है जिससे कर्मका बंध करता है। आत्माका स्वरूप तो जैसा श्री गुरुने चेतनरूप बताया है सो ही है। यह कभी भी शरीररूप व कर्मरूप व रागादिरूप नहीं होसक्ता है। यदि तुझे आत्माका लाभ करना है तो तुझे कहीं दूर नहीं जाना है। तेरे ही घटरूपी सरोवरमें वह चेतनराम परम परमात्मा विराजमान है। यदि तू छः मास या कम व अधिक कालतक नित्य सब ओरसे मुंह मोड़ अपने ही शुद्ध चेतन स्वरूपसे नाता जोड़ व अन्य सबसे उपयोगको तोड़नेका अभ्यास करेगा तो तेरेको अवश्य अवश्य अपने ही शुद्ध ज्ञान तेजधारी आत्माका दर्शन हो जायगा। जो लोग बहुत बकबक करते हैं व शास्त्रोंको उलटते पलटते हैं परन्तु आत्माका अभ्यास निश्चिन्त होकर नहीं करते

हैं उनको कभी भी आत्मलाभ नहीं होसक्ता है। आत्ममनन ही आत्माका स्वरूप झलकानेवाला है, सोही नित्य कर्तव्य है। परमात्मप्रकाशमें कहा है—

अप्पा झायहि णिम्मलहु किं बहुए अण्णेण। जो झायंतह परमपउ लब्भइ एक्कखणेण ॥ ९८ ॥

भावार्थ–तू अपनी निर्मल आत्माका ध्यानकर जिसके ध्यानसे क्षणमात्रमें परमपदकी प्राप्ति होती है। अन्य बहुत विकल्पोंसे क्या मतलब।

सवैया ३१ सा—भैया जगवासी तूं उदासी व्हैके जगतसों, एक छ महीना उपदेश मेरा मान रे। और संकल्प विकलपके विकार तजि, बैठिके एकांत मन एक ठोर आन रे ॥ तेरो घट सरतामें तूंही व्है कमल वाको, तूंही मधुकर व्है सुवास पहिचान रे। प्रापति न व्है है कछू ऐसा तूं विचारत है, सही व्है है प्रापति सरूप योंही जान रे ॥ ३ ॥

अनुष्टुपछंद–चिच्छक्तिव्याप्तसर्वस्वसारो जीव इयानयं।
अतोऽतिरिक्ताः सर्वेऽपि भावाः पौद्गलिका अमी ॥ ३ ॥

खंडान्वयसहित अर्थ–अयं जीवः इयान्–अयं कहतां विद्यमान छै, जीवः कहतां चेतनद्रव्य, इयान् कहतां इतनो ही छै, किसो छै, चिच्छक्तिव्याप्तसर्वस्वसारः–चिच्छक्ति कहतां चेतना मात्र तिहिसौं, व्याप्त कहतां मिल्यो छै, सर्वस्वसार कहतां दर्शन ज्ञान चारित्र सुख वीर्य इत्यादि अनंतगुण जिहिके इसा छै। अमी सर्वे अपि पौद्गलिकाः भावाः अतः अतिरिक्ताः–अमी कहतां विद्यमान छे, सर्वे अपि कहतां द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्मरूप जावंत छे, तावंत पौद्गलिकाः कहतां अचेतन पुद्गल द्रव्य तहिं उपज्यांछै। इसा जे भावाः अशुद्ध रागादि विभाव परिणाम ते समस्त, अतः कहतां शुद्ध चेतना मात्र जीववस्तु तहि, अतिरिक्ताः कहतां अति ही भिन्न छै। इसा ज्ञानकौं नाम अनुभव कहिजे।

भावार्थ-यहां बताया है कि जब कोई आत्मार्थी निश्चिन्त होकर अनुभव करे तब उसे यह अनुभव करना चाहिये कि मेरा आत्मा चैतन्य शक्तिका धारी है। जिसमें सर्व ही सा गुण विद्यमान हैं। मैं अनंत सुखी हूं, मैं अनंतवीर्यवान हूं, मैं परमवीतराग हूं, मेरे शुद्ध आत्माके शुद्ध गुणोंको छोड़कर अन्य सर्व ही अशुद्धभाव व और जो कुछ सूक्ष्म व स्थूल शरीरका मेरे साथ सम्बन्ध है वे सब मेरेसे भिन्न अचेतन जड़ पदार्थसे रचे होनेके कारण मुझसे अत्यन्त भिन्न हैं। श्री ज्ञानभूषण तत्वज्ञानतरंगिणीमें कहते हैं—

न देहोऽहं न कर्माणि न मनुष्यो द्विजोऽद्विजः। नैव स्थूलो कृशो नाहं किंतु चिद्रूपलक्षणः ॥ ५ ॥
चिंतनं निरहंकारो भेदविज्ञानिनामिति। स एव शुद्धचिद्रूपलब्धये कारणं परम् ॥ ६।१० ॥

भावार्थ–न मैं देह हूं, न मैं कर्म हूं, न मैं मनुष्य हूं, न ब्राह्मण हूं, न मैं अब्राह्मण हूं, न मैं मोटा हूं, न पतला हूं; किन्तु मैं तो चैतन्यरूप हूं, भेदविज्ञानियोंका ऐसा मनन निरहंकार भाव है। यही भाव शुद्धचैतन्य स्वरूपके लाभका एक उत्कृष्ट उपाय है।

दोहा-चेतनवंत अनंत गुण, सहित सु आतमराम। याते अनमिल और सब पुद्गलके परिणाम ॥४॥

मालिनीछंद-सकलमपि विहायाह्नाय चिच्छक्तिरिक्तं स्फुटतरमवगाह्य स्वं च चिच्छक्तिमात्रं।
इममुपरि चरन्तं चारु विश्वस्य साक्षात् कलयतु परमात्मात्मानमात्मन्यनन्तं ॥४॥

खंडान्वय सहित अर्थ-आत्मा आत्मनि इमं आत्मानं कलयतु-आत्मा कहतां जीवद्रव्य, आत्मनि कहतां अपने विषै, इमं आत्मानं कहतां आपकहुं, कलयतु कहतां निरंतरपनैं अनुभवहु, किसौ छे आत्मानं। विश्वस्य साक्षात् उपरि चरंतं-विश्वस्य कहतां समस्त त्रैलोक्यमांहि, उपरि चरंतं कहतां सर्वोत्कृष्ट छे, उपादेय छे, साक्षात् कहतां योंही छे, बड़ाई करि नहीं कहिजै छे। और किसौ छे। चारु कहतां सुख स्वरूप छे, और किसौ छे। परं कहतां शुद्ध स्वरूप छे, और किसौ छे। अनंत कहतां शास्वतो छे। ज्यों अनुभव होय त्यों कहिजै छे। चिच्छक्तिरिक्तं सकलं अपि अन्हाय विहाय-चिच्छक्ति कहतां ज्ञान गुण तिहि तहिं रिक्तं कहतां शून्य छे, इसाजो सकलं अपि कहतां समस्त द्रव्य कर्म्म भावकर्म्म नोकर्म्म तिन कहुं, अन्हाय कहतां मूलतहिं, विहाय कहतां छोड़ि करि। भावार्थ-इसौ जो जेता केता कर्म्म जाति छै तेता समस्त हेय छै। तिहि मांहि कोई कर्म्म उपादेय न छे। और अनुभव ज्यौं होय त्यौं कहिजै छै। चिच्छक्तिमात्रं स्वं च स्फुटतरं अवगाह्य चिच्छक्ति कहतां ज्ञानगुण तिहिं, मात्रं कहतां सोई छे स्वरूप जिहिंकौ इसौ, स्वं च कहतां आपुणपौ तिहिंकौ, स्फुटतरं कहतां प्रत्यक्षपनै, अवगाह्य कहतां आस्वाद करि। भावार्थ-इसौ जो जावंत विभाव परिणाम छे। तावंत जीवका नहीं, शुद्ध चैतन्य मात्र जीव इसौ अनुभव कर्तव्य छे।

भावार्थ-यहां यह बताया है कि स्वानुभव करनेवालेको उचित है कि एक अपने द्रव्यस्वरूपको शुद्धस्वरूप रूप जानकर उसीके स्वादमें डूब जावे, अपने आत्मद्रव्यको समस्त द्रव्योंमें सार समझे तथा अपनेसे भिन्न सर्वही जगतके द्रव्य गुण पर्यायोंको व अपनेमें भी परद्रव्यके निमित्तसे होनेवाले विभावभावोंको त्याग करे। आप ही आपमें आपको देखे जाने, श्रद्धहे व भावे व तनमय होजावे। जैसा नागसेन मुनि तत्वानुशासनमें कहते हैं-

जीवादिद्रव्ययाथात्म्यज्ञातात्मकमिहात्मना, पश्यन्नात्मन्यथात्मानमुदासीनोस्मि वस्तुषु ॥१५२॥

भावार्थ-मैं अपने हीसे अपनेमें जीवादि वस्तुओंको यथार्थ जाननेवाले अपने ही यथार्थ आत्माको जैसेका तैसा अनुभव करता हुआ सर्व परवस्तुओंसे उदासीन हूं, वह अनुभवका दृश्य है।

कवित्त-जब चेतन संभारि निज पौरुष, निरखे निज दृगसौं निज मर्म ॥ तब सुखरूप विमल अविनाशिक, जाने जगत शिरोमणि धर्म ॥ अनुभव करे शुद्ध चेतनको, रमे स्वभाव वमे सब कर्म। इहि विधि सधे मुकतिको मारग, अरु समीप आवे शिव सर्म ॥

वसंततिलकाछंद–वर्णाद्या वा रागमोहादयो वा भिन्ना भावाः सर्वे एवास्य पुंसः।
तेनैवान्तस्तत्त्वतः पश्यतोऽमी नो दृष्टाः स्युर्दृष्टमेकं परं स्यात् ॥ ५ ॥

खंडान्वय सहित अर्थ–अस्य पुंसः सर्व्वे एव भावाः भिन्नाः–अस्य कहतां विद्यमान छे, पुंसः कहतां शुद्ध चेतन्य द्रव्य तिहितहि, सर्व्वे कहतां जेता छे तेता, एव कहतां निहचा सौं, भावा कहतां अशुद्ध विभाव परिणाम, भिन्ना कहतां जीव स्वरूपतहिं निराला छे, ते भाव किसा। वर्णाद्या वा रागमोहादयो वा–वर्णाद्या कहतां एक कर्म्म अचेतन शुद्ध पुद्गल पिंडरूप छे तेतौ जीवस्वरूप तहि निराला ही छे, वा कहतां एकतो इसा छे। रागमोहादय कहतां विभावरूप अशुद्धरूप छे, देखतां चेतनासा दीसे छे। इसा जे रागद्वेष मोहरूप जीव सम्बन्धी परिणाम ते फुनि शुद्ध जीव स्वरूप अनुभवतां जीव स्वरूप तहि भिन्न छे। इहां कोई प्रश्न करे छे जो विभाव परिणाम जीव स्वरूप तहि भिन्न कह्या सो भिन्नको भावार्थ तौ म्हां समझ्या नहीं, भिन्न कहतां भिन्न छे, वस्तुरूप छे, के भिन्न छे अवस्तुरूप छे। उत्तर इसो–जो अवस्तुरूप छे, तेन एव अंतस्तत्त्वतः पश्यतः अमी दृष्टा नो स्युः–तेन एव कहतां तिहि कारण तहि अन्तस्तत्त्वतः पश्यतः कहतां शुद्ध स्वरूपको अनुभवन शील छे जो जीव तिहि कहुं अमी कहतां विभाव परिणाम, दृष्टा कहतां दृष्टिगोचर, नो स्युः कहतां नहीं होय छे। परं एकं दृष्टं स्यात्–परं कहतां उत्कृष्ट छे इसो एकं कहतां शुद्ध चैतन्य द्रव्य, दृष्टं कहतां दृष्टिगोचर स्यात् कहतां होय छे। भावार्थ–इसो जो वर्णादिक व रागादिक छता देखिजे छे, तथापि स्वरूप अनुभवतां स्वरूप मात्र तो विभाव परिणति, वस्तु तो यों नहीं ॥ ५ ॥

भावार्थ–ज्ञानी फिर मनन करता है कि वर्णादिक तो प्रत्यक्ष पुद्गलके गुण हैं, वे तो मुझसे निराले हैं ही, परंतु जो मेरे भीतर मेरे शुद्ध आत्मस्वरूपसे भिन्न झलकनेवाले राग द्वेष मोह आदिक व गुणस्थान आदि नानाप्रकारके भाव हैं वे भी मेरे स्वभाव नहीं हैं; कर्मोदयसे प्रगट होनेवाले औपाधिक भाव हैं। जब मैं शुद्ध निश्चय नयकी दृष्टिसे अपने भीतर देखता हूं तो इन सबका कहीं पता ही नहीं चलता। मुझे तो मेरे सिवाय और कुछ दिखलाई ही नहीं पड़ता। जैसा आराधनासारमें कहा है—

उव्वसहि णियचित्तं वसहि सहावे सुणिम्मले गंतुं। जइ तो पिच्छसि अप्पा सण्णाणो केवलो सुद्धो ॥७५॥

भावार्थ हे योगी तू अपने चित्तको अन्य सर्व पर पदार्थोंसे भिन्न कर यदि अपने ही निर्मल स्वभावमें जाकर ठहराएगा तो तू वहां अपने ही आपको परम असहाय शुद्ध व ज्ञान स्वरूप ही देखेगा।

दोहा—वरणादिक रागादि जड़, रूप हमारो नांहि। एकब्रह्म नहिं दूसरो, दीसे अनुभव मांहि ॥५॥

उपजाति छन्द–निर्वर्त्यते येन यदत्र किंचित्तदेव तत्स्यान्न कथंचनान्यत्।
रुक्मेण निर्वृत्तमिहासिकोशं पश्यन्ति रुक्मं न कथंचनासिं ॥६॥

खण्डान्वय सहितार्थ–अत्र येन यत् किंचित् निर्वर्त्यते तत् तत् एव स्यात् कथंचन न अन्यत्–अत्र कहतां वस्तुकौ स्वरूप विचारतां, येन कहतां मूल कारण रूप वस्तु तिहिं करि, यत्किंचित् कहतां जो कछु कार्य निष्पत्तिरूप वस्तुकौ परिणाम, निर्वर्त्यते कहतां पर्याय रूप निपजै छे, तत् कहतां जो निपज्यो छे, पर्याय तत एव स्यात् कहतां निपज्यो होतो जिहिं द्रव्यतहिं निपज्यो छे सोई द्रव्य छे। कथंचन न अन्यत् कहतां निहचा सौं अन्य द्रव्यरूप नहीं हुओ। तिहिको दृष्टांत–यथा इह रुक्मेण असिकोशं निर्वृत्तं–इह कहतां प्रत्यक्ष छे, रुक्मेण कहतां रूपो धातु तिहिंकरि, असि कहतां खांडो तिहिकौं, कोशं कहतां म्यानु, निर्वृत्तं कहतां घडि मौजूद कियौ छे। रुक्मं पश्यंति कथंचन न असिं–रुक्मं कहतां मौजूद हूओ छे ज्यो म्यान सो वस्तु तो रूपो ही छे, पश्यंति कहतां इसौ प्रत्यक्षपनै सब लोक देखै छे, मानै छे, कथंचन कहतां रूपाको खांजे इसी कहतां कहवतिछे। तथापि न कहतां नहीं, असि कहतां रूपाकौ खाड़ो। भावार्थ–इसौ जो रूपाका म्यान माहै खांडो रहै छे इसी कहावत छे, तिहितैं रूपाकौ खांडो कहतां इसौ कहिजै छे। तथापि रूपाकौ म्यान छे, खांडो लोहेकौ छे, रूपाकौ खाडो नहीं।

भावार्थ–यहां दृष्टांत दिया है कि जैसे चांदीकी म्यानमें तलवार रक्खी है तब लोग उसे चांदीकी तलवारके नामसे पुकारते हैं। यह मात्र व्यवहार है। तलवार जुदी है, वह लोहेकी है व कभी चांदीकी नहीं। चांदीका तो बना कोष है, जिसमें वह रहती है। इसी तरह दृष्टांत यह है कि जीवके साथ पुद्गल कर्म व नोकर्म व कर्मके रस भावकर्मका ऐसा सम्बंध है कि जहां आत्मा है वहीं ये हैं–इसलिये व्यवहारमें जीवको एकेंद्रिय, द्वेन्द्रिय आदि व रागद्वेषी, क्रोधी आदि व श्रावक मुनि केवली आदि कहते हैं। यदि भीतर घुसकर देखा जावे तो शुद्ध चैतन्य द्रव्य इन सबसे बिलकुल निराला झलक रहा है। ये सब म्यानके समान पुद्गल द्रव्यके रचे हुए विकार हैं। अतएव सब पुद्गल ही हैं, जीवसे बिलकुल भिन्न हैं।

ऐसा ही तत्वसारमें देवसेनाचार्य कहते हैं—

फासरसरूवगंधा सद्दादीया य जस्स णत्थि पुणो। सुद्धो चेयणभावो णिरंजणो सो अहं भणिओ ॥

भावार्थ–जिसमें स्पर्श रस गंध वर्ण, शब्द आदि कोई पौद्गलिक भाव नहीं हैं फक्त एक शुद्ध चतन्य भाव है, जिसमें कोई रागादि मैल नहीं है वही मैं हूं। ऐसा जानकर अनुभव करना उचित है।

दोहा–खांडो कहिये कनकको, कनक म्यान संयोग। न्यारो निरखत म्यानसौं, लोह कहे सबलोग ॥७॥

उपजातिछंद- वर्णादिसामग्र्यमिदं विदन्तु निर्माणमेकस्य हि पुद्गलस्य।
ततोऽस्त्विदं पुद्गल एव नात्मा यतः स विज्ञानघनस्ततोऽन्यः ॥ ७ ॥

खंडान्वय सहित अर्थ-हि इदं वर्णादिसामग्री एकस्य पुद्गलस्य निर्माणं विदंतु-हि कहतां निहचासौं, इदं कहतां विद्यमान छे, वर्णादिसमग्र्यं कहतां गुणस्थान, मार्गणा स्थान, द्रव्य कर्म, भावकर्म, नोकर्म इत्यादि छे जे अशुद्ध पर्याय तेता समस्त ही, एकस्य पुद्गलस्य कहतां एकलो पुद्गल द्रव्य तिहिंको. निर्माणं कहतां पुद्गल द्रव्यकौ चितेरौ जिसौ छे, विदन्तु भो जीव-निःसन्देहपने जानहु। ततः इदं पुद्गल एव अस्तु न आत्मा ततः कहतां तिहिं कारण तहिं, इदं कहतां शरीरादि सामग्री, पुद्गल एव कहतां जिहिं पुद्गल द्रव्य तहिं हूओ छे सोई पुद्गल द्रव्य छे। एव कहतां निहचासौं. अस्तु कहतां यो ही छे, न कहतां आत्मा अजीव द्रव्यरूप नहीं हुओ। यतः स विज्ञानघनः- यतः कहतां जिहिं कारण तहिं, स कहतां जीव द्रव्य, विज्ञान कहतां ज्ञान गुणः तिहिंको घनः कहतां समूह छे। तत-अन्यः- ततः कहतां तिहिं कारण तहिं, अन्यः द्रव्य कहतां जीव द्रव्य भिन्न छे शरीरादि परद्रव्य भिन्न छे। भावार्थ-इसौ जो लक्षण भेद तहिं वस्तुकौ भेद होइ छे। तिहितैं चैतन्य लक्षण तहिं जीव वस्तु भिन्न छे, अचेतन लक्षण तहिं शरीरादि भिन्न छे। इहां कोई आशंका करै छे जो कहतां तो योंही कहिजे छे जो एकेंद्रिय जीव, बेंद्रिय जीव, इत्यादि। देव जीव, मनुष्य जीव इत्यादि रागी जीव, द्वेषी जीव इत्यादि। उत्तर इसौ जो कहतां व्योहार करि योंही कहिजे छे, निहिचासौ इसौ कहिवौ झूठा छे, इसौ कहिजे छे।

भावार्थ-यहां यह बताया है कि जितनी अशुद्ध पर्यायें जीवोंके साथ होती हैं उनका निमित्त कारण मुख्यतासे पुद्गल कर्मका संयोग है। मिथ्यात्व सासादन आदि गुणस्थान भी कर्मकृत विकार हैं। इसीलिये सिद्धोंमें ये नहीं हैं। गति इंद्रिय काय आदि चौदह मार्गणाएं भी पौद्गलिक सामग्री है। इसीसे सिद्धोंमें उनका पता नहीं। आत्माको निश्चय दृष्टिसे देखते हुए एक पूर्ण ज्ञानमय वीतराग आनन्द स्वरूप ही झलकता है। इस अपने आत्मामें और सिद्धात्मामें कुछ भी अन्तर नहीं मानना चाहिये। परमात्मप्रकाशमें कहा हैः—

अप्पा गुरु णवि सिस्सु णवि णवि सामिउ णवि भिच्चु, सूरउ कायरु होइ णवि, णवि उत्तमु णवि णिच्चु ॥९०॥
अप्पा माणुसु देउ णवि. अप्पा तिरिउ ण होइ, अप्पा णारउ कहिंवि णवि, णाणिउ जाणइ जोइ ॥९१॥

भावार्थ-यह आत्मा न तो गुरु है, न शिष्य है, न राजा है, न रंक है, न शूरवीर है, न कायर है, न उच्च है, न नीच है, न यह मनुष्य है, न देव है न पशु है, न नारकी है। यह आत्मा तो ज्ञानसरूप है, ज्ञानी ऐसा जानते हैं।

दोहा—वर्णादिक पुद्गल दशा, धरे जीव बहु रूप। वस्तु विचारत करमसौं, भिन्न एक चिद्रूप ॥८॥

अनुष्टुपछंद-घृतकुम्भाभिधानेऽपि कुम्भो घृतमयो न चेत।
जीवो वर्णादिमज्जीवो जल्पनेऽपि न तन्मयः ॥ ८ ॥

खंडान्वय सहित अर्थ-दृष्टांत कहिजे छे चेत् कुंभः घृतमयः न-चेत् कहतां जोयो छे, कुम्भः कहतां घड़ो, घृतमयो न कहतां घीउको तो नहीं माटीको छे। घृतकुम्भाभिधानेपि-घृतकुम्म कहतां घीउको घड़ो, अभिधानेपि कहतां यद्यपि इसौ जिह घड़ामांहे घीउ मेलिहजे छे सो घड़ो यद्यपि घीउको घड़ौ इसौ कहिजे छे तथापि घड़ो माटीको छे, घीउ भिन्न छे, तथा वर्णादिमत् जीवः जल्पनेपि जीवः तन्मयो न-वर्णादिमत् कहतां शरीर सुख दुःख रागद्वेष संयुक्त इसौ, जीव जल्पनेपि कहतां यद्यपि इसौ जीवकहिजे छे, तथापि जीव कहतां चेतन द्रव्य, तन्मयो न कहतां जीव तो शरीर नहीं, जीव तो मनुष्य नहीं, जीव चेतन स्वरूप भिन्न छे। भावार्थ-इसौ जो आगम विषै गुणस्थानको स्वरूप कह्यो छे तहां इसौ कह्यो छे-देव जीव, मनुष्य जीव, रागी जीव, दोषी जीव इत्यादि-बहुत प्रकार कह्यो छे। सो सगरो ही कहिवो व्यौहार मात्र करि छे। द्रव्य स्वरूप देखतां इसौ कहिवौ झूठा छे। कोई प्रश्न करै छे, जीव किसौ छे, जिसौ छे तिसौ कहिजे छे।

भावार्थ-यहां बताया है कि व्यवहारमें एक वस्तुको दूसरेके सम्बन्धसे अन्य नामसे पुकारा जाता है, जैसे तेलकी हांडी लाओ। हांडी मिट्टीकी है, परन्तु तेलके संयोगसे तेलकी हांडी कहलाती है, तौभी तेल भिन्न है, मिट्टीकी हांडी भिन्न है। ऐसा ही समझना बुद्धिमानी है। इसी तरह शरीर व कर्म इनके सम्बन्धसे इस जीवको देव, मनुष्य, साधु, श्रावक, रागी, दोषी, दयावान आदि नामसे कहते हैं। परन्तु ये सब अवस्थाएँ कर्मोंके निमित्तसे हैं। आत्माका द्रव्य स्वरूप न मनुष्य है, न देव है, न रागी है, न दोषी है, न दयावान है; वह तो जैसा है वैसा है। किसीका भी द्रव्य स्वभाव पलटता नहीं है। आत्मा अपने स्वभावमें परम शुद्ध स्फटिककी मूर्ति समान निर्विकार है। परमात्मप्रकाशमें कहते हैं—

बंधुवि मोक्खुवि सयलु जिय जीवहं कम्मु जणेइ अप्पा किंपिवि कुणइ णवि णिच्छउ एउ भणेइ॥६५॥

भावार्थ-बंध व मोक्ष यह सब कर्मोंके निमित्तसे होते हैं। निश्चयसे देखो तो यह आत्मा बंध व मोक्ष कुछ भी नहीं करता है। यह तो स्वयं सिद्ध परमात्मा है।

दोहा-ज्यों घट कहिये घीवको, घटको रूप न घीव। त्यौं वरणादिक नामसौं, जड़ता लहे न जीव॥९॥

अनुष्टुपछंद-अनाद्यनन्तमचलं स्वसंवेद्यमवाधितम् ।*
जीवः स्वयं तु चैतन्यमुच्चैश्चकचकायते ॥ ९ ॥

खंडान्वय सहित अर्थ-तु जीवः चैतन्यं स्वयं उच्चैः चकचकायते-तु कहतां

* कहींपर "स्वसंवेद्यमिदं स्फुटम्" ऐसा पाठ भी है।

द्रव्यकौ स्वरूप विचारतां, जीवः कहतां आत्मा, चैतन्यं कहतां चैतन्य स्वरूप छे। स्वयं कहतां आपणौं सामर्थ्यपनै, उच्चैः कहतां अतिशयपनै चकचकायते कहतां अति ही प्रकाशै छे, किसौ छे चैतन्य। अनाद्यनंतं-अनादि कहतां आदि नहीं छे जिहकी, अनंत कहतां नहीं छे अंत कहता विनाश जिहकौ इसौ छे। और किसौ छे चैतन्य। अचलं कहतां नहीं छे चलता प्रदेश कंप जिहिंकौ इसौ छे। औरु किसौ छे, स्वसंवेद्य-कहतां अपुनपै ही अपुनौ जानिजै छे। औरु किसौ छे, अबाधितं कहतां अमिट छे जीवकौ स्वरूप इसौ छे।

भावार्थ-यहां बताया है कि शुद्ध दृष्टिसे देखते हुए यही आत्मा जो अपने शरीरमें है वह बिलकुल सिद्ध परमात्माके समान है, निश्चल, अबाधित, चैतन्यस्वरूप प्रकाशमान है तथा जिसका स्वाद आप ही अपनेको आसकता है। अन्य कोई उसके स्वाद देनेमें सहायक नहीं है। परमात्मप्रकाशमें कहा है—

अप्पा णाणु मुणेहि तुहुं जो जाणइं अप्पाणु। जीव पएसहिं तित्तिडउ, णाणे गयणपवाणु ॥ १०६॥

भावार्थ-आत्माको तू ज्ञानमई जान, वह आप ही अपनेको जानता है। उस जीवके प्रदेश यद्यपि असंख्यात हैं तथापि तेरे शरीर प्रमाण है। ज्ञान अपेक्षा यह आत्मा आकाशके समान अनंत है।

दोहा-निराबाध चेतन अलख, जाने सहज सुकीव। अचल अनादि अनंत नित, प्रगट जगतमें जीव॥१०॥

शार्दूलविक्रीडित छंद-वर्णाद्यैः सहितस्तथा विरहितो द्वेधास्त्यजीवो यतो।
नामूर्त्तत्वमुपास्य पश्यति जगज्जीवस्य तत्त्वं ततः॥
इत्यालोच्य विवेचकैः समुचितं नाव्याप्यतिव्यापि वा।
व्यक्तं व्यञ्जितजीवतत्त्वमचलं चैतन्यमालम्ब्यतां॥ १०॥

खण्डान्वय सहित अर्थ-विवेचकैरिति आलोच्य चैतन्यं आलम्ब्यतां-विवेचकैः कहतां भेदज्ञान छे ज्यहकौ इसा जे पुरुष, इति कहतां जिसौ कहिंजैगौ तिसौ, आलोच्य कहतां विचारि करि, चैतन्यं कहतां चेतन मात्र, आलम्ब्यतां कहतां अनुभव करिवौ। किसौ छे चैतन्य, समुचितं कहतां अनुभव करिवा योग्य छे, औरु किसौ छे अव्यापिन कहतां जीव द्रव्य तहिं कबहूं भिन्न नहीं होय छे, अतिव्यापिन कहतां जीवसौं अन्य छे जे पंच द्रव्य त्यहसौं अन्य छे, औरु किसौ छे व्यक्तं कहतां प्रगट छे, औरु किसौ छे, व्यंजित जीवतत्त्वं व्यंजित कहतां प्रगट, किसौ छे जीवतत्वं कहतां जीवकौ स्वरूप जिहिं इसौ छे औरु किसौ छे अचलं कहतां प्रदेशकंपतहिं रहित छे। ततः जगत् जीवस्य तत्त्वं अमूर्त्तं उपास्य न पश्यति-ततः कहतां तिहिं कारणतहिं, जगत् कहतां सर्व जीव राशि, जीवस्य कहतां जीवकौ, तत्वं कहतां निज स्वरूप अमूर्तत्वं कहतां स्पर्श रस गंध वर्ण गुण तहिं रहितपनौ, उपास्य कहतां इसौ मानिकरि, न पश्यति कहतां नहीं अनुभवै छे। भावार्थ

इसौं जो कोई जानिसै जीव अमूर्त्त इसौ जानि अनुभवकीजै छै सो यों तो अनुभव नहीं। जीव तौ अमूर्त्त छै परि अनुभवकाल इसौ अनुभवै छै जीव चैतन्य लक्षण। यतः अजीवः द्वेधा अस्ति–यतः कहतां जिह कारण तहि, अजीवः कहतां अचेतन द्रव्य, द्वेधा अस्ति कहता दोय प्रकार छे। सो कौन दोय प्रकार। वर्णाद्यैः सहितः तथा विरहितः वर्णाद्यैः कहतां वर्ण रस गंध स्पर्श तिहिकरि सहित कहतां संयुक्त छे एक पुद्गल द्रव्य इसौ फुनि छै। तथा विरहितः कहतां वर्ण रस गंध स्पर्श तहिं रहित फुनि छे, धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, कालद्रव्य, आकाशद्रव्य, इसा चार द्रव्य, फुनि छे तिहिं सों अमूर्त्त द्रव्य कहिजै छे, तिहिं अमूर्तपनौ अचेतन द्रव्यकै फुनि छे। तिहितै अमूर्त्तपनौ जानि करि जीवकौं अनुभव न कीजै, चेतन जानि अनुभव कीजै।

भावार्थ- यहां बताया है कि जीवका लक्षण खास चेतनारूप है, यह गुण अन्य पांच द्रव्योंमें नहीं है। यदि अमूर्तीक मानै तो अतिव्याप्ति दोष आवेगा। क्योंकि आकाशादि अमूर्तीक हैं। यदि रागादिरूप मानै तो अव्याप्त दोष आएगा, क्योंकि रागादि रहित सिद्ध जीव हैं। इसलिये शुद्ध ज्ञान चेतनामय जीव है। ऐसा ही अनुभवशील महात्माओंने अनुभव किया है। यही चेतनापना बिलकुल प्रगट है। इसीको लेकर हरएक मुमुक्षुको अनुभव करना योग्य है। योगसारमें कहा है—

जेहउ सुद आयासु जिय तेहउ अप्पा उत्तु, आयासुवि जड जाणि जिव अप्पा चेयणुवंतु ॥५८॥

भावार्थ—जैसा शुद्ध आकाश है वैसा ही आत्मा है। अंतर यह है कि आकाश जड़ है आत्मा चेतनवंत है।

सवैया ३१ सा—रूप रसवंत मूरतीक एक पुद्गल, रूपविन और यों अजीव द्रव्य द्विधा है। च्यार हैं अमूरतीक जीव भो अमूरतीक, यहींतैं अमूरतीक वस्तु ध्यान मुधा है॥ औरसों न कवहू प्रगट आप आपहीसों, ऐसो थिर चेतन स्वभाव शुद्ध सुधा है॥ चेतनको अनुभौ आराधे जग तेई जीव, जिन्हके अखंड रस चाखवेकी क्षुधा है॥ ११॥

वसंततिलकाछंद—जीवादजीवमिति लक्षणतो विभिन्नं, ज्ञानी जनोऽनुभवति स्वयमुल्लसंतं।
अज्ञानिनो निरवधिमविजृम्भितोऽयं मोहस्तु तत्कथमहो वत नानटीति ॥१२

खण्डान्वय सहित अर्थ—ज्ञानीजनः लक्षणतः जीवात् अजीवं विभिन्नं इति स्वयं अनुभवति–ज्ञानीजन कहतां सम्यग्दृष्टि जीव, लक्षणतः कहतां जीवकौ लक्षण चेतना, अजीवकौ लक्षण जड़ इसा घणा भेद छे, तिहितैं जीवात् कहतां द्रव्य थकी अजीव कहतां पुद्गल आदि विभिन्नं कहतां सहज ही भिन्न छे, इति कहतां इसौ प्रकार स्वयं कहतां स्वानुभव प्रत्यक्षपनै अनुभवति कहतां आस्वाद करै छे। किसौ छे जीव, उल्लसन्तं कहतां आपणा गुण पर्याय करि प्रकाशमान छे। तत् तु अज्ञानिनः अयं मोहः कथं नानटीति–तत्

कहतां तिहिं कारणतहिं, नु: कहतां यो फुनि, अज्ञानिनः कहतां मिथ्यादृष्टि जीवनौ अयं कहतां छतो छे, मोहः कहतां जीव कर्मको एकत्व रूप विपरीत संस्कार, कथं नानटीति कहतां क्यों प्रवर्तै छे। भावार्थ इसौ जो सहज ही जीव अजीव भिन्न छे इसौ अनुभवतां तौ नीका छे सांच छे। मिथ्यादृष्टि जो एक करि अनुभवै छे सो इसौ अनुभव क्यों आवै छै, इसौ बड़ो अचंभो छे। किसौ छे मोह, निरवधिप्रतिजृंभितः निरवधि कहतां अनादि कालतहिं, प्रतिजृंभितः कहतां संतानरूप प्रवर्यों छे॥

भावार्थ-तत्वज्ञानी महात्मा भले प्रकार अनुभव करते हैं कि जीव भिन्न है अजीव भिन्न है, एक चेतन है दूसरा अचेतन है। एक परम पवित्र है दूसरा अपवित्र है, एक परम समतारूप निराकुल है दूसरा अकुलतारूप है, एक आनंदमय है दूसरा दुःखरूप है; इसलिये वे अपने ही भीतर प्रकाशमान शुद्ध वीतराग जीवका स्वाद लेते हुए आनन्दित रहते हैं। तौ भी मिथ्यात्वी अज्ञानी लोग इस बातको नहीं समझते। उनके भीतरसे अनादिकालका मिथ्याभाव नहीं निकलता। वे पर्याय बुद्धिको कभी नहीं छोड़ते, यही बड़ा आश्चर्य है। योगसारमें कहा है—

धंधय पडियो सयलजगि णहि अप्पाहु मुणंति। तह कारणए जीव फुडु ण हु णिव्वाणुं लहंति॥५१॥

भावार्थ—जगतके धंधोंमें उलझे हुए जीव कभी भी आत्माको पहचान नहीं करते हैं इसीसे ये मूढ़ जीव कभी भी निर्वाणको नहीं पासक्ते हैं।

सवैया २३ सा—चेतन जीव अजीव अचेतन, लक्षण भेद उभै पद न्यारे॥ सम्यकदृष्टि उदोत विचक्षण, भिन्न लखे लखिके निरधारे॥ जे जगमांहि अनादि अखण्डित, मोह महा मदके मतवारे॥ ते जड़ चेतन एक कहे, तिनकी फिरि टेक टरे नहिं टारे॥ १२॥

वसंततिलका छन्द—अस्मिन्ननादिनि महत्यविवेकनाट्ये वर्णादिमान्नटति पुद्गल एव नान्यः।
रागादिपुद्गलविकारविरुद्धशुद्ध-चैतन्यधातुमयमूर्तिरयं च जीवः॥१२॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—अस्मिन् अविवेकनाट्ये पुद्गल एव नटति—अस्मिन् कहतां इसौ अनन्तकाल तहिं छतौ छे, अविवेक कहतां जीवाजीवको एकत्व बुद्धिरूप मिथ्यात्व संसार इसौ छे, नाट्य कहतां धारासंतानरूप बारम्बार विभाव परिणाम तिहिं विषै, पुद्गल कहतां अचेतन मूर्तिमंत द्रव्य, एव कहतां निहचासौं, नटति कहतां अनादिकालतहिं नाचै छे। न अन्यः—कहतां चेतन द्रव्य नहीं नाचै छे। भावार्थ—इसौ जो चेतन द्रव्य अचेतन द्रव्य अनादि छे, आपणौं आपणौं स्वरूप लीया छे। परस्पर भिन्न छे। इसौ अनुभव प्रगटपनै सुगम छे। ज्यहकौ एकत्र संस्काररूप अनुभव छे सो अचंभौ छे, इसौ क्यों अनुभवै छे, जातहिं एक चेतनद्रव्य एक अचेतन द्रव्य इसौ अंतर तौ घणौ अथवा अचंभौ फुनि नहीं, जातहिं अशुद्धपनाके लीये बुद्धिकौ भ्रम होय छे। यथा धतूरौ पीवता दृष्टि विचलै

छे। श्वेत शंखकों पीलो देखे छे सो वस्तु विचारतां इसी दृष्टि सहजकी तो नहीं, दृष्टिदोष छे। दृष्टिदोष कहुं धतूरो उपाधि फुनि छे। तथा जीवद्रव्य अनादितहिं कर्म्म संयोगरूप मिल्यौ ही चल्यौ आयौ छे। मिल्या थकी विभावरूप अशुद्ध पणें परिणायौ छे। अशुद्ध पनाके लिये ज्ञानदृष्टि अशुद्ध छे, तिहिं अशुद्ध दृष्टि करि चेतनद्रव्यकौ एकत्व संस्काररूप अनुभवै छे। इसौ संस्कार तौ छतौ छे, सो वस्तु स्वरूप विचारतां इसी अशुद्ध दृष्टि सहजकी तौ नहीं. अशुद्ध छे, दृष्टिदोष छे। दृष्टिदोष कहुं पुद्गलपिंडरूप मिथ्यात्व कर्मके उदय फुनि उपाधि छे। आगे यथा दृष्टिदोष थकी श्वेत शंखकों पीलौ अनुभवै छे, तौ फुनि दृष्टि मांहे दोष छे, शंख तौ श्वेत ही छे, पीलौ देखतां शंख तौ पीलौ हूवो नहीं। तथा मिथ्यादृष्टि करि चेतन वस्तु अचेतन वस्तु एक करि अनुभवै छे। तो फुनि दृष्टिकौ दोषकौ, वस्तु ज्यों भिन्न छे त्योंही छे, एक करि अनुभवतां एक होइ नहीं। जातहि घणो अन्तर छे। किसौ छे अविवेक नाट्य, अनादिनि कहतां अनादितहि एकत्व संस्कार बुद्धि चली आई छे, और किसौ छे अविवेक नाट्य, महति कहतां थोरोसो विपरीतपनौं न छे, घनों विपरीतपनो छे। किसौ छे पुद्गल। वर्णादिमान् कहतां स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण, गुण करि संयुक्त छे। च अयं जीवः रागादिपुद्गलविकार-विरुद्धशुद्धचैतन्यधातुमयमूर्तिः—च कहतां जीव वस्तु फुनि छे। अयं कहतां रागद्वेष क्रोध, मान, माया, लोभ इसा असंख्यात लोक मात्र अशुद्ध रूप जीवके परिणाम, पुद्गल विकार कहतां अनादि बंध पर्याय थकी विभाव परिणाम तिहतहिं, विरुद्ध कहतां रहित छे, इसौ शुद्ध कहतां निर्विकार, इसौ छे, चैतन्यधातु कहतां शुद्ध चिद्रूप वस्तु तिहिं, मय कहतां तिहिंरूप छै मूर्ति कहतां सर्वस्व जिहिंकौ इसौ छे। भावार्थ—इसौ जो यथा पानी कादौ मिलतां मैलो छे सो मैलपनौ रंग छे, सो रंग अंगीकार न करिये, वाकी जो क्यों छे सो पानी ही छे। तथा जीवको कर्मबंध पर्याय अवस्था रागादिपनौ रंग छे। सो रंग अंगीकार न करिये वाकी जो क्यों छे सो चेतन धातु मात्र वस्तु छे इहिकौ नाम शुद्ध स्वरूप अनुभव जानिज्यो, सम्यग्दृष्टिकहु होई।

भावार्थ—यहां यह बताया है कि अनादिकालसे यह जीव कर्मकी संगतिमें पड़ा है। मिथ्यात्व कर्मके उदयसे अज्ञानी होकर उसी तरह वस्तुको औरका और देखता है जैसा धतूरा पीनेवाला औरका और देखै। ऐसा देखनेसे वस्तु और रूप नहीं होजाती है, वस्तु जैसीकी तैसी है। इसी तरह यह अपने आत्माको सदा पर्यायरूप जानता चला आया है। मैं नारकी, मैं देव, मैं मनुष्य, मैं रागी, मैं केवल, मैं सुन्दर, मैं बलवान, मैं विद्वान, मैं तपसी इत्यादि। कभी भी इसकी दृष्टि शुद्ध नहीं हुई। इस अज्ञानके नाटकमें कारण इस

जीवके साथ मिथ्यात्वमई पुद्गल कर्म है। वास्तवमें यही पुद्गल इस संसारको नाटकमें नाच नचवा रहा है। जब ज्ञानदृष्टि होजावे, मिथ्यात्वका उदय हटे, तब यही झलके कि जीव तो परम शुद्ध ज्ञानानन्दमय परमात्मा है, उसमें कोई भी रागादि विकार नहीं है। जीव और कर्मको मिले होते हुए भी व कर्मके उदयसे विभाव भावरूप परिणमते हुए भी शुद्ध निश्चयनयमई द्रव्य दृष्टिसे देखते हुए जीव भिन्न ही झलकेगा। जैसे पानीमें मिट्टी होनेपर पानी मैला दिखाता है, परन्तु जो बुद्धिमें पानीके असल स्वभावपर विचार करो तो यह झलकेगा कि पानी मैला व मटीला नहीं, पानी तो निर्मल ही है। आत्माको आत्मारूप ही जानकर उसका वैसा ही स्वाद लेना यही अनुभव तत्वज्ञानी महात्माको हुआ करता है। तत्वज्ञानतरंगिणीमें कहा है—

चिद्रूपे केवले शुद्धे नित्यानन्दमये यदा, स्वे तिष्ठति तदा स्वस्थं कथ्यते परमार्थतः॥१२॥६॥

भावार्थ—जब यह आत्मा अपने ही केवल शुद्ध नित्य आनन्दमई स्वभावमें ठहरता है तब ही इसको निश्चयसे स्वस्थ व स्वात्मानुभवी कहते हैं—

सवैया २३ सा—या घटमें भ्रमरूप अनादि, विलास महा अविवेक अखारो। यामहि और सरूप न दीसत, पुद्गल नृत्य करे अति भारो॥ फेरत भेष दिखावत कौतुक, सोज लिये वरणादि पसारो॥ मोहसु भिन्न जुदो जडसों चिन्-मूरति नाटक देखन हारो॥ १३॥

पृथ्वी छंद—इत्थं ज्ञानक्रकचकलनापाटनं नाटयित्वा।
जीवाजीवौ स्फुटविघटनं नैव यावत्प्रयातः॥
विश्वं व्याप्य प्रसभविकसद्व्यक्तचिन्मात्रशक्त्या।
ज्ञातृद्रव्यं स्वयमतिरसात्तावदुच्चैश्चकाशे॥ १३॥

खंडान्वय सहित अर्थ—ज्ञातृद्रव्यं तावत् स्वयं अतिरसात् उच्चैः चकासे—ज्ञातृद्रव्यं कहतां चेतन वस्तु, तावत् कहतां वर्तमानकाल, स्वयं कहतां आपुणपै अतिरसात् कहतां अत्यन्त अपने स्वादको लिये हुए उच्चैः कहतां सर्वप्रकार, चकासे कहता प्रगट भयो, किं कृत्वा—कायों करिके। विश्वं व्याप्य—विश्वं कहता जावंतज्ञेय, व्याप्य कहतां प्रत्यक्षपनैं प्रतिबिंबित करि, किसीकरि जाने छे त्रैलोक्य, प्रसभविकसद्व्यक्तचिन्मात्रशक्त्या—प्रसभ कहतां बलात्कारपनै, विकसत् कहतां प्रकाशमान छे, व्यक्त कहतां प्रगटपनै इसौ छे। चिन्मात्रशक्तिः कहतां ज्ञान गुण स्वभाव, तिहिं करि जानी छे त्रैलोक्य जिहि, इसौ छे, पुनः किं कृत्वा और कयौं कार—इत्थं ज्ञानक्रकचकलनात् पाटनं नाटयित्वा—इत्थं कहतां पूर्वोक्त विधि करि, ज्ञान कहतां भेद बुद्धि, क्रकच कहतां करौत, तिहिंके, कलनात् कहतां बारम्बार अभ्यास तिहिंकरि, पाटनं कहतां जीव अजीवकी भिन्नरूप दोह फार

नाटयित्वा कहतां करिकै। कोई प्रश्न करै छै, जीव अजीवकी दोइ फार तो ज्ञान करौत करि कीनी तिहि पहली किसै रूप था। उत्तर–यावत् जीवाजीवौ स्फुटविघटनं न एव प्रयातः–यावत् कहतां अनन्तकाल तहिं होइ करि, जीवाजीवौ कहता जीव कर्मको एक पिंडरूप पर्याय, स्फुटविघटनं कहतां प्रगटपनै भिन्न भिन्न, न एव प्रयातः कहतां नहीं हुवा छै। भावार्थ–इसो जो यथा सुवर्ण पाषाण मिल्या चल्या आया छै, अरु भिन्न भिन्नरूप छै, तथापि अग्नि संयोग पावै प्रगटपनै भिन्न होहि नहीं, अग्निको संयोग जब ही पावै तब ही तत्काल भिन्न भिन्न होहि। तथा जीव कर्मको संयोग अनादितहि चल्यौ आयौ छै, अरु जीव कर्म भिन्न भिन्न छै। तथापि शुद्ध स्वरूप अनुभव पावै, प्रगट पनै भिन्न भिन्न होय नहीं, यदा काल शुद्ध स्वरूप अनुभव होय तिहिं काल भिन्न भिन्न होहिं।

भावार्थ–जीव अजीवका अनादिकालका सम्बंध है तौभी स्वभाव भिन्न २ है, जीव कभी पुद्गल अजीव नहीं होसकता, पुद्गल कभी जीव नहीं होसकता। सुवर्ण पाषाण खानसे मिले हुए निकलते हैं तथापि दोनोंका स्वभाव अलग है। जब अग्निका जोर दिया जाता है तब सोना पाषाणको छोड़कर अलग होजाता है। इसी तरह जब भेदज्ञानका वारवार अभ्यास किया जाता है कि मैं भिन्न हूं, मैं शुद्ध हूं, मैं वीतराग हूं, मैं ज्ञान स्वरूप हूं और ये कर्म व उसकी कलुषता यह सब पुद्गल जड द्रव्य हैं, मेरा इसका कोई सम्बन्ध नहीं। परमाणु मात्र भी परद्रव्य, परगुण, पर पर्याय मेरा नहीं। तब सतत अभ्याससे जीव कर्मसे भिन्न होजाता है और यह केवलज्ञान प्रकाशसे लोकालोकको जानता हुआ परमात्मा होजाता है।

तत्त्वज्ञानतरंगिणीमें कहा है—

भेदज्ञानप्रदीपोस्ति शुद्धचिद्रूपदर्शने अनादिजमहामोहतामसच्छेदनेपि च ॥ १७८ ॥
भेदज्ञाननेत्रेण योगी साक्षादवेक्षते सिद्धस्थाने शरीरे या चिद्रूपं कर्मणोज्झितं ॥ १८८ ॥

भावार्थ–शुद्ध चैतन्य स्वरूपके देखनेके लिये भेद ज्ञानदीपक है तथा यही अनादि कालके महामोह रूपी अंधकारको भी छोड़ देता है। योगी भेदज्ञान रूपी नेत्रसे सिद्धस्थानके समान अपने शरीरमें स्थित कर्मबंध रहित अपने चैतन्यरूपको देख लेते हैं।

सवैया ३१ सा—जैसे करवत एक काठ बीचै खंड करे, जैसे राजहंस निरवारे दूध जलकों ॥ तैसे भेदज्ञान निज भेदक शकति सेती, भिन्न भिन्न करे चिदानन्द पुद्गलकों ॥ अवधिकों धावे मनपर्यैकी अवस्था पावे, उमगिके आवे परमावधिके थलकों ॥ याही भांति पूरण सरूपको उदोत धरे करे प्रतिबिंबित पदारथ सकलकों ॥ १४ ॥

॥ इति नाटक समयसारको अजीवद्वार समाप्त ॥

तीसरा अध्याय—कर्ता कर्म।

पृथ्वी छंद—एकः कर्त्ता चिदहमिह मे कर्म कोपादयोऽमी,
इत्यज्ञानां शमयदभितः कर्तृकर्मप्रवृत्ति।
ज्ञानज्योतिः स्फुरति परमोदात्यमत्यन्तधीरं,
साक्षात्कुर्वन्निरुपधिपृथग्द्रव्यनिर्भासि विश्वं ॥ १ ।

खंडान्वय सहित अर्थ—ज्ञानज्योतिः स्फुरति-ज्ञानज्योति कहता शुद्ध ज्ञान प्रकाश, स्फुरति कहतां प्रगट होय छे। किसौ छे, परमोदात्यं—कहतां सर्वोत्कृष्ट छै और किसौ छे, अत्यन्तधीरं कहतां त्रिकाल शाश्वतो छे। और किसौ छे, विश्वं साक्षात् कुर्वन्—विश्वं कहतां सकलज्ञेय वस्तु, तिहिंकौं, साक्षात् कुर्वन् कहतां एक समय माहि प्रत्यक्ष पनैं जानै छे, और किसौ छै—निरुपधि कहतां समस्त उपाधितहिं रहित छै, और किसौ छै पृथग्द्रव्यनिर्भासि—पृथक् कहतां भिन्न भिन्न पनै, द्रव्यनिर्भासि कहतां सकल द्रव्य गुण पर्यायकौ जाननशील छै, कांई करतो प्रगट होय छै इति अज्ञानां कर्तृकर्मप्रवृत्ति अभितः शमयत्—इति कहतां दूणौ प्रकार, अज्ञानां कहतां मिथ्यादृष्टि जीव छै तिहिंको, कर्तृकर्म-प्रवृत्ति कहतां जीव वस्तु पुद्गल कर्मकौं कर्त्ता इसी प्रतीति ताकहुं अभितः कहतां संपूर्णपने शमयत् कहतां दुरि करतो होतो। कर्तृकर्मप्रवृत्ति सो किसी एकः अहं चित् कर्त्ता इह अमी कोपादयः मे कर्म—एकः कहतां एकला, अहं कहतां हौं जीवद्रव्य, चित् कहतां चेतन स्वरूप, कर्त्ता कहता पुद्गल कर्म करौं छौ, इह कहता इसौ होतो, अमी कोपादयः विद्यमान-रूप छे जे ज्ञानावरणादिक पिंड, मे कहतां मम, कर्म कहतां म्हारी करतुति छै। इसौ छै मिथ्यादृष्टिकौ विपरीतपनौं तिहि कौं दुरि करतौ ज्ञान प्रगट होय छै। भावार्थ—इसौ जो इहांतहिं लेइकरि कर्तृकर्म अधिकार आरंभ छै।

भावार्थ—यहां यह बताया है कि अज्ञानी जीव ऐसा मानते हैं कि ज्ञानावरणादि व क्रोधादि कर्मोंका या अज्ञान व क्रोधादि भावोंका मैं ही करनेवाला हूं व ये मेरे ही कर्म हैं। यह बड़ा भारी अज्ञान है। सम्यग्ज्ञान इस अंधकारको दूर करता है और वस्तुका यथार्थ स्वरूप प्रगट करता है। इसीका वर्णन इस तीसरे अध्यायमें है।

दोहा—यह अजीव अधिकारको, प्रगट बखान्यो मर्म।
अब सुनु जीव अजीवके, कर्ता क्रिया कर्म ॥ १ ॥

सवैया ३१ सा—प्रथम अज्ञानी जीव कहे मैं सदीव एक, दूसरो न और मैं ही करता करमको ॥ अंतर विवेक आयो आपा पर भेद पायो, भयो बोध गयो मिटि भारत भरमको ॥ भासे छहों दरवके गुण परजाय सब, नासे दुःख लख्यो मुख पूरण परमको ॥ करमको करतार मान्यो पुदगल पिंड, आप करतार भयो आतम धरमको ॥ २ ॥

मालिनी छंद—परपरिणतिमुज्झत् खंडयद्भेदवादा—निदमुदितमखण्डं ज्ञानमुच्चण्डमुच्चैः।
ननु कथमवकाशः कर्तृकर्मप्रवृत्तेरिह भवति कथं वा पौद्गलः कर्मबंधः॥२॥

टीका—इदं ज्ञानं उदितं—इदं कहता छतौ छै, ज्ञानं कहता चिद्रूप शक्ति, उदितं कहता प्रगट हुओ। भावार्थ—इसौ जो जीव द्रव्यज्ञान शक्तिरूप तौ छतौ ही छै, परन्तु काललब्धि पाद करि अपना स्वरूपकहुं अनुभवशील हुवो, किसौ हुवो। परपरिणतिं उज्झत्—परपरिणति कहतां जीव कर्मको एकत्वबुद्धि, तिहिंको उज्झत् कहतां छोड़तो होतो, और कांयों करतो होतो। भेदवादान् खंडयन्—भेदवाद कहतां उत्पाद व्यय ध्रौव्य, अथवा द्रव्य गुणपर्याय अथवा आत्माकहुं ज्ञानगुणकरि अनुभवै छै, इत्यादि अनेक विकल्प, खंडयत् कहतां मूलतहिं उखारतो होतो, और किसौ छै, अखंड कहतां पूर्ण छ। और किसौ छै, उच्चैः उचंडं—उच्चैः कहतां अतिशयरूप, उचंड कहतां कोई वर्णनशील नाहीं—ननु इह कर्तृकर्म्मप्रवृत्तेः कथं अवकाशः—ननु कहतां अहो शिष्य, इह कहतां इहां शुद्ध ज्ञान प्रगट होता, कर्तृकर्म्मप्रवृत्तेः कहतां जीव कर्ता, ज्ञानावरणादि पुद्गल पिंड कर्म्म इसौ विपरीतपनै बुद्धिको व्यौहार तिहिंकौं, कथं अवकाशः कहतां कौन अवसर। भावार्थ इसौ—जो यथा सूर्यकैं प्रकाश होतां अंधकारको अवसर नहीं तथा शुद्ध स्वरूप अनुभव होतां विपरीत रूप मिथ्यात्व बुद्धिको प्रवेश नहीं। इहां कोई प्रश्न करै छै जो शुद्ध ज्ञानकौं अनुभव होतां विपरीत बुद्धि मात्र मिटै छै कै कर्म्म बंध मिटै छै? उत्तर इसौ जो विपरीत बुद्धि मिटै छै, कर्म्म बंध फुनि मिटै छै। इह पौद्गलः कर्म्मबंधः वा कथं भवति—इह कहतां विपरीत बुद्धिकौं मिटतां, पौद्गलः कहतां पुद्गल सम्बन्धी छै जो द्रव्यपिंडरूप इसौ जो कर्म्मबंध कहतां ज्ञानावरणादि कर्मको आगमन, वा कथं भवति—कहतां इसौ फुनि क्यौं होइ॥

भावार्थ—यहां बताया है कि जब तत्वज्ञानी जीवके अतरंगमें भेद ज्ञान पैदा होता है तब वह जानता है कि मैं शुद्ध चिद्रूप परम शांत स्वभावी निर्मल स्फटिकके समान हूं, मेरेसे किसी भी परका सम्बंध नहीं है और तब वह ऐसा ही अनुभव करता है। उस समय विपरीत बुद्धि नहीं रहती है, तब ही उस बुद्धिके कारण जो कर्मोंका बंध होता था वह भी मिट जाता है। सम्यग्ज्ञानकी अपूर्व महिमा है। तत्वज्ञानतरंगिणीमें कहते हैं—

आत्मानं देहकर्माणि भेदज्ञाने समागते, मुक्त्वा यांति यथा सर्पा गरुडे चन्दनद्रुमे॥१२॥

भावार्थ—जब भेदज्ञानका प्रकाश होता है तब जैसे गरुड़को देखकर चन्दनवृक्षमें लिपटे हुये सर्प भाग जाते हैं, इसी तरह कर्म आत्माको छोड़कर चले जाते हैं।

सवैया ३१ सा—जाही समै जीव देह बुद्धिको विकार तजे, वेदत स्वरूप निज भेदत भ्रमको॥ महा परचण्ड मति मण्डण अखण्ड रस, अनुभौ अभ्यास परकासत परमको॥ ताही समै

घटमें न रहे विपरीत भाव, जसे तम नासे भानु प्रगटि धरमको ॥ ऐसी दशा आवे जब साधक कहावे तब, करता व्है कैसे करें पुद्गल करमको ॥ ३ ॥

शार्दूलविक्रीडित छंद–इत्येवं विरचय्य सम्प्रति परद्रव्यान्निवृत्तिं परां
स्वं विज्ञानघनस्वभावमभयादास्तिघ्नुवानः परं।
अज्ञानोत्थितकर्तृकर्मकलनात् क्लेशान्निवृत्तः स्वयं
ज्ञानीभूत इतश्चकास्ति जगतः साक्षी पुराणः पुमान् ॥ ३ ॥

खंडान्वयसहित अर्थ–पुमान् स्वयं ज्ञानीभूतः इतः जगतः साक्षी चकास्ति–पुमान् कहतां जीव द्रव्य, स्वयं ज्ञानीभूतः कहतां आपुणवे आपणा शुद्ध स्वरूप कहुं अनुभव समर्थ हूओ, इतः कहतां इहां तै लेइकरि, जगतः साक्षी कहतां सकल द्रव्य स्वरूप जाननशील, चकास्ति–इसौ शोभै छै। भावार्थ इसौ जो यदा जीवकौं शुद्ध स्वरूपकौं अनुभव होय छै। तदा सकल परद्रव्य रूप द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म विषै उदासीनपनो होय छै। किसौ छै जीव द्रव्य, पुराणः कहतां द्रव्यकी अपेक्षा अनादि निधन छै, और किसौ छै। क्लेशात् निवृत्तः क्लेश कहतां दुःख तिहिंतैं निवृत्तः कहतां रहित छै। किसौ छै क्लेश अज्ञानोत्थितकर्तृकर्मकलनात्–अज्ञान कहतां जीव कर्मकौ संस्काररूप झूठो अनुभव तिहिं तहिं उत्थित कहतां निपज्यो छै, कर्तृकर्मकलनात् कहतां जीवकर्ता जीवकी करतूति ज्ञानावरणादि द्रव्य पिंड इसी विपरीत प्रतीति जिहिकौ इसौ छे। और किसौ छे जीव वस्तु। इति एवं सम्प्रति परद्रव्यात् परां निवृत्तिं विरचय्य स्वं आस्तिघ्नुवानः–इति कहतां इतनौ, एवं कहतां पूर्वोक्त प्रकार, संप्रति कहतां विद्यमान परद्रव्यात् कहतां परवस्तु छे जे द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म तिहि तहिं, निवृत्तिं कहतां सर्वथा त्याग बुद्धि, परां कहतां मूल तहिं, विरचय्य कहतां करिकरि, स्वं कहतां शुद्ध चिद्रूप तिहिकहुं आस्तिघ्नुवानः कहतां आस्वादतो होतो। किसौ छे स्वं, विज्ञानघनस्वभावं–विज्ञान कहतां शुद्ध ज्ञान तिहिकौ घन कहतां समूह इसौ छै स्वभाव कहतां सर्वस्व जिहिकौ इसौ छे। और किसौ छै स्वं–परं कहतां सदा शुद्ध स्वरूप छे, अभयात् कहतां सप्त भयतहिं रहितपनै आस्वादै छै।

भावार्थ–यह है कि जब ज्ञानीको यह पक्का झलकने लगता है कि मैं मात्र ज्ञानानंदमय शुद्ध द्रव्य हूं तब ही उसकी त्यागबुद्धि उन सबसे होजाती है जो उससे भिन्न हैं। इस त्यागबुद्धिके न होनेसे जो घोर क्लेश था वह भी त्यागबुद्धिके साथ मिट जाता है, तब यह जगतके छः द्रव्य मय पदार्थोंको दर्पणके समान मानता रहता है। उनमें रागी, द्वेषी नहीं होता है। फिर कभी भी नहीं मानता है कि मैं पुद्गल पिंडका व रागादि भावोंका कर्ता हूं। वास्तवमें आत्मानुभवी सम्यग्दृष्टीके लिये यह जगत एक नाटकका दृश्य दिखता है। भेद विज्ञानके होजानेपर ज्ञानी कैसा होता है। तत्वज्ञानतरंगिणीमें कहते हैं–

स्वात्मध्यानामृतं स्वच्छं विकल्पानपसार्य सत्, पिबति क्लेशनाशाय जलं शैवालवत्सुधीः ॥४८॥

भावार्थ-जैसे बुद्धिमान् पानीपर पड़ी हुई काईको हटाकर निर्मल जल पीता है और अपनी प्यास बुझाता है उसी तरह तत्वज्ञानी भेदविज्ञानके बलसे सर्व रागादि विकल्पोंको हटाकर अपने निर्मल आत्माका ध्यान करते हुए ज्ञानानन्दमय अमृतका पान करते हैं जिससे सर्व दुःखोंसे छूट जाते हैं।

सवैया ३१ सा—जगमें अनादिको अज्ञानी कहे मेरो कर्म, करता मैं याको किरियाको प्रतिपाखी है॥ अन्तर सुमति भासी जोगसूं भयो उदासी, ममता मिटाय परजाय बुद्धि नाखी है॥ निरखै स्वभाव लीनो अनुभौको रस भीनो, कीनो व्यवहार दृष्टि निहचेमें राखी है॥ भरमकी डोरी तोरी धरमको भयो धोरी, परमसों प्रीत जोरी करमको साखी है॥४॥

शार्दूल वेक्रीडित छंद—व्याप्यव्यापकता तदात्मनि भवेन्नैवातदात्मन्यपि
व्याप्यव्यापकभावसम्भवमृते का कर्तृकर्मस्थितिः।
इत्युद्दामविवेकघस्मरमहो भारेण भिन्दंस्तमो
ज्ञानीभूय तदा स एष लसितः कर्तृत्वशून्यः पुमान् ॥ ४ ॥

खंडान्वयसहित अर्थ—तदा स एव पुमान् कर्तृत्वशून्यः लसितः—तदा कहतां तिहिं काल स एव कहतां सोई जीव अनादिकालतहिं मिथ्यात्वरूप परिणयो थो सोई जीव कर्तृत्वशून्यः लसितः—कहतां कर्म करिवातहिं रहित हूओ। किसौ छे जीव, ज्ञानीभूय तमः भिंदन्-ज्ञानीभूय कहतां अनादितहिं मिथ्यात्व रूप परिणवतां जीव कर्मकौ एक पर्याय स्वरूप परिनवै थो सो छूटयो, शुद्ध चेतन अनुभव हूवो, इसौ होतां, तमः कहतां मिथ्यात्व रूप अंधकार, भिंदन् कहतां छेदतो होतो। किसे करि मिथ्यात्व अंधकार छूटयो-इति उद्यामविवेकघस्मरमहो भारेण-इति कहतां जो कह्यो छे, उद्दाम कहतां बलवंत छे, विवेक कहतां भेद ज्ञान, सोई छे घस्मर कहतां सूर्य तिहिको महः कहतां तेज, तिहिको भरेण कहतां समूह तिहिं करि। आगे जो विचारतां भेद ज्ञान होय छे, सोई कहिजे छे। व्याप्यव्यापकता तदात्मनि भवेत्-व्याप्य कहतां जावंत गुणरूप वा पर्याय रूप भेद विकल्प, व्यापक कहतां एक द्रव्य रूप वस्तु, तदात्मनि कहतां एक सत्त्व रूप वस्तु तिहिविषै भवेत् कहतां होय छे। भावार्थ इसो-यथा सुवर्ण पीरो भारी चीकनो इसो कहिवाको छे, परंतु एक सत्व छे, तथा जीव द्रव्य ज्ञाता दृष्टा इसौ कहिवाको छे परन्तु एक सत्व छे, इसौ एक सत्वविषै व्याप्यव्यापकता भवेत् कहतां भेद बुद्धि कीजै तौ व्याप्य व्यापकता होय। व्यौरो- व्यापक कहिये द्रव्य परिणामी अपना परिणामको कर्त्ता होइ। व्याप्य कहतां सोई परिणाम द्रव्यको कीयो जाविषै इसौ भेद कीजै तौ होइ न कीजै तौ न होइ। अतदात्मनि अपि न एव-अतदात्मनि कहतां यथा जीव सत्त्व तहिं पुद्गल

द्रव्यकी सत्त्वभिन्न छे। अपि कहतां निहचासौं, न एव कहतां व्याप्य व्यापकता न होइ। भावार्थ इसौ—यथा उपचार मात्र करि द्रव्य आपणा परिणामकौं कर्त्ता छे, सोई परिणाम द्रव्यकौं कीयौ छे, तथा अन्य द्रव्यकौ कर्त्ता अन्य द्रव्य उपचार मात्र फुनि न होइ। जातहिं एक सत्त्व नहीं, भिन्न सत्त्व छे। व्याप्यव्यापकभावसंभवमृते कर्तृकर्मस्थितिः का—व्याप्यव्यापकभाव कहतां परिणाम परिणामी मात्र भेद, तिहिंकौं संभव कहतां उत्पत्ति तिहिंकौं ऋते कहतां विना, कर्तृकर्मस्थितिः का कहतां ज्ञानावरणादि पुद्गल कर्मकौ कर्त्ता जीव द्रव्य इसौ अनुभव घटै नहीं जिहितै जीव द्रव्य पुद्गल द्रव्य एक सत्ता नहीं—भिन्न सत्ता छै इसा ज्ञान सूर्य करि मिथ्यात्वरूप अन्धकार मिटै छे, सम्यग्दृष्टि होय छे।

भावार्थ—यहां बताया है कि पुद्गल या पौद्गलिक भावका कर्ता किसी भी तरह जीव द्रव्य नहीं होसकता है। हरएक द्रव्यकी सत्ता भिन्न१ है, हरएक द्रव्य उपादान रूपसे अपनी ही परिणतिका कर्ता तो होसकता है। परन्तु दूसरे द्रव्यका व दूसरेके गुणका कर्ता नहीं होसकता है। गुण गुणीमें व्याप्य व्यापकता होसकती है—आत्मा गुणी द्रव्य है, ज्ञान दर्शन उसके गुण हैं। व्यापक आत्मामें ज्ञान दर्शन व्याप्य है। भेदबुद्धिसे यह तो हम कह सकते हैं कि ज्ञान दर्शनका कर्ता यह आत्मा है। परन्तु जिनके साथ सदाका सम्बंध नहीं ऐसे जो रागादि व क्रोधादि व पुद्गल पिंडरूप मोहकर्म आदि उनका कर्ता यह जीव कभी नहीं हो सकता है। क्योंकि उनसे व जीवसे कोई एकसत्तापना नहीं है। जीव उनसे बिलकुल पृथक् है—ऐसा भेद विज्ञान रूपी सूर्य जिसके हृदयमें उत्पन्न हो जाता है वह कभी भूलकर भी पुद्गलादि द्रव्यका व रागादि विकारका मैं कर्ता हूं, ऐसा नहीं मानता है। पुद्गल द्रव्य तो प्रगट जुदा ही है। रागादि भाव अपने ही दीखते हैं परन्तु ये अपने नहीं—जैसे रक्त जलमें रक्तपना जलका नहीं किन्तु रक्त पदार्थका है जो जलमें मिला है, वैसे ही रागादि जीवमें मिल रहा है इससे जीवको रागीद्वेषी कहते हैं, परन्तु वह रागद्वेष मोहनीय कर्मका अनुभागरूपी मैल है, आत्माका गुण नहीं, आत्माका अपना निजका परिणमन नहीं, ऐसा जो अनुभव वही सम्यग्दृष्टि है। तत्त्वज्ञानतरंगिणीमें कहते हैं—

नाहं किंचिन्न मे किंचिद् शुद्धचिद्रूपकं विना, तस्मादन्यत्र मे चिंता वृथा तत्र लयं भजे ॥१०॥

भावार्थ—शुद्ध चैतन्य, स्वभावके सिवाय मैं और कुछ नहीं हूं और न मेरा कोई और है, इसलिये मैं दूसरी चिंता करना वृथा समझकर एक शुद्ध चिद्रूपमें ही लय होता हूं।

सवैया ३१ सा—जैसे जे दरब ताके तैसे गुण परजाय, ताहीसों मिलत पै मिलै न काहु आनसों ॥ जीव वस्तु चेतन करम जड़ जाति भेद, ऐसे अमिलाप ज्यों नितम्ब जुरे कानसों ॥ ऐसो सुविवेक जाके हिरदे प्रगट भयो, ताको भ्रम गयो ज्यों तिमिर भागे भानसों ॥ सोई जीव करमको करतासो दीसे पेहि, अकरता कह्यो शुद्धताके परमानसों ॥ ५ ॥

स्रग्धरा छन्द—ज्ञानी जानन्नपीमां स्वपरपरिणतिं पुद्गलश्चाप्यजानन्
व्याप्तृव्याप्यत्वमन्तः कलयितुमसहौ नित्यमत्यन्तभेदात्।
अज्ञानात्कर्तृकर्मभ्रममतिरनयोर्भाति तावन्न याव-
द्विज्ञानार्चिश्चकास्ति क्रकचवददयं भेदमुत्पाद्य सद्यः ॥ ९ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—यावत् विज्ञानार्चिः न चकास्ति तावत् अनयोः कर्तृकर्मभ्रममतिः अज्ञानात् भाति—यावत् कहतां जेतो काल, विज्ञानार्चिः कहतां भेद ज्ञानरूप अनुभव न चकास्ति कहतां नहीं प्रगट होय छे तावत् कहतां तेतो काल, अनयोः कहतां जीव पुद्गल विषे, कर्तृकर्मभ्रममतिः कहतां ज्ञानवरणादिकौ कर्ता जीव द्रव्य इसौ छे। मिथ्याप्रतीति अज्ञानात् भाति कहतां अज्ञानपनै छे, वस्तुकौ स्वरूप यो तो न छे। कोई प्रश्न करै छे, ज्ञानावरणादि कर्मको कर्ता जीवको इसौ अज्ञानपनो छे सो क्यों छे। ज्ञानी पुद्गलः च व्याप्तृव्याप्यत्वं अन्तःकलयितुं असहौ—ज्ञानी कहतां जीव वस्तु, पुद्गल कहतां ज्ञानावरणादि कर्म पिंड, व्याप्तृ व्याप्यत्वं कहतां परिणामी परिणाम भाव, अन्तःकलयितु कहतां एक संक्रमण रूप होवाकौ असहौ कहतां असमर्थ छे। नित्यं अत्यन्दभेदात्—नित्यं कहतां द्रव्य स्वभाव थकी अत्यन्तभेदात् कहतां अति ही भेद है। व्यौरो—जीव द्रव्यके भिन्न प्रदेश चैतन्य स्वभाव, पुद्गल द्रव्यके भिन्न प्रदेश अचेतन स्वभाव इसा भेद घणा छे। किसौ छे ज्ञानी, इमां स्वपरपरिणतिं जानन् अपि—इमां कहतां प्रसिद्ध छे, स्व कहतां आपनपौ पर कहतां यावंत ज्ञेय वस्तु तिहिंकी परणति कहतां द्रव्य गुण पर्याय, अथवा उत्पाद व्यय ध्रौव्य, तिहिंकौ जानन् कहतां ज्ञाता छे। अपि कहतां इसौ छै, तौ फुनि किसौ छे पुद्गल। इमां स्वपरपरणति अजानन्—इमां कहतां प्रगट छे स्व कहतां आपुणकै, पर कहतां यावंत छे, परद्रव्य तिहिंकी परिणति कहतां द्रव्य गुण पर्याय आदि तिहिंकौ, अजानन् कहतां नहीं जानै छे। इसौ छै पुद्गल द्रव्य। भावार्थ इसौ—जो जीव द्रव्य ज्ञाता छे, पुद्गल कर्म ज्ञेय छ। इसौ जीव कहुं ज्ञेयज्ञायक सम्बन्ध है। तथापि व्याप्य व्यापक सम्बंध नहीं, द्रव्यहकौ अत्यन्त भिन्नपनौ छ एकपनो न छै। किसा छ भेदज्ञानरूप अनुभव, अयं क्रकचवत् सद्यः भेदं उत्पाद्य—जिहिसै करौतकी नाई शीघ्र ही जीव व पुद्गलको भेद उत्पन्न किया छ।

भावार्थ—यहां यह बताया है कि अनादिकालसे चली आई हुई यह मिथ्या प्रतीति कि मैं पुद्गलका कर्ता हूं पुद्गल मेरा कार्य है, मैं रागी हूं राग मेरा कार्य है, मैं दयालु हूं दया मेरा कार्य है, मैं धनी हूं धन मेरा कार्य है, मैं स्वामी हूं स्वामीपना मेरा कार्य है, मैं सेवक हू सेवकपना मेरा कार्य है, मैं पशु हूं पशुपना मेरा कार्य है, मैं मानव हूं मान-

अपना मेरा कार्य है। यह पर्यायबुद्धि उसी समय तक रहती है जिस समय तक भेद-ज्ञान रूपी शस्त्रसे बुद्धिको छेदकर यह न समझ लिया जाय कि मैं आतमा मात्र ज्ञाताद्रष्टा परम वीतरागी हूं तथा यह ज्ञानावरणादि मोहनीयादि कर्म्म पुद्गलपिंड अचेतन हैं व उनके अनुभाग जो अज्ञान व मोह व रागादि भाव हैं सो भी अचेतन हैं। शरीरादि सब पर अचेतन हैं, इनसे मेरा मात्र ज्ञेय ज्ञायक सम्बन्ध है, मैं ज्ञाता हूं यह ज्ञेय हैं। मेरेमें मेरा स्वभाव फैला है जो शुद्ध चैतन्य रूप है। इनमें इनका स्वभाव फैला है जो अचेतन रूप व अशुचि रूप है। मैं किस तरह चेतनसे अचेतन रूप होसकता हूं? मैं अपनी परिणतिका कर्ता हूं, वे जड़ अपनी परिणतिके कर्ता हैं। मैं जब अपने ज्ञान स्वभावसे अपनेको भी जानता हूं व परको भी जानता हूं तब पुद्गल न अपनेको जानते हैं न परको जानते हैं। इसलिये मुझे पक्का अनुभव है कि मैं मैं ही हूं। मैं मैं एक शुद्ध चेतन द्रव्य हूं, मेरा कोई सम्बन्ध अन्य द्रव्यकर्म भावकर्म नोकर्मसे नहीं है। वास्तवमें यह भेद ज्ञान ही अनुभवका बीज है। तत्वज्ञानतरंगिणीमें कहा है:—

मिलितानेकवस्तूनां स्वरूपं हि पृथक् पृथक्, स्पर्शादिभिर्विदग्धेन न निःशंकं ज्ञायते यथा।
तथैव मिलितानां हि शुद्धचिद्देहकर्मणां अनुभूत्या कथं सद्भिः स्वरूपं न पृथक् पृथक् ॥२०/८॥

भावार्थ—जैसे चतुर पुरुष अनेक वस्तुओंके परस्पर मिलते हुए भी अपने स्पर्श आदिसे निःशंक जान लेता है कि ये भिन्न अनेक पदार्थ हैं, उसी तरह तत्वज्ञानी जीव अपने स्वात्मानुभवके अभ्याससे अनादि कालसे मिले हुए रहनेपर भी शुद्ध चैतन्य रूप आत्माको भिन्न व शरीर व कर्म आदिको भिन्न जान लेता है। इसमें धोखा हो ही नहीं सक्ता है।

छप्पय छन्द—जीव ज्ञानगुण सहित, आपगुण परगुण ज्ञायक ॥ आपा परगुण लखे, नाहि पुद्गल इहि लायक ॥ जीवरूप चिद्रूप सहज, पुद्गल अचेत जड़ ॥ जीव अमूरति मूरतीक, पुद्गल अन्तर बड़ ॥ जबलग न होइ अनुभौ प्रगट, तबलग मिथ्यामति लसे ॥ करतार जीव जड़ करमको, सुबुधि विकाश यहु भ्रम नसे ॥ ६ ॥

आर्या छन्द—यः परिणमति स कर्ता यः परिणामो भवेत्तु तत्कर्म।
या परिणतिः क्रिया सा त्रयमपि भिन्नं न वस्तुतया ॥ ६ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—यः परिणमति स कर्ता भवेत्—यः कहतां जो कोई सत्ता मात्र वस्तु, परिणमति कहतां जो कोई अवस्था छे तिहरूप आपुनेप छे, तिहि तहि स कर्ता भवेत् कहतां तिहिं अवस्थाको सत्ता मात्र वस्तु कर्ता फुनि होइ। इसो कहतां विरुद्ध फुनि नहीं जिहितें अवस्था फुनि छे। यः परिणामः तत् कर्म—यः परिणामः कहतां तिहि द्रव्यको जो कछु स्वभाव परिणाम, तत् कर्म कहतां सो द्रव्यको परिणाम कर्म इसो नाम कहिजे। या परिणतिः सा क्रिया—या परिणतिः कहतां जो कछु द्रव्यको पूर्व अवस्था तहि उत्तर

अवस्था रूप होवौ, सा क्रिया कहतां तिहिकौ नाम क्रिया कहिजै। यथा मृत्तिका घट रूप होय छै, तिहितें मृत्तिका कर्ता कहिजै, निपज्यो घड़ो, कर्म कहिजै मृत्तिका पिण्ड तहि घटरूप होवौ क्रिया कहिजै तथा सत्व रूप वस्तु कर्ता कहिजै, तिहिं द्रव्यकौ निपज्यौ परिणाम कर्म कहिजै तिहिं क्रियारूप होवौ क्रिया कहिजै। वस्तुतया त्रयो अपि न भिन्नं—वस्तुतया कहतां सत्ता मात्र वस्तुकौ स्वरूप अनुभव करतां, त्रयं कहतां कर्ता कर्म क्रिया इसा तीनि भेद अपि कहतां निहचासौं न भिन्नं कहतां तीनि सत्व तौ नहीं, एक हीं सत्व छै। भावार्थ—इसौ जो कर्त्ताकर्म क्रियाकौ स्वरूप तौ ऐसे प्रकार छै। तिहितैं ज्ञानावरणादि द्रव्य पिंडरूप कर्मकौ कर्ता जीवद्रव्य छै, इसौ जाणिवौ झूठौ छै। जिहितैं जीव द्रव्यकौ एक सत्व नहीं, कर्ताकर्म क्रियाकी कौन घटना।

भावार्थ—यहां यह बताया है कि ज्ञानावरणादि कर्मका कर्ता किसी भी तरह जीव द्रव्य नहीं होसक्ता है। क्योंकि वे पुद्गल हैं जीव चेतन है—निश्चयसे उपादान कारण-रूप ही कार्य होता है। इससे उपादान कारण कर्ता है उसका जो कार्य है सो कर्म है व उस कारणका कार्यरूप होना सो क्रिया है—तीनों एक ही द्रव्यकी सत्तामें होते हैं। जैसे सुवर्ण एक पिण्डरूपमें था, उसका जब एक कड़ा बनाया गया तब सुवर्ण उपादान कारणने अपनी अवस्था पलटी अर्थात् वह पिंडसे एक कड़ेकी अवस्थामें होगया। विचार करो तो कड़ा भी सुवर्ण ही है पिंड भी सुवर्ण ही था—यह जगतका नियम है तब यह कैसे सिद्ध होसक्ता है कि चेतन जड़को करें—यह मानना अज्ञान है। इसलिये भेद ज्ञान द्वारा इस अज्ञानको मेट देना चाहिये। तत्वज्ञानतरंगिणीमें कहा है—

चिद्रूपच्छादको मोहरेणुराशिर्न बुध्यते। क्व यातीति शरीरात्मभेदज्ञानप्रभंजनात् ॥ १६ ॥

भावार्थ—शरीर और आत्माको भेद ज्ञान रूपी पवनके द्वारा आत्मस्वरूपको ढकने-वाली मोहकी रज कहां चली जाती है सो पता नहीं। वास्तवमें कर्मोंका नाशक भेदज्ञान है।

दोहा—कर्ता परिणामी द्रव्य कर्मरूप परिणाम। क्रिया पर्यायकी फेरनी, वस्तु एक त्रय नाम ॥७॥

विवद्ध छंद—एकः परिणमति सदा परिणामो जायते सदैकस्य।
एकस्य परिणतिः स्यादनेकमप्येकमेव यतः ॥ ७ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—सदा एकः परिणमति—सदा कहतां त्रिकाल विषैं, एकः कहतां सत्ता मात्र वस्तु, परिणमति कहतां आपुणपै अवस्थांतर रूप होइ छै। सदा एकस्य परिणामः जायते—सदा कहतां त्रिकालगोचर, एकस्य कहतां सत्ता मात्र छै वस्तु तिहिको, परिणामः जायते अवस्था वस्तु रूप छै। भावार्थ इसौ—जो यथा सत्ता मात्र वस्तु अवस्था रूप छै, तथा अवस्था फुनि वस्तुरूप छै। परिणतिः एकस्य स्यात—परिणतिः कहतां

क्रिया, एकस्य स्यात् सो फुनि सत्ता मात्र वस्तुकौ छै। भावार्थ इसौ–जो क्रिया फुनि वस्तु मात्र छै, वस्तुतहिं भिन्न सत्व नहीं। यतः अनेकं अपि एक एव–यतः कहतां जिहिं कारण तहिं, अनेकं कहतां एक सत्व कहुं कर्ता कर्म क्रिया इसा तीनि भेद, अपि कहतां यद्यपि यो फुनि छै, तथापि एकं एव कहतां सत्ता मात्र वस्तु मात्र छै। तीनि ही विकल्प झूठा छै। भावार्थ इसौ–जो ज्ञानावरणादि द्रव्यरूप पुद्गल पिंड कर्मको कर्ता जीव वस्तु छै; इसौ जानपनौ मिथ्याज्ञान छै, जिहिं तहिं एक सत्व विषै कर्ताकर्म क्रिया उपचार करि कहिजै छै, भिन्न सत्वरूप छै जे जीवद्रव्य पुद्गल द्रव्य त्यहकौ कर्ताकर्म क्रिया कहांतहिं घटसै।

भावार्थ–यहां यह बताया है कि एक द्रव्यमें भी जो कर्ता कर्म व क्रियाका कथन करना सो व्यवहार है तब एक द्रव्य दूसरे द्रव्यका कर्ता व एक द्रव्य दूसरे द्रव्यका कर्म किस तरह होसकता है। द्रव्यका स्वभाव परिणमनशील है–जो परिणमन जिस द्रव्यका होता है वह उस द्रव्यसे भिन्न नहीं है, वही है। गोरसकी दही मलाई खोया आदि वस्तु बनी हैं, गोरसकी ही सत्ता इनमें है। इनका कर्ता गोरस ही है, गोरस कभी खांडका व खांड कभी गोरसका कर्ता नहीं होसका। अपना अपना परिणमन अपने अपने द्रव्यके साथ है, इससे यह जीव कभी भी पुद्गलका कर्ता नहीं हो सक्ता। इसी भेद विज्ञानका अभ्यास सदा करना योग्य है। तत्त्व० में कहा है—

भेदज्ञानबलात् शुद्धचिद्रूपं प्राप्य केवली, भवेद्देवाधिदेवोपि तीर्थकर्ता जिनेश्वरः ॥२२/८॥

भावार्थ–भेद ज्ञानके ही बलसे अपने शुद्ध चैतन्य स्वभावको प्राप्त करके यह आत्मा केवलज्ञानी, देवाधिदेव, तीर्थंकर व जिनेश्वर होजाता है।

कर्ता कर्म क्रिया करे, क्रिया कर्म कर्तार। नाम भेद बहुविधि भयो, वस्तु एक निर्धार॥ ८॥

अर्या–नोभौ परिणमतः खलु परिणामो नोभयोः प्रजायेत।
उभयोर्न परिणतिः स्याद्यदनेकमनेकमेव सदा ॥ ८ ॥

खंडान्वयसहित अर्थ–खलु उभौ न परिणमतः–खलु कहतां इसौ निहचौ छै, उभौ कहतां एक चेतनालक्षण जीवद्रव्य, एक अचेतन कर्म पिंडरूप पुद्गलद्रव्य, न परिणमतः कहतां मिलिकरि एक परिणामरूप नहीं परिणवै छै। भावार्थ इसौ–जो एक जीवद्रव्य आपणी शुद्धचेतनारूप अथवा अशुद्ध चेतनारूप व्याप्य व्यापकरूप परिणवै छे। पुद्गलद्रव्य फुनि आपणौ अचेतन लक्षणरूप, शुद्ध परमाणुरूप अथवा ज्ञानावरणादि कर्म पिंडरूप अपुनैं व्याप्य व्यापकरूप परिणवै छै। परन्तु जीवद्रव्य पुद्गलद्रव्य दूवे मिलिकरि अशुद्धचेतनारूप छै, रागद्वेषरूप परिणाम, तिहिसौं परिणवै छे यों तो न छै। उभयोः परिणामः न प्रजायते उभयोः कहतां जीवद्रव्य पुद्गलद्रव्य त्यहको परिणामः कहतां दूवे मिलि करि एक पर्यायरूप

परिणामः न प्रजायते कहतां न होइ। उभयोः परिणतिः न स्यात्-उभयोः कहतां जीव पुद्गल त्यहकी, परिणतिः कहतां मिलि करि एक क्रिया, न स्यात् कहतां न होइ। वस्तुको स्वरूप इसो ही छे। यतः अनेकं अनेकं एव सदा-यतः कहतां जिहि कारण तहिं अनेकं कहतां भिन्न सत्तारूपछै जीव पुद्गल, अनेकं एव सदा कहतां तेतो जीव पुद्गल सदा ही भिन्नरूप छे, एक रूप क्यों होहि। भावार्थ इसो-जो जीवद्रव्य पुद्गल द्रव्य भिन्न सत्तारूप छे सो जो पहले भिन्न सत्तापनो छोड़ि एक सत्तारूप होहिं तो पाछे कर्त्ताकर्म क्रियापनो घटै। सो तो एक रूप होहिं नाहीं, तातहिं जीव पुद्गलको आपुसमांहि कर्ताकर्म क्रियापनो घटै नहीं।

भावार्थ—यहां यह भाव है कि दो द्रव्य मिलकरके एक ही परिणति नहीं बना सके। यदि हम सोने चांदीको मिलाकर आभूषण बनावें तौभी सुवर्णका परिणमन सुवर्णरूप व चांदीका चांदीरूप होगा, दोनों मिलके कभी भी एकरूप नहीं होंगे—हम जब चाहें तब सोनेको चांदीसे अलग कर सक्ते हैं। इसी तरह यद्यपि आत्माका और मोह आदि कर्मोंका परिणमन एक साथ एक ही प्रदेशमें होता है और उन दोनोंकी परिणतिसे जो रागद्वेष हुआ है सो मानो एक ही अवस्था दिख रही है परन्तु वहां दो द्रव्योंका भिन्न२ रूप ही परिणमन हुआ—एक क्रोध भावमें देखें तो क्रोध नाम कषायकी वर्गणाएं उदय होती हुई अपना कलुष अनुभाग झलकाती हैं, उसी समय ज्ञानका परिणमन भी होरहा है तथा ज्ञानमें उस क्रोधके परिणमनके निमित्तसे नैमित्तिक विकार इसी तरह होता है जैसे स्फटिकमणिके साथ लाल डाक लगनेसे उस मणिका श्वेत रंग ढक जाता है और जबतक उस लाल डाकका सम्बन्ध है तबतक लालपना प्रगट होजाता है। हम यद्यपि व्यवहारमें लाल मणि कहदें परन्तु वह लाल मणि नहीं है, वह तो सफेद ही है, लालपना तो लाल डाकका है, स्फटिकमणि कभी लाल नहीं होती। इसी तरह मोहकर्मके उदयसे आत्मा कभी भी मोही नहीं होता यद्यपि व्यवहारमें मोही सा दिखता है, तौभी आत्मा ज्ञानदर्शनमय ही है—मोहकी कलुषता मात्र मोहनीयकर्मकी है। रागद्वेषमय प्रतिभासको आत्माका समझना अज्ञान है। ऐसा ही पुरुषार्थसिद्ध्युपायमें कहा है—

एवमयं कर्मकृतैर्भावैरसमाहितोपि युक्त इव। प्रतिभाति बालिशानां प्रतिभासः स खलु भवबीजम्॥

भावार्थ—यह आत्मा कर्मजनित भावोंसे निश्चयसे युक्त नहीं होता है परन्तु युक्त हुआ है ऐसा ही प्रतिभास होता है। जिनको यही निश्चय रहता है कि यह आत्मा ही रागीद्वेषी होगया उनको अज्ञानी कहते हैं। आत्माको रागद्वेषरूप समझना ही मिथ्यात्व है व यही संसारका बीज है। सम्यग्दृष्टी ज्ञानी यह समझता है कि मोहकर्मके उदयकी यह कलुषता है, आत्मा तो बिलकुल वीतराग व ज्ञानदर्शन स्वरूप है। निमित्त नैमित्तिक परिणमन शक्ति

होनेसे आत्माका चारित्रगुण तिरोहित अर्थात् ढक जाता है और क्रोधादि विकार झलकने लगता है, जैसे स्फटिककी निर्मलता ढक जाती है व लाली प्रगट होजाती है। रागादि भावोंमें चेतन व कर्म दोनोंका भिन्न२ अपने अपने रूप परिणमन है। दोनोंका मिलके एक परिणमन नहीं हुआ न ऐसा होसक्ता है। ये दो द्रव्य हैं, उनका परिणमन भी दो रूप है व दो ही सदा रहेंगे, एक कभी नहीं होंगे।

दोहा—एक कर्म कर्तव्यता, करे न कर्ता दोय। दुधा द्रव्य सत्ता सु तो, एक भाव क्यों होय ॥५॥

आर्या छंद—नैकस्य हि कर्तारौ द्वौ स्तो द्वे कर्मणी न चैकस्य।
नैकस्य च क्रिये द्वे एकमनेकं यतो न स्यात् ॥ ९ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ-यहां कोई मतांतर निरूपसे जो द्रव्यकी अनन्त शक्ति है सो एक शक्ति फुनि इसी होइसी जो एक द्रव्य दोइ द्रव्यका परिणामकहु करै। यथा जीव द्रव्य आपणा अशुद्ध चेतनारूप रागद्वेष मोह परिणामको व्याप्य व्यापकरूप करे, त्योंही ज्ञानावरणादि कर्म पिंड कहुं व्याप्य व्यापक रूप करै। उत्तरु इसौ जो द्रव्यके अनंतशक्ति तो छे पर इसी शक्ति तो कोई नहीं जो ज्यों आपणा गुणसों व्याप्य व्यापक है त्यों ही पर द्रव्यका गुण सेती व्याप्य व्यापक रूप होइ। हि एकस्य द्वौ कर्तारौ न—हि कहतां निहचासौं, एकस्य कहतां एक परिणामकौं, द्वौ कर्तारौ कहतां दोइ द्रव्य कर्ता नहीं। भावार्थ इसौ—जो यथा अशुद्ध चेतना रूप रागद्वेष मोह परिणामको ज्यों व्याप्य व्यापक रूप जीव-कर्ता त्यों ही पुद्गल द्रव्य फुनि फुनि अशुद्ध चेतना रूप रागद्वेष मोह परिणामकी कर्ता यों तो नहीं। जीव द्रव्य आपणा रागद्वेष मोह परिणामको कर्त्ता, पुद्गल द्रव्यकर्ता नहीं छै। एकस्य द्वे कर्मणी न स्तः—एकस्य कहतां एक द्रव्यके, द्वे कर्मणी नस्तः कहतां दोइ परिणाम न होहिं। भावार्थ इसौ—जो यथाजीव द्रव्य रागद्वेष मोह रूप अशुद्ध चेतना परिणामकौ व्याप्य व्यापक रूप कर्ता तथा ज्ञानावरणादि अचेतन कर्मको कर्त्ता जीव यों तो न छे। आपणा परिणामकौ कर्ता छे, अचेतन परिणाम रूप कर्मकी कर्ता न छै। च एकस्य द्वे क्रिये न—च कहतां फुनि, एकस्य कहतां एक द्रव्यके द्वे क्रिये न दोइ क्रिया नहीं भावार्थ इसौ—जो जीव द्रव्य ज्यों चेतन अपरिणति रूप परिणावे छे, त्यों ही अचेतन परिणति रूप परिणवै यों तो नहीं। यतः एकं अनेकं न स्यात्—यतः कहतां जिहि कारणतहिं एकं कहतां एक द्रव्य, अनेकं न स्यात् कहतां दोय द्रव्य रूप क्यों होइ। भावार्थ इसौ—जो जीव द्रव्य एक चेतन द्रव्यरूप छे सो जो पहिले अनेक द्रव्यरूप होइ तौ ज्ञानावरणादि कर्मकौ कर्ता फुनि होइ। आपणा रागद्वेष मोहरूप अशुद्ध चेतन परिणामकौ फुनि होइ सो यों तो नहीं—अनादि निधन जीव द्रव्य एकरूप ही छे, तिहि तहिं आपणा अशुद्ध चेतन परिणामकौ कर्ता होइ। अचेतन कर्मकौ कर्ता न होइ। इसौ वस्तु सरूप छै।

भावार्थ–यहां दिखलाया है कि एकपरिणाम विशेषके भिन्न २ द्रव्यकर्ता नहीं हो सकते, न एक द्रव्यसे दो भिन्न२ जातिके परिणाम होसक्के, न एक द्रव्यकी दो प्रकारकी क्रिया होसक्कीं। क्योंकि एक द्रव्य कभी अनेक रूप नहीं होता है। चेतनकी परिणति चेतनरूप होगी, अचेतनकी अचेतनरूप होगी–एक चेतन द्रव्य जैसे चेतन अचेतन ऐसी दो परिणतियां नहीं कर सकता, वैसे एक अचेतन द्रव्य अचेतन चेतन ऐसी दो परिणतिएँ नहीं कर सकता। जिस द्रव्यका परिणाम उसका उसीमें होता है, शुद्ध निश्चयनयसे यह जीव अपनी शुद्ध परिणति, वीतराग परिणतिका ही कर्ता है। अशुद्ध निश्चयनयसे यह रागद्वेष मोहरूप अपने विभाव भावोंका कर्ता है, परन्तु ज्ञानावरणादि व पुद्गलद्रव्यकी किसी भी परिणतिका तो किसी भी तरह उपादान कर्ता नहीं होसक्का–वे तो बिलकुल परद्रव्य हैं। रागद्वेष मोह भाव चेतनका परिणमन मात्र अशुद्ध निश्चयनयसे ही कहा जासक्ता है, जैसे स्फटिककी कांतिका रक्त नीलरूप परिणमन अशुद्ध दृष्टिसे ही कहा जाता है। यह परिणमन जैसे स्फटिकमें होता है वैसा काष्ठके नीचे डाक लगानेसे नहीं होता है क्योंकि काष्ठमें कांति नहीं व शक्ति नहीं जो विभावरूप परिणमैं, इसी तरह रागद्वेषरूप परिणमन जीवमें जीवकी वैभाविक शक्तिके निमित्तसे होता है। यद्यपि यह नैमित्तिक है औपाधिक है तथापि जीवकी ही अशुद्ध परिणति है। इसका तो कर्ता अशुद्ध दृष्टिसे भले ही कह दिया जावे परन्तु पुद्गलकी किसी गुणपर्यायका जीव कर्ता नहीं होसक्का है। इसी बातको यहां दृढ़ किया है। जीवके अशुद्ध भावोंका निमित्त पाकर स्वयं ही कर्म पुद्गल ज्ञानावरणादि कर्मरूप होजाते हैं। जैसा कि पुरुषार्थसि०में कहा है—

जीवकृतं परिणामं निमित्तमात्रं प्रपद्य पुनरन्ये, स्वयमेव परिणमन्तेऽत्र पुद्गलाः कर्मभावेन ॥

भावार्थ–जीव द्वारा किये हुए अशुद्ध रागादि भावोंका निमित्त पाकर कर्म पुद्गल स्वयमेव ही ज्ञानावरणादि कर्मरूप परिणमन कर जाते हैं। भाव यह है कि चेतन परिणतिका कर्ता जीव है, अचेतन परिणतिका कर्ता अजीव है।

सवैया ३१ सा—एक परिणामके न करता दरव दोय, दोय परिणाम एक दर्व न धरत है। एक करतूति दोय द्रव्य कबहूं न करे, दोय करतूति एक द्रव्य न करत है॥ जीव पुद्गल एक खेत अवगाहि दोउ, अपने अपने रूप कोऊ न टरत है। जड़ परिणामनिको करता है पुद्गल, चिदानंद चेतन स्वभाव आचरत है ॥१०॥

शार्दूलविक्रिडित छंद—आसंसारत एव धावति परं कुर्वेऽहमित्युच्चकै-
दुर्वारं ननु मोहिनामिह महाहङ्काररूपं तमः।
तद्भूतार्थपरिग्रहेण विलयं यद्येकवारं व्रजे-
त्तत्किं ज्ञानघनस्य बन्धनमहो भूयो भवेदात्मनः ॥१०॥

खण्डान्वयसहित अर्थ—ननु मोहिनां अहं कुर्वे इति तमः आसंसारत एव धावति—ननु कहतां अहो जीव, मोहिनां कहतां मिथ्यादृष्टि जीवोंके, अहं कुर्वे इति तमः कहतां ज्ञानावरणादि कर्मको कर्ता जीव इसौ छै जो मिथ्यात्व रूप अंधकार, आसंसारत एव धावति कहतां अनादितहिं एक संतान रूप चल्यौ आयौ छे। किसौ छे मिथ्यात्व तमः, परं-कहतां परद्रव्य स्वरूप छे, और किसौ छै। उच्चकैः दुर्वारं—अति ही ढीठ छे, और किसौ छे। महाअहंकाररूपं-महा अहंकार कहतां हौं देव, हौं मनुष्य, हौं तिर्यंच, हौं नारकी इसा जे कर्मका पर्याय तिहिं विषै आत्मबुद्धि तिहिं, रूपं कहतां सोई छे स्वरूप तिहिंको इसौ छै। यदि तद्भूतार्थपरिग्रहेण एकवारं विलयं व्रजेत्—यदि कहतां जो कबहूं, तत् कहतां इसौ छे जो मिथ्यात्व अन्धकार, भूतार्थ परिग्रहेण कहतां शुद्ध स्वरूप अनुभव करि, एकवारं कहतां अन्तर्मुहूर्त्त मात्र, विलयं व्रजेत् कहतां विनशि जाय। भावार्थ इसौ—जो जीवके यद्यपि मिथ्यात्व अन्धकार अनन्तकाल चल्यो ही आयौ छे। तथा जो सम्यक्त होय तौ मिथ्यात्व छूटे। जो एकवार मिथ्यात्व छूटे तो, अहो तत् आत्मनः भूयः बंधनं किं न भवेत्—अहो कहतां भो जीव, तत् कहतां तिहि कारणतहिं, आत्मनः कहतां जीवको, भूयः कहतां और, बंधनं किं भवेत् कहतां एकत्व बुद्धि कहां होय, अपि तु न होय। किसौ छे आत्मा, ज्ञानघनस्य कहतां ज्ञानको समूह छै। भावार्थ—शुद्ध स्वरूपको अनुभव होतां संसार मांहि रुलवौ न छे।

भावार्थ—यहां यह बताया है कि अनादिकालसे इस जीवके यह बुद्धि होरही है कि मैं परद्रव्यका कर्ता हूं, अपने स्वद्रव्यकी परिणतिको भूलकर परकी ही परिणतिका मैं कर्ता हूं, ऐसी मान्यता ही घोर मिथ्यात्व है। यदि एक दफे भी किसी भी तरह यह मिथ्यात्व छूटे और सम्यक्दर्शन प्रगट होजावे तौ यह कभी भी परमें अहंबुद्धि न करे और तब इसके मिथ्यात्व सम्बन्धी कर्मका बंध भी न हो। इसका उपाय अपने शुद्ध आत्मस्वरूपका अनुभव अभ्यास है। जैसा तत्वज्ञानतरंगिणीमें कहा है—ऐसी भावना भावे—

न चेतना स्पर्शमहं करोमि सचेतनाचेतन वस्तुजाते। विमुच्य शुद्धं हि निजात्मतत्वं क्वचित् कदाचित् कथमप्यवश्यं॥८

भावार्थ—मैं शुद्ध चैतन्यरूप अपने आत्माको छोड़कर अन्य चेतन व अचेतन पदार्थको किसी भी देश व किसी भी कालमें कभी भी अपने मनसे स्पर्श नहीं करता हूं। मैं तो स्वरूपमें रमनेका ही प्रेमी होगया हूं।

सवैया ३१ सा—महा धीठ दुःखको बसीठ परद्रव्यरूप, अंध कूप काहूपै निवार्यो नहिं गयो है। ऐसो मिथ्याभाव लग्यो जीवके अनादिहीको, याहि अहंबुद्धि लिये नानाभांति भयो है॥ काहू समै काहूको मिथ्यात अंधकार भेदि, ममता उछेदि शुद्धभाव परिणयो है। तिनहीं विवेक धारि बंधको विलास डारि, आतम सकतिसौं जगत जीति लियो है॥ ११॥

आत्मभावान्करोत्यात्मा परभावान्सदा परः।
आत्मैव ह्यात्मनो भावाः परस्य पर एव ते ॥ ११ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—आत्मा आत्मभावान् करोति—आत्मा कहतां जीव द्रव्य, आत्म भावान् कहतां आपणा शुद्ध चेतनारूप अथवा अशुद्ध चेतनारूप रागद्वेष मोहभाव तिहिंकौं, करोति कहतां तिहिंरूप परिणवै छै। परः परभावान् सदा करोति—परः कहतां पुद्गल द्रव्य, परभावान् कहतां पुद्गल द्रव्यको ज्ञानावरणादिरूप पर्याय। सदा कहतां त्रिकाल गोचर, करोति कहतां करहिं छे। हि आत्मनो भावाः आत्मा एव—हि कहतां निहचासौं, आत्मनो भावाः कहतां जीवका परिणाम आत्मा एव जीव ही छे। भावार्थ-इसौ जो चेतना परिणामको जीव करै ते चेतन परिणाम फुनि जीव ही छै, द्रव्यांतर नहीं हूओ। परस्य भावाः पर एव—परस्य कहतां पुद्गल द्रव्यका, भावाः कहतां परिणाम, पर एव कहतां पुद्गल द्रव्य छै, जीव द्रव्य नहीं हूओ। भावार्थ-इसौ जो ज्ञानावरणादि कर्मको कर्ता पुद्गल छै, और वस्तु फुनि पुद्गल छै, द्रव्यांतर नहीं।

भावार्थ—यहां स्पष्ट कह दिया है कि हरएक द्रव्य अपनी २ अवस्थाका आप ही उपादान कारण है। जैसा उपादान कारण होता है वैसा ही कार्य होता है। सुवर्णकी डलीसे सुवर्णकी वस्तु, लोहेकी डलीसे लोहेकी वस्तु बनेगी। इसी तरह अचेतन जड़ अपनी अचेतन पर्यायका चेतन द्रव्य अपनी चेतन परिणतिका कर्ता है, ऐसा समझना ही यथार्थज्ञान है।

सवैया ३१ सा—शुद्धभाव चेतन अशुद्धभाव चेतन, दुहूंको करतार जीव और नहिं मानिये॥ कर्मपिंडको विलास वर्ण रस गन्ध फास, करता दुहूंको पुद्गल परवानिये॥ तातें वरणादि गुण ज्ञानावरणादि कर्म, नाना परकार पुद्गल रूप जानिये॥ समल विमल परिणाम जे जे चेतनके, ते ते सब अलख पुरुष यों बखानिये॥ १२॥

वसंततिलका छंद—अज्ञानतस्तु स तृणाभ्यवहारकारी ज्ञानं स्वयं किल भवन्नपि रज्यते यः।
पीत्वा दधीक्षुमधुराम्लरसातिगृध्या गां दोग्धि दुग्धमिव नूनमसौ रसालम्॥१२॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—यः अज्ञानतः तु रज्यते-यः कहतां जो कोई मिथ्यादृष्टी जीव, अज्ञानतः तु कहतां मिथ्यादृष्टि थकी ही, रज्यते कहतां कर्मकी विचित्रता विषै आपी जानि रंजइ छे सो जीव किसौ छै। सतृणाभ्यवहारकारी—सतृणं कहतां घास सेती अभ्यवहार कहतां आहार, कारी कहतां करै छै। भावार्थ इसो जो यथा हस्ती अन्न घासि मिल्या ही बराबरी जान खाइ छै, घासको नाजको विवेक नहीं करै छै। तथा मिथ्यादृष्टि जीव कर्मकी सामग्री आपणी जानै छै, जीवको कर्मको विवेक नहीं करै छै। किसौ छे। किल स्वयं ज्ञानं भवन् अपि—किल स्वयं कहतां निश्चयसे स्वरूप मात्र अपेक्षा, ज्ञानं भवन् अपि कहतां यद्यपि ज्ञान स्वरूप छै। और जीव किसौ छै। असौ नूनं रसालं पीत्वा गां दुग्धं दोग्धि

इव-असौ कहतां यह छे यो विद्यमान जीव, नूनं कहतां निहचासौं, रसालं कहतां शिखरणि, पीत्वा कहतां पीकरि इसौ मानै छै, गां दोग्धि इव कहतां गायका दूधकौं पीवै छै। जानौं किंसे करि, दधीक्षुमधुराम्लरसातिगृध्या-दधीक्षुमधुर कहतां शिखरनी माहिं मीठो, आम्ल कहतां खाटो, रस कहतां इसौ स्वाद, तिहिकी, अति गृध्या कहतां अति ही आशक्ति सो। भावार्थ-इसौ जो स्वाद लंपट होतां शिखरणी पीवैं छै, स्वाद भेद नहीं करै छै। इसो निर्भेदपनो मानै छै, जिसो गाइको दूध पीवतां निर्भेदपनौं मानिजे।

भावार्थ-यहां मिथ्यादृष्टी जीवकी अज्ञान दशाका दृष्टांत है, जैसे हाथी अन्न व घास मिला हुआ ही खाता है भेद नहीं करता है, वैसे शिखरणी खाता हुआ भी खाटे मीठे रसका भेद न करके मानों मैंने दूध ही पिया ऐसा जानता है। वैसे अज्ञानी जीव, जीव और कर्म पुद्गलका भेद न करके दोनोंको एक रूप ही अनुभव करता है।

सवैया ३१ सा—जैसे गजराज नाज घासके गरास करि, भक्षण स्वभाव नहीं भिन्न रस लियो है। जैसे मतवारो नहि जाने सिखरणि स्वाद, जुंगमें मगन कहे गऊ दूध पियो है॥ तैसे मिथ्यामति जीव ज्ञानरूपी है सदीव, पग्यो पाप पुण्यसौं सहज शुन्न हियो है। चेतन अचेतन दुहूकों मिश्र पिंड लखि, एकमेक माने न विवेक कछु कियो है॥ १३॥

शार्दूलविक्रीडितछंद- अज्ञानान्मृगतृष्णिकां जलधिया धावन्ति पातुं मृगा।
अज्ञानात्तमसि द्रवन्ति भुजगाध्यासेन रज्जौ जनाः॥
अज्ञानाच्च विकल्पचक्रकरणाद्वातोत्तरङ्गाब्धिव-
च्छुद्धज्ञानमया अपि स्वयममी कर्त्रीभवन्त्याकुलाः॥ १३॥

खण्डान्वयसहित अर्थ-अमी स्वयं शुद्धज्ञानमया अपि अज्ञानात् आकुलाः कर्त्रीभवंति-अमी कहतां सर्व संसारी मिथ्यादृष्टी जीव, स्वयं कहतां सहज थकी, शुद्धज्ञानमया अपि कहतां शुद्ध स्वरूप छे; अज्ञानात् कहतां मिथ्यादृष्टि थकी, आकुला कहतां आकुलित होते हुए, कर्त्रीभवंति कहतां बलात्कार ही कर्ता होहि छै। किसाथकी विकल्पचक्रकरणात्-विकल्प कहतां अनेक रागादि तिहिको, चक्र कहतां समूह तिहिकै, करणात् कहतां करिवा थकी। कौनकी नाईं, वातोत्तरंगाब्धिवत्-वात कहतां वहालि तिहिकरि, उत्तरंग कहता डोल्यो छै, उछल्यो छे, अब्धि कहतां समुद्र तिहिकी नाईं। भावार्थ इसौ-जो यथा समुद्र स्वरूप निश्चल छे, वहालिके प्रेरइ उछलै छे, उछलवाको कर्ता फुनि होइ छे। तथा जीव द्रव्य स्वरूपतहि अकर्ता छे। कर्मसंयोग थकी विभावरूप परिणवै छे, तिहितै विभावपणाको कर्ता फुनि होइ छे, परि अज्ञान थकी, स्वभाव तो नहीं; दृष्टांत कहीजै। मृगाः मृगतृष्णिका अज्ञानात् जलधिया पातुं धावंति-मृगाः कहतां हरिण, मृगतृष्णिकां कहतां मरीचिकाको, अज्ञानात् कहतां मिथ्या भांति थकी, जलधिया कहतां पानीकी बुद्धिकरि, पातुं

धावंति कहतां पोवाकहु दौरहि छे। जनाः रज्जौ तमसि अज्ञानात् भुजंगाध्यासेन द्रवंति–जनाः कहतां मनुष्यजीव, रज्जौ कहतां जेवरी माहिं, तमसि कहतां अंधकार विषै, अज्ञानात् कहतां भ्रांति थकी, भुजंगाध्यासेन कहतां सर्पकी बुद्धिकरि, द्रवंति कहतां डरपै छे ॥१३॥

भावार्थ–यहां भी यही बताया है कि जैसे मृग अज्ञानसे मरीचिकाको जल जान व मूर्ख मानव रस्सीको सर्प जान आकुलित होता है, वैसे ही अज्ञानी जीव कर्मजनित अवस्थाको अपनी मानि क्षोभित समुद्रकी तरह अनेक रागद्वेष विकल्प करता है। अपने निश्चल शुद्ध स्वभावके ज्ञानसे भ्रष्ट है। तत्त्वज्ञान० में कहा है–

व्यक्ताव्यक्तविकल्पानां वृंदैरापूरितो भृशं। लब्धस्तेनावकाशो न शुद्धचिद्रूपचिंतने ॥ २२।५ ॥

भावार्थ–यह अज्ञानी जीव प्रगट व अप्रगट अनेक संकल्प विकल्पोंसे खूब घिरा हुआ रहता है और मैं शुद्ध चैतन्य स्वरूप हूं इस विचारके लिये कभी भी समय नहीं निकलता है।

सवैया ३१ सा.–जैसे महा धूपके तपतिमें तिसाये मृग, भरमसे मिथ्याजल पीवनेको धायो है। जैसे अन्धकार मांहि जेवरी निरखि नर, भरमसों डरपि सरप मानि आयो है॥ अपने स्वभाव जैसे सागर है थिर सदा, पवन संयोगसों उछरि अकुलायो है। तैसे जीव जड़सों अव्यापक सहज रूप, भरमसों करमको करता कहायो है ॥ १४ ॥

वसंततिलकाछंद–ज्ञानाद्विवेचकतया तु परात्मनोर्यो, जानाति हंस इव वाःपयसोर्विशेषं ।
चैतन्यधातुमचलं स सदाधिरूढो, जानीत एव हि करोति न किञ्चनापि ॥१४॥

खंडान्वय सहित अर्थ–यः तु परात्मनोः विशेषं जानाति–यः तु कहतां जो कोई सम्यग्दृष्टी जीव, पर कहतां द्रव्यकर्म पिंड, आत्मा कहतां शुद्ध चैतन्य मात्र, तिहिको विशेषं कहतां भिन्नपनो, जानाति कहतां अनुभवै छे, किसै करि अनुभवै छे, ज्ञानात् विवेचकतया–ज्ञानात् कहतां सम्यग्ज्ञान थकी, विवेचकतया कहतां लक्षणभेद करि, ताको ब्यौरो-शुद्ध चैतन्य मात्र जीवको लक्षण, अचेतनपनो पुद्गलको लक्षण, तिहि तहिं जीव पुद्गल भिन्न भिन्न छे इसो भेद भेदज्ञान कहिजै। दृष्टांत कहिजे छे। वाः पयसोः हंस इव–वाः कहतां पानी पयः कहतां दूध, हंस इव कहतां हंसकी नाईं। भावार्थ इसो–जो यथा हंस दूध पानी भिन्न भिन्न करे छे तथा जो कोई जीव पुद्गल भिन्न भिन्न अनुभवे छे। स जानीत एव किंचनापि न करोति स कहतां सो जीव, जानीत एव–ज्ञापक तो छे, किंचनापि कहतां परमाणु मात्र फुनि, न करोति कहतां करता तो न छे। कैसा है ज्ञानी जीव, स सदा अचलं चैतन्यधातुं विरूढः–कहतां वह सदा निश्चल चैतन्य धातुमय आत्माके स्वरूप विषैं दृढ़ता करि रह्या छे।

भावार्थ–यहां बताया है कि जैसे हंस दूध व पानीका भेदविज्ञान रखता हुआ दूधको पीता है व पानीको छोड़ देता है, वैसे सम्यग्दृष्टी जीव शुद्ध आत्माको ग्रहण करता है और परभावोंको छोड़ देता है–वह परभावोंका ज्ञाताद्रष्टा मात्र रहता है, कर्ताधर्ता नहीं होता है।

अमुक कर्मने ऐसा फल दिया यह जानता मात्र है, कर्मको व कर्मके फलको अपनाता नहीं है। ऐसे ज्ञानीको भेदज्ञानके प्रतापसे अपनापना अपने शुद्ध स्वरूपमें ही प्रगट होता है।

तत्वज्ञान०में कहा है—

ये नरा निरहंकारं वितन्वंति प्रतिक्षणं। अद्वैतं ते स्वचिद्रूपं प्राप्नुवंति न संशयः ॥४।१०॥

भावार्थ—जो ज्ञानी मानव प्रति समय परभावोंमें अहंकार बुद्धि नहीं करते हैं वे बिना संशयके अनुपम ऐसे अपने शुद्ध चैतन्य भावका आनन्द पाते हैं।

सवैया ३१ सा—जैसे राजहंसके वदनके सपरसत, देखिये प्रगट न्यारो क्षीर न्यारो नीर है॥ तैसे समकितीके सुदृष्टिमें सहज रूप, न्यारो जीव न्यारो कर्म न्यारो ही शरीर है॥ जब शुद्ध चेतनके अनुभौ अभ्यासे तब, भासे आप अचल न दूजो और सीर है॥ पूरव करम उदै आइके दिखाई देइ, करता न होइ तिन्हको तमासगीर है॥ १५॥

मंदाक्रांता छंद—ज्ञानादेव ज्वलनपयसोरौष्ण्यशैत्यव्यवस्था,
ज्ञानादेवोल्लसति लवणस्वादभेदव्युदासः।
ज्ञानादेव स्वरसविकसन्नित्यचैतन्यधातोः,
क्रोधादेश्च प्रभवति भिदा भिन्दती कर्तृभावम् ॥ १६॥

खंडान्वय सहित अर्थ—ज्ञानात् एव स्वरसविकसन्नित्यचैतन्यधातोः क्रोधादेः च भिदा प्रभवति—ज्ञानात् एव कहतां शुद्ध स्वरूप मात्र वस्तुकौ अनुभव करतां ही, स्वरस कहतां चेतना स्वरूप तिहि करि विकसन् कहतां प्रकाशमान छे, नित्यं कहतां अविनश्वर इसौ जो, चैतन्यधातोः कहतां शुद्ध जीव स्वरूपकौ, क्रोधादेश्च कहतां जावंत अशुद्ध चेतना रूप रागादि परिणामको, भिदा कहतां भिन्नपनो, प्रभवति कहतां होइ छे। भावार्थ इसौ—जो सांप्रत जीव द्रव्य रागादि अशुद्ध चेतना रूप परिणयो छे, सो तो इसौ प्रतिभासे छे, जो ज्ञान क्रोध रूप परिणयो छे, सो ज्ञान भिन्न क्रोध भिन्न इसौ अनुभवतां अति ही कठिन छे। उत्तरु इसौ जो साचो ही कठिन छे, पर वस्तुकौ शुद्ध स्वरूप विचारतां भिन्नपनो स्वाद आवइ छे। किसो छै भिदा। कर्तृभावं भिंदती—कर्तृभावं कहतां कर्मको कर्ता जीव इसी भ्रांति तिहिको, भिंदती कहतां मूल तहिं दूर करै छे। दृष्टांत कहिजै छे। एव ज्वलनपयसोः उष्णशैत्यव्यवस्था ज्ञानात् उल्लसति—एव कहतां यथा, ज्वलन कहतां आगि, पयसोः कहतां पानी त्यहकी, उष्ण कहतां ऊराहो, शैत्य कहतां शीतपनो त्यहकी, व्यवस्था कहतां भेद, ज्ञानात् कहतां निजस्वरूप ग्राही ज्ञान थकी, उल्लसति कहतां प्रगट होइ छे। भावार्थ इसौ—यथा आगि संयोग करि पानी तातो कीजे छे, कहतां फुनि तातो पानी इसो कहिजै छे तथापि स्वभाव विचारतां उष्णपनो आगिको छे, पानी तो स्वभाव करि शीलौ छे इसौ भेदज्ञान विचारतां उपजै छे। और दृष्टांत—एव लवणस्वादभेदव्युदासः

ज्ञानात् उल्लसति–एव कहतां यथा, लवण कहतां खारो रस तिहको, स्वाद भेद कहतां व्यंजनतहिं भिन्नपनो करि खारो लोणको स्वभाव इसो जानपनो तिह करि, व्युदासः कहतां व्यंजन खारो इसो कहिजे थो जानिजो थो सो छूटयो। ज्ञानात् कहतां निज स्वरूपको जानिपनो तिहि थकी, उल्लसति कहतां प्रगट होइ छे। भावार्थ इसौ–जो यथा लवणके संयोग व्यंजन समारिजे, खारो व्यंजन इशो कहतां कहिजै छे, जानिजै फुनि छे, स्वरूप विचारतां खारो लोन, व्यंजन जिसो छे तिसो ही छे।

भावार्थ–यहां भी भेदज्ञानके दो दृष्टांत दिये हैं। आगके संयोगसे पानी गर्म होता है उसे गर्म पानी कहा भी जाता है। परन्तु गरमी जलका स्वभाव नहीं है, जलका स्वभाव शीतल है। साग भाजी नमक डालकर बनाते हैं स्वाद लेते हैं और ऐसा मानते हैं कि यह भाजी बहुत ही स्वादिष्ट है। वास्तवमें जो नमकका स्वाद है वही व्यंजनमें झलकता है। समझदार सागके स्वादको व नमकके स्वादको भिन्न२ जानता है। इसी तरह भेदज्ञानी महात्मा क्रोधके स्वादको और आत्माके ज्ञानानन्दमय स्वभावको भिन्न२ ही अनुभव करते हैं। क्रोधादिका मैं कर्ता इस भ्रांतिको कभी भी नहीं प्राप्त होते हैं। क्रोधादि कर्मजनित विकार हैं, क्रोध कषायका अनुभाग है, पुद्गल है, मेरा स्वभाव नहीं है, ऐसा भलेप्रकार जानते हैं। तत्वज्ञान०में कहा है–

चेतनाचेतने रागो द्वेषो मिथ्यामतिर्मम। मोहरूपमिदं सव चिद्रूपोहं हि केवलः॥ ४५॥

भावार्थ–चेतन व अचेतन पदार्थोंमें राग व द्वेष करना मिथ्या बुद्धि है, यह सब मोहका प्रभाव है, मैं तो शुद्ध चैतन्य रूप हूं, मोहसे कोई सम्बन्ध नहीं है।

सवैया ३१ सा–जैसे उषणोदकमें उदक स्वभाव सीत, आगकी उषणता फरस ज्ञान लखिये। जैसे स्वाद व्यंजनमें दीसत विविधरूप, लोणको सुवाद खारो जीभ ज्ञान चखिये॥ तैसे घट पिंडमें विभावता अज्ञानरूप ज्ञानरूप जीव भेद ज्ञानसों परखिये। भरमसों करमको करता है चिदानंद दरव विचार करतार नाम नखिये॥ १६॥

श्लोक–अज्ञानं ज्ञानमप्येवं कुर्वन्नात्मानमञ्जसा।
स्यात्कर्त्तात्मात्मभावस्य परभावस्य न क्वचित्॥१६॥

खंडान्वय सहित अर्थ–एवं आत्मा आत्मभावस्य कर्ता स्यात्–एवं कहतां सर्वथा प्रकार, आत्मा कहतां जीव द्रव्य, आत्मभावस्य कर्ता स्यात् कहतां आपणां परिणामकौ कर्ता होइ। परभावस्य कर्त्ता न क्वचित् स्यात्–परभावस्य कहतां कर्मरूप अचेतन पुद्गल द्रव्यकौ, कर्ता क्वचित् न स्यात् कहतां कदहूं तीनिहूं काल कर्ता न होइ। किसौ छे आत्मा। ज्ञानं अपि आत्मानं कुर्वन्–ज्ञानं कहतां शुद्ध चेतन मात्र प्रगट रूप सिद्ध अवस्था, अपि कहतां तिहकौ फुनि, आत्मानं कुर्वन् कहतां अनुभवै तद्रूप परिणवै छे। औरु किसौ छे

अज्ञानं अपि आत्मानं कुर्वन्-अज्ञानं कहतां अशुद्ध चेतनारूप विभाव परिणाम, अपि कहतां तिहिरूप फुनि, आत्मानं कुर्वन् कहतां आपुनिपै तद्रूप परिणवतो होतो। भावार्थ-इसौ जो जीवद्रव्य अशुद्ध चेतनारूप परिणवै छै, शुद्ध चेतनारूप परिणवै छै, तिहितै तिहि काल जिसी चेतनारूप परिणवै छै, तिहि काल तिसी ही चेतना सहु व्याप्य व्यापकरूप छै, तिहितैं तिहिं काल तिसी ही चेतनाको कर्ता छे। तौ फुनि पुद्गल पिंडरूप छे, ज्ञानावरणादि कर्म त्यहसौं तौ व्याप्य व्यापकरूप नहीं। तिहितैं त्यहको कर्ता न छे। अंजसा-कहतां समस्तपनै इसौ अर्थ छे।

भावार्थ-यहां यह बताया है कि आत्मा अपने ही चैतन्यमई भावोंका कर्ता होसक्ता है, पुद्गलका किसी भी तरह उपादान कर्ता नहीं होसक्ता है। जब पर निमित्त मोहनी कर्मका नहीं होता है तब तो आत्मा अपने शुद्ध आत्मीक ज्ञानरूप भावोंमें ही परिणमन करता है तथा जब मोहनीय कर्मका उदय निमित्त होता है तब अशुद्ध चेतना रूप परिणमन करता है।

दोहा—ज्ञान मात्र ज्ञानी करे, अज्ञानी अज्ञान। द्रव्यकर्म पुद्गल करे, यह निश्चै परमाण ॥१७॥

श्लोक—आत्मा ज्ञानं स्वयं ज्ञानं ज्ञानादन्यत्करोति किं।
परभावस्य कर्त्तात्मा मोहोऽयं व्यवहारिणाम् ॥ १७ ॥

खंडान्वय सहित अर्थ-आत्मा ज्ञानं करोति—आत्मा कहतां चेतन द्रव्य, ज्ञानं कहतां चेतना मात्र परिणाम, करोति कहतां करै छे। किसा थकी, स्वयं ज्ञानं-कहतां जिहिकारण तहि आत्मा आपुनपै चेतना परिणाम मात्र स्वरूप छे। ज्ञानात् अन्यत् करोति किं—ज्ञानात् अन्यत् कहतां चेतन परिणाम तहिं भिन्न अचेतन पुद्गल परिणाम कर्म तिहिंको, किं करोति कहतां करै कायों, अपि तु न करोति-सर्वथा न करै। आत्मा परभावस्य कर्ता अयं व्यवहारिणं मोहः—आत्मा कहतां चेतन द्रव्य, परभावस्य कहतां ज्ञानावरणादि कर्मको करै छे, अयं कहतां इसौ जानपनौ, इसौ कहिवो, व्यवहारिणां मोहः कहतां मिथ्यादृष्टि जीवहकौ अज्ञान छे। भावार्थ इसौ जो कहिवाको इसौ-छे जो ज्ञानावणादि कर्म्मको कर्ता जीउ छे, सो कहिवो फुनि झूठो छे।

भावार्थ-इसमें भी यही बात बताई है कि जब आत्मा ज्ञान स्वरूप है तब उसके चैतन्यमई भावका ही होना संभव है, वह किसी भी तरह पुद्गलकी अवस्थाका उपादान कारण नहीं होसक्ता है।

दोहा—ज्ञान स्वरूपी आतमा, करे ज्ञान नहि और। द्रव्यकर्म चेतन करे, यह व्यवहारी दौर ॥१८॥

वसंततिलिका छंद-जीवः करोति यदि पुद्गलकर्म नैव कस्तर्हि तत्कुरुत इत्यभिशङ्कयैव।
एतर्हि तीव्ररयमोहनिवर्हणाय संकीर्त्यते शृणुत पुद्गलकर्मकर्तृ ॥१८॥

खण्डान्वय सहित अर्थ-पुद्गलकर्मकर्तृ संकीर्त्यते-पुद्गल कर्म कहतां द्रव्य पिंडरूप

आठ कर्म त्यहको, कर्तृ कहतां कर्ता, संकीर्त्यते कहतां ज्यों छे त्यों कहिजे छे। श्रृणुत कहतां सावधान होइ करि तुह सुणहु। प्रयोजन कहिजे छे। एतर्हि तीव्ररयमोहनिवर्हणाय-एतर्हि कहतां एती वेलां, तीव्ररय कहतां दुर्निवार उदय छे जिहिको इसौ जो मोह कहतां विपरीत ज्ञान तिहिंके, निवर्हणाय कहतां मूलतहि दूरकरिवाके निमित्त। विपरीतपनो क्रिसे करि जानिजे छे। इति अभिशङ्कया एव-इति कहतां ज्यों करिजे छे, अभिशंकया कहतां आशंका करि, एव कहतां निहचासों। सो आशंका किसी छे। यदि जीव एव पुद्गल कर्म न करोति तर्हि कः तत् कुरुते-यदि कहतां जो, जीव एव कहतां चेतन द्रव्य, पुद्गल कर्म कहतां पिंडरूप आठ कर्मको, न करोति कहतां नहीं करइ छे, तर्हि कहतां जो कः तत् कुरुते कहतां कौन करै छे। भावार्थ इसौ-जो जीवके करतां ज्ञानावरणादि कर्म होइ छे। इसी भ्रांति उपजै छे। तिहि प्रति उत्तर इसौ जो पुद्गलद्रव्य परिणामी छे। स्वयं सहज ही कर्मरूप परिणवै छे।

भावार्थ-यहांपर शिष्यकी इस शंकाका खुलासा है कि यदि ज्ञानावरणादि आठ कर्मका उपादान कर्ता जीव नहीं है तो कौन है, इसीका समाधान करेंगे। ये आठ कर्म पुद्गलमई हैं इसलिये इनका उपादान कर्ता भी पुद्गल है।

सवैया २३ सा-पुद्गल कर्म करे नहिं जीव, कही तुम मैं समझी नहिं तैसी। कौन करे यहु रूप कहो अब, को करता करनी कहु कैसी॥ आप ही आप मिले विछुरे जड़, क्यों करि मो मन संशय ऐसी। शिष्य संदेह निवारण कारण, बात कहे गुरु है कछु जैसी॥१९॥

उपजाति-स्थितेत्यविघ्ना खलु पुद्गलस्य स्वभावभूता परिणामशक्तिः।
तस्यां स्थितायां स करोति भावं यमात्मनस्तस्य स एव कर्त्ता॥१९॥

खंडान्वयसहित अर्थ-इति खलु पुद्गलस्य परिणामशक्तिः स्थिता-इति कहतां एनै प्रकार, खलु कहतां निहचासों। पुद्गलस्य कहतां मूर्ति द्रव्यको, परिणामशक्तिः कहतां परिणमन स्वरूप स्वभाव, स्थिता कहतां अनादिनिधन छती छे। किसी छे-स्वभावभूता कहतां सहज थकी है, और किसी छे। अविघ्ना कहतां निर्विघ्नपने छे। तस्यां स्थितायां सः आत्मनः यं भावं करोति स तस्य कर्ता भवेत्-तस्यां स्थितायां कहतां तिस परिणाम शक्तिके होते संते, स कहतां पुद्गल द्रव्य, आत्मनः कहतां आपणा अचेतन द्रव्य सम्बन्धी, यं भावं करोति कहतां जिहि परिणाम कहुं करै छे, स कहतां पुद्गलद्रव्य, तस्य कर्ता भवेत् कहतां तिहि परिणामको कर्ता होइ। भावार्थ-इसौ जो ज्ञानावरणादि कर्मरूप पुद्गलद्रव्य परिणवै छै, तिहि भावको कर्ता फुनि पुद्गलद्रव्य होइ॥ १९॥

भावार्थ-यहां यह बताया है कि जितने मूल छः द्रव्य हैं वे सब अपने ही गुणोंमें परिणमन करते रहते हैं। पुद्गलद्रव्य कार्मणवर्गणा तीन लोकमें व्याप्त हैं वे स्वयं ही जीवोंके

अशुद्ध भावोंका निमित्त पाकर ज्ञानावरणादि कर्मरूप होजाती हैं। इसलिये द्रव्यकर्मका उपादानकर्ता पुद्गल है यही निश्चय करना चाहिये–मिट्टीसे घड़ा बनता है, वह घड़ा मिट्टीको छोड़कर और कुछ नहीं है। रुईसे कपड़ा बनता है, कपड़ा रुईको छोड़कर और कोई अन्य द्रव्य नहीं है। हरएक द्रव्य स्वयं रूपान्तर होता है, यह शक्ति उसमें अनादिकालसे है।

दोहा—पुद्गल परिणामी दरव, सदा परणवे सोय। याते पुद्गल कर्मका, पुद्गल कर्ता होय ॥२०॥

उपजाति छंद–स्थितेति जीवस्य निरन्तराया स्वभावभूता परिणामशक्तिः।
तस्यां स्थितायां स करोति भावं यं स्वस्य तस्यैव भवेत्स कर्ता ॥२०॥

खण्डान्वय सहित अर्थ–जीवस्य परिणामशक्तिः स्थिता इति–जीवस्य कहतां चेतनद्रव्यको, परिणाम शक्तिः कहतां परिणमनरूप सामर्थ्य, स्थिता कहतां अनादि तहि छती छे। इति कहतां इसौ द्रव्यको सहज छे। स्वभावभूता–जो शक्ति, स्वभावभूता कहतां सहज तहि छे, औरु किसी छ, निरंतराया–कहतां प्रवाहरूप छे, एक समय मात्र खंड नहीं। तस्यां स्थितायां–कहतां तिहि परिणाम शक्तिको होते संते, स स्वस्य यं भावं करोति–स कहतां जीव वस्तु, स्वस्य कहतां आप सम्बंधी, यं भावं कहतां जो कोई शुद्ध चेतना रूप अशुद्ध चेतनारूप परिणाम, करोति कहतां करै छे। तस्य एव स कर्ता भवेत्–तस्य कहतां तिहिं परिणामकौ, एव कहतां निहचासौं, स कहतां जीव वस्तु, कर्ता कहतां करण-शील, भवेत् कहतां होइ छे। भावार्थ इसौ–जो जीव द्रव्यको अनादि निधन परिणमन शक्ति छे ॥ २० ॥

भावार्थ–यहां यह बताया है कि जीव द्रव्य भी अनादिसे परिणमनशील है–इसका भी यह स्वभाव है, तब ही यह जगतमें झलक रहा है और यह अनेक प्रकार भावोंको करता है। कभी अशुद्ध रागद्वेष भावोंमें परिणमन कर जाता है कभी शुद्ध शांत भावोंमें परिणमन करता है–जब कर्मोदय निमित्त होता है तब अशुद्ध चैतन्य भावोंमें परिणमता है। परन्तु जब कर्मोदय निमित्त नहीं होता है तब अपने शुद्ध ज्ञानानंदमें ही परिणमन करता है।

दोहा—जीव चेतना संजुगत, सदा काल सब ठोर। तातैं चेतन भावको, करता जीव न और ॥२०॥

आर्या छंद–ज्ञानमय एव भावः कुतो भवेद् ज्ञानिनो न पुनरन्यः।
अज्ञानमयः सर्वः कुतोऽयमज्ञानिनो नान्यः ॥ २१ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ–इहां कोई प्रश्न करै छे। ज्ञानिनः ज्ञानमय एव भावः कुतः भवेत् पुनः न अन्यः–ज्ञानिनः कहतां सम्यग्दृष्टिकौं, ज्ञानमय एव भावः कहतां भेदविज्ञान स्वरूप परिणाम, कुतो भवेत्–कौन कारण थकी होइ, न पुनः अन्यः कहतां अज्ञानरूप न होइ। भावार्थ इसौ–जो सम्यग्दृष्टि जीव कर्मकौं उदय भोगवतां विचित्र

रागादिरूप परिणवै छै। सो ज्ञान भावकौ कर्ता छे, और ज्ञान भाव छे अज्ञान भाव नहीं सो किसा छे। इसी कोई बूझे छे। अयं सर्व अज्ञानिनः अज्ञानमयः कुतः न अन्यः- अयं कहतां परिणाम, सर्वः कहतां जावंत परिणमन, अज्ञानिनः कहतां मिथ्यादृष्टिको, अज्ञानमयः कहतां अशुद्ध चेतनारूप बन्धकौ कारण होइ, कुतः कोई प्रश्न करै छे, इसी सो किसा छै, न अन्यः कहतां ज्ञान जातिको न होय। भावार्थ इसौ-जो मिथ्यादृष्टिकौ जो कछु परिणाम सो बंधकौ कारण छे।

भावार्थ-यहां किसीने प्रश्न किया कि सम्यग्दृष्टि ज्ञानी है उसके भी रागद्वेष भाव होते हैं तौभी उसको ज्ञानी ही कहते हैं और मिथ्यादृष्टि अज्ञानी है उसके भी वैराग्यभाव होते हैं तौभी उसको अज्ञानी ही कहते हैं, इसका क्या कारण है?

अडिल्ल—ज्ञानवन्तको भोग निर्जरा हेतु है। अज्ञानीको भोग बन्ध फल देतु है॥
यह अचरजकी बात हिये नहि आवही। पूछे कोऊ शिष्य गुरू समझावही॥२१॥

ज्ञानिनो ज्ञाननिर्वृत्ताः सर्वे भावा भवन्ति हि।
सर्वेऽप्यज्ञाननिर्वृत्ता भवन्त्यज्ञानिनस्तु ते॥ २२॥

खण्डान्वय सहित अर्थ-हि ज्ञानिनः सर्वे भावाः ज्ञाननिर्वृत्ताः भवन्ति-हि कहतां निहचासैं, ज्ञानिनः कहतां सम्यग्दृष्टिकौ, सर्वे भावाः कहतां जेता परिणाम छे, ज्ञाननिर्वृत्ताः भवंति कहतां ज्ञान स्वरूप होइ। भावार्थ इसौ-जो सम्यदृष्टिको द्रव्य शुद्धत्वरूप परिणयो छे। तिहितैं सम्यग्दृष्टिको जो कोई परिणाम होइ सो ज्ञानमय शुद्धत्व जाति रूप होइ, कर्मको अबंधक होइ। तु ते सर्वे अपि अज्ञानिनः अज्ञाननिर्वृत्ताः भवन्ति-तु कहतां यौ फुनि छे, ते कहतां यावन्त परिणाम सर्वे अपि शुभोपयोग रूप अथवा अशुभोपयोग रूप। अज्ञानिनः कहतां मिथ्यादृष्टिको, अज्ञाननिवृत्ताः कहतां अशुद्धत्व करि निपज्या छे, भवंति कहतां छता छे। भावार्थ इसौ-जो सम्यग्दृष्टि जीवको मिथ्यादृष्टी जीवको क्रिया तो एकसी छे, क्रिया सम्बंधी विषय कषाय फुनि एकसा छै; परि द्रव्यको परिणमन भेद छै। व्यौरो-सम्यदृष्टिको द्रव्य शुद्धत्वरूप परिणयौ छे तिहितैं जो कोई परिणाम बुद्धिपूर्वक अनुभवरूप छे अथवा विचार रूप छे अथवा व्रत क्रियारूप छे अथवा भोगाभिलाष रूप छे अथवा चारित्रमोहके उदय क्रोध, मान, माया, लोभ रूप छे सो सगलो ही परिणाम ज्ञान जाति माहै घटै, जिहितै जो कोई परिणाम छे सो संवर निर्जराको कारण छे इसो ही कांई द्रव्य परिणमनको विशेष छे। मिथ्यादृष्टिको द्रव्य अशुद्धरूप परिणयो छे तिहितइ जो कोई मिथ्यादृष्टिको परिणाम अनुभव रूप तो छतो ही नहीं तातहिं सुत्र सिद्धांतको पाठ रूप छे, अथवा व्रत तपश्चरण रूप छे अथवा दान पूजा दया शील रूप छे। अथवा

भोगाभिलाप रूप छे अथवा क्रोध, मान, माया, लोभ रूप छे। इसो सगलो परिणाम अज्ञान जातिको छे जातहिं बंधको कारण छे संवर निर्जराको कारण नहीं, द्रव्यको इसो ही परिणमन विशेष छे।

भावार्थ—यहां यह बताया है कि सम्यग्दृष्टीके भावोंमेंसे अनंत संसारका कारण बंध करनेवाले मिथ्यात्व और अनन्तानुबंधी कषायका उदय नहीं रहा है। इसलिये उसके भावोंकी जाति ऐसी निर्मल होगई है कि उसके सर्व ही भाव सम्यग्दर्शनके भावसे शून्य नहीं होते—उसके भीतर भेदविज्ञान जगा करता है, वह सदा अपनी शुद्ध परिणतिको ही अपना समझता है। इसके सिवाय कर्मोंके उदयसे—तीव्र या मंदकषायसे जो योगाभिलाषरूप व दान पूजा जप तप रूप भाव होते हैं उनको अपना निज भाव नहीं समझता है। वह कर्मकृत भावोंको नाटकके देखनेवालेके समान देख लेता है। उनमें रंजायमान नहीं होता है, हेय ही समझता है, इससे उसके उदय प्राप्त कर्म झड़जाते हैं। उसके संसारको कारणरूप ऐसा कर्मबंध नहीं होता है। मिथ्यादृष्टी जीवके भावोंमें सदा ही मिथ्यात्व व अनंतानुबंधी कषायका उदय रहता है, जिससे उसके भीतर आत्मानुभवकी गंध भी नहीं—उसके भावोंमें शुद्ध आत्माका ज्ञान श्रद्धान नहीं। उसके विषय कषायके त्यागकी यथार्थ बुद्धि नहीं उपजती है; इससे उसके भोगोंकी आशक्तता होती है। तप जप आदि भी इंद्रियजनित सुखकी हदको पानेके भावसे ही करता है, उसको शुद्ध अतीन्द्रिय आनन्दकी पहिचान नहीं है। इसलिये उसका ममत्व संसारकी ही ओर है, इसलिये उसके उदय प्राप्त कर्म मात्र झड़ते ही नहीं हैं किन्तु नवीन तीव्र बंध भी करा देते हैं। सम्यग्दृष्टीका स्वामित्व संसारसे हट गया है, मिथ्यादृष्टी संसारका अधिपति बना रहता है इसीसे क्रिया एक होनेपर भी सम्यग्दृष्टी ज्ञानी है मिथ्यादृष्टी अज्ञानी है। तत्व०में कहा है—

शुद्धचिद्रूपके रक्तः शरीरादिपरांगमुक्तः। राज्यं कुर्वन्न बंध्येत कर्मणां भरतो यथा ॥ १२ ॥
स्मरन् स्वशुद्धचिद्रूपं कुर्यात् कार्यशतान्यपि। तथापि न हि बध्येत धीमानशुभकर्मणा ॥१३,१४॥

भावार्थ—जो कोई शुद्ध आत्मानंदमें प्रेमालु है और संसार शरीरभोगोंसे उदास है वह राज्य करता हुआ भी भरत चक्रवर्तीके समान कर्मोंसे बंधता नहीं है। सम्यग्दृष्टी बुद्धिमान ज्ञानी अपने शुद्ध आत्मस्वरूपको स्मरण करते हुए यदि सैकड़ों भी लौकिक कार्य करे तौभी अशुभ कर्मोंसे जो संसारके कारण हैं उनसे नहीं बंधता है।

सवैया ३१ सा—दया दान पूजादिक विषय कषायादिक, दुहु कर्म भोग पै दुहूको एक खेत है। ज्ञानी मूढ करम करत दीसे एकसे पै परिणाम, परिणाम भेद न्यारो न्यारो फल देत है ॥ ज्ञानवंत करनी करें पै उदासीन रूप, ममता न धरे ताते निर्जराको हेतु है। वह करतूति मूढ करे पै मगनरूप, अंध भयो ममतासों बंध फल लेत है ॥ २२ ॥

श्लोक—अज्ञानमयभावानामज्ञानी व्याप्य भूमिकाः।
द्रव्यकर्मनिमित्तानां भावानामेति हेतुताम् ॥ २३ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—इसो कह्यो छे सम्यग्दृष्टि जीव मिथ्यादृष्टी जीवकी बाह्य क्रिया तो एकसी छे, परि द्रव्य परिणमन विशेष छे। सो विशेषको अनुसार दिखाइने छे। सर्वथा तो प्रत्यक्ष ज्ञान गोचर छै। अज्ञानी द्रव्यकर्मनिमित्तानां भावानां हेतुतां एति—अज्ञानी कहतां, मिथ्यादृष्टी जीव, द्रव्य कर्म कहतां धारा—प्रवाहरूप निरंतरपने बंधे छे। पुद्गल द्रव्यको पर्याय रूप कार्मण वर्गणा ज्ञानावरणादि कर्म पिंडरूप बन्धे छे। जीवका प्रवेश सो एक क्षेत्रावगाही छे। परस्पर बंध्यबंधक भाव फुनि छे, तिहिकौ निमित्तानां कहतां बाह्य कारण रूप छे। इसा भावानां कहतां मिथ्यादृष्टिको मिथ्यात्व रागद्वेष रूप अशुद्ध परिणाम। भावार्थ इसौ—जो यथा कलशरूप मृतिका परिणवै छै। यथा कुम्भकारका परिणाम करि वाका बाह्य निमित्त कारण छे, व्याप्य व्यापक रूप न छै तथा ज्ञानावरणादिक कर्म पिंडरूप पुद्गलद्रव्य स्वयं व्याप्य व्यापकरूप छै तथापि जीवका अशुद्ध चेतनरूप मोह रागद्वेषादि परिणाम बाह्य निमित्त कारण छे, व्याप्य व्यापकरूप तो न छे। त्यह परिणामहके हेतुतां कहतां कारणपनो, एति कहतां आप परिणवै छे। भावार्थ इसौ—जो कोई जानिसे जीव द्रव्य तो शुद्ध छै उपचार मात्र कर्मबंधको कारण होइ छे सो यों तो नहीं। आपणपै मोह रागद्वेष अशुद्ध चेतना परिणामरूप परिणवै छे, तिहितैं कर्मोको कारण छे। मिथ्यादृष्टि जीव अशुद्धरूप ज्यों परिणवै छे त्यों कहिजे छे। अज्ञानमयभावानां भूमिकाः प्राप्य—अज्ञानमय कहतां मिथ्यात्व जाति इसा छे, भावानां कहतां कर्मके उदयकी अवस्था, त्यहकी भूमिकाः कहतां त्यहकै पावतां अशुद्ध परिणाम होइ छे इसी संगति, प्राप्य कहतां पाइ करि मिथ्यादृष्टि जीव अशुद्ध परिणामरूप परिणवै छे। भावार्थ इसौ—जो द्रव्य कर्म अनेक प्रकार छे त्यहको उदय अनेक प्रकार छै। एक कर्म इसौ छे जिहिकै उदय शरीर होइ छै, एक कर्म इसो छे जिहिकै उदय मन वचन काय होहि छे, एक कर्म इसो छै जिहिकै उदय सुख दुःख होइ छे, इसो अनेक प्रकार कर्मको उदय होतां मिथ्यादृष्टि जीव कर्मका उदयको आपो करि अनुभवै छे, तिहितै रागद्वेष मोह परिणाम होहि छे, तिहि करि नूतन कर्मबंध होइ छे। तिहितै मिथ्यादृष्टि जीव अशुद्ध चेतन परिणामको कर्ता, जिहितैं मिथ्यादृष्टि जीवको शुद्ध स्वरूपको अनुभव नहीं तिहितैं कर्मको उदय कार्य आपो करि अनुभवै। यथा मिथ्यादृष्टिके उदय छे कर्म, त्योंही सम्यग्दृष्टिके फुनि छे। परि सम्यग्दृष्टि जीवको शुद्ध स्वरूपको अनुभव छे। तिहितै कर्मका उदयको कर्म जाति अनुभवै छे। आपको शुद्ध स्वरूप अनुभवै छे। तिहितै कर्मका उदयको नहीं रंजे छे, तिहितै रागद्वेष मोहरूप नहीं

परिणवै छे। तिहितें कर्मबंध नहीं होइ छे, तिहितें सम्यग्दष्टि अशुद्ध परिणामको कर्ता नहीं छे। इसो विशेष छे।

भावार्थ—यहां बताया है कि मिथ्यादृष्टि जीवके ऐसा कोई मिथ्यात्व व कषायका उदय है जिसके कारण जो जो अवस्था कर्मके उदयके निमित्तसे होती हैं उनको अपनी ही मान लेता है। उसके यह भेद विज्ञान नहीं है कि आत्माका गुण व परिणमन क्या है। तथा पुद्गल कर्मका गुण व परिणाम क्या है। वास्तवमें संसारके कारणीभूत मोह व रागद्वेष भाव मिथ्यादृष्टि जीवके ही होते हैं। मिथ्यात्व कर्मके उदयके भावको मोह, अनंतानुबंधी कषायके उदयके भावको रागद्वेष कहते हैं। इनसे मदिराके मदकी तरह मूर्छित होता हुआ मैं कर्ता मैं भोक्ता, मैं सुखी मैं दुखी मैं राजा मैं रंक मैं जीता मैं मरता, मैं रोगी मैं शोकी, इत्यादि परिणामोंको करता रहता है। इसलिये वह अशुद्ध भावोंका करनेवाला स्वामी या अधिकारी हो जाता है। उसको अपने शुद्ध चेतन भावोंकी खबर ही नहीं है। बस ये ही राग द्वेष मोह तीव्र नूतन कर्मबंधके लिये बाहरी कारण होते हैं। सम्यग्दृष्टि जीव बाह्यमें उन ही कामोंको कदाचित् करता दिखलाई पड़ता है जिनको मिथ्यादृष्टी जीव करता है, तथापि उसके हृदयमें सम्यग्ज्ञानकी दीपिका है जिससे वह कर्मके उदयको कर्मकृत जानता है—उसको अपना नहीं मानता है। इसीसे मिथ्यादृष्टीके जो राग द्वेष मोह होता है वह सम्यदृष्टीके बिलकुल नहीं होता है। वह जगतके प्रपंचको नाटक देखता हुआ ज्ञाता दृष्टा रहता है, आशक्त नहीं होता इसीसे स्वात्महितसे वंचित नहीं रहता है—वास्तवमें जीवके अशुद्ध चेतनरूप परिणाम बाहरी निमित्त हैं, उनको पाकर स्वयं ही कर्म पुद्गल ज्ञानावरणादि कर्मरूप परिणमन कर जाते हैं। जैसे कुम्भकारके भावोंका निमित्त पाकर मिट्टीके पुद्गल स्वयं घटरूप परिणमन कर जाते हैं। घट मिट्टीसे व्याप्य व्यापक सम्बन्ध रखता है। जीव अपने परिणामोंसे व्याप्य व्यापक सम्बन्ध रखता है। सम्यग्दृष्टि जीवको अशुद्ध व शुद्ध चेतन भावोंका भी भलेप्रकार ज्ञान है। इसीसे वह मूढ़ नहीं कहलाता है। वह ऐसा पक्का ज्ञान रखता है, जैसा—तत्वज्ञान०में कहा है—

नाहं किंचिन्न मे किंचित् शुद्धचिद्रूपकं विना, तस्मादन्यत्र मे चिंता वृथा तत्र लयं भजे ॥ १०४ ॥

भावार्थ—इस जगतमें सिवाय शुद्ध चिद्रूपके मैं अन्य किसी रूप नहीं हूं, न मैं कोई और हूं। इसलिये दूसरे पदार्थोंके लिये चिंता करना वृथा है। मैं एक शुद्ध आत्म-स्वभावमें ही लय होता हूं—

छप्पै—ज्यों माटी मांहि कलश, होनेकी शक्ति रहे ध्रुव। दंड चक्र चीवर कुलाल, बाहिज निमित्त हुव ॥ त्यों पुद्गल परमाणु, पुंज वरगणा भेष धरि। ज्ञानावरणादिक स्वरूप, विचरन्त

विविध परि ॥ वाहिज निमित्त वहिरातमा, गहि अंशे, अज्ञानमति। जगमांहि अहंकृत भावसों, कर्मरूप व्है परिणमति ॥ २३ ॥

उपेन्द्रवज्रा छंद-य एव मुक्तानयपक्षपातं स्वरूपगुप्ता निवसन्ति नित्यं।
विकल्पजालच्युतशान्तिचित्तास्त एव साक्षादमृतं पिवन्ति ॥२४॥

खंडान्वय सहित अर्थ-ये एव नित्यं स्वरूपगुप्ता निवसंति ते एव साक्षात् अमृतं पिवंति-ये एव कहतां ये कोई जीव, नित्यं कहतां निरंतरपनैं, स्वरूप कहतां शुद्ध चैतन्य मात्र वस्तु तिहिविषैं, गुप्ताः कहतां तन्मय छै। निवसंति कहतां इसा होता तिष्ठै छै, ते एव कहतां तेई जीव, साक्षात् अमृतं कहतां अतीन्द्रिय सुख, पिबंति कहतां आस्वाद करै छै, कायोंकरि। नयपक्षपातं मुक्त्वा-नय कहतां द्रव्य पर्याय रूप विकल्प वुद्धि तिहिको, पक्षपातं कहतां एक पक्षरूप अंगीकार, तिहिकौ मुक्त्वा कहतौं छोड़िकरि। किसा छै ते जीव विकल्पजालच्युतशांतचित्ताः-विकल्प जाल कहतां एक सत्त्वको अनेक रूप विचार तिहितै च्युत कहतां रहित हुओ छै, इसो छै, शांतचित्ता निर्विकल्प समाधान मन ज्यहको इसा छै। भावार्थ इसो-जो एक सत्त्व वस्तु तिहिको द्रव्य गुण पर्याय रूप, उत्पाद व्यय ध्रौव्य रूप विचारतां विकल्प होइ छै। तिहि विकल्प होतां मन आकुल होइ छै, आकुलता दुःख छै तिहितै वस्तु मात्र अनुभवतां विकल्प मिटै छै। विकल्प मिटतां आकुलता मिटै छे। आकुलता मिटतां दुख मिटै छे। तिहितैं अनुभवशीली जीव परम सुखी छै।

भावार्थ-यहां बताया है कि ज्ञानी जीवको निश्चय या व्यवहार नयसे वस्तुका स्वरूप यथार्थ समझकर निश्चिन्त होजाना चाहिये। फिर विचार करना बन्द करके अपने शुद्ध स्वरूपमें रमण करना चाहिये। यही स्वानुभव है, यही सर्वदुःख मोचन उपाय है, यही आनन्ददायक अपूर्व भाव है, यही उपादेय है। तत्त्वज्ञान०में कहा है—

चिद्रूपे केवले शुद्धे नित्यानन्दमये सदा। स्वे तिष्ठति तदा स्वस्थं कथ्यते परमार्थतः ॥ १३१६ ॥

भावार्थ-जब यह अपने शुद्ध असहाय व नित्य आनंदमय चेतन स्वभावमें ठहर जाता है तब ही इसे वास्तवमें स्वस्थ कहते हैं-अनुभव कर्ता ही स्वस्थ है, स्वरूप मगन है, व निरोगी है, क्रोधादि रोगोंसे शून्य है।

सवैया २३ सा—जे न करे नय पक्ष विवाद, धरे न विषाद अलीक न भाखे ॥ जे उद्वेग तजे घट अन्तर, सीतल भाव निरन्तर राखे ॥ जे न गुणी गुण भेद विचारत, आकुलता मनकी सब नाखे। ते जगमें धरि आतम ध्यान, अखण्डित ज्ञान सुधारस चाखे ॥ २४ ॥

उपेन्द्र वज्राछंद-एकस्य बद्धो न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥२५॥

खंडान्वय सहित अर्थ-चिति द्वयोः इतिद्वौ पक्षपातौ-चिति कहतां चैतन्य मात्र

वस्तुविषै, द्वयोः कहतां द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक दोय नयके, इति कहतां इसा छे, द्वौ पक्ष-पातौ कहतां दूचे ही पक्षपात छै। एकस्य बद्धः तथा अपरस्य न—एकस्य कहतां अशुद्ध पर्यायमात्र ग्राहक ज्ञानके पक्ष करतां, बद्धः कहतां जीव द्रव्य बंध्यो छै। भावार्थ इसौ—जो जीव द्रव्य अनादि तिहि कर्म संजोग सहु एक पर्याय रूप चलो आवौ छे, विभाग रूप परिणयो छे, इसो एक बंध पर्याय अंगीकार करि ये द्रव्य स्वरूपको पक्ष न करिये तदा जीव बंध्यो छे एक पक्ष इसो छे। तथा कहतां दूजे पक्ष, अपरस्य कहतां द्रव्यार्थिक नयके पक्ष करतां, न कहतां न बंध्यो छे। भावार्थ इसौ—जो जीव द्रव्य अनादि निधन चेतना लक्षण छे, इसौ द्रव्य मात्र पक्ष करतां जीव द्रव्य बंधो तो नहीं सदा आपणो स्वरूप छै। जातहि कोई ही द्रव्यका ही अन्य द्रव्य गुणपर्याय स्यो नहीं परिणवै छे, सब ही द्रव्य आपणा स्वरूप स्यो परिणवै छे। यः तत्त्ववेदी—कहतां जो कोई शुद्ध चेतन मात्र जीवको स्वरूप अनुभवशील छे जीव, च्युतपक्षपातः—कहतां सो जीव पक्षपात तहि रहित छे। भावार्थ इसौ—जो एक वस्तुको अनेक रूप कल्पनाके दिये ताको नाम पक्षपात कहिजे तिहितै वस्तु मात्रको स्वाद आवतां कल्पना बुद्धि सहज ही मिटै छे। तस्यचित चित एव अस्ति—तस्य कहतां शुद्ध स्वरूपको अनुभवै छे तिहिकै चित् कहतां चैतन्य वस्तु, चित एव अस्ति कहतां चेतना मात्र वस्तु छे इसौ प्रत्यक्षपनै स्वाद आवै छै।

भावार्थ—नयोंका विचार मात्र पदार्थको समझानेके लिये है। जब पदार्थको जान लिया गया तब इन विकल्पोंके उठानेकी जरूरत नहीं है। तपको एकाग्र होकर अपनी ही शुद्धि आत्म वस्तुका स्वाद लेना चाहिये। स्वाद लेते हुए जैसा है वह वैसा ही झलकता है। वहां तो आनंद मगनता प्रगट होजाती है। यदि विचाररूप डांवाडोलपना होगा तो वस्तुका स्वाद नहीं आवैगा। तत्त्वज्ञान०में कहा है—

विकल्पजालजम्बालान्निर्गतोऽयं सदा सुखी, आत्मा तत्र स्थितो दुःखीत्यनुभूय प्रतीयतां ॥१२।४॥

भावार्थ—जब यह आत्मा नानाप्रकारके विचाररूप काईसे निकल जाता है तब सदा सुखी रहता है और जब उनमें फँस जाता है तब दुःखी होता है। ऐसा अनुभव करके निश्चय करो।

सवैया ३१ सा—व्यवहार दृष्टिसों विलोकत बंध्योसों दीसे, निहचै निहारत न बांध्यों यहु किनही ॥ एक पक्ष बंध्यो एक पक्षसों अबन्ध सदा, दोउ पक्ष अपने अनादि धरे इनही ॥ कोउ कहे समल विमलरूप कोउ कहे, चिदानन्द तैसा ही वखान्यो जैसे जिनही ॥ बंध्यो माने खुल्यो माने द्वे नयके भेदजाने, सोई ज्ञानवंत जीव तत्त्व पायो तिनही ॥ ३५ ॥

[इसके बाद ३६ से ४४ तकके श्लोक इसलिये छोड़ दिये गये हैं कि उनका प्रायः एकसा अर्थ है।]

वसंततिo छंद—स्वेच्छासमुच्छलदनल्पविकल्पजालामेवं व्यतीत्य महतीं नयपक्षकक्षाम्। अन्तर्बहिस्समरसैकरसस्वभावं स्वं भावमेकमुपयात्यनुभूतिमात्रम् ॥ ४५ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ-एवं (स) तत्त्ववेदी एकं स्वभावं उपयाति-एवं कहतां पूर्वोक्त प्रकार, स कहतां सम्यग्दृष्टि जीव, तत्ववेदी कहतां शुद्ध स्वरूप अनुभवशील, एकं स्वभावं उपयाति कहतां एक शुद्ध स्वरूप चिद्रूप आत्मा कहु आस्वादै छै। किसौ छै आत्मा-अन्तर्बहिःसमरसैकरसस्वभावं-अन्तः कहतां माहइ, बहिः कहतां बारै, समरस कहतां तुल्यरूप इसौ छै, एकरस कहतां चेतनशक्ति इसौ छै, स्वभाव कहतां सहजरूप जिहिकौ इसौ छै। किं कृत्वा कांयो करि शुद्ध स्वरूप पावै छै। नयपक्षकक्षां व्यतीत्य-नय कहतां द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक भेद, त्यहकौ पक्षः कहतां अंगीकार त्यहकौ, कक्षां कहतां समूह छै। अनंत नय विकल्प छै त्यहकौ व्यतीत्य कहतां दूरि ही तहिं छोड़ करि। भावार्थ इसौ-जो अनुभव निर्विकल्प छै, तिहि अनुभव काल समस्त विकल्प छूटै छै। किसी छै, महतीं कहतां जेता बाह्य अभ्यंतर बुद्धिका विकल्प तेता ही नय भेद। और किसी छै। स्वेच्छासमुच्छलदनल्पविकल्पजालां-स्वेच्छां कहतां विन ही उपजाया, समुच्छलत् कहतां उपजै छे इसा जे, अनल्प कहतां अति बहुत विकल्प, निर्भेद वस्तुविषै भेद कल्पना त्यहकौ, जालं कहतां समूह छे जिहविषै इसी छे। किसो छै, आत्म-स्वरूप। अनुभूतिमात्रं-कहतां अतीन्द्रिय सुख स्वरूप छै।

भावार्थ-यहां बताया है कि स्वानुभव जब होता है तब एक ज्ञान स्वरूप ही आत्मा झलकता है, वहां अनेक भेद रूप विचार नहीं रहते हैं कि यह द्रव्यार्थिक नयसे एक है व पर्यायार्थिक नयसे अनेक है, अथवा यह शुद्ध है या अशुद्ध है, नित्य है या अनित्य है, यह अस्ति रूप है कि नास्ति रूप है, यह अवक्तव्य है या वक्तव्य है। अनेक विचारोंकी तरंगें जबतक होंगी, स्वभावमें थिरता नहीं, थिरता विना आत्मस्वाद नहीं, आत्मस्वाद विना अनुभव नहीं, अनुभव विना निराकुल अतीन्द्रिय आनन्द नहीं। तत्व०में कहा है-

चलंति सन्मुनीन्द्राणां निर्मलानि मनांसि न, शुद्धचिद्रूपसद्ध्यानात् सिद्धक्षेत्राच्छिवो यथा ॥ १५।६ ॥

भावार्थ-जिस तरह सिद्धक्षेत्रमें सिद्ध जीव निश्चल रहते हैं उसी तरह उत्तम साधुओंके निर्मल मन शुद्ध चिद्रूपके यथार्थ ध्यानसे चलित नहीं होते हैं-सिद्ध रूपके समान आपमें आप लय होजाते हैं।

सवैया ३१ सा-प्रथम नियत नय दूजो व्यवहार नय, दुहूंको फलावत अनंत भेद फले है। ज्यों ज्यों नय फैलें त्यों त्यों मनके कल्लोल फैले, चंचल सुभाव लोकालोकलों उछले है ॥ ऐसी नय कक्ष ताको पक्ष तजि ज्ञानी जीव, समरसि भये एकतासों नहि टले है ॥ महा मोह नासे शुद्ध अनुभो अभ्यासे निज, बल परगासि सुखरासी मांहि रले है ॥ २६ ॥

रथोद्धता छंद-इन्द्रजालमिदमेवमुच्छलत्पुष्कलोच्चलविकल्पवीचिभिः।
यस्य विस्फुरणमेव तत्क्षणं कृत्स्नमस्यति तदस्मि चिन्महः ॥४६॥

खंडान्वय सहित अर्थ-तत् चिन्महः अस्मि-कहतां हौं इसौ ज्ञान पुंज रूप छे यस्य विस्फुरणं-कहतां जिहिके प्रकाश मात्र होता। इदं कृत्स्नं इन्द्रजालं तत्क्षणं एव अस्यति-इदं कहतां छतो छे, अनेक नय विकल्प, कृत्स्नं कहतां अति बहुत छे, इन्द्रजालं कहतां झूठो छे, परि छतो छे, तत् क्षणं कहतां जिहिकाल शुद्ध चिद्रूप अनुभव होइ छै। तिहिकाल एव कहतां निहचा सौं, अस्यति कहतां विनशि जाइ छे। भावार्थ इसौ यथा सूर्यके प्रकाश होतां अंधकार फाटे छे तथा चैतन्य मात्रको अनुभव होतां जावंत समस्त विकल्प मिटे छे इसौ शुद्ध चैतन्य वस्तु छे सो म्हारो स्वभाव अन्य समस्त कर्मकी उपाधि छे। किसो छे इंद्रजाल पुष्कलोच्चलविकल्पवीचिभिः उच्छलत्-पुष्कल कहतां अति बहुत, उच्चल कहतां अति स्थूल इसा जे विकल्प कहतां भेद कल्पना इसौ छे, वीचिभिः कहतां तरंगावली त्यहंकरि, उच्छलत् कहतां आकुलतारूप छे, तिहितै हेय छें, उपादेय न छै।

भावार्थ-इन्द्रजालके खेलके समान ये सर्व नयोंके विकल्पजाल हैं जो मनको उलझाने-नेवाले हैं, समतासे दूर रखनेवाले हैं, ये सारे ही विचार उस समय बिलकुल नहीं रहते हैं जब अपने आत्माके शुद्ध स्वभावसे उपयोग जम जाता है। उस आत्मज्योतिका प्रकाश भीतर हुआ कि सर्व कल्पनाओंका जाल मिटा। स्वात्मानुभवकी अपूर्व महिमा है।

तत्वज्ञान० में कहा है-

शुद्धचिद्रूपसदृशं ध्येयं नैव कदाचन। उत्तमं क्वापि कस्यापि भूतमस्ति भविष्यति॥ १५।२॥

भावार्थ-शुद्ध चैतन्य स्वभावके समान और कोई ध्यानयोग्य व उत्तम वस्तु कहीं कभी न हुई है न होगी, इसलिये उसीका ही स्वाद लेना योग्य है।

सवैया ३१ सा—जैसे काहु बाजीगर चौहटे बजाई ढोल, नानारूप धरिके भगल विद्या ठनी है। तैसे मैं अनादिको मिथ्यात्वकी तरंगनिसों, भरममें धाइ बहु काय निजमानी है॥ अब ज्ञान-कला जागी भरमकी दृष्टि भागी, अपनि पराई सब सौंज पहिचानी है। जाके उदै होत परमाण ऐसी भांति भई, निहचे हमारी ज्योति सोई हम जानी है॥ २७॥

रथोद्धत छंद-चित्स्वभावभरभावितभावाऽभावभावपरमार्थतयैकं।
बन्धपद्धतिमपास्य समस्तां चेतये समयसारमपारं॥ ४७॥

खंडान्वयसहित अर्थ-समयसारं चेतये-कहतां शुद्ध चैतन्यकौ अनुभव करवो, कार्य सिद्धि छे। किसो छे अपारं-कहतां अनादि अनंत छे, और किसो छे, एकं कहतां शुद्ध स्वरूप छे, किसौ करि शुद्ध स्वरूप छे, चित्स्वभाव कहतां ज्ञानगुण तिहिको भर कहतां अर्थ ग्रहण व्यापार तिहि करि भावित कहतां होइ छे, भाव कहतां उत्पाद अभाव कहतां विनाश, भाव कहतां ध्रौव्य, इसा तीनि भेद तिहिं करि परमार्थतया एकं कहतां साध्यो छे एक अस्तित्व जिहिको, किं कृत्वा कार्यो करि। समस्तां बंधपद्धतिं अपास्य-समस्तां

कहतां जावंत असंख्यात लोक मात्र भेदरूप छे, बंधपद्धति कहतां ज्ञानावरणादि कर्म बंध रचना तिहिकौ, अपास्य कहतां ममत्व छोडि करि। भावार्थ इसौ—जो शुद्ध स्वरूपकौं अनुभव होतां यथानय विकल्प मिटै छे तथा समस्त कर्मके उदय छे। जेता भाव ते फुनि अवश्य मिटै छे इसौ स्वभाव छे।

भावार्थ—स्वानुभव करनेवाला परम दृढ़ है। यद्यपि उसने पहले उत्पाद व्यय ध्रौव्यरूप अपने सत् पदार्थका निश्चय कर लिया है तथापि वह इन भेदोंको छोड़कर एक अभेदरूप ही चैतन्यके शुद्ध स्वभावका स्वाद लेरहा है। उसके अनुभवमें कर्मजनित रागादिभावोंका व अन्य किसी कर्मके उदयका विकल्प भी नहीं उठता है। स्वानुभवकी महिमा निराली है। तत्व०में कहा है—

रागाद्या न विधातव्याः सत्यसत्यपि वस्तुनि। ज्ञात्वा शुद्धचिद्रूपं तत्र तिष्ठ निराकुलः ॥ १०६ ॥

भावार्थ—किसी भी अच्छे या बुरे पदार्थमें रागद्वेष भाव न करना चाहिये। शुद्ध चैतन्य मात्र अपने स्वभावको जानकर उसीमें ठहरना चाहिये और निराकुल रहना चाहिये।

सवैया ३१ सा—जैसे महा रतनकी ज्योतिमें लहरि ऊठे, जलकी तरंग जैसे लीन होय जलमें। तैसे शुद्ध आतम दरव परजाय करि, उपजे विनसे थिर रहे निज थलमें ॥ ऐसो अविकलपी अजलपी आनंद रूप, अनादि अनंत गहि लीजे एक पलमें। ताको अनुभव कीजे परम पीयूस पीजे, बंधको विलास डारि दीजे पुदगलमें ॥२८॥

शार्दूलविक्रीडित छंद—आक्रामन्नविकल्पभावमचलं पक्षैर्नयानां विना,
सारो यः समयस्य भाति निभृतैरास्वाद्यमानः स्वयं।
विज्ञानैकरसः स एष भगवान् पुण्यः पुराणः पुमान्,
ज्ञानं दर्शनमप्ययं किमथवा यत्किंचनैकोऽप्ययम् ॥४८॥

खंडान्वयसहित अर्थ—यः समयस्यसारः भाति—यः कहतां जो, समयस्य सारः कहतां शुद्ध स्वरूप आत्मा, भाति कहतां आपन शुद्ध स्वरूप परिणवै छे, ज्यों परिणवै छे त्यों कहिजे छे। नयानां पक्षैः विना अचलं अविकल्पभावं आक्रामन्—नयानां कहतां द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक इसा जे विकल्प त्यहका, पक्षैः विना कहतां पक्षपात विना करतां, अचलं कहतां त्रिकाल ही एकरूप छै, अविकल्पभावं कहतां निर्विकल्प शुद्ध चैतन्य वस्तु, तिहिकौ, आक्रमन् कहतां ज्यों शुद्ध स्वरूप छे त्यों परिणवतो होतो। भावार्थ इसौ—जो जेता नय छै तेता श्रुत ज्ञानरूप छै, श्रुतज्ञान परोक्ष छे, अनुभव प्रत्यक्ष छे, तिहितै श्रुतज्ञान पाखै (विना) जो ज्ञान छे सो प्रत्यक्ष अनुभवै छे। तिहितै प्रत्यक्षपनै अनुभवतो होतो जो कोई शुद्ध स्वरूप आत्मा सविज्ञानैकरसः—कहतां सोई ज्ञान पुंज वस्तु छे इसौ कहिजै, स भगवान्—कहतां सोई परब्रह्म परमेश्वर इसो कहिजै, एषः पुन्यः कहतां इसा सो पवित्र पदार्थ इसौ

फुनि कहिजै, एषः पुराणः इसा सो अनादि निधन वस्तु इसो फुनि कहिजे, एषः पुमान् कहतां इसो सो अनंतगुण विराजमान पुरुष इसो फुनि कहिजे अयं ज्ञानं दर्शनं अपि- कहतां योही सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान इसो फुनि कहिजे अथवा कि कहतां बहुत कायों कहिजे अयं एकः यत् किंचन् अपि-अयं एकः कहतां यह जो छे शुद्ध चैतन्य वस्तुकी प्राप्ति, यत्किंचन् अपि कहतां जो कछु कहिजै सोई छे, ज्योंही कहीजै त्योंही छे। भावार्थ इसौ-जो शुद्ध चैतन्य वस्तु प्रकाश निर्विकल्प एकरूप छे, तिहिकी नामकी महिमा करीजे सो अनंत नाम कहीजे तेताही घटै, वस्तु तो एकरूप छे। किसा छै वह शुद्ध स्वरूप आत्मा। निभृतैः स्वयं अस्वाद्यमानः-निश्चल ज्ञानी पुरुषां करि आपुणपै अनुभवशील छै।

भावार्थ-जो कोई निश्चयनय व्यवहारनय आदिके विचारोंको बिलकुल छोड़कर एक निर्विकल्प चैतन्य भावमें ठहर जाता है उसके अनुभवमें शुद्धात्मा ऐसा ही अनुभवमें आता है जैसा कि महान तत्त्वज्ञानी पुरुषोंके अनुभवमें आता है-वही अनुभवमें आनेवाला ज्ञान घन, भगवान, परम पुरुष, नित्य एक है। वह पदार्थ वही है जो आप है, उसको नाम लेकर चाहे जैसा कहो वह तो एक रूप अनुभवगोचर है, शब्दका विषय नहीं है। शुद्ध चिद्रूपके अनुभव विना जीवने दुःख उठाये हैं ऐसा तत्व० में कहा है—

निश्चलं न कृतं चित्तमनादौ भ्रमतो भवे, चिद्रूपे तेन सोढानि महादुःखान्यहो मया ॥१८।६॥

भावार्थ-अनादि संसारमें भ्रमण करते हुए शुद्ध चिद्रूपमें अपना मन निश्चल नहीं किया अर्थात् सविकल्प रहा इसीसे कर्मबांध मैंने महान दुःख सहे हैं।

सवैया ३५ सा-द्रव्याधिक नय पर्यायाधिक नय दोउ, श्रुत ज्ञानरूप श्रुत ज्ञान तो परोख है। शुद्ध परमातमाको अनुभौ प्रगट ताते, अनुभौ विराजमान अनुभौ अदोख है॥ अनुभौ प्रमाण भगवान पुरुष पुराण, ज्ञान औ विज्ञानघन महा सुख पोख है। परम पवित्र यो अनंत नाम अनुभौके, अनुभौ विना न कहूं और ठौर मोख है॥ २९॥

शार्दूलविक्रीडित छंद-दूरं भूरिविकल्पजालगहने भ्राम्यन्निजौघाच्च्युतो,
दूरादेव विवेकनिम्नगमनान्नीतो निजौघं बलात्।
विज्ञानैकरसस्तदेकरसिनामात्मानमात्माहरन्-
आत्मन्येव सदा गतानुगततामायात्ययं तोयवत् ॥ ४९॥

खंडान्वय सहित अर्थ-अयं आत्मा गतानुगततां आयाति तोयवत्-अयं कहतां द्रव्यरूप छतो छे, आत्मा कहतां चेतन पदार्थ, गतानुगततां कहतां स्वरूप तहि नष्ट हुओ थो सो, बहुरि तिह स्वरूपकहुं प्राप्त हुओ इसा भाव कहुं, आयाति कहतां पावै छे। दृष्टांत- तोयवत् कहतां पानीकी नाईं, कायों करता। आत्मानं आत्मनि सदा आहरन्-कहतां आप कहुं आप विषै निरंतरपनै अनुभवतो होतो। किसो छे आत्मा-तदेकरसिनां विज्ञानैकरसः-

तदेकरसिनां कहतां अनुभव रसिक छे जे पुरुष तिहिकौ, विज्ञानैकरसः कहतां ज्ञानगुण आस्वादरूप छे। किसौ थो। निजौघात् च्युतः-निजौघात कहतां यथा पानीकौ शीतस्वच्छ द्रवत्व स्वभाव छे तिहि स्वभाव तहि कबही च्युत होई छे, आपणा स्वभावको छोड़े छे। तथा जीवद्रव्यकौ स्वभाव केवलज्ञान केवलदर्शन अतीन्द्रियसुख इत्यादि अनंतगुण छे तिहिंते च्युत कहतां अनादिकालतहि लेई करि भ्रष्ट हुओ छे, विभावरूप परिणवो छे, भ्रष्टपनो ज्यों छे त्यों कहिजै छे। दूरं भूरिविकल्पजालगहने भ्राम्यन्-दूरं कहतां अनादिकाल तहि लेइ करि, भूरि कहतां अति बहुत छे। विकल्प कहतां कर्मजनित जावंत भाव त्यह विषै आत्मरूप संस्कार बुद्धि त्यहकौ जाल कहतां समूह सोई छे, गहन कहतां अटवी वन तिह विषै, भ्राम्यन् कहतां भ्रमतो होतो। भावार्थ इसौ—जो यथा पानी आपणा स्वाद तहि भ्रष्ट हुओ नाना वृक्षरूप परिणवे छे तथा जीवद्रव्य आपणा शुद्ध स्वरूप तहि भ्रष्ट हुओ नानाप्रकार चतुर्गतिरूप पर्यायरूप आपुणपौ आस्वादै छे। हुओ तो किसो हुओ—बलात् निजौघं नीतः—बलात् कहतां बरजोर, निजौघं कहतां आपणा शुद्ध स्वरूप लक्षण निष्कर्म अवस्था तिहिकौ, नीतः कहतां तिहिरूप परिणवो छे। इसौ जिहि कारण तहि हुओ सो कहिजै छे। दूरात् एव—कहतां अनंतकाल फिरतां प्राप्ति हुई छे। विवेकनिम्नगमनात्—विवेक कहतां शुद्ध स्वरूपको अनुभव इसो छे, निम्नगमनात् कहतां नीचो मार्ग तिहि कारणथकी जीवद्रव्य को जिसो स्वरूप थो तिसो प्रगट हुओ। भावार्थ इसौ—जो यथा पानी आपणा स्वरूप तहि भ्रष्ट होइ छे, काल निमित्त पाइ और जलरूप होइ छे। नीचे मार्ग ढळकता होतो पुंजरूप फुनि होइ छे, तथा जीव द्रव्य अनादि तिहि स्वरूप तहि भ्रष्ट छे। शुद्ध स्वरूप लक्षण सम्यक्त गुणके प्रगट होतां मुक्त होइ छे, इसो द्रव्यको परिणाम छे।

भावार्थ—जैसे पानी अपने कुंडमेंसे बाहर भ्रमण कर वनके वृक्षोंमें जाकर अनेक रूप होजाता है, फिर वही पानी किसी नीचे ढलकते हुए मार्गको पाकर कहीं अपने स्वभावरूप जमा होजाता है। इसी तरह यह जीव अनादिकालसे स्वरूपभ्रष्ट होकर नानाविभाग रूप भावोंमें भ्रमण कर रहा था। किसी तरह सम्यग्दर्शनको पाकर स्वानुभव हुआ तब अपने स्वरूपमें आकर स्वभाव रूप रहने लगा। आपको आपसे ही आस्वादने लगा। आत्म रसिक तत्त्वज्ञानियोंको जैसा स्वाद आया करता है वैसा स्वाद पाने लगा। इसी तरह परसे छूटकर मुक्त होजाता है। तत्व० में कहते हैं—

यावत्तिष्ठंति चिद्भूमौ दुर्भेद्याः कर्मपर्वताः। भेदविज्ञानवज्रं न यावत् पतति मूर्द्धनि ॥ ७.८ ॥

भावार्थ—आत्माकी भूमिपर कठिनतासे टूटनेवाले कर्मरूपी पर्वत उसी समयतक ठहरते हैं जबतक भेदविज्ञानरूपी वज्र उनके मस्तकपर नहीं पड़ता है। स्वानुभव ही कर्मोंके छुड़ानेका परम उपाय है।

सवैया ३१ सा.–जैसे एक जल नानारूप दरवानुयोग, भयो बहु भांति पहिचान्यो न परत है। फिरि काल पाई दरवानुयोग दूर होत, अपने सहज नीचे मारग ढरत है ॥ तैसे यह चेतन पदारथ विभावतासों, गति जोनि भेष भव भांवरि भरत है। सम्यक् स्वभाव पाइ अनुभौके पंथ धाइ बंधकी जुगती भानि मुकती करत है ॥ ३० ॥

श्लोक–विकल्पकः परं कर्ता विकल्पः कर्म केवलं।

न जातु कर्तृकर्मत्वं सविकल्पस्य नश्यति ॥ ५० ॥

खंडान्वय सहित अर्थ–सविकल्पस्य कर्मकर्तृत्वं जातु न नश्यति–सविकल्पस्य कहतां कर्म जनित छे जे अशुद्ध रागादि भाव त्यहको आपु करि जाने छे। इसौ मिथ्यादृष्टि जीवको, कर्मकर्तृत्वं कहतां कर्तृपनो कर्मपनो, जातु कहतां सर्व काल, न नश्यति कहतां न मिटै। जिहि कारण तिहि परं विकल्पकः कर्ता केवलं विकल्पः कर्म–परं कहतां एतावन्मात्र, विकल्पकः कहतां विभाव मिथ्यात्व परिणाम परिणयो छे जो जीव। कर्ता कहतां जिहि भावरूप परिणवे, तिहिको कर्ता अवश होइ। केवलं कहतां एतान् मात्र। विकल्पः कहतां मिथ्यात्व रागादि रूप अशुद्ध चेतन परिणाम, कर्म कहतां जीव करतूति जानिजे। भावार्थ इसो–जो कोई इसौ मानिसे जो जीव द्रव्य सदा ही अकर्ता छे, तीहे प्रति इसौ समाधान जो जावंत काल जीवको सम्यक्त गुण प्रगट न होइ तावंत जीव मिथ्यादृष्टि छे। मिथ्यादृष्टी हो तो अशुद्ध परिणामको कर्ता होइ सो यदा सम्यक्त गुण प्रगट होइ तदा अशुद्ध परिणाम मिटै। तदा अशुद्ध परिणामको कर्ता न होइ।

भावार्थ–परके कर्तापनेकी बुद्धि उसी समय तक ही रहती है जबतक इस जीवको मिथ्यात्व भाव है। मिथ्याती ही निरंतर अपनेको अशुद्ध रागादि भावोंका कर्ता माना करता है। वास्तवमें असत्य मान्यता करनेवाला ही कर्ता है तथा उसकी झूठी मान्यता ही उसका कर्म है। जबतक मिथ्यात्व भाव न हटे जबतक यह कर्तापनेका भ्रम भी नहीं दूर हो। मिथ्यात्व गया कि परका कर्तापना मिटा। आप अपने ही शुद्ध भावका कर्ता है यह बुद्धि जम गई। तत्व०में कहा है—

निरंतरमहंकारं मूढाः कुर्वंति तेन ते। स्वकीयं शुद्धचिद्रूपं विलोकंते न निर्मलं ॥ ११११ ॥

भावार्थ–मूर्ख मिथ्यादृष्टी जीव निरंतर परमें अहंबुद्धि करते हैं इसीसे वे कभी भी अपने ही निर्मल शुद्ध चिद्रूपको नहीं देख पाते हैं।

दोहा–निशि दिन मिथ्याभाव बहु, धरे मिथ्याती जीव। ताते भावित कर्मको, कर्त्ता कह्यो सदीव ॥३१॥

रसोद्धताछंद–यः करोति स करोति केवलं यस्तु वेत्ति स तु वेत्ति केवलं।

यः करोति न हि वेत्ति स क्वचित् यस्तु वेत्ति न करोति स क्वचित् ॥५१॥

खंडान्वय सहित अर्थ–एने अवसरि सम्यग्दृष्टि जीवको व मिथ्यादृष्टि जीवको परि-

णाम भेद घनो छे सो कहिजे छे। यः कहतां जो कोई मिथ्यादृष्टी जीव करोति कहतां मिथ्यात्व रागादि परिणामरूप परिणवै छे स केवलं करोति कहतां तिसाही परिणामको कर्ता होइ। तु यः वेत्ति कहतां जो कोई सम्यग्दृष्टि जीव शुद्धस्वरूपको अनुभवरूप परिणवै छे सो केवलं वेत्ति–सो जीव तिहि ज्ञान परिणामरूप छे सो केवल ज्ञाता छे कर्ता न छे। यः करोति स क्वचित् न वेत्ति–कहतां जो कोई मिथ्यादृष्टी जीव मिथ्यात्व रागादि रूप परिणवै छे सो शुद्ध स्वरूपको अनुभवनशीली एक ही काल तो न होइ। यः तु वेत्ति स क्वचित् न करोति–इतनो कहतां जो कोई सम्यग्दृष्टी जीव शुद्ध स्वरूप कहु अनुभवै छै, सो जीव मिथ्यात्त्व रागादि भावको परिणमनशीली न होइ। भावार्थ इसो–जो सम्यक्त मिथ्यात्त्वके परिणाम परस्पर विरुद्ध छे। यथा सूर्यके प्रकाश अंधकार न होइ, अंधकार छतां प्रकाश न होइ तथा सम्यक्तके परिणाम छतां मिथ्यात्त्व परिणमन न होइ। तिहितै एक काल एक परिणामस्यों जीव द्रव्य परिणवै तिहि परिणामको कर्ता होइ, तिहितै मिथ्या दृष्टी जीव कर्मको कर्ता, सम्यग्दृष्टी जीव कर्मको अकर्ता इसो सिद्धान्त सिद्ध हूओ।

भावार्थ–यहां बताया है कि मिथ्यादृष्टी जीवको अपने शुद्ध परिणामोंकी पहचान नहीं है, इसलिये वह सदा ही अपने रागादि भावोंका कर्ता अपनेको माना करता है। वह कभी भी नहीं अनुभव करता है कि मैं शुद्ध आत्मा हूं और ये रागादि कर्मजनित विकार हैं। इसी तरह सम्यग्दृष्टी जीव सदा ही अपनेको जगतका व अपने ऊपर कर्मोंके उदय होते हुए नाना प्रकार अवस्थाका मात्र ज्ञाता दृष्टा रहता है, कभी भी ऐसा नहीं श्रृद्धान करता है कि मैं परभावोंका कर्ता हूं। उसके श्रृद्धानसे परभावके कर्तापनेकी मिथ्याबुद्धि सर्वथा दूर होजाती है। वह ज्ञाता रहता हुआ सुखी रहता है जबकि मिथ्याती कर्ता बनकर कभी सुखी व कभी दुखी होता हुआ आकुलित होता है व भविष्यके लिये भी तीव्र बंध करता है। योगसारमें कहा है–

अह पुण अप्पा णवि मुणहिं पुण्णवि करेइ असेस। तउ विण पावइ सिद्ध सहु पुणु संसार भमेसु॥१५॥

भावार्थ–तथा जो अज्ञानी अपने आत्माको अनुभवमें नहीं लाता है वह चाहे बहुत भी पुण्यकर्म करो तथापि सिद्ध सुखको कभी नहीं पासका है वह तो संसारमें ही भ्रमण करता है।

दोहा—करे करम सोई करतारा, जो जाने सो जाननहारा।
जाने नहि करता जो सोई, जाने सो करता नहि होई॥ ३२॥

इंद्रवज्राछंद–ज्ञप्तिः करोतौ न हि भासतेऽन्तर्ज्ञप्तौ करोतिश्च न भासतेऽन्तः।
ज्ञप्तिः करोतिश्च ततो विभिन्ने ज्ञाता न कर्तेति ततः स्थितं च॥५२॥

खंडान्वय सहित अर्थ–अंतः कहतां सूक्ष्म द्रव्य स्वरूप दृष्टि करि, ज्ञप्तिः करोतौ नहिं भासते–ज्ञप्ति कहतां ज्ञान गुण, करोतौ कहतां मिथ्यात्व रागादि रूप चिक्कणता, नहि

भासते कहतां एकत्वपनौ न छै। भावार्थ इसौ-जो संसार अवस्था मिथ्यादृष्टि जीवकै रागादि चिक्कणता फुनि छै, कर्मबंध होइ छै सो रागादि सचिक्कणता करि होइ छै। तथा ज्ञप्तौ करोतिः अंतः भासते-ज्ञप्तौ कहतां ज्ञान गुण विषै, करोति कहतां अशुद्ध रागादि परिणमन, अंतः न भासते कहतां अंतरङ्ग माहि एकत्वपनौ न छै। ततः ज्ञप्तिः करोतिः च विभिन्ने-ततः कहतां तिहिकारण तहि, ज्ञप्तिः कहतां ज्ञान गुण, करोति कहतां अशुद्धपनो, विभिन्ने कहतां भिन्न भिन्न छै, एक रूप तौ न छै। भावार्थ इसौ-जो ज्ञान गुण अशुद्धपनौ देखतां तो मिथ्यासा दीसै यदि स्वरूप करि भिन्न भिन्न छै। व्यौरो, जानपना मात्र ज्ञान गुण छै, तिहि माहि गर्भित इसी देखिजै छै सचिक्कणपनो सो रागादि छै। तिहिसो अशुद्धपनो कही जइ। ततः स्थितं ज्ञाता न कर्ता-ततः कहतां तिहिकारण तहि, स्थितं इसो सिद्धांत निष्पन्न हुओ। ज्ञाता कहतां सम्यग्दृष्टि पुरुष, न कर्ता कहतां रागादि अशुद्ध परिणामको कर्ता न होइ। भावार्थ इसौ-जो द्रव्यके स्वभाव थकी ज्ञानगुण कर्ता न छै, अशुद्धपनो कर्ता छै। सो सम्यग्दृष्टिके अशुद्धपनो न छै, तिहिते सम्यग्दृष्टि कर्ता न छै।

भावार्थ-यहां भी यह दिखलाया है कि परभावके कर्तापनेकी बुद्धि अज्ञानीहीके होती है, इसमें कारण मिथ्यात्वकी कलुषता या अशुद्धता है। ज्ञानपना कारण नहीं है। ज्ञानका स्वभाव तो मात्र जाननेका है। सम्यग्दृष्टी ज्ञानी है इसीसे मात्र जानता रहता है। अहंबुद्धि करि कर्ता नहीं होता है। उसका स्वामीपना अपने ज्ञानानंदमय स्वभावकी तरफ है वह रागादिका कभी भी स्वामी नहीं होता है। परमात्मप्रकाशमें कहा है-

'अप्पा अप्पु मुणेइं जिउ सम्मादिट्ठि हवेइ। सम्मादिट्ठिउ जीवं लहु कम्मइ मुच्चेइ ॥ ७६॥'

भावार्थ-जो अपने आत्माको आत्मारूप अनुभव करता है वही सम्यग्दृष्टी जीव शीघ्र ही कर्मबंधसे छूटता है।

सोरठा-ज्ञान मिथ्यात न एक, नहि रागादिक ज्ञान मही। ज्ञान करम अतिरेक, ज्ञाता सो करता नही॥३३॥

शार्दूलविक्रीडितछंद-कर्ता कर्मणि नास्ति नास्ति नियतं कर्मापि तत्कर्त्तरि,

द्वन्द्वं विप्रतिषिध्यते यदि तदा का कर्तृकर्मस्थितिः।

ज्ञाता ज्ञातरि कर्म कर्मणि सदा व्यक्तेति वस्तुस्थिति-

र्नेपथ्ये बत नानटीति रभसान्मोहस्तथाप्येष किं ॥ ५३ ॥

खण्डान्वयसहित अर्थ-कर्ता कर्मणि नियतं नास्ति-कर्ता कहतां मिथ्यात्व रागादि अशुद्ध परिणाम परिणत जीव, कर्म कहतां ज्ञानावरणादि पुद्गल पिंड तिहि विषै, नियतं कहतां निश्चय सो नास्ति कहतां एक द्रव्यपनो तो न छै। तत्कर्म अपि कर्तरि नास्ति-तत्कर्म अपि कहतां सो फुनि ज्ञानावरणादि पुद्गलपिंड, कर्तरि कहतां अशुद्ध भाव परिणत

मिथ्यादृष्टी जीव विषै, नास्ति कहतां एक द्रव्यपनो न छे। यदि द्वन्द्वं प्रतिषिध्यते तदा कर्तृकर्मस्थितिः का—यदि कहतां जो, द्वन्द्वं कहतां जीवद्रव्य पुद्गलद्रव्यको एकत्वपनो, प्रतिषिध्यते कहतां निषेध कियो, तदा कहतां तौ कर्तृकर्म्मस्थितिः का कहतां जीव कर्ता ज्ञानावरणादि कर्म्म इसी व्यवस्था कहां तहि घटै, अपि तु न घटै। ज्ञाता ज्ञातरि—कहतां जीव द्रव्य आपणा द्रव्य तीसों एकत्व पनै छे। सदा कहतां सर्व ही काल इसौ वस्तुको स्वरूप छे। कर्म कर्म्मणि—कहतां ज्ञानावरणादि पुद्गल पिंड आपणे पुद्गल पिंड रूप छे। इति वस्तुस्थितिः व्यक्ता—इति कहतां एनै रूप, वस्तुस्थितः कहतां द्रव्यको स्वरूप, व्यक्ता कहतां अनादि निधनपनै प्रगट छे। तथापि एषः मोहः नेपथ्ये बत कथं रभसा नानटीति—तथापि कहतां स्वरूप तो वस्तु को यो छे ज्यों कह्यो त्यों, फुनि एषः मोहः कहतां यह छे जो जीवद्रव्य पुद्गल द्रव्यकी एकत्वरूप बुद्धि, नेपथ्ये कहतां मिथ्यामार्ग विषै, बत कहतां ई वातनै अचंभो छे, रभसा कहतां निरन्तर, कथं नानटीति कहतां क्यों प्रवर्तै छे, योही बातको विचार क्यों छै। भावार्थ इसौ—जो जीवद्रव्य पुद्गलद्रव्य भिन्न भिन्न छे। मिथ्यात्वरूप परिणवो होतो जीव एक करि जाणै छे तिहिको घणो अचंभो छे। आगे मिथ्यादृष्टि एकरूप जानहु तथापि जीव पुद्गल भिन्न२ छे इसौ कहिजै छै।

भावार्थ यहां यह है कि निश्चयसे विचार किया जाय तो आत्मा बिलकुल पुद्गल द्रव्यके गुणपर्याय सबसे भिन्न है। वह तो ज्ञानदर्शन गुणका धनी है। वह मात्र ज्ञान परिणतिका ही कर्ता होसका है, वह पुद्गलकी किसी भी प्रकारकी परिणतिका कर्ता नहीं हो सक्ता है। न वह ज्ञानावरणादिका कर्ता है न रागादि व क्रोधादि कालिमाका कर्ता है। कर्ता कर्मपना जीवका पुद्गलकी परिणतिके साथ किसी भी तरह सिद्ध नहीं होसका। तौ भी मिथ्याती अज्ञानी जीवके भीतर जो यह बुद्धि नाच रही है कि मैं कर्ता क्रोधादि मेरे कर्म यही बड़े आश्चर्यकी बात है। जैसे मदमाता जीव परकी वस्तुको अपनी मान ले वैसे ही मिथ्यातीकी उन्मत्तवत् चेष्टा है। उसे निज द्रव्यत्वकी खबर नहीं है। इसीसे दुःखी रहता है। तत्व०में कहा है—

ज्ञेयज्ञानं सरागेण चेतसा दुःखमंगिनः। निश्चयश्च विरागेण चेतसा सुखमेव तद् ॥ ११ ॥

भावार्थ—रागादि रूपसे जो पदार्थोंका जानना है वही प्राणियोंका दुःख रूप है तथा जिसके वीतराग भावसे पदार्थोंका यथार्थ निश्चय है वही सुखरूप है।

छप्पै—करम पिंड अरु रागभाव मिलि एक होय नहि, दोऊ भिन्न स्वरूप वसहिं, दोऊ न जीव महि। करम पिंड पुद्गल, भाव रागादिक मूढ भ्रम, अलख एक पुद्गल अनंत, किम धरहि प्रकृति सम॥ निज निज विलास जुत जगत महि. जथा सहज परिणमहि तिम। करतार जीव जड़ करमको, मोह विकल जन कहहि इम॥ ३४॥

मंदाक्रांत छंद—कर्त्ता कर्त्ता भवति न यथा कर्म कर्मापि नैव,
ज्ञानं ज्ञानं भवति च यथा पुद्गलः पुद्गलोऽपि।
ज्ञानज्योतिर्ज्वलितमचलं व्यक्तमन्तस्तथोच्चै-
श्चिच्छक्तीनां निकरभरतोऽत्यन्तगम्भीरमेतत् ॥ ९९ ॥

खंडान्वय सहित अर्थ—एतत् ज्ञानज्योतिः तथा ज्वलितं—एतत् ज्ञानज्योतिः कहतां छतां छे शुद्ध चैतन्य प्रकाश तथा ज्वलितं कहतां ज्यों थो त्यों प्रगट हूओ, किसा छे। अचलं—कहतां स्वरूप तहि नहीं विचले छे, औरु किसो छे। अंतः व्यक्तं—कहतां असंख्यात प्रदेशह प्रगट छे, औरु किसो छे। उच्चैः असंतगंभीरं—कहतां अनंत तहि अनंत शक्ति विराजमान छे, किसा यै गंभीर छे। चिच्छक्तीनां निकरभरतः—चिच्छक्तीनां कहतां ज्ञान गुणका जेता निरंश भेद भाग त्यहका, निकरभरतः कहतां अनंतानंत समूह होइ छै तिहथकी अत्यन्त गंभीर छे। आगे ज्ञान गुण प्रकाश होता जो कर्मों फल सिद्धि छे, सो कहिजै छे। यथा कर्ता कर्ता न भवति—यथा कहतां ज्ञान गुण इसी प्रगट हूओ। ज्यों कर्ता कहतां अज्ञान पनाकौं लीयो जीव मिथ्यात्व परिणामको कर्ता होइ थो सोतो, कर्ता न भवति कहतां ज्ञान प्रकाश होतां अज्ञान भावको कर्ता न होइ। कर्म अपि कर्म एव न—कर्म अपि कहतां मिथ्यात्व रागादि विभाव कर्म भी, कर्म एव न भवति कहतां रागादि रूप न होहि। यथा च जैसे फुनि, ज्ञानं ज्ञानं भवति—कहतां जे शक्ति विभाव परिणमन परिणायो थो सोई फिर आपणे स्वभाव रूप हुओ। यथा कहतां जे ने प्रकार पुद्गलः अपि पुद्गलः—पुद्गल अपि कहतां ज्ञानावरणादि कर्मरूप परिणवो थो जो पुद्गल द्रव्य सोई, पुद्गलः कहतां कर्मपर्याय छोड़ि पुद्गलद्रव्य हूओ।

भावार्थ—यहां यह बताया है कि श्री गुरुके परमोपदेशसे मिथ्यात्वी अज्ञानी मनुष्यकी भ्रमबुद्धि चली गई। अब इसने भले प्रकार अनुभव कर लिया कि मैं आत्मा अनंतज्ञान-शक्तिका धारी असंख्यातप्रदेशी अपने ज्ञानपरिणतिका विलास करनेवाला हूं, मैं ज्ञानावरणादि व क्रोधादि विकारोंका करनेवाला नहीं, न वे क्रोधादि मेरे कर्म हैं। यह जो कुछ भी कर्मोंका नाटक है यह सब पुद्गल है। मेरा इसका निश्चयसे कोई सम्बंध नहीं। मैं भेदज्ञानके द्वारा अपने शुद्धस्वभावके आनन्दमें ही नित मग्न रहता हूं। तत्व०में कहा है—

सदा परिणतिर्मेस्तु शुद्धचिद्रूपकेऽचला। अष्टमीभूमिकामध्ये शुभा सिद्धशिला यथा ॥ १४-६ ॥

भावार्थ—मेरी परिणति शुद्ध चैतन्य स्वभावमें ऐसी दृढ़तासे जमी रहे जिसतरह सिद्ध शिला आठवी पृथ्वीमें जमी हुई है।

छप्पै—जीव मिथ्यात्व न करे, भाव नहिं धरे भरम मल। ज्ञान ज्ञानरस रमे, होइ करमा

दिक पुद्गल। अखंडत परदेश शकति, झगमगे प्रगट अति। चिद्विलास गंभीर धीर, थिर रहे विमल मति॥ जबलग प्रबोध घट महि उदित, तबलग अनय न पेखिये। जिम धरमराज वरतंत पुर, जिहि तिहि नीतिहि देखिये॥ ३५॥

इति श्री नाटक समयशारको कर्त्ता कर्म क्रिया द्वार।३॥

इति श्री जीवाजीवौ कर्तृकर्मविमुक्तौ निष्क्रांतौ, अथ प्रविशति शुभाशुभकर्म द्विपात्रीभूय एकमेव कर्म। भावार्थ—जीव अजीव नाटकमें कर्ता कर्मका भेष बनाकर आए थे सो भेष छोड़कर निकल गए, अब नाटकमें एक ही कर्म पुण्य तथा पाप ऐसे दो भेष बनाकर प्रगट होते हैं।

(४) पुण्य पाप एकत्व द्वार।

दोहा—कर्त्ता किरिया कर्मको, प्रगट वखान्यो मूल। अब वरनौं अधिकार यह, पापपुण्य समतूल॥१॥

द्रुतविलंबित छंद—तदथ कर्म शुभाशुभभेदतो द्वितयतां गतमैक्यमुपानयन्।
ग्लपितनिर्भरमोहरजा अयं स्वयमुदेत्यवबोधसुधाप्लवः॥१॥

खंडान्वय सहित अर्थ—अयं अवबोधः सुधाप्लवः स्वयं उदेति—अयं कहतां विद्यमान छे, अवबोधः कहतां शुद्ध ज्ञान प्रकाश सोई छे, सुधाप्लवः कहतां चन्द्रमा, स्वयं उदेति कहतां जैसो छे तैसो आपने तेज पुंज करि प्रगट होइ छे, किसा छे। ग्लपितनिर्भरमोहरजः—ग्लपित कहतां दूरि करि छे, निर्भर कहतां अतिसा घनी, मोहरजः कहतां मिथ्यात्व अंधकार जिहि इसो छै। भावार्थ इसो—जो चन्द्रमाके उदे अंधकार मिटे छे, शुद्ध ज्ञान प्रकाश होता मिथ्यात्व परिणमन मिटे छे। कायौं करतो होतो ज्ञान चन्द्रमा उदय करे छे। अथ तत् कर्म ऐक्यं उपानयन्—अथ कहतां ते लेकरि, तत् कर्म कहतां रागादि अशुद्ध चेतना परिणाम रूप अथ ज्ञानावरणादि पुद्गल पिंडरूप तिहिको ऐक्यं उपानयन् कहतां एकत्वपनै साधतो होतो। किसो छे कर्म्म। द्वितयतां गतं—कहतां दोती (दोपना) करे छे, किसी दोती। शुभाशुभभेदतः शुभ कहतां भलो, अशुभ कहतां बुरो इसो, भेदतः कहतां विहरो करे छे (भेद करे छे) भावार्थ इसो—जो कोई मिथ्यादृष्टी जीवइको अभिप्राय इसो छे, जो दया व्रत तप शील संयम आदि देइ जितनी छे शुभ क्रिया औरु शुभ क्रियाके अनुसार छे तिहि रूप शुभोपयोग परिणाम तथा तिनि परिणामके निमित्त करि बंधे छे जे साता कर्म आदि देइ करि पुण्य रूप पुद्गल पिंड भलौ छे, जीवकौं सुखकारी छे, हिंसा विषय कषायरूप जेती छे क्रिया तिहि क्रियाके अनुसारे अशुभोपयोग रूप संक्लेश परिणाम तिहि परिणामके निमित्त करि होइ छे। असाता कर्म आदि देइ पाप बंध रूप पुद्गल पिंड बुरो छे, जीवकौं दुःखकर्ता छे। इसो कोई जीव माने छे। त्यांहइ प्रति समाधान इसो जो यथा

अशुभ कर्म जीवकों दुःख करै छे। तथा शुभ कर्म फुनि जीवको दुख करै छे। कर्म माहे तो भलो कोई नहीं, आपणा मोहकौ लीयो मिथ्यादृष्टी जीवः कर्मको भलो करि मानै छे इसी भेद प्रतीति शुद्ध स्वरूप अनुभव हुवा तहिं पाइ जै छे, इमो जो कह्यो कर्म एक रूप छे तीहइ प्रति दृष्टांत कहिजै छे।

भावार्थ—यहां यह व्याख्यान करना है कि अज्ञानी लोग पुण्य क्रियाको व शुभोपयोगको व सातावेदनीय आदि पुण्य रूप पुद्गल पिंडको मोहके महात्म्यसे अच्छा व उपकारी समझते हैं तथा पाप क्रियाको व अशुभोपयोगको व असातावेदनीय आदि पाप रूप पुद्गल पिंडको बुरा व बिगाड़ करनेवाला समझते हैं। यह समझ तब ही तक रहती है जबतक मिथ्यात्व रूपी अंधेरा नहीं हटता है। मिथ्यात्वके हटते ही यह बुद्धि भी निकल जाती है तब पुण्य तथा पाप दोनोंको बंध रूप जानता है। आत्माके किये किसीको भी सुखदाई नहीं जानता है। सम्यग्ज्ञान रूपी चंद्रमा जब हृदयमें झलकता है तब कोई भी कर्म हितकारी नहीं भासता है। सर्व ही पाप पुण्य रूप कर्म एक रूप ही मालूम पड़ते हैं।

योगसारमें कहा है—

जो पाउवि सो पाउ भुणि सब्वु ने कोवि भुणेइ। जो पुण्ण वि पाउ वि भणइ सो बुह कोवि हवेइ॥७०५॥

भावार्थ—पाप कर्मोंको पाप कहने व माननेवाले तो प्रायः सर्व ही अज्ञानी हैं परन्तु ज्ञानवान तो वह है जो पुण्यकर्मको भी पाप ही मानता है व कहता है।

कवित्त—जाके उदै होत घट अंतर, बिनसे मोह महा तम रोक। शुभ अर अशुभ करमकी दुविधा, मिटै सहज दीसैं इक थोक॥ जाकी कला होत संपूरण, प्रति भासै सब लोक अलोक। सो प्रतिबोध शशि निरखि बनारसि, सीस नमाइ देत पग धोक॥ २॥

मंदाक्रांताछंद—एको दूरात्त्यजति मदिरां ब्राह्मणत्वाभिमाना-
दन्यः शूद्रः स्वयमहमिति स्नाति नित्यं तयैव।
द्वावप्येतौ युगपदुदरान्निर्गतौ शूद्रिकायाः,
शूद्रौ साक्षादथ च चरतो जातिभेदभ्रमेण॥ २॥

खण्डान्वयसहित अर्थ—द्वौ अपि एतौ साक्षात् शूद्रौ-द्वौ अपि कहतां विद्यमान छे दुवै, एतौ कहतां इमा छे, साक्षात् कहतां निःसंदेहपनै, शूद्रौ कहतां दुवे चंडाल छे, किसा थकी। शूद्रिकायाः उदरात् युगपत् निर्गतौ—जिंहि करण तहिं शूद्रिकायाः उदरात् कहतां चांडालीके पेट तहिं, युगपत् निर्गतौ कहतां एक ही बार जन्या छे। भावार्थ इमो जो कोई चांडाली तेनइ दोइ पुत्र युगलया एक ही बार जन्या, कर्मके योग थकी एक पुत्र ब्राह्मणके प्रतिपाल हूओ सो तो ब्राह्मणकी क्रिया करता हुओ। दूजो पुत्र चांडालके प्रतिपाल हूओ सो तो चांडालकी क्रिया करतो हूओ। सांप्रत जो दुवेकी वंशकी उत्पत्ति

विचारिये तो दूवे चांडाल छे। तथा केई जीव दया व्रत शील संयम विषै मग्न छे त्यांहि-को शुभ कर्मबंध फुनि होई छे, केई जीव हिंसा विषय कषाय विषै मग्न छे त्यांहको पाप-बंध फुनि होइ छे। सो दूवे आपणी आपणी क्रियाके विषै मग्न छै। मिथ्यादृष्टि थकी इसो मानहि छे जो शुभ कर्म भलो, अशुभ कर्म बुरो, सो इसा दुवे जीव मिथ्यादृष्टि छे दुवे जीव कर्मबंध करणशील छे। अथ च जातिभेदभ्रमेण चरतः—अथ च कहतां दुवे चांडाल छे तौ फुनि, जाति भेद कहतां ब्राह्मण शूद्र इसो वर्णभेद, तिहिं रूप छै, भ्रमेण कहतां परमार्थ शून्य अभिमान मात्र तिहि करि, चरतः कहतां प्रवर्तै छे। किसो छै जाति-भेद भ्रम। एकः मदिरां दूरात् त्यजति एकः कहतां चांडलीके पेट ऊपज्यो छे परि प्रतिपाल ब्रह्मणके घर हुओ छे, इसो छे मदिरां कहतां सुरापान कहु दूरात् त्यजति कहतां अतिहि त्याग करै छे। छूवे फुनि नं छे, नाम फुनि न लेइ छे, इसो विरक्त छे। किसा छै। ब्राह्मणत्वाभिमानात्—ब्रह्मणत्व कहतां अहं ब्राह्मणः इसो संस्कार तिहिको अभिमान कहतां पक्षपात। भावार्थ इसो—जो शूद्रीका पेट तहि उपज्यो इसा मर्मको नहीं जानै छे। हौं ब्रह्मण, म्हारे कुल मदिरा निषिद्ध छे, इसो जानि मदिराको छोड़ी छे, सो फुनि विचारतां चांडाल छे। तथा कोई जीव शुभोपयोगी होतो संतो यतिक्रिया विषै मग्न होतो संतो शुद्धोपयोगको नहीं जानै छे, केवल यतिक्रिया मात्र मग्न छे, सो जीव इसो मानै छे जो हौं तो मुनीश्वर हमको विषय कषाय सामग्री निषिद्ध छे, इसो जानि विषय कषाय सामग्री कहु छाडै छे, आपको धन्यपनो मानै छे, मोक्षमार्ग मानै छे। सो विचारतां इसो जीव मिथ्यादृष्टी छे। कर्म बन्ध कहु करै छे, कांई भलपनो तो नहीं। अन्यः तया एव नित्यं स्नाति—अन्यः कहतां शूद्रीके पेट तहि उपज्यो छे, शूद्रके प्रतिपाल हूओ छै। इसो जीव, तया कहतां मदिरा करि, एव कहतां अवश्य करि, नित्यं स्नाति कहतां नित्य अति मग्न-पनै पीवै छे, कायो जानि पीवै छै। स्वयं शूद्रः इति—कहतां हौं शूद्र, हमारे कुल मदिरा योग्य छै। इसो जानि करि, इसो जीव विचार करतां चांडाल छै। भावार्थ इसो—जो कोई मिथ्यादृष्टी जीव अशुभोपयोगी छै गृहस्थ क्रिया विषै रत छै हम गृहस्थ म्हाइ विषय कषाय क्रिया योग्य छै। इसो जानि विषयकषाय सेवै छै। सो फुनि जीव मिथ्यादृष्टी छे, कर्मबंध करै छे। भातहि कर्म जनित पर्याय मात्र कहु आपौ जानै छै, जीवको शुद्ध स्वरूपको अनुभव नहीं।

भावार्थ—यहां यह बताया है कि मोक्षमार्ग शुद्धोपयोग है, शुभोपयोग नहीं। जो कोई दान जप तप बाहरी मुनि व गृहस्थकी क्रियाको ही मोक्षमार्ग मानके उसीके साधनमें मग्न हैं, शुभसे रागी हैं अशुभसे विरागी हैं वे चाहे मुनि हों या गृहस्थ हों अज्ञानी बहि-

रात्मा मिथ्यादृष्टी हैं। वास्तवमें पुण्य पापके कारण शुभ अशुभ भाव दोनों ही बन्ध रूप हैं, पुण्य व पाप कर्म भी बंध रूप है। इनका फल सांसारिक सुख दुख है। सो भी आत्मीक अतीन्द्रिय सुखसे विपरीत है। बंधका कारण है। पुण्यको उपादेय पापको हेय समझना ही मिथ्यात्व है। दोनोंको हेय समझकर शुद्ध आत्मीक परिणतिको उपादेय समझना सम्यक्त है। जैसे शूद्रके पेटसे जन्म लेकर एक पुत्र ब्राह्मणकी संगतिमें रहकर ब्राह्मणपनेका अभिमान करे। दूसरा पुत्र शूद्रके यहां रहकर अपनेको शूद्र माने। सो यह भ्रम है वे दोनों ही मूलमें तो एक हैं। इसी तरह पुण्य तथा पाप दोनों ही विकार है, कषाय भाव हैं, वीतराग आत्मीक भावोंसे भिन्न हैं। जो कोई साधु होकर भी आत्मीक धर्मको न पहचाने तो वह भी मिथ्यादृष्टी ही है। श्री समंतभद्र आचार्य स्वयंभूस्तोत्रमें कहते हैं—

बाह्यं तपः परमदुश्चरमाचरंस्त्वमाध्यात्मिकस्य तपसः यदि बृंहणार्थम्।
ध्यानं निरस्य कलुषद्वयमुत्तरस्मिन् ध्यानद्वये ववृतिषेऽतिशयोपपन्ने ॥ ८३ ॥

भावार्थ-हे कुन्थुनाथस्वामी! आप जो कठिन बाहरी तप करते हैं सो मात्र अध्यात्मिक तपके बढ़ानेके ही लिये। आपने आर्तरौद्र खोटे दो ध्यानोंको छोड़ दिया है, आप धर्म व शुक्लध्यानमें ही वर्त रहे हैं। आत्मीक भावको मोक्षमार्ग जानना ही यथार्थ श्रद्धान है।

सवैया ३१ सा—जैसे काहु चण्डाली जुगल पुत्र जने तिन, एक दीयो बामनकूं एक घर राख्यो है ॥ बामन कहायो तिन मद्य मांस त्याग कीनो, चण्डाल कहायो तिन मद्य मांस चाख्यो है ॥ तैसे एक वेदनी करमके जुगल पुत्र, एक पाप एक पुन्य नाम भिन्न भाख्यो है ॥ दुहूं माहि दोर धूप दोऊ कर्म बंध रूप, याते ज्ञानवन्त कोऊ नांहि अभिलाख्यो है ॥ ३ ॥

उपेन्द्रवज्रा छंद–हेतुस्वभावानुभवाश्रयाणां सदाप्यभेदान्न हि कर्मभेदः।
तद्बन्धमार्गाश्रितमेकमिष्टं स्वयं समस्तं खलु बन्धहेतुः ॥३॥

खंडान्वय सहित अर्थ-इहां कोई मतांतर रूप होइ आशंका करे छे इसौ कहे छे जो कर्म्म भेद छे, कोई कर्म शुभ छे कोई कर्म अशुभ छे। किसा थकी हेतु भेद छे, स्वभाव भेद छे, अनुभव भेद छे, आश्रय भिन्न छे। इसा चारि भेद थकी कर्म भेद छे। तहां हेतु कहतां कारण भेद छे। व्यौरो–संक्लेश परिणाम थकी अशुभ कर्म बंधै छै। विशुद्ध परिणाम थकी शुभ बंध होइ छे, स्वभाव भेद कहतां प्रकृति भेद छे। व्यौरो–अशुभ कर्म्म सम्बंधी प्रकृति भिन्न छै, पुद्गल कर्म्म वर्गणा भिन्न छे, शुभ कर्म सम्बंधी प्रकृति भिन्न छे, पुद्गल कर्म वर्गणा फुनि भिन्न छै। अनुभव कहतां कर्मको रस सो फुनि रस भेद छै। व्यौरो–अशुभ कर्मकै उदय नारकी होइ छै। अथवा तिर्यंच होइ अथवा हीन मनुष्य होइ। तहां अनिष्ट विषय संयोग दुःखको पावे, अशुभ कर्म्मको स्वाद इसो छे। शुभ कर्मकै उदय जीव देव होइ अथवा उत्तम मनुष्य होइ। तिहां इष्ट विषय संयोग रूप सुखको पावै, शुभ

कर्मको स्वाद इसौ छे। तिहितै स्वाद भेद फुनि छे। अशुभ कहतां फलकी निःपत्ति इसी फुनि भेद छे। व्यौरो-अशुभ कर्मके उदय हीनों पर्याय हूवै छे तहां अधिको संक्लेश होइ छे तिहितै संसारकी परिपाटी होइ छे। शुभ कर्मके उदय उत्तम पर्याय होइ छे तहां धर्मकी सामग्री मिलै छै, तिहि धर्मकी सामग्री थकी जीव मोक्ष जाइ छे। तिहितै मोक्षकी परिपाटी शुभ कर्म छे। इसो कोई मिथ्यावादी मानै छे। तिहिं प्रति उत्तर इसौ जो कर्मभेदः नहि कहतां कोई कर्म शुभरूप कोई कर्म अशुभरूप इसौ विहरो तो न छे, किसाथकी-हेतुस्वभावानुभवाश्रयाणां सदा अपि अभेदात्-हेतु कहतां कर्मबंधको कारण विशुद्ध परिणाम संक्लेश परिणाम इसा दुवै परिणाम अशुद्धरूप छे, अज्ञानरूप छें, तिहितै कारण भेद फुनि नहीं। कारण एक ही छे, स्वभाव कहतां शुभकर्म अशुभकर्म इसा दुवै कर्म पुद्गल पिंडरूप छे। तिहितै एक ही स्वभाव छे, स्वभाव भेद तौ नहीं। अनुभव कहतां रस तो फुनि एक ही छे रसभेद तो नहीं। व्यौरो-शुभ कर्मके उदय जीव बंध्यो छे सुखी छे, अशुभ कर्मके उदय जीव बंध्यो छे, दुखी छे विशेष तो कांई नहीं। आश्रय कहतां फलकी निप्पत्ति सो फुनि एक ही छे विशेष तो कांई नहीं। व्यौरो-शुभ कर्मके उदय संसार त्योंही अशुभ कर्मके उदय संसार, विशेष तो कांई नहीं। तिहितै इसो अर्थ ठहरायो जो कोई कर्म भलो कांई कर्म बुरो यों तो नहीं, सब ही कर्म दुखरूप छे। तत् एकं बंधमार्गाश्रितं इष्टं-तत् कहतां कर्म एकं कहतां निःसंदेहपनै, बंध मार्गाश्रितं कहतां बंधको करै छे, इष्टं कहतां गणधरदेव इसो मान्यो, कैसा तै। जिहि कारण तहि, खलु समस्तं स्वयं बन्धहेतुः-खलु कहतां निहचासौं समस्तं कहतां जावंत कर्म जाति, स्वयं बंधहेतुः कहतां आपण फुनि बंध रूप छे। भावार्थ इसौ-जो आप मुक्त स्वरूप होइ सो कदाचित् मुक्ति कहु करै। कर्म जाति आपुनपै बन्ध पर्यायरूप पुद्गल पिंड बंध्यो छे सो मुक्ति कहां तहि करिसी तिहि तहिं सर्वथा कर्म बंधमार्ग छे।

भावार्थ-यहां यह बताया है कि पुण्य पाप दोनों ही समान हैं, आत्माकी स्वतंत्रताके बाधक हैं। दोनोंका ही कारण कषाय भाव है, दोनों ही पुद्गल कर्म वर्गणा हैं, दोनों हीका फल रागद्वेष रूप है। दोनों ही आगामी भी बंधके कारण हैं। इसलिये पुण्यको मोक्षमार्ग समझना मिथ्या बुद्धि है। शुभोपयोग उसी तरह बंधका कारण है जैसे अशुभोपयोग। इसलिये ज्ञानी जीवको एक शुद्धोपयोगको ही उत्तम व मोक्षका कारण मानना चाहिये। पुण्यसे राग पापसे द्वेष दोनों ही मिथ्यात्व है। सम्यग्दृष्टीके भावमें दोनों ही रोग है दोनों ही ज्वर है, भले ही एक मंद ज्वर हो एक तीव्र ज्वर हो। ज्वर कभी भी स्वास्थ्यलाभका उपाय नहीं, रोगरहितता ही स्वास्थ्य है जिसके लिये ज्वरघातक औषधि सेवन

है। शुभराग मंद रोग अशुभराग तीव्र रोग दोनोंके शमनके लिये वीतराग विज्ञानमय भाव या अभेद रत्नत्रयमई भाव औषधि है। मंद ज्वरको स्वास्थ्यलाभ समझना भ्रम है। यद्यपि तीव्र ज्वरकी अपेक्षा जैसे मंद ज्वर कुछ ठीक है वैसे अशुभ रागकी अपेक्षा शुभ धर्मानुराग कुछ ठीक है। परन्तु यह राग मोक्षलाभमें बाधक है। इसलिये ज्ञानीको पुण्यपाप दोनोंहीसे राग छोड़कर शुद्ध वीतराग आत्मीक भावको ही मोक्षमार्ग जान सेवन करना योग्य है। आत्मानुशासनमें कहा है—

शुभाशुभे पुण्यपापे सुखदुःखे च पट् त्रयं। हितमाद्यमनुष्ठेयं शेषत्रयमथाहितम्॥ २३९॥
तत्राप्याद्यं परित्याज्यं शेषौ न स्तः स्वतः स्वयं, शुभं च शुद्धे त्यक्त्वान्ते प्राप्नोति परमं पदम्॥२४०॥

भावार्थ-व्यवहारमें शुभ अशुभ भाव, पुण्य पाप कर्म, सुख दुःख ये छः हैं। इनमेंसे तीन शुरूके अर्थात् शुभ भाव, पुण्य और सुख हितकारी हैं, करने योग्य हैं, बाकीके तीन अहितकारी न करने योग्य हैं। इन तीनमें भी आदिका अशुभ भाव छोड़ना योग्य है, तब वे शेष दोनों स्वतः ही नहीं रहेंगे। अर्थात् न पापकर्म बन्ध होगा न दुःख होगा, तौभी निश्चयसे जब शुभ भावको छोड़कर शुद्ध भावमें लीनता प्राप्त की जायगी तब ही अन्तमें परम पदकी प्राप्ति होगी। मोक्षका कारण एक शुद्धोपयोग है—

चौपाई—कोऊ शिष्य कहे गुरु पाहीं। पाप-पुन्य दोऊ सम नाहीं॥
कारण रस स्वभाव फल न्यारो। एक अनिष्ट लगे इक प्यारो॥ ४॥

सवैया ३१ सा—संक्लेश परिणामनिसों पाप बन्ध होय, विशुद्धसों पुन्य बन्ध हेतु भेद मानिये॥ पापके उदै असाता ताको है कटुक स्वाद, पुन्य उदै साता मिष्ट रसभेद जानिये॥ पाप संक्लेश रूप पुन्य है विशुद्ध रूप, दुहूंको स्वभाव भिन्न भेद यों बखानिये॥ पापसों कुगति होय पुन्यसों सुगति होय ऐसो फल भेद परतक्ष परमानिये॥५॥

सवैया ३१ सा—पाप बंध पुन्य बंध दुहूंमें मुकति नांहि, कटुक मधुर स्वाद पुद्गलको पेखिये॥ संकलेश विशुद्ध सहज दोउ कर्मचाल, कुगति सुगति जग जालमें विसेखिये॥ कारणादि भेद तोहि सूझत मिथ्यात मांहि, ऐसो द्वैत भाव ज्ञान दृष्टिमें न लेखिये॥ दोउ महा अन्ध कूप दोउ कर्म बंध रूप, दुहुंको विनाश मोक्षमारगमें देखिये॥ ६॥

रथोद्धता छंद-कर्म सर्वमपि सर्वविदो यद्बन्धसाधनमुशन्त्यविशेषात्।
तेन सर्वमपि तत्प्रतिषिद्धं ज्ञानमेव विहितं शिवहेतुः॥ ४॥

खण्डान्वय सहित अर्थ-यत् सर्वविदः सर्वं अपि कर्म्म अविशेषात् बंधसाधनं उशंति-यत् कहतां जिहिं कारण तहिं, सर्वविदः कहतां सर्वज्ञवीतराग, सर्वं अपि कर्म कहतां जावंत शुभरूप व्रत संयम तप शील उपवास इत्यादि क्रिया अथवा विषयकषाय इत्यादि क्रिया, अविशेषात् कहतां एकसी दृष्टिकरि, बंधसाधनं उशंति कहतां बंधको कारण कहैं छे। भावार्थ इसो-जो जीवको अशुभ क्रिया करतां बंध होइ छे त्योंही शुभक्रिया करतां जीवको

बंध होइ छे। बंधन माहे तो विशेष कांई नहीं। तेन तत्सर्वं अपि प्रतिषिद्धं–तेन कहतां तिहि कारण तहि, तत् कहतां कर्म, सर्वं अपि कहतां शुभरूप, अथवा अशुभरूप, प्रतिषिद्धं कहतां केई मिथ्यादृष्टी जीव शुभक्रियाको मोक्षमार्ग जानि पक्ष वदे छे ते निषेध कियो इसो भाव राख्यो, जो मोक्षमार्ग कोई कर्म नहीं। एव ज्ञानं शिवहेतुः विहितं एक कहतां निहचांसो शुद्ध स्वरूप अनुभव, शिवहेतुः कहतां मोक्षमार्ग छे, विहितं कहतां अनादि परम्परा इसो उपदेश छे।

भावार्थ–यहां भी यही बताया है कि मोक्षमार्ग एक शुद्ध आत्मीक भावरूप स्वानुभव है, जहां न अशुभक्रियाका भाव है न शुभक्रियाका भाव है। अभेद रत्नत्रयमई ही मोक्षमार्ग निश्चयसे कर्मबंध छेदक है। व्यवहार रत्नत्रयमई धर्म जिसमें शुभोपयोगके विकल्प हैं पुण्य बन्धकारक है मोक्षकारक नहीं। इसलिये किसी श्रावक व किसी मुनिको यह बुद्धि न रखनी चाहिये कि मैं मुनि हूं, व श्रावक हूं, मेरी क्रियाकांड पद्धतिसे मोक्षमार्गमें मेरा गमन होरहा है। उसे यह समझना चाहिये कि यह बाहरी आचरण मात्र बाहरी आलंबन है, मोक्षमार्ग तो बचन अगोचर मात्र आत्मानुभव रूप एक शुद्ध भाव है।

परमात्मप्रकाशमें कहा है—

सुह परिणामें धम्मु पर असुहे होइ अहम्मु। दो हिं वि एहि वि वज्जियउ सुद्ध ण बंधइ कम्मु ॥१९॥

भावार्थ–शुभ भावोंसे पुण्य व अशुभ भावोंसे पाप होता है, परन्तु इन दोनोंसे रहित होकर शुद्ध परिणामोंसे जो वर्तता है उसके कर्मका बंध नहीं होता है।

सवैया ३१ सा—सील तप संयम विरति दान पूजादिक, अथवा असंयम कषाय विषै भोग है ॥ कोउ शुभरूप कोउ अशुभ स्वरूप मूल, वस्तुके विचारत दुविध कर्म रोग है ॥ ऐसी बंध पद्धति बखानी वीतराग देव, आतम धरममें करत त्याग जोग है ॥ भौ जल तरैया रागद्वेषके हरैया, महा मोक्षके करैया एक शुद्ध उपयोग है ॥ ७ ॥

शिखरणी छन्द–निषिद्धे सर्वस्मिन् सुकृतदुरिते कर्मणि किल
प्रवृत्ते नैःकर्म्ये न खलु मुनयः सन्त्यशरणाः।
तदा ज्ञाने ज्ञानं प्रतिचरितमेषां हि शरणं
स्वयं विन्दन्त्येते परमममृतं तत्र निरताः ॥ ८ ॥

खंडान्वयसहित अर्थ–इहां कोई प्रश्न करै छै जो शुभ क्रिया तथा अशुभ क्रिया सर्व निषिद्धकारी मुनीश्वर किसै अवलम्बै छे। इसो समाधान कीजै छे। सर्वस्मिन् सुकृतदुरिते कर्मणि निषिद्धे–सर्वस्मिन् कहतां अमूल चूल तहि (जड़ मात्रसे) सुकृत कहतां व्रत संयम तप रूप क्रिया अथवा शुभोपयोग रूप परिणाम, दुरिते कहतां विषय कषाय रूप क्रिया अथवा अशुभोपयोग संक्लेश परिणाम इसो, कर्मणि कहतां करतूति रूप, निषिद्धे

कहतां मोक्षमार्ग नहीं। इसो माने संते किल नैष्कर्म्ये प्रवृत्ते किल कहतां निहचासों, नैष्कर्म्ये कहतां सूक्ष्म स्थूलरूप अंतर्जल्प बहिर्जल्प समस्त विकल्प तहि रहित निर्विकल्प शुद्ध चैतन्य मात्र प्रकाशरूप वस्तु मोक्षमार्ग इसी, प्रवृत्ते कहतां एकरूप योंही छे इसो निहचौ ठहराइते संते। खलु मुनयः अशरणाः न संति—खलु कहतां निहचा इसौ, मुनयः कहतां संसार शरीर भोग तहि विरक्त होय धरचो छे यतिपणो ज्यह, अशरणाः न संति कहतां आलम्बन पाये (विना) शून्य मन यों तो न छे। तो क्यों छे। तदा हि एषां ज्ञानं स्वयं शरणं—तदा कहतां तिहिकाल इसो प्रतीति आवे छे अशुमक्रिया मोक्षमार्ग नहीं, शुभ क्रिया फुनि मोक्षमार्ग नहीं, तिहिकाल, हि कहतां निहचासो, एषां कहतां मुनीश्वरांको, ज्ञानं स्वयं शरणं कहतां शुद्ध स्वरूपको अनुभव सहज ही आलम्बन छे, किसो छे ज्ञान, ज्ञाने प्रतिचरितं—कहतां बाह्यरूप परिणवे यो सोई आपणा शुद्ध स्वरूप परिणवे छे। शुद्ध स्वरूपको अनुभव होतां कांई विशेष फुनि छे कहिजे छे। एते तत्र निरताः परमं अमृतं विंदन्ति एते कहतां छता छे जे सम्यग्दृष्टि मुनीश्वर, तत्र कहतां शुद्ध स्वरूप अनुमव विषैं, निरताः कहतां मग्न छे जे, परमं अमृतं कहतां सर्वोत्कृष्ट अतीन्द्रिय सुख, विंदंति कहतां आस्वादें छे। भावार्थ—इसौ जो शुभ क्रिया विषैं मग्न होतां जीव विकल्पी छे तिहितैं दुखी छे। क्रिया संस्कार छूटतो शुद्ध स्वरूपको अनुभव होतो, जीव निर्विकल्प छे। तिहितै सुखी छे।

भावार्थ—यहां यह बताया है कि मोक्षके लिये शुद्ध ज्ञान स्वभावमें रमणकर आत्मानन्दका स्वाद लेना यही मार्ग है। जो सम्यग्दृष्टि श्रावक या मुनि हैं वे इसीहीकी शरणको सच्ची शरण मानते हैं—वे भलेप्रकार जानते हैं कि जहां रंच मात्र भी शुभ क्रियाकी तरफ उपयोगका झुकाव है वहां अपने स्वरूपके अनुभवसे दूर होजाना है वही बंधका मार्ग है। तत्वज्ञानी मात्र निज तत्वमें ही रमते हैं। उपयोगकी थिरता न होनेसे यदि अन्य कार्योंमें जाते भी हैं तो तुर्त वहांसे लौटकर अपने ही स्वानुभवमें तिष्ठनेकी चेष्टा करते हैं। अमृतका सागर तो निज आत्मा है। उस अमृतके पानको छोड़कर कौन बुद्धिमान ऐसा है जो कषायरूप शुभोपयोगके खारे जलको पान करेगा? कदापि नहीं। आत्मज्ञानियोंके लिये मोक्ष व मोक्षमार्ग दोनों ही अपने स्वरूपमें ही दीखते हैं। वे स्वरूपके भोगमें ही मग्न रहते हैं। इष्टोपदेशमें पूज्यपादस्वामी कहते हैं—

आत्मानुष्ठाननिष्ठस्य व्यवहारबहिःस्थितेः। जायते परमानन्दः कश्चिद्योगेन योगिनः॥ ४७॥

भावार्थ—जो योगी व्यवहार धर्मसे बाहर होकर आत्माके साधनोंमें लीन होजाते हैं उनको इस ध्यानके बलसे कोई अपूर्व परमानन्दका लाभ होता है। तथा यही परमानन्दका मान कर्मबंधका नाशक है। यहीं कहा है—

आनन्दो निर्दहत्युद्धं कर्मेन्धनमनारतं। न चासौ खिद्यते योगी बहिर्दुःखेष्वचेतनः॥ ४८॥

भावार्थ—यही आनन्द उसी तरह बहुतसे कर्मोंको बराबर जलाता रहता है जिसतरह अग्नि ईंधनको जलाती है। योगी आत्मध्यानमें मग्न होते हुए बाहरी कष्टोंके कारणोंकी कुछ भी परवाह न करते हुए किंचत् भी खेद नहीं पाते हैं।

सवैया ३१ सा—शिष्य कहे स्वामी तुम करनी शुभ अशुभ, कीनी है निषेध मेरे संशै मन मांहि है॥ मोक्षके सधैया ज्ञाता देश विरती मुनीश, तिनकी अवस्था तो निरावलम्ब नाहीं है॥ कहे गुरु करमको नाश अनुभौ अभ्यास, ऐसो अवलम्ब उनहीको उन मांहि है॥ निरुपाधि आतम समाधि सोई शिव रूप, और दौर धूप पुद्गल परछांही है॥ ८॥

शिखरणी छंद—यदेतद् ज्ञानात्मा ध्रुवमचलमाभाति भवनं।
शिवस्यायं हेतुः स्वयमपि यतस्तच्छिव इति॥
अतोऽन्यद्बन्धस्य स्वयमपि यतो बन्ध इति तद्।
ततो ज्ञानात्मत्वं भवनमनुभूतिर्हि विहितं॥ ९॥

खंडान्वयसहित अर्थ—यत् एतत् ज्ञानात्मा भवनं ध्रुवं अचलं आभाति अयं शिवहेतुः—यत् एतत् कहतां जो कोई, ज्ञानात्मा कहतां चेतना लक्षण इसौ, भवनं कहतां सत्व स्वरूप वस्तु, ध्रुवं अचलं कहतां निश्चयसे थिर होकर, आभाति कहतां प्रत्यक्षपने स्वरूपको आस्वादक कहो छै। अयं कहतां यो ही, शिवहेतुः कहतां मोक्षको मार्ग छै। किसाथकी—यतः स्वयं अपि तच्छिव इति—यतः कहतां जिहिकारण तहिं, स्वयं अपि कहतां आपुनपै फुनि, तच्छिव इति कहतां मोक्षरूप छै। भावार्थ इसौ छै, जीवको स्वरूप सदा कर्मतहिं मुक्त छै तिहिकै अनुभवतां मोक्ष होइ इसौ घटै विरुद्ध तो नहीं। अतः अन्यत् बंधस्य हेतुः—अतः कहतां शुद्ध स्वरूपको अनुभव मोक्षमार्ग छै इहि पाखै (विना) अन्यत् कहतां जो क्यों छै शुभ क्रियारूप अशुभ क्रियारूप अनेक प्रकार, बंधस्यहेतुः कहतां सो सर्व बंधको मार्ग छै। यतः स्वयं अपि बंध इति—यतः कहतां जिहि कारण तहिं। स्वयं अपि आपुनपै फुनि बंध इति कहतां सर्व ही बंधरूप छै। ततः तत् ज्ञानात्मा स्वं भवनं विहितं हि अनुभूति—ततः कहतां तिहि कारण तहिं, तत् कहतां पूर्वोक्त, ज्ञानात्मा कहतां चेतना लक्षण इसो छै, स्वं भवनं कहतां आचरण जीवको सत्व, विहितं कहतां मोक्षमार्ग छै, हि कहतां निहचासों, अनुभूतिः कहतां प्रत्यक्षपने आस्वाद कीयो होतो।

भावार्थ—यहां यह प्रयोजन है कि मोक्षरूप आत्मा ही है। शुद्ध आत्माको ही मुक्त कहते हैं इसलिये निज आत्माका अनुभव करना—स्वाद लेना ही असलमें कर्मोंसे छूटनेका उपाय है। शुभ व अशुभ क्रियामें रागद्वेष है उससे तो बंध ही होगा, वह मोक्षमार्ग नहीं ऐसा निश्चय करना ही सम्यक्त है। तत्वार्थसारमें श्रीअमृतचन्द्रस्वामी स्वयं कहते हैं—

श्रद्धानाधिगमोपेक्षाः शुद्धस्य स्वात्मनो हि याः। सम्यक्त्वज्ञानवृत्तात्मा मोक्षमार्गः स निश्चयः॥ ३—२॥

भावार्थ—अपने ही शुद्ध आत्माका यथार्थ श्रद्धान, ज्ञान, व अनुभव यही निश्चय रत्नत्रयरूप मोक्षका मार्ग है।

सवैया २३ सा—मोक्ष स्वरूप सदा चिनमूरति, बंध मही करतूति कही है ॥ जावत काल बसे जंह चेतन, तावत सो रस रीति गही है ॥ आतमको अनुभौ जबलों तबलों, शिवरूप दशा निवही है ॥ अंध भयो करनी जब ठाणत, बंध, विथा तब फैलि रही है ॥ ५ ॥

श्लोक—वृत्तं ज्ञानस्वभावेन ज्ञानस्य भवनं सदा।
एकद्रव्यस्वभावत्वान्मोक्षहेतुस्तदेव तत् ॥ ७ ॥

खंडान्वय सहित अर्थ—ज्ञानस्वभावेन वृत्तं तत् तत् मोक्षहेतुः एव—ज्ञान कहतां शुद्ध वस्तुमात्र तिहिको, स्वभावेन कहतां स्वरूप निरवत्ति तिहिकरि, वृत्तं कहतां स्वरूपाचरण चारित्र, तत् तत् मोक्षहेतुः कहतां सोई सोई मोक्षमार्ग छे, एव कहतां इसी बात माहे संदेह नहीं। भावार्थ—इसो जो कोई जानिसे स्वरूपाचरण चारित्र इसा सो कहिजे जो आत्माका शुद्ध स्वरूप कछु विचारै अथवा चिंतवै अथवा एकाग्रपनै मग्न होइ करि अनुभवै, सो योतो नहीं, यों कछु करता बंध होइ छे। जातहि इसो तो स्वरूपाचरण चारित्र न होइ, तो स्वरूपाचरण चारित्र किसो छ। यथा पन्ना पकायाथे सुवर्ण माहे की कालमा जाय छै, सुवर्ण शुद्ध होइ छे तथा जीव द्रव्यको अनादि तहि थो अशुद्ध चेतनारूप रागादि परिणमन सो जाय छे। शुद्ध स्वरूपमात्र शुद्ध चेतनारूप जीवद्रव्य परिणवै छे। तिहिकौ नाम स्वरूपाचरण चारित्र कहीजे, इसो मोक्षमार्ग छे। कांई विशेष—सो शुद्ध परिणमन जेते सर्वोत्कृष्ट होइ तेतै शुद्धपनाका अनंत भेद छे। ते भेद जातिभेद करि तो नहीं। घणी शुद्धता तिहि तहि घणी तिह तहि घणी—इसा थोरा घणा रूप भेद छे। भावार्थ—इसा जो जेती ही शुद्धता होइ तेती ही मोक्षकारण छे। यदा सर्वथा शुद्धता होइ तदा सकल कर्म क्षय लक्षण मोक्षपदकी प्राप्ति होइ, किसा थे। सदा ज्ञानस्यभवने एकद्रव्यस्वभावत्वात्—सदा कहतां त्रिकाल हीं, ज्ञानस्य भवने कहतां इसो छे जो शुद्ध चेतना परिणमनरूप स्वरूपाचरण चारित्र सो आत्मद्रव्यको निजस्वरूप छे। शुभाशुभ क्रियाकी नाईं उपाधिरूप न छे। ति हतें, एक द्रव्यस्वभावत्वात् कहतां एक जीव द्रव्य स्वरूप छे। भावार्थ—इसो जो, जो गुण गुणीरूप भेद करिये तो इसो भेद होय। जो जीवको शुद्धपनो गुण जो वस्तु मात्र अनुभव करिये तो इसो भेद फुनि मिटै। जिहितें शुद्धपनो तथा जीव वस्तु द्रव्य तो एक सत्ता छे इसो शुद्धपनो मोक्ष कारण होइ इनापा जे कर्या करतूति रूप छे सो समस्त बंधको कारण छे।

भावार्थ—यहाँ यह दिखाया है कि स्वरूपाचरण चारित्र उसका नाम है जहां रागद्वेष मोह छोड़ कर अपने स्वरूप रूप रहा जाय। अशुद्ध चेतनाके अनुभवसे हटकर शुद्ध चेतनाका अनुभव किया जाय। जितने अंश वीतरागता बढ़ेगी उतने अंश मोक्षमार्ग होगा।

उतने अंश आत्माकी शुद्धता होगी। यही वीतरागता बढ़ते बढ़ते मोक्षमार्गकी पूर्णता होगी तब सर्व कर्मका क्षय होजायगा। और आत्मा मोक्षरूप जैसाका तैसा रह जायगा। सुवर्ण पकाकर शुद्ध किया जाता है, जिस तावके देनेसे सोनेका मैल कटे उज्वलता प्रगटे वही सोनेकी शुद्धता है यह अंशरूप है। ताव देते देते अंशरूप शुद्धता बढ़ते बढ़ते जब सोना बिलकुल मैलसे रहित होता है तब बिलकुल शुद्ध कहलाता है। यदि सोनेका मैल न कटे तो उसकी शुद्धताका उपाय न बना। इसी तरह रागद्वेष रहित शुद्ध स्वरूपका आचरण यदि न होगा तो कर्मकी निर्जरा न होगी। जहां निर्जराका कारण वीतरागमय भाव है वही मोक्षमार्ग है। वीतराग भावकी पूर्णता ही मोक्षमार्गकी पूर्णता है और परमात्मपदका झलकाव है।

स्वामी अमृतचंद्र ही तत्वार्थसारमें कहते हैं—

आत्मा ज्ञाततया ज्ञानं सम्यक्तं चरितं हि सः। स्वस्थो दर्शनचारित्रमोहाभ्यामनुपप्लुतः ॥ ७-५५० ॥

भावार्थ—आत्मा आत्मारूप ही जाना हुआ ज्ञान है, यही श्रद्धा किया हुआ सम्यक्त है, यही वीतरागता सहित आचरण किया हुआ चारित्र है जो दर्शनमोह और चारित्रमोहसे छुटा हुआ आप आपमें तन्मय है, वही मोक्षमार्ग है।

सोरठा—अंतर दृष्टि लखाव, अरु स्वरूपको आचरण। ए परमातम भाव, शिव कारण येई सदा ॥ १० ॥

श्लोक—वृत्तं कर्मस्वभावेन ज्ञानस्य भवनं न हि।
द्रव्यान्तरस्वभावत्वान्मोक्षहेतुर्न कर्म तत् ॥ ८ ॥

खण्डान्वयसहित अर्थ—कर्म्मस्वभावेन वृत्तं ज्ञानस्य भवनं न हि—कर्म कहतां जावंत शुभ क्रिया रूप अथवा अशुभ क्रिया रूप आचरण लक्षण चारित्र तिहिको, स्वभावेन वृत्त कहतां एते रूप चारित्र, ज्ञानस्य कहतां शुद्ध चैतन्य वस्तुको, भवनं कहता शुद्ध स्वरूप परिणमन, न हि कहतां न होइ इसौ निहचो छे। भावार्थ—इसौ जो यावंत शुभ अशुभ क्रिया छे आचरण अथवा बाह्यरूप वक्तव्य अथवा सूक्ष्म अंतरंग रूप चितवन अभिलाष स्मरण इत्यादि समस्त अशुद्धस्वरूप परिणमन छे। शुद्ध परिणमन नहीं। तिहिंते बंधको कारण छे, मोक्षको कारण न छे। तिहिंते यथा कामलाको नाहर कहिवाको नाहर छे तथा आचरण रूप चारित्र कहिवाको चारित्र छे, परन्तु चारित्र न छे। निःसंदेहपनै इसो जानिज्यो तत् कर्म्म मोक्षहेतुः न—तत् कहतां तिहि कारण तहि, कर्म कहतां बाह्य अभ्यन्तररूप सूक्ष्म स्थूलरूप जावंत आचरणरूप, मोक्षहेतुः न कहतां कर्मक्षपण कारण नहीं बन्ध कारण छे, किसाथकी द्रव्यांतरस्वभावत्वात्—द्रव्यांतर कहतां आत्म द्रव्य तहि भिन्न छे, पुद्गलद्रव्य तिहिको स्वभाव कहतां एतो समस्त पुद्गल द्रव्यके उदयको कार्य छे, जीवको स्वरूप न छे। भावार्थ इसौ—जो शुभ अशुभ क्रिया सूक्ष्म स्थूल अन्तर्जल्प, बहिर्जल्प रूप जावंत विकल्प-

रूप आचरण जावंत समस्त कर्मके उदयरूप परिणमन छे, जीवको शुद्ध परिणमन न छे, तिहितै समस्त ही आचरण मोक्ष कारण न छे, बन्धको कारण छे।

भावार्थ–यहां यह बताया है कि जहांतक मन, वचन, कायकी क्रिया है वह सब कर्मके उदयकी वरजोरीका खेल है। इससे मनमें चिंतवन, मनन आदि सब बन्ध कारण है मोक्षका कारण नहीं। आत्मा द्रव्यको छोड़कर अन्यके आश्रय जो कुछ परिणमन है सो सब बंधका मार्ग है। यहां यह श्रद्धान कराया है कि मोक्षमार्ग मात्र आत्मीक वीतराग भाव है। इसके सिवाय अति सूक्ष्म भी शुभ रागरूप वर्तन बन्धका कारण है। जिससे कर्मकी निर्जरा हो वही मोक्षपथ होसक्ता है, वह वीतराग विज्ञानमय एक आत्मीक भाव है, वहां न चिन्तवन है न वचनका व्यवहार है, न कायका वर्तन है, वही मोक्षमार्ग है। पुरुषार्थ०में कहा है—

दर्शनमात्मविनिश्चितिरात्मपरिज्ञानमिष्यते बोधः। स्थितिरात्मनि चारित्रं कुत एतेभ्यो भवति बंधः॥२१६॥

भावार्थ–शुद्ध आत्माका निश्चय सम्यग्दर्शन है, शुद्ध आत्माका ज्ञान सम्यग्ज्ञान है, शुद्ध आत्मामें तिष्ठना, लय होना चारित्र है, इस रत्नत्रयमई आत्मीक भावसे बन्ध नहीं है यही मोक्षमार्ग है। इसके सिवाय सम्पूर्ण पराश्रित वर्तन चाहे कितना भी शुभ रागरूप हो, बन्धका कारण है।

सोरठा—कर्म शुभाशुभ दोय, पुद्गलपिंड विभाव मल। इनसों मुक्ति न होय, नांही केवल पाइये॥११॥

श्लोक-मोक्षहेतुतिरोधानाद्बन्धत्वात्स्वयमेव च।
मोक्षहेतुतिरोधायि भावत्वात्तन्निषिध्यते॥ ९॥

खंडान्वय सहित अर्थ–इहां कोई जानिसै शुभ अशुभ क्रियारूप छे आचरणरूप चारित्र सो करिवा योग्य न छे त्यों वरजिवा योग्य फुनि न छे। उत्तरु इसो जो वरजिवा योग्य छे जिहितैं व्यवहार चारित्र हुओ होतो दुष्ट छे, अनिष्ट छे, घातक छे तिहितैं विषय कषायकी नाईं क्रियारूप चारित्र निषिद्ध छे इसो कहिजे छे। तत् निषिध्यते–तत् कहतां शुभ अशुभ रूप करतुति। निषिध्यते कहतां तजनीय छे। किसा छे निषिद्ध छे, मोक्षहेतुतिरोधानात्–मोक्ष कहता निःकर्म अवस्था तिहिको, हेतुः कहतां कारण छे। जीवको शुद्धत्व परिणमन तिहिको, तिरोधानात् कहतां घातक इसो छे, तिहितै करतुति निषिद्ध छे। और किसा छे। स्वयं एव बंधत्वात्–कहतां आपुनपै फुनि बंधरूप छे। भावार्थ–इसो जो जावंत छे शुभ अशुभ आचरण सो समस्त कर्मके उदयथकी अशुद्ध रूप छे तिहितैं त्याज्य छे, उपादेय न छे। और किसा छे। मोक्षहेतुतिरोधायि भावत्वात्–मोक्ष कहतां सकल कर्मक्षय लक्षण परमात्मपद तिहिको हेतु कहता जीवको गुण छे शुद्ध चेतनारूप परिणमन तिहिको, तिरोधायि कहतां घातनशील इसो छे, स्वभावत्वात् कहतां सहज कर्मके

जिहिको इसो छे तिहितै कर्म निषिद्ध छे। भावार्थ इसो जो यथा पानी स्वरूप तहि निर्मल छे। कादौके संयोग करि मैलो होइ छे, पानीको शुद्धपनो घात्यो जाइ छे तथा जीव द्रव्य स्वभाव तहि स्वच्छ स्वरूप छे, केवलज्ञान दर्शन सुख वीर्यरूप छे। सो स्वच्छपनो विभावरूप अशुद्ध चेतना लक्षण मिथ्यात्व विषय कषायरूप परिणाम करि मिट्यो छे। अशुद्ध परिणामको इसो ही स्वभाव छे जो शुद्धपनाको मेटै, तिहितै कर्म निषिद्ध छे। भावार्थ इसौ–जो केई जीव क्रियारूप यतिपनो पावे छे, तिहि यतिपना विषे मग्न हो हि छे जो हम मोक्षमार्ग पायो जो क्यों करणो थो सो कियो सोते जीव समझाइजे छे जो यतिपनाको भरोसो छोड़ करि शुद्ध चैतन्य स्वरूपको अनुभवहु।

भावार्थ–यहां यह बताया है कि मोक्षका मार्ग एक शुद्ध आत्मीक स्वभावका ज्ञानानन्दमयी स्वाद प्राप्त करना है, शुभ व अशुभ क्रियाकांड बन्धका कारण है। क्योंकि इन क्रियाओंको करते हुए मंद या तीव्र कषायका उदय होता है, उन परिणामोंसे नवीन बन्ध होता है। बन्ध मोक्षमार्गको और भी दूर रखता है। इसलिये तत्त्वज्ञानीको शुभ क्रियामें भी मग्न न होना चाहिये न उसे हितकारी मानना चाहिये। एक शुद्ध भावमें रमण करनेका ही साधन करना चाहिये। जो ऐसा करे वही साधु है। पद्मसिंहमुनि ज्ञानसारमें कहते हैं:–

मणवयणकाय मच्छर ममत्त तणुवणकणाइ सुण्णोहं। इय सुण्णझाणजुत्तो णो लिप्पइ पुण्णपावेण ॥४४॥

भावार्थ–जो मन, वचन, काय, मद, ममता, शरीर, धन, कण आदिसे रहित होकर मैं एक शुद्ध स्वरूप हूं, ऐसे शून्य ध्यानमें लय होता है वह पुण्य पापसे नहीं लिपता है।

सुद्धप्पा तणुमाणो णाणी चेदण गुणोहमेकोहं, इयझायंतो जोई पावइ परमप्पयं ठाणं ॥ ४५॥

भावार्थ–मैं एक अकेला, शुद्धात्मा, शरीरप्रमाण, ज्ञानी चैतन्य गुणधारी हूं। ऐसा अनुभवता हुआ योगी परमात्माके पदको पालेता है।

सवैया ३१ सा–कोउ शिष्य कहे स्वामी अशुभ क्रिया अशुद्ध, शुभ क्रिया शुद्ध तुम ऐसी क्यों न वरनी ॥ गुरु कहे जबलों क्रियाके परिणाम रहें, तबलों चपल उपयोग जोग धरनी ॥ थिरता न आवे तौलों शुद्ध अनुभौ न होय, यति दोउ क्रिया मोक्ष पंथकी कतरनी। बंधकी करैया दोउ दुहूमें न भली कोउ, बाधक विचारमें निषिद्ध कीनी करनी ॥ १२॥

शार्दूलविक्रीडित छन्द–संन्यस्तव्यमिदं समस्तमपि तत्कर्मैव मोक्षार्थिना
संन्यस्ते सति तत्र का किल कथा पुण्यस्य पापस्य वा।
सम्यक्त्वादिनिजस्वभावभवनान्मोक्षस्य हेतुर्भव-
न्नैःकर्म्यप्रतिबद्धमुद्धतरसं ज्ञानं स्वयं धावति ॥ १०८॥

खंडान्वयसहित अर्थ–मोक्षार्थिना तत् इदं समस्तं अपि कर्म्म संन्यस्तव्यं–मोक्षार्थिना कहतां सकल कर्म क्षय लक्षण अतींद्रिय पद तिहि विषे छे अनन्तसुख तिहको उपा-

देय अनुभवै छे। इसौ छे जो कोई जीव तेनै, तत् इदं कहतां सोई कर्म जो ऊपर ही कह्यो थो, समस्तं अपि कहतां जावंत छे शुभ क्रियारूप अशुभ क्रियरूप अन्तर्जल्प रूप बहिर्जल्परूप इत्यादि। करतूतिरूप, कर्म कहतां क्रिया अथवा ज्ञानावरणादि पुद्गलको पिंड अशुद्ध रागादिरूप जीवके परिणाम इसो कर्म, संन्यस्तव्यं कहतां जीव स्वरूपको घातक इसो जानि आचूल मूलतहि त्याज्य छे। तत्र संन्यस्ते सति—कहतां तिहि समस्त ही कर्मको त्याग होते संते, पुण्यस्य वा पापस्य वा का कथा—कहतां पुण्यको पापको कौन भेद रह्यो। भावार्थ इसो—जो समस्त कर्म जाति हेय छे, पुण्य पापका ब्योराकी कहा बात रही। किल कहतां इसो बात निहचासो जानज्यो पुण्यकर्म भलो इसी भ्रांति मत करो। ज्ञानं मोक्षस्य हेतुः भवत् स्वयं धावति - ज्ञानं कहतां आत्माको शुद्ध चेतनारूप परिणमन, मोक्षस्य कहतां सकल कर्मक्षय लक्षण इसी अवस्थाको, हेतुः भवत् कहतां कारण होतो संतो, स्वयं धावति कहतां स्वयं दौड़े छे इसो सहज छे। भावार्थ—इसो जो यथा सूर्यके प्रकाश होतां सहज ही अंधकार मिटे छे, जीवको शुद्ध चेतना रूप परिणवतां सहज ही समस्त विकल्प मिटे छे, ज्ञानावरणादि कर्म अकर्म रूप परिणवे छे। रागादि अशुद्ध परिणाम मिटे छे। किसा छे ज्ञान। नैष्कर्म्यप्रतिबद्धम् कहतां निर्विकल्प स्वरूप छे। और किसो छे। उद्धतरसं—कहतां प्रगटपने चैतन्यस्वरूप छे। किसाथकी मोक्षकारण होइ छे। सम्यक्त्वादिनिजस्वभावभवनात्—सम्यक्त्व कहतां जीवको गुण सम्यग्दर्शन, आदि कहतां सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र इसौ छे जो निजस्वभाव कहतां जीवको क्षायिक गुण तिहिको भवनात् कहता प्रगटपनाथकी। भावार्थ—इसो जो कोई आशंका मानिसे जो मोक्षमार्ग सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तीनके मिल्या छे, इहां ज्ञान मात्र मोक्षमार्ग कह्यो, तिहिको समाधान इसो जो शुद्ध स्वरूप ज्ञान माहे सम्यग्दर्शन सम्यग्चारित्र सहजी गर्भित छे। तिहितैं दोषको कांई नहीं गुण छे।

भावार्थ-यहां यह बताया है कि जिनको आत्माकी स्वाधीनता इष्ट है उनको उचित है कि सर्व ही प्रकारके शुभ अशुभ कर्मोसे, भावोंसे व आठ प्रकार द्रव्यकर्मोसे मोह छोड़ दें और निश्चल होकर एक अपने शुद्ध ज्ञान स्वभावमें ही तन्मय होजावें, वहीं अभेद रत्न-त्रय रूपी मोक्षमार्ग कल्लोल करता है। यही ज्ञान स्वभाव ज्ञानके अनुभवसे ही प्रकाश होता जाता है। जितना जितना प्रकाश होता है उतना उतना कर्मोसे छुटता जाता है, यही मोक्षमार्ग है। शुभक्रिया मोक्षमार्ग नहीं। तत्वार्थसारमें स्वयं अमृतचन्द्रस्वामी कहते हैं—

> स्यात्सम्यक्त्वज्ञानचारित्ररूपः पर्यायार्थादेशतो मुक्तिमार्गः।
> एको ज्ञाता सर्वदैवाद्वितीयः स्याद् द्रव्यार्थादेशतो मुक्तिमार्गः ॥ ४-७ ॥

भावार्थ—व्यवहार नयसे सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्ररूप मोक्षमार्ग है परंतु निश्चयनयसे एक यही ज्ञाता दृष्टा अनुपम आत्मा ऐसा ही अनुभवना यही मोक्षमार्ग है।

सवैया ३१ सा-मुकतिके साधकको बाधक करम सब, आतमा अनादिको करम माहिं लुक्यो है ॥ ऐतेपरि कहे जो कि पापबुरो पुन्यभलो, सोई महा मूढ मोक्ष मारगसों चूक्यो है ॥ सम्यक् स्वभाव लिये हियेमें प्रगट्यो ज्ञान, ऊरध उमंगि चल्यो काहूपैं न रुक्यो है ॥ आरसीसो उज्जल बनारसी कहत आप, कारण स्वरूप व्हैके कारिजको ढूक्यो है ॥ १३ ॥

शार्दूलविक्रीडित छंद-यावत्पाकमुपैति कर्मविरतिर्ज्ञानस्य सम्यङ् न सा
कर्मज्ञानसमुच्चयोऽपि विहितस्तावन्न काचित्क्षतिः ।
किं त्वत्रापि समुल्लसत्यवशतो यत्कर्म बन्धाय त-
न्मोक्षाय स्थितमेकमेव परमं ज्ञानं विमुक्तं स्वतः ॥ ११ ॥

खंडान्वय सहित अर्थ-इहां कोई भ्रांति आनिसे जो मिथ्यादृष्टिको यतिपनो क्रिया रूप छे, सो बंधको कारण छे, सम्यग्दृष्टिको छे, जो यतिपनो शुभ क्रियारूप सो मोक्षको कारण छे जिहिते अनुभवज्ञान तथा दया, व्रत, तप, संयम रूप क्रिया दूवे मिलि करि ज्ञानावरणादि कर्मको क्षय करहि छे। इसी प्रतीति केई अज्ञानी जीव करहि छे। तहां समाधान इसो जो जावंत शुभ अशुभ क्रिया बहिर्जल्प रूप विकल्प अथवा अन्तर्जल्प रूप अथवा द्रव्यहको विचार रूप अथवा शुद्ध स्वरूपको विचार इत्यादि समस्त कर्मबंधको कारण छे। इसी क्रियाको इसो ही स्वभाव छे। सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टिको इसो भेद तो कांई नहीं। इसी करतूति करि इसो बन्ध छे। शुद्ध स्वरूप परिणमन मात्र करि मोक्ष छे। यद्यपि एक ही काल विषै सम्यग्दृष्टि जीवको शुद्ध ज्ञान फुनि छे, क्रियारूप परिणाम फुनि छे। तथा विक्रिया रूप छे जो परिणाम त्यह करि एकलो बंध होइ छे, कर्मको क्षय एक अंश फुनि नहीं होइ छे, इसो वस्तुको स्वरूप। सारो कौनको तिही काल शुद्ध स्वरूप अनुभव ज्ञान फुनि छै तिहि काल ज्ञान करि कर्म क्षय होइ छे। एक अंश मात्र फुनि बन्ध नहीं होइ छे। वस्तुको इसो ही स्वरूप छे। इसो ज्यों छे त्यों कहिजे छे। तावत्कर्मज्ञानसमुच्चयः अपि विहितः-तावत् कहतां तबताई कर्म कहतां क्रिया रूप परिणाम, ज्ञान कहतां आत्म द्रव्यको शुद्धत्व रूप परिणमन त्यहको समुच्चयः कहतां एक जीव विषै एक ही काल अस्तित्वपनो छे, अपि विहितं कहतां इसो फुनि छे। परन्तु एक विशेष, काचित् क्षतिः न-काचित् कहतां कौन हं, क्षतिः कहतां हानि, न कहतां नहीं छे। भावार्थ इसौ-जो एक जीव विषै एक ही काल ज्ञान, क्रिया दूवे क्यों होय है, सो समाधान इसो जो विरुद्ध तो कांई नहीं। केतो एक काल दूवे होइ छे इसो ही वस्तुको परिणाम छे। परन्तु विरोधीसा दीसे छे। परि आपणे आपणे स्वरूप छे विरुद्ध तो नहीं करे छे। ते तो काल ज्यों छे त्यों कहिजे छे। यावत् ज्ञानस्य सा कर्मविरतिः सम्यक् पाकं न उपैति-यावत् कहतां जेतो काल, ज्ञानस्य कहतां आत्माको मिथ्यात्व रूप विभाव

परिणाम मिट्यौ छे। आत्मद्रव्य शुद्ध हुओ छे तिहिको, सा कहतां पूर्वोक्त इसो छे, कर्म कहतां क्रिया, तिहिकी विरति कहतां त्याग, सम्यक् पाके कहतां मूल तहिं विनाश, न उपैति कहतां नहीं हूओ छे। भावार्थ इसो-जो जावंत अशुद्ध परिणमन छे तावंत जीवको विभाव परिणमन रूप छे, तिहिं विभाव परिणाम कहुं अंतरंग निमित्त छै, बहिरंग निमित्त छे। व्यौरो-अंतरंग निमित्त जीवकै विभावरूप परिणमन शक्ति, बहिरंग निमित्त मोहनीय कर्म-रूप परिणयो छे पुद्गल पिंडको उदय। सो मोहनीय कर्म दोई प्रकार छे। एक मिथ्यात्व-रूप छे, दूजो चारित्र मोहरूप छे। जीवको विभाव परिणाम फुनि दोई प्रकार छे, जीवको एक सम्यक्त गुण छे सोई विभावरूप होतो मिथ्यात्वरूप परिणवै छे। तिह प्रति बहिरंग निमित्त मिथ्यात्वरूप परिणयौ छै। पुद्गल पिंडको उदय, जीवको एक चारित्र गुण छे सोई विभावरूप परिणयो होतो विषय कषाय लक्षण चारित्र मोहरूप परिणवे छे, तीहि प्रति बहिरंग निमित्त छे चारित्र मोहरूप परिणयो छे पुद्गल पिंडको उदय। विशेष इसो जो उपशमको क्रम इसो छे, पहिली मिथ्यात्व कर्मको उपशम होइ छे अथवा क्षपण होइ छे। तिहि पीछे चारित्र मोहकर्मको उपशम होइ छै अथवा क्षपण होई छे तिहिते समाधान इसो-कोई आसन्न भव्यजीवके काललब्धि पाया थै मिथ्यात्वरूप पुद्गल पिंड कर्म उपशमै छै अथवा क्षिपै छै, इसो होतां जीव सम्यक्त गुणरूप परिणवै छै, सो परिणमन शुद्धतारूप छै। सोई जीव जब ताईं क्षिपक श्रेणी चढिसि तब ताईं चारित्र मोह कर्मको उदे छे। तिहि उदस छतां जीव फुनि विषय कषायरूप परिणवै छै सो परिणमन रागरूप छै, अशुद्ध रूप छे, तिहितैं कोई काल विषै जीवको शुद्धपनो अशुद्धपनो एक ही समय घटै छै विरुद्ध नहीं, किंतु कहतां कोई विशेष छै, सो विशेष ज्यों छै त्यों कहिजै छै। अत्र अपि कहतां एक ही जीवको एक ही काल शुद्धपनो अशुद्धपनो यद्यपि होइ छे, तथापि आपणो आपणो कार्य करै छे। यत् कर्म्म अवशतः बंधाय समुल्लसति-यत् कहतां जावंत, कर्म कहतां द्रव्यरूप भावरूप अंतर्जल्प बहिर्जल्परूप सूक्ष्म स्थूल रूप क्रिया, अवशतः कहतां सम्यग्दृष्टि पुरुष सर्वथा क्रिया तहि विरक्त छे परि चारित्र मोहकै उदे बलात्कार होइ छे। बन्धाय समुल्ल-सति-कहतां जेती क्रिया छे तेती ज्ञानावरणादि कर्मबंध करै छे, संवर निर्जरा अंश मात्र फुनि नहीं करै छे। तत् एकं ज्ञानं मोक्षाय स्थितं-तत् कहतां पूर्वोक्त, एकं ज्ञानं कहतां एक शुद्ध चैतन्य प्रकाश, मोक्षाय स्थितं कहतां ज्ञानावरणादि कर्म क्षयको निमित्त छे। भावार्थ इसो-जो एक जीव विषै शुद्धपनो अशुद्धपनो एक ही काल होइ छे। परन्तु जेते अंश शुद्धपनो छे ते ते अंश कर्म क्षपन छे। जेते अंश अशुद्धपनो छे ते ते अंश कर्मबंध होइ छे, एकै काल दोइ कार्य हो हि छे। एव कहतां योही छे, संदेह करणो नहीं। किसो

छे शुद्ध ज्ञान, परमं कहतां सर्वोत्कृष्ट छे, पूज्य छे, और किसौ छे। स्वतः विमुक्तं कहतां त्रिकालपने समस्त परद्रव्य तहि भिन्न छे।

भावार्थ–इस कथनका सार यह है कि जहांतक यथाख्यात चारित्रका लाभ नहीं होता वहांतक इस जीवके शुद्ध ज्ञान भाव तथा रागरूप अशुद्ध भाव दोनों साथ साथ रह सक्ते हैं। मिथ्यात्व व अनंतानुबन्धी कषायके उपशम या क्षयसे सम्यग्दर्शन गुण जब आत्मामें प्रगट होजाता है तब शुद्ध ज्ञान भाव प्रगट होजाता है। इस भावसे तो कर्मकी निर्जरा ही होती है। परन्तु जबतक अन्य कषाय कर्मोंका नाश न हो तबतक उनका उदय जितना होता है तितना अशुद्धपना भी रहता है। इसका कोई इलाज नहीं, दोनों अंश एक काल एक भावके भीतर चमकते हैं। तथापि अपना अपना कार्य करते हैं। शुद्ध ज्ञानके अंशसे तो कर्मकी निर्जरा व संवर होते हैं, अशुद्ध रागके अंशसे कर्मका बन्ध भी होता है। ऐसा होनेपर भी आत्माकी हानि इसलिये नहीं होती है कि सम्यग्दर्शनके प्रभावसे वह ज्ञानी जीव कषाय जनित कालिमाको कालिमा जानता है व उससे अत्यन्त वैरागी है। सम्यग्दर्शन सहित जो आत्मामें ज्ञान व आत्मबलका पुरुषार्थ है उसके द्वारा वह कषाय जो उदय योग्य है अपना बल क्षीण करता हुआ जाता है तब मन्द उदय आता जाता है। सम्यक्तके प्रभावसे व कषायके उपशम या क्षयसे जितना अंश वीतराग भाव है उसके प्रभावसे शेष कषायोंके अनुभागमें कमी पड़ती जाती है। बस एक समय आजाता है कि कषायके अभाव होनेसे चारित्र गुण भी सम्यक्तके साथ प्रकाशमान होजाता है। यहांपर इस बातको दृढ़ किया है कि कर्मकी निर्जराका साधन मात्र शुद्ध ज्ञान भाव है। जितने अंश कालिमा है उतने अंश तो बन्ध ही है। इसलिये मन, वचन, कायकी शुभ क्रिया कभी भी मोक्षका साधन नहीं होसक्ती है। वह केवल बंधकी ही करनेवाली है। ऐसा श्रद्धान करनेसे ही मिथ्या बुद्धिका नाश होकर सम्यग्ज्ञानका लाभ होगा। मोक्षका उपाय तो एक मात्र निश्चय रत्नत्रयमई आत्माकी शुद्ध वीतराग परिणति है। जैसा पुरु०में कहा है—

असमग्रं भावयतो रत्नत्रयमस्ति कर्मबंधो यः, स विपक्षकृतोऽवश्यं मोक्षोपायो न बंधनोपायः ॥२११॥
येनांशेन सुदृष्टिस्तेनांशेनास्य बन्धनं नास्ति, येनांशेन तु रागस्तेनांशेनास्य बन्धनं भवति ॥२१२॥

भावार्थ–जहां शुद्ध भावकी पूर्णता नहीं हुई वहां भी रत्नत्रय है परंतु जो वहां कर्मोंका बंध है सो रत्नत्रयसे नहीं है किन्तु अशुद्ध रागभावसे है, क्योंकि जितनी वहां अपूर्णता है या शुद्धतामें कमी है वह मोक्षका उपाय नहीं है, वह तो कर्मबंध ही करनेवाली है। जितने अंशमें शुद्ध दृष्टि है या सम्यग्दर्शन सहित शुद्ध भावकी परिणति है उतने अंश नवीन कर्मबंध नहीं करती है किन्तु संवर निर्जरा करती है। उसी समय जितने अंश रागभाव है उतने अंशसे कर्मबंध भी होता है।

सवैया ३१ सा–जौलौं अष्ट कर्मको विनाश नांहि सरवथा, तौलौं अंतरातमामें धारा दोई वरनी ॥ एक ज्ञानधारा एक शुभाशुभ कर्मधारा, दुहूकी प्रकृति न्यारी न्यारी न्यारी धरनी ॥ इतनो विशेषजु करम धारा बंध रूप, पराधीन शकति विविध बंध करनी ॥ ज्ञान धारा मोक्षरूप मोक्षकी करनहार, दोषकी हरनेहार भौ समुद्र तरनी ॥ १४ ॥

शार्दूलविक्रीडित छंद–मग्नाः कर्मनयावलम्बनपरा ज्ञानं न जानन्ति य-

न्मग्ना ज्ञाननयैषिणोऽपि यदतिस्वच्छन्दमन्दोद्यमाः।

विश्वस्योपरि ते तरन्ति सततं ज्ञानं भवन्तः स्वयं

ये कुर्वन्ति न कर्म जातु न वशं यान्ति प्रमादस्य च ॥ १२ ॥

खंडान्वय सहित अर्थ–कर्म्मनयावलम्बनपराः मग्नाः–कर्म्म कहतां अनेक प्रकार क्रिया इसो छे, नय कहतां पक्षपात, तिहिको अवलम्बन कहतां क्रिया मोक्षमार्ग छे इसो जानि करि क्रियाको प्रतिपाल तिहिविषै, परा कहतां तत्पर छे जे केई अज्ञानी जीव ते फुनि, मग्नाः कहतां धार माहे डूब्या। भावार्थ इसो–जो संसार माहे रुलिसे, मोक्षको अधिकारी न छे, किसा थैं डूब्या, यत् ज्ञानं न जानन्ति–यत् कहतां जिहि कारण तहि, ज्ञानं कहतां शुद्ध चैतन्य वस्तुको, न जानंति कहतां प्रत्यक्षपनै आस्वाद करिवाको समर्थ नहीं छे, क्रिया मात्र मोक्षमार्ग इसो जानि क्रिया करिवाको तत्पर छै। ज्ञान नयैषिणः अपि मग्नाः–ज्ञान कहतां शुद्ध चैतन्य प्रकाश तिहिको, नय कहतां पक्षपात, तिहिका, ईषिणः कहतां अभिलाषी छे। भावार्थ इसो–जो शुद्ध स्वरूपको अनुभव तो न छे, परन्तु पक्ष मात्र वदहि छै। अपि कहतां इसो फुनि जीव, मग्नाः कहतां संसार माहे डूब्या ही छे। किसा थइ डूब्या ही छै। यत् अतिस्वच्छंद-मंदोद्यमाः–यत् कहतां जिहिं कारण तहिं, अति स्वच्छंद कहतां अति ही स्वेच्छाचारपनो इसा छै, मंदोद्यमाः कहतां शुद्ध चैतन्य स्वरूपको विचार मात्र फुनि नहीं करै छै, इसा छै जे केई मिथ्यादृष्टि जानिवा। इहां कोई आशंका करै छे। जो शुद्ध स्वरूपको अनुभव मोक्ष-मार्ग इसी प्रतीति करतां मिथ्यादृष्टिपनो क्यों होइ छे। समाधान इसो जो वस्तुको स्वरूप इसो छै। यदाकाल शुद्ध स्वरूप अनुभव होइ छे, तदाकाल अशुद्धतारूप छे जावंत भाव-द्रव्यरूप क्रिया तावंत सहज ही मिटै छै। मिथ्यादृष्टि जीव इसो मानै छे जो जावंत क्रिया ज्यों छे त्योंही रहै छे शुद्ध स्वरूप अनुभव मोक्षमार्ग छै। सो वस्तुको स्वरूप यौंतो न छै। तिहितैं इसो मानै छे सो जीव मिथ्यादृष्टि छे, वचनमात्र करि कहै छे शुद्ध स्वरूप अनु-भव मोक्षमार्ग छे। इसो कहिवै कार्यसिद्धि तो कांई न छै। ते विश्वस्य उपरि तरंति–ते कहतां इसा जीव सम्यग्दृष्टि छे जे केई, विश्वस्य उपरि कहतां कह्या छे जे दोइ जातिका जीव सह दूवे ऊपर होइ करि, तरंति कहतां सकल कर्म क्षय करि मोक्षपदको प्राप्त होहि। किसा छै ते–ये सततं स्वयं ज्ञानं भवन्तः कर्म्म न कुर्वंति, प्रमादस्य वशं जातु न

यान्ति-ये कहतां जे केई निकट संसारी सम्यग्दृष्टि जीव, सततं कहतां निरंतर पनै, स्वयं ज्ञानं कहता शुद्ध ज्ञानरूप, भवंतः कहतां परिणवै छे, कर्म्म न कुर्वंति कहतां अनेक प्रकार क्रियाको मोक्षमार्ग जानि नहीं करै छे। भावार्थ इसो-जो यथा कर्मके उदय शरीर छतो छे परि हेयरूप जानहि छे। तथा अनेक प्रकार क्रिया छती छे परि हेयरूप जानहि छे, प्रमादस्य वशं जातु न यांति कहतां क्रिया तो कछू नाहीं। इसो जानि विषयी असंयमी फुनि कदाचित् नहीं होहि जिहितै असंयमको कारण तीव्र संक्लेश परिणाम छे सो तो संक्लेश मूल ही तहि गयो छे। इसा जे सम्यग्दृष्टि जीव ते जीव तत्काल मात्र मोक्षपदको हटावे छे।

भावार्थ-यहां यह झलकाया है कि जो अज्ञानी बाहरी क्रियाकांडको व शुभ योगको ही मोक्षमार्ग जानते हैं वे मिथ्यादृष्टी हैं, उसी तरह जो ऐसा मानकर कि हम तो शुद्ध हैं क्रिया बन्धका कारण है। इसलिये शुभ क्रिया जो आत्म विचारके लिये बाहरी आलम्बन है उसको छोड़ करि अशुभ क्रिया विषयभोगादिमें पड़ जाते हैं और कभी भी शुद्ध स्वरूपके अनुभवका प्रयास नहीं करते हैं वे भी अज्ञानी मिथ्यादृष्टी ही हैं। उनको सच्चा वस्तुस्वरूप झलका नहीं। मोक्षमार्गी वे ही हैं जो प्रमादी नहीं हैं, सदा आत्मानुभवके लिये पुरुषार्थ वान हैं। जो संक्लेश परिणामोंको तो पहले ही दूरसे छोड़ते हैं, शुभ परिणामोंको भी हेय जानि छोड़नेमें उद्यमी हैं, शुद्ध भावोंमें रमण करनेके उत्सुक हैं। प्रयोजनवश मन, वचन, कायकी कुछ क्रिया करनी पड़े तो उसे बन्धका कारण व त्याज्य जानते हैं। वीतराग शुद्धात्मानुभव रूप परिणामको ही मोक्षमार्ग जानते हैं। ऐसे ही महात्मा इस विकट भवसागरमें नौकाके समान ऊपर ऊपर तरते हुए बिलकुल पार होजाते हैं। सम्यग्दृष्टी जीव शुद्धात्माका ध्यान करते रहते हैं। तत्व०में कहा है—

शुद्धचिद्रूपसद्ध्यानात् गुणाः सर्वे भवंति च, दोषाः सर्वे विनश्यन्ति शिवसौख्यं च संभवेत् ॥१८॥

भावार्थ—शुद्ध चैतन्य स्वरूपके ध्यानसे सर्व ही गुण होते हैं और सर्व दोष नाश होजाते हैं व शिवसुखका लाभ होता है।

सवैया ३१ सा—समुझें न ज्ञान कहे करम किये सों मोक्ष, ऐसे जीव विकल मिथ्यातकी गहलमें ॥ ज्ञान पक्ष गहे कहे आतमा अबन्ध सदा, वरतें सुछन्द तेउ डूबे हैं चहलमें ॥ जथा योग्य करम करे पै ममता न धरे, रहे सावधान ज्ञान ध्यानकी टहलमें ॥ तेई भव सागरके ऊपर व्है तरे जीव जिन्हको निवास स्यादवादके महलमें ॥ १५ ॥

मन्दाक्रांता छन्द—भेदोन्मादं भ्रमरसभरान्नाटयत्पीतमोहं
मूलोन्मूलं सकलमपि तत्कर्म कृत्वा बलेन।
हेलोन्मीलत्परमकलया सार्द्धमारब्धकेलि
ज्ञानज्योतिः कवलिततमः प्रोज्जजृम्भे भरेण ॥ १३ ॥

खंडान्वय सहित अर्थ—ज्ञानज्योतिः भरेण प्रोज्जृम्भे—ज्ञानज्योतिः कहतां शुद्ध स्वरूप प्रकाश, भरेण कहतां आपणे संपूर्ण समर्थ पनें करि प्रोज्जृंभे कहतां प्रगट हूओ, किसो छे। हेलोन्मीलत्परमकलया सार्द्धं आरब्धकेलि हेला कहतां सहज स्वरूप तहि, उन्मीलत् कहतां प्रगट होइ छे, परम कलया कहतां निर्वर्तपने अतीन्द्रिय सुख प्रवाह, सार्द्धं कहतां तिहिसों, आरब्धकेलि कहतां पाया छे परिणमन जेनै, इसो छै, और किसो छे। कवलिततमः—कवलित कहतां दूरि कियो छे तमः कहतां मिथ्यात्व अंधकार जे नइ इसौ छे—इसौ ज्यों हूओ छे त्यों कहिजै छे। तत्कर्म सकलमपि बलेन मूलोन्मूलं कृत्वा—तत् कहतां कह्यो छे अनेक प्रकार, कर्म कहतां भावरूप अथवा द्रव्यरूप क्रिया, सकलं अपि कहतां पापरूप अथवा पुण्यरूप, बलेन कहतां बरजोरपने, मूलोन्मूलं कृत्वा कहतां जावंत क्रिया मोक्षमार्ग नहीं इसौ जानि समस्त क्रिया विषै ममत्वको त्याग करि शुद्ध ज्ञान मोक्षमार्ग इसो सिद्धांत सिद्ध हूओ, किसो छै कर्म। भेदोन्मादं—भेद कहतां शुभ क्रिया मोक्षमार्ग इसो पक्षपात रूप विहरो त्यहकरि, उन्मादं कहतां हूओ छे गहिलो इसो छे, और किसो छे, पीतमोहं पीतं कहतां गिल्यो छे, मोहं कहतां विपरीतपनो जेने इसो छे। यथा कोई धतूराको पान करि गहिलो होइ छे इसो छे जो पुण्य कर्मको भलो मानै छे। और किसो छे, भ्रमरसमरात् नाटयत्—भ्रम कहतां धोखो तिहिको रस कहतां अमल तिहिको, भर कहतां अत्यन्त चढ़वो तिहथकी नाटयत् कहतां नाचै छे। भावार्थ इसो—यथा कोई धतूरो पीया छे बुद्धि जाइ छे पर नाचै छे। तथा मिथ्यात्व कर्मकै उदय शुद्ध स्वरूप अनुभवतैं भ्रष्ट छे। शुभ कर्म कइ उदय जो देव आदि पदवी तिहिको रंजै छे जो अहं देव मेरे इसी विभूति सो तो पुण्य कर्मकै उदय थकी इसो मानि वारम्वार रंजै छे।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टिके अंतरंगमें सच्चा ज्ञान कल्लोल करने लगा तब उसने यही जाना कि मात्र शुद्ध स्वरूपका अनुभव ही मोक्षमार्ग है, अतींद्रिय सुख ही सच्चा सुख है। उसकी प्राप्तिका उपाय शुभ क्रियाकांड व शुभ भाव नहीं है, उसका उपाय मात्र एक स्वानुभव है। तब उसके भीतरसे सर्व भ्रम निकल गया। उसके ऊपरसे मोहका नशा उतर गया। जिस नशेमें शुभ क्रियाकांडको मोक्षमार्ग जानकर उसीके लिये रातदिन प्रयत्नशील था, शुद्धात्मानुभवके लिये बिलकुल प्रमादी था। अब यथार्थ वस्तुस्वरूप समझ गया कि पुण्य व पाप दोनों ही त्यागने योग्य हैं। मोक्ष जब इन सर्व कर्मोंसे रहित है तब उसका उपाय भी मात्र सर्व शुभाशुभ रहित शुद्ध ज्ञानके अनुभवसे है। परमात्मप्रकाशमें कहा है—

सिद्धिहिं केरा पंथडा, भाउ विसुद्धउ एक्कु। जो तसु भावहं मुणि चलइ सो किम होइ विमुक्कु ॥१६॥

भावार्थ—मोक्षका मार्ग एक शुद्ध भाव ही है। जो मुनि इस भावसे रहित होता है वह किसतरह मोक्ष पासक्ता है।

सवैया ३१ सा—जैसे मतवारो कोउ कहे और करे और, तैसे मूढ प्राणी विपरीतता धरत है ॥ अशुभ करम बंध कारण वखाने माने, मुकतीके हेतु शुभ रीति आचरत है ॥ अंतरसुदृष्टि भई मूढता विसर गई, ज्ञानको उद्योत भ्रम तिमिर हरत है ॥ करणीसों भिन्न रहे आतम स्वरूप गहे, अनुभौ अरंभि रस कौतुक करत है ॥ १६ ॥

इति पुन्यपापरूपेणद्विपात्रीभूतं एकपात्री भूयः कर्मनिःक्रांतः अथ प्रविशति आश्रवः।

भावार्थ—इस तरह नाटकमें पुण्य पाप दो भेदपना कर कर्म आया था सो एक ही पुद्गल कर्मरूप रह गया, भेष छोड़ निकल गया। आगे अखाड़ेमें आस्रव आता है।

॥ इतिश्री समयसारनाटके पुण्यपाप एक ही करणद्वारं ॥ ४ ॥

पांचवां आस्रव अधिकार।

दोहा—पाप पुन्यकी एकता, वरनी अगम अनूप। अब आश्रव अधिकार कछु, कहूं अध्यातम रूप ॥१॥

द्रुतविलंवित छंद—अथ महामदनिर्भरमन्थरं समररङ्गपरागतमास्रवं।
अयमुदारगभीरमहोदयो जयति दुर्ज्जयबोधधनुर्द्धरः ॥ १ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—अथ अयं दुर्ज्जय बोधधनुर्द्धरः आस्रवं जयति—अथः कहतां यहांते लेइ करि, अयं दुर्ज्जय कहतां यह अखण्डित प्रताप इसो, बोध कहतां शुद्ध स्वरूप अनुभव, इसो छे, धनुर्द्धरः कहतां जोधा, आस्रवं जयति कहतां अशुद्ध रागादि परिणाम लक्षण आस्रव तिहिको, जयति कहतां मेटै छे। भावार्थ इसो—जो इहांतैं लेइ करि आस्रव स्वरूप कहिजै छे, किसो छे ज्ञान जोधा। उदारगम्भीरमहोदयः—उदार कहतां शाश्वतो इसो छे, गम्भीर कहतां अनन्त शक्ति विराजमान इसो छे, महोदय कहतां स्वरूप जिहिको इसो छे, किसो छे आस्रव। महामदनिर्भरमन्थरं—महामद कहतां समस्त संसारी जीव राशि आस्रवके आधीन छे, तिहितैं हूओ छे गर्व अभिमान, तिहिकरि, निर्भर कहतां मग्न हूओ छे, मन्थरं कहतां मतवालानी परे, इसो छे। समररङ्गपरागतम्ः—समर कहतां संग्राम इसो छे, रङ्ग कहतां भूमि तिहि विषे परागतं सन्मुख आया छे। भावार्थ इसो—जो यथा प्रकाश अन्धकारको परस्पर विरुद्ध छै तथा शुद्ध ज्ञानको आस्रवको विरुद्ध छै।

भावार्थ—यहां यह सूचनाकी है कि आगे आस्रवका व्याख्यान करेंगे। यह आस्रव भाव सर्व जीवोंमें भरा हुआ है। इसलिये आस्रवको बहुत अभिमान है जो मैं संसार विजयी हूं। परन्तु इसका विरोधी शुद्ध ज्ञान या शुद्धात्मानुभव है। जो इस आस्रवको जीतकर उसका सर्व अभिमान चूर्ण कर देता है। ऐसा आत्मज्ञान रूपी योद्धा सदा ही बना रहो, जिससे आस्रवका बल न चले, यह भावना आचार्यने की है।

सवैया ३१ सा—जे जे जगवासी जीव थावर जंगमें रूप, ते ते निज वस करि राखे बल तोरिके ॥ महा अभिमान ऐसो आस्रव अगाध जोधा, रोपि रण थम्भ ठाडो भयो मूछ मोरिके ॥ आयो तिहिं थानक अचानक परम धाम, ज्ञान नाम सुभट सवायो बल फेरिके, आस्रव पछार्यो रणथम्भ तोड़ि डार्यो ताहि, निरखी बनारसी नमत कर जोरिके ॥ २ ॥

मालिनीछंद—भावो रागद्वेषमोहैर्विना यो जीवस्य स्याद् ज्ञाननिर्वृत्त एव।

रुन्धन्सर्वान् द्रव्यकर्मास्रवौघानेषो भावः सर्वभावास्रवाणाम् ॥ २ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—जीवस्य यः भावः ज्ञाननिर्वृत्त एव स्यात्—जीवस्य कहतां काललब्धि पाया थकी प्रगट हूओ छे सम्यक्त गुण जिहिंको इसो छे। जो कोई जीव तिहिको, यः भावः कहतां जो कोई सम्यक्त पूर्वक शुद्ध स्वरूप अनुभव रूप परिणाम, इसो परिणाम किसो होइ, ज्ञान निर्वृत्त एव स्यात् कहतां शुद्ध ज्ञान चेतना मात्र छे, तिहि कारण तहि, एषः कहतां इसो छे जो शुद्ध चेतना मात्र परिणाम। सर्वभावास्रवाणां अभावः—सर्व कहतां असंख्यात लोक मात्र जावंत छे, भाव कहतां अशुद्ध चेतनारूप रागद्वेष मोह आदि जीवको विभाव परिणाम इसो छे, आस्रवाणां कहतां ज्ञानावरणादि पुद्गल कर्मको निमित्त मात्र तिहिको, अभावः कहतां मूलोन्मूल विनाश छे। भावार्थ इसो—जो यदा काल शुद्ध चैतन्य वस्तुकी प्राप्ति होइ छे, तदा काल मिथ्यात्व रागद्वेष रूप जीवको विभाव परिणाम मिटै छै, तिहितै एक ही काल छे, समयको अन्तर न छै। किसो छे शुद्ध भाव। रागद्वेषमोहैः विना—कहतां रागादि परिणाम रहित छे। शुद्ध चेतना मात्र भाव छे, और किसो छे। द्रव्यकर्मास्रवौघान् सर्वान् रुन्धन्—द्रव्य कर्म कहतां ज्ञानावरणादि कर्म पर्यायरूप परिणयो छे पुद्गल पिंड त्यहको आस्रव कहतां होइ छे, धाराप्रवाहरूप समय २ प्रति आत्म प्रदेश इसो एक क्षेत्रावगाह त्यहको, ओघ कहतां समूह। भावार्थ इसो—जो ज्ञानावरणादि रूप कर्म वर्गणा परिणवे छे, त्यहका भेद असंख्यात लोक मात्र छे, त्यहको सर्वान् कहतां जावंत धारारूप आवे छे कर्म्म, रुंधन् कहतां त्यह सबहको रुंधतो होतो। भावार्थ इसो—जो कोई इसो मानिसै जीवको शुद्ध भाव हूओ संतो रागादि अशुद्ध परिणामको मेटै छे। आस्रव ज्यों ही होइ सो त्यों ही होइ छे। सो यों तो नहीं। ज्यों कहजै छे त्यों छे। जीवको शुद्ध भावरूप परिणवतां अवश्य ही अशुद्ध भाव मिटै छे। अशुद्ध भावकै मिटतां अवश्य ही द्रव्य कर्मरूप आस्रव मिटै छे, तिहितै शुद्ध भाव उपादेय छे अन्य समस्त विकल्प हेय छे।

भावार्थ—यहां यह बताया है कि भेदज्ञान होनेके पीछे सम्यग्दृष्टी जीवके भीतर जो भाव होते हैं वे ज्ञान भावको लिये हुए होते हैं। मिथ्यात्त्व अवस्थामें जितने भाव होते थे वे नहीं होते हैं। तब जो कर्म मिथ्यात्त्व दशामें आकर बंधते थे उनका आना भी बन्द

होजाता है। यह सम्यक्त भावकी अपूर्व महिमा है। शुद्ध आत्मीक भाव ही ग्रहण करने योग्य है। यह प्रतीति अनन्त संसारके कारण कर्मबंधको विलकुल रोक देती है।

कल्लाणालोयणामें कहते हैं—

इक्को सहावसिद्धो सोहं अप्पावियप्प परिमुक्को। अण्णो ण मज्झ सरणं सरणं सो एक परमप्पा ॥१५॥

भावार्थ–ज्ञानीके यह भाव है कि मैं एक सहज सिद्ध आत्मा हूं–सर्व संकल्प विकल्पसे रहित हूं। उसी शुद्ध आत्माकी मैं शरण लेता हूं अन्य किसीकी शरण नहीं लेता हूं।

सवैया २३ सा—दर्वित आश्रव सो कहिये जहिं, पुद्गल जीव प्रदेश गरासे ॥ भावित आश्रव सो कहिये जहिं, राग विमोह विरोध विकासे ॥ सम्यक् पद्धति सो कहिये जहिं, दर्वित भावित आश्रव नासे ॥ ज्ञानकला प्रगटे तिहि स्थानक, अन्तर बाहिर और न भासे ॥ ३ ॥

उपजाति छन्द—भावास्रवाभावमयं प्रपन्नो द्रव्यास्रवेभ्यः स्वत एव भिन्नः।
ज्ञानी सदा ज्ञानमयैकभावो निरास्रवो ज्ञायक एक एव ॥ ३ ॥

खंडान्वय सहित अर्थ–अयं ज्ञानी निराश्रवः एव–अयं कहतां द्रव्यरूप छतो छे। ज्ञानी कहतां सम्यग्दृष्टि जीव, निराश्रवः एव कहतां आश्रव तहि रहित छे। भावार्थ इसो–जो सम्यग्दृष्टि जीव कहु न्यौंवकरि विचारता आश्रव घटै नहीं। किसो छे ज्ञानी, एकः कहतां रागादि अशुद्ध परिणाम तहि रहित छे, शुद्धस्वरूप परिणयो छे। और किसो छे। ज्ञायकः कहतां स्वद्रव्य स्वरूप परद्रव्य स्वरूप समस्त ज्ञेय वस्तुको जानिवा समर्थ छे। भावार्थ–इसो जो ज्ञायकमात्र छे–रागादि अशुद्ध रूप नहीं छे। और किसो छे, सदा ज्ञानमयैकभावः सदा कहतां सर्व काल, धाराप्रवाहरूप, ज्ञानमयः कहतां चेतनरूप इसो छे, एक भाव कहतां परिणाम जिहिको। भावार्थ इसो–जो जावंत छे विकल्प तेता समस्त मिथ्या ज्ञान मात्र वस्तुको स्वरूप थो सो अविनश्वर रह्यो। निराश्रवपनो सम्यग्दृष्टि जीवको ज्यों घटै छे त्यों कहिजे छे। भावास्रवाभावं प्रपन्नः–भावस्रव कहतां मिथ्यात्व रागद्वेष रूप अशुद्ध चेतना परिणाम तिहिको अभाव कहतां विनाश, तिहिको प्रपन्न कहतां प्राप्त हूओ छे। भावार्थ इसो–जो अनंतकाल तहि लेइ करि जीव मिथ्यादृष्टि होतो संतो मिथ्यात्व रागद्वेष रूप परिणवे थो तिहिको नाम आस्रव छे। सो तो काललब्धि पावतां सोई जीव सम्यक्त पर्यायरूप परिणयो शुद्धतारूप परिणयो अशुद्ध परिणाम मिटचो, तातहिं भावास्रव तहितो इसै प्रकार रहित हूओ। द्रव्यास्रवेभ्यः स्वतः एव भिन्नः–द्रव्यास्रवेभ्यः कहतां ज्ञानावरणादि कर्म पर्यायरूप जीवका प्रदेश बैठे छे पुद्गल पिंड तिहि तहि, स्वतः कहतां स्वभाव तहिं भिन्न एव कहतां सर्व काल निरालो ही छे। भावार्थ इसो–जो आस्रव दोइ प्रकार छे। व्यौरो-एक द्रव्यास्रव छे, एक भावास्रव छे, द्रव्यास्रव कहतां कर्मरूप बैठे छे आत्माका प्रदेशई पुद्गल पिंड इसा द्रव्यास्रव तहि जीव स्वभाव ही तहिं रहित छे। तिहि तहि यद्यपि

जीवके प्रदेश कर्म पुद्गल पिंडके प्रदेश एक ही क्षेत्र रहहि छे। तथापि माहे माहे एक द्रव्यरूप नहीं होहि छे आपणा आपणा द्रव्य गुण पर्यायरूप रहे छे। पुद्गल पिंड तहि जीव भिन्न छे। भावास्रव कहतां मोह रागद्वेष रूप विभाव अशुद्ध चेतन परिणाम सो इसा परिणाम यद्यपि जीव कहुं मिथ्यादृष्टि अवस्था विषै छता ही छे। तथापि सम्यक्त्व रूप परिणवतां अशुद्ध परिणाम मिट्या। तिहि तहि सम्यग्दृष्टि जीव भावास्रव तहिं रहित छे तिहतहि इसो अर्थ निपज्यो जो सम्यग्दृष्टि जीव निरास्रव छे और सम्यग्दृष्टि जीव निरास्रव ज्यों छे त्यों कहिजै छे।

भावार्थ—यहां यह बताया है कि सम्यग्दृष्टि ज्ञानी जीवके वे सर्व भाव मिट गए जो मिथ्यात्व अवस्थामें होते थे। उसको यही अनुभव है कि मैं शुद्ध चैतन्य मात्र पदार्थ हूं, मैं जाननेवाला हूं, मेरा स्वभाव रागद्वेष करनेका नहीं है, इसतरह भावास्रवसे छूट गया। तथा द्रव्यकर्मोंसे तो सम्यग्दृष्टि जीव स्वभावसे ही अपनेको भिन्न जानता है। वे पुद्गल हैं, आत्मासे सर्वथा भिन्नस्वभाव रूप हैं। ज्ञानी जीव सदा यही श्रद्धा रखता है कि मेरा सम्बन्ध न किसी भावकर्मसे है, न द्रव्यकर्मसे है, न नोकर्मसे है। इसलिये यह द्रव्यास्रव और भावास्रव दोनोंसे ही रहित है। यह आत्मानुभव और भेदज्ञानकी महिमा है। तत्व०में कहा है—

क्षयं नयति भेदज्ञश्चिद्रूपप्रतिघातकं। क्षणेन कर्मणां राशिं तृणानां पावको यथा ॥१२८॥

भावार्थ—भेदज्ञानी महात्मा चैतन्यरूपके घातक कर्मोंको क्षणमात्रमें जला देता है जिसतरह अग्नि तृणोंके ढेरको जला देती है।

चौपाई—जो द्रव्याश्रव रूप न होई। जहां भावाश्रव भाव न कोई॥
जाकी दशा ज्ञानमय लहिये। सो ज्ञातार निराश्रव कहिये॥ ४॥

शार्दूलविक्रीडित छंद—संन्यस्यन्निजबुद्धिपूर्वमनिशं रागं समग्रं स्वयम्।
वारंवारमबुद्धिपूर्वमपि तं जेतुं स्वशक्तिं स्पृशन्।
उच्छिन्दन् परवृत्तिमेव सकलां ज्ञानस्य पूर्णो भव-
न्नात्मा नित्यनिरास्रवो भवति हि ज्ञानी यदा स्यात्तदा॥ ४॥

खण्डान्वयसहित अर्थ—आत्मा यदा ज्ञानी स्यात् तदा नित्यनिराश्रवः भवति—आत्मा कहता जीवद्रव्य, यदा कहतां जे ही काल, ज्ञानी स्यात् कहतां अनंतकाल तहि विभाव मिथ्यात्व भाव परिणयो थो सो निकट सामग्री पाय करि सहज ही विभाव परिणाम छूटै छे। स्वभाव सम्यक्त्वरूप परिणवै छे इसो कोई जीव होइ। तदा कहतां सो काल आदि देइ जावंत आगामि काल, नित्य निराश्रवः कहतां सर्वथा सर्वकाल सम्यग्दृष्टि जीव आश्रव तहि रहित, भवति कहतां होइ छे। भावार्थ इसो—जो कोई संदेह करिसी जो सम्यग्दृष्टि आश्रव सहित छे के आश्रव रहित छे। समाधान इसौ जो आश्रव तहिं रहित छे।

कायो करतो होतो निराश्रव छे। निजबुद्धिपूर्वं रागं समग्रं अनिशं स्वयं संन्यस्यन्–निज कहतां आपणी, बुद्धि कहतां मन, पूर्व कहतां मन कहुं आलम्बन करि होहि छे जावंत मोह रागद्वेष रूप अशुद्ध परिणाम इसौ छे, रागं कहतां परद्रव्य सहु रंजित परिणाम, समग्रं कहतां असंख्यात लोक मात्र भेद रूप छे, अनिशं कहतां सम्यक्त उत्पत्ति काल तहि लेइ करि आगामि सर्व काल, स्वयं कहतां सहज ही, सन्यस्यन् कहतां छोड़तो होतो। भावार्थ इसौ–जो नानाप्रकार कर्मके उदय नानाप्रकार संसार शरीर भोग सामग्री होइ छे। इसी समस्त सामग्रीको भोगवतें संतें हौं देव हौं, हौं दुःखी हौं, हौं मनुष्य हौं, हौं सुखी हौं इत्यादि रूप नहीं रंजै छे। जानै छे, हौं चेतना मात्र शुद्ध स्वरूप छौं। एती समस्त कर्मकी रचना छे। इसौं अनुभवतां मनका व्यापाररूप राग मिटै छे। अबुद्धिपूर्वं अपि तं जेतुं वारंवारं स्वशक्तिं स्पृशन्–अबुद्धिपूर्वं कहतां मनके आलम्बन पाखे मोह कर्मको उदय निमित्त कारण तहि परणवै छे अशुद्धता रूप जीवके प्रदेश, तं अपि कहतां तिहिको फुनि, जेतुं कहतां जीतिवाके निमित्त, वारम्वारं कहतां अखण्डित धारा प्रवाह रूप, स्वशक्तिं कहतां शुद्ध चैतन्य वस्तु तिहिको, स्पृशन् कहतां स्वानुभव प्रत्यक्षपनै आस्वादतो होतो। भावार्थ इसौ–जो मिथ्यात्व रागद्वेष रूप छे जे जीवके अशुद्ध चेतनारूप विभाव परिणाम ते दोइ प्रकार छे। एक परिणाम बुद्धिपूर्वक छे, एक परिणाम अबुद्धि पूर्वक छे। व्यौरो–बुद्धिपूर्वक कहतां जावंत परिणाम मनके द्वार करि प्रवर्तें, बाह्य विषयके आधार करि प्रवर्तें, प्रवर्ततां होतां सो जीव आपुनपै फुनि जानै जो म्हारा परिणाम इसो रूप छे। तथा अन्य जीव फुनि जानहि अनुमान करि जो इहि जीवकै इसा परिणाम छे। इसा परिणाम बुद्धिपूर्वक कहिजै। सो इसा परिणामहंको सम्यग्दृष्टि जीव मेटि सकै जिहि तहि इसा परिणाम जीवकी जानि माहे छे। शुद्ध स्वरूपको अनुभव होता जीवका सारका फुनि छे। तिहितै सम्यग्दृष्टि जीव पहला ही इसा परिणाम मिटै छे। अबुद्धि पूर्वक परिणाम कहतां पंचइंद्रियमनको व्यापार विना ही, मोह कर्मको उदय निमित्त पाया मोह रागद्वेष रूप अशुद्ध विभाव परिणाम रूप आपुणपै जीव द्रव्य असंख्यात प्रदेशहं परिणवै सो इसो परिणमन जीवकी जानि माहे नहीं और जीवका साराको फुनि नहीं तिहि तैं ज्योंही त्योंही मेटचो जाइ नहीं। तिहितै इसा परिणाम मेटिवाको निरंतरपनै शुद्ध स्वरूपको अनुभवै छे, शुद्ध स्वरूपको अनुभव करतां सहज ही मिटिस्यै। आगे उपाय तो कोऊ नहीं तिहि तै एक शुद्ध स्वरूपको अनुभव उपाइ छै। और कायो करतो होतो निराश्रव होइ छे। एव परवृत्तिं सकलां उच्छिन्दन्–एव कहतां अवश्य करै छै। पर कहतां जावंत ज्ञेय वस्तु तिहिकी वृत्ति कहतां तिहि विषै रंजकपनो इसी परिणाम क्रिया तिहिको, सकलं कहतां यावंत छे शुभ रूप अथवा

अशुभ रूप तिहिको, उच्छिदन् कहतां मूलतहि उखारतो होतो सम्यग्दृष्टि निरास्रव होइ छे। भावार्थ इसो–जो ज्ञेय ज्ञायकका सम्बन्ध दोइ प्रकार छे; एक तो जानपना मात्र छे रागद्वेष रूप न छे–यथा केवली सकल ज्ञेय वस्तु को देखै जानै परन्तु कोनहुं वस्तु विषै रागद्वेष नाहीं करै छे तिहिको नाम शुद्ध ज्ञान चेतना कहिजे, सो सम्यग्दृष्टि जीवके शुद्ध ज्ञान चेतनारूप जानपनो छे, तिहितैं मोक्षको कारण छे बंध कारण न छे। दूजो जानपनो इसो जो केताएक विषय वस्तुको जानपनो फुनि और मोहकर्मको उदय निमित्त पायकरि इष्ट विषै राग करै छे, भोगको अभिलाष करै छे तथा अनिष्ट विषै द्वेष करै छे अरुचि करै छे, सो इसा रागद्वेष करि मिल्यो छे जो ज्ञान तिहिको नाम अशुद्ध चेतनां लक्षण कर्म चेतना कर्मफल चेतना रूप कहिजे, तिहितै बंधको कारण छे। इसो परिणमन सम्यग्दृष्टिको न छे। जिहितहि मिथ्यात्वरूप परिणाम गया थकी इसो परिणमन नहीं होइ छे। इसो अशुद्ध ज्ञान चेतनारूप परिणाम मिथ्यादृष्टिको होइ छे। औ किसो होतो निराश्रव होइ छे। ज्ञानस्य पूर्णः भवन्–कहतां पूर्ण ज्ञानरूप होतो संतो। भावार्थ इसो–जो ज्ञानको खंडितपनो जो रागद्वेष करि मिल्यो छे। रागद्वेषके गया थे ज्ञानको पूर्णपनो कहिये। इसो होतो संतो सम्यग्दृष्टि जीव निराश्रव होइ छे।

भावार्थ–यहां यह भाव है कि सम्यग्दृष्टि जीवके आस्रव नहीं होता क्योंकि उसको अपने शुद्ध ज्ञान स्वरूप आत्माका पूर्ण ज्ञान श्रद्धान तथा अनुभव है, वह बुद्धिपूर्वक रागद्वेष नहीं करता है। पुण्य कर्मके उदयसे जो शुभ संयोग मिलते हैं उनको होते हुए यह अहंकार व उन्मत्तता नहीं करता है, जो मैं सुखी हूं, मैं धनी हूं, मैं चक्रवर्ती हूं। और यदि पापकर्मके उदयसे अशुभ संयोग होते हैं तो उनके होते हुए यह खेद भी नहीं करता है कि मैं दुःखी हूं, रोगी हूं, दलिद्री हूं। इसका कारण यह है कि उसकी अहंबुद्धि एक मात्र अपने शुद्ध आत्मस्वरूपपर है, शेष सर्व अवस्थाओंको वह कर्म जनित नाटक समझता है। उनमें ज्ञाता दृष्टा रूप रहता है, रंजायमान नहीं होता है। बुद्धिपूर्वक या इच्छापूर्वक रागद्वेष तो सम्यग्दृष्टी ज्ञानीको नहीं होते हैं। किन्तु अबुद्धि पूर्वक होसक्ते हैं। उन सम्यग्दृष्टियोंको जिनके अभी अप्रत्याख्यानावरण कषाय व प्रत्याख्यानावरण कषायका उदय हो जाता है। ऐसे जीवोंके मन, वचन, काय व इंद्रियोंकी प्रवृत्ति भी तदनुकूल होती है। वे गृहस्थीके सर्व ही करनेयोग्य कार्य करते हैं, राज्यपाट व्यापारादि सब कुछ करते हैं, परन्तु उनमें रंजायमान नहीं होते हैं। उनको भी कर्मका नाटक समझते हैं। तथा उनके मेटनेके लिये भी निरंतर शुद्धात्मानुभवका अभ्यास करते हैं, जिसके द्वारा परिणामोंकी उज्वलता होकर आगामी उदय आनेयोग्य कषायोंकी वर्गणाओंमें शक्तिकी कमी होती जाती है। जो साधुजन हैं

उनकी मन, वचन, कायकी प्रवृत्ति रागद्वेषरूप नहीं होती है, क्योंकि उनके संज्वलन कषायका उदय होता है, वे इंद्रिय विषय व्यापारमें परिणमन नहीं करते हैं। जो अप्रमत्त गुणस्थान व उससे आगेके साधु हैं, [उनको तो ऐसी स्वरूपमग्नता होती है कि जो कुछ मंद कषायका उदय है, वह उनके अनुभवमें नहीं आता है, इतना अबुद्धिपूर्वक है। टीकाकारने जो यह कहा है कि अबुद्धिपूर्वकसे यह प्रयोजन है कि इंद्रिय व मनका व्यापार तदनुकूल न हो सो यह अवस्था वीतराग सम्यग्दृष्टियोंके ही संभव है, जो बिलकुल शुद्धोपयोगमें ध्यानमग्न रहते हैं, जहां कषायके उदयसे न चाहते हुए भी जो इंद्रिय व मनकी प्रवृत्ति होती है और सम्यग्दृष्टिकी इस प्रवृत्तिको भी अबुद्धि पूर्वक कहते हैं इसका मतलब यह है कि सम्यग्दृष्टि उन प्रवृत्तियोंका स्वामी नहीं बनता है। उनको कर्मकृत रोग जानता है। उनको अपने आत्माका कर्तव्य नहीं समझता है। लाचार हो कषायरूपी रोगका इलाज मात्र करता है। टीकाकारने जो सम्यग्दृष्टिके ज्ञानचेतना ही बताई है और उसको केवलीकी सदृशता दी है व कर्मचेतना व कर्मफल चेतनाका निषेध बताया है सो यह कथन श्रद्धान व रुचि अपेक्षा तो सर्व प्रकारसे सम्यग्दृष्टियोंमें घट सकेगा क्योंकि गृहस्थ या मुनि सर्व ही तत्वज्ञानी अपना रंजकपना अपने शुद्ध ज्ञान स्वभावमें ही रखते हैं। अंतरंगसे वे संसार शरीर व भोगोंसे पूर्ण वैरागी हैं। परमाणु मात्र भी अपना नहीं मानते हैं न किसीसे द्वेष करते हैं। इससे न रागद्वेष रूप कर्ममें रंजित होते हैं न कर्मके फल सुख दुःखमें रंजित व आकुलित होते हैं। परन्तु चारित्र अपेक्षा जहांतक अप्रमत्त गुणस्थान नहीं हुआ है वहांतक ऐसा कषायका तीव्र उदय है जिसके वशीभूत होकर रागद्वेष रूप कार्य भी करते व सुख दुःखमें सुखी व दुःखी भी होजाते हैं। प्रमत्त गुणस्थानवर्ती साधु धर्मोपदेश देते हैं व ग्रंथ पठन करते हैं, शिष्योंकी रक्षा करते हैं। यह सब कुछ शुभ कार्यमें वर्तन है। कभी मनोज्ञ स्थान व शिष्य व शास्त्रका समागम होता है तो सुख भी मानते हैं व अमनोज्ञ स्थानादि व शिष्यादि हों तो दुःख भी मान लेते हैं। व गृहस्थ पांचवें व चौथे गुणस्थानवर्ती तो और भी तीव्र कषायके वशीभूत होकर गृहस्थ योग्य आजीविका साधनके कर्म करते हैं व विषयभोगोंमें भी प्रवर्तते हैं। कभी सुखी व कभी दुःखी होजाते हैं। इससे यह भाव है कि चारित्रकी अपेक्षा कर्म चेतना व कर्मफल चेतनारूप भी प्रवृत्ति होती है। श्रद्धानापेक्षा तो सर्व काल ज्ञान चेतनारूप सर्व सम्यग्दृष्टि रहते हैं। परन्तु चारित्र अपेक्षा स्वानुभवमें जब होते हैं तब ज्ञानचेतनारूप रहते हैं। पूर्ण ज्ञानचेतना केवली भगवानके ही होती है। ऐसा ही कथन स्वामी कुन्दकुन्दाचार्यजीने पंचास्तिकायजीमें कहा है—

सव्वे खलु कम्मफलं थावरकाया तसा हि कज्जजुदं। पाणित्तमदिक्कंता णाणं विंदंति ते जीवा ॥३९॥

भावार्थ—स्थावर जीव मुख्यतासे कर्म फलका अव्यक्त रूपसे अनुभव करते हैं। त्रस जीव कर्मफल सहित कर्म अर्थात् रागद्वेष पूर्वक कार्य करनेका भी अनुभव करते हैं। परन्तु प्राणोंकी प्रवृत्ति रहित ऐसे केवल ज्ञानी ज्ञानका ही अनुभव करते हैं। यहां तात्पर्य यह है कि सम्यग्दृष्टि मोक्षमार्गी है इससे उसके वह आश्रव नहीं है जो संसारको बढ़ानेवाला हो। संसारवर्द्धक आश्रव तो मिथ्यादृष्टि जीवके ही होता है। जहांतक कषायका अंश सम्यग्दृष्टि जीवके दशवें गुणस्थान तक होता है वहांतक वह कर्मबंधको यथासंभव गुणस्थानके अनुकूल करता भी है परंतु वह सर्व मिट जाने वाला है, मोक्षमार्गमें रंचमात्र भी बाधक नहीं है। इसलिये हरएक सम्यग्दृष्टि निराश्रव ही है। वह आश्रव भाव व द्रव्यकर्म दोनोंसे अत्यन्त उदासीन हैं। उनमें स्वामित्व नहीं है, इसीसे वह आश्रव रहित मात्र ज्ञाता दृष्टा है। तत्वज्ञानिके लिये योगसारमें कहा है—

जो सम्मत्तपहाणु बुहु सो तयलोय पहाणु। केवलणाण वि लहु लहइ सासयसुक्खणिहाणु॥ ९०॥

भावार्थ—जो सम्यग्दर्शन भावमें प्रधान हैं वे तीन लोकमें मुख्य हैं वे अवश्य केवलज्ञानको व अविनाशी सुखनिधानको पावेंगे।

सवैया ३१ सा—जेते मन गोचर प्रगट बुद्धि पूरवक, तिन परिणामनकी ममता हरतु है॥ मनसो अगोचर अबुद्धि पूरवक भाव, तिनके विनाशवेको उद्यम धरतु है॥ याही भांति पर परणतिको पतन करे, मोक्षको जतन करे भौजल तरतु है॥ ऐसे ज्ञानवंत ते निराश्रव कहावे सदा, जिन्हको सुजस सुविचक्षण करतु है॥ ५॥

श्लोक—सर्वस्यामेव जीवन्त्यान्द्रव्यप्रत्ययसन्ततौ।
कुतो निरास्रवो ज्ञानी नित्यमेवेति चेन्मतिः॥ ५॥

खंडान्वयसहित अर्थ—इहां कोई आशंका करे छै। सम्यग्दृष्टि जीव सर्वथा निरास्रव कह्यो और योहु छै। परन्तु ज्ञानावरणादि द्रव्य पिंड ज्योंही थो त्योंही छतो छै। तथा तिहि कर्मके उदय नानाप्रकार भोग सामग्री ज्योंही थी त्योंही छै। तथा तिहि कर्मके उदय नानाप्रकार सुख दुःखको भोगवै छै, इन्द्रिय शरीर सम्बन्धी भोग सामग्री ज्यों थी त्यों ही छै। सम्यग्दृष्टि जीव तिहि सामग्री कहु भोगवै छै। एती सामग्री छतां निरास्रवपनो क्यों घटै छे, इसो कोई प्रश्न करै छे। द्रव्यप्रत्ययसंततौ सर्वस्यामेव जीवंत्यां ज्ञानी नित्यं निराश्रवो कुतः—द्रव्य प्रत्यय कहतां जीवका प्रदेशहि परिणया छे पुद्गल पिंडरूप अनेक प्रकार मोहनीय कर्म तिहिकी संतति कहतां स्थिति बंधरूप बहुत काल पर्यंत जीवके प्रदेशहु रहै। सर्वस्यां कहतां जेती हुती ज्यों हुती, जीवंत्यां कहतां तेती ही छे। छती छे त्यों ही छे—एक कहतां निहचासों, ज्ञानी कहतां सम्यग्दृष्टि जीव, नित्यं निरास्रवः कहतां सर्वथा सर्वकाल आस्रव तहि रहित छै। इसो कह्यो सो, कुतः कायों विचारि कह्यो। चेत् इति मतिः—चेत् कहतां

सो शिष्य ! यदि इति मतिः कहतां तेरे जीव इसी आशंका छे तदा उत्तर सुन कहिजै छे।

भावार्थ—यहां किसी शिष्यने प्रश्न किया कि—गुरुजी महाराज ! आपने यह बताया कि सम्यग्दृष्टिके आस्रव नहीं होता है, परन्तु गृहस्थ सम्यग्दृष्टीके तो सब कुछ भोग सामग्री होती है। वह भोगता भी है, कार्य भी करता है, उसके मोह कर्म भी सत्तामें है तथा यथा काल उदयमें है; तब वह सर्वथा आस्रव रहित कैसे होसक्ता है ?

सवैया २३ सा—ज्यों जगमें विचरे मतिमन्द, स्वछन्द सदा वरते बुध तैसे ॥ चंचल चित्त असंजम वैन, शरीर सनेह यथावत जैसे ॥ भोग संयोग परिग्रह संग्रह, मोह विलास करे जहां ऐसे ॥ पूछत शिष्य आचारजसों यह, सम्यकवन्त निराश्रव कैसे ॥ ६ ॥

मालिनीछंद-विजहति न हि सत्तां प्रत्ययाः पूर्वबद्धाः समयमनुसरन्तो यद्यपि द्रव्यरूपाः।
तदपि सकलरागद्वेषमोहव्युदासादवतरति न जातु ज्ञानिनः कर्मबन्धः ॥६॥

खण्डान्वयसहित अर्थ—तदपि ज्ञानिनः जातु कर्मबन्धः न अवतरति—तदपि कहतां तौ फुनि ज्ञानिनः कहतां सम्यग्दृष्टि जीव कहुं, जातु कहतां कौन हूं नय करि, कर्मबंध कहतां ज्ञानावरणादि रूप पुद्गल पिण्डको नुतन आगमन कर्म रूप परिणमन, न अवतरति कहतां नाही होतो अथवा जो कदी ही सूक्ष्म अबुद्धिपूर्वक रागद्वेष परिणाम करि बंध होइ छे अति ही अल्पबंध होइ छे तो फुनि सम्यग्दृष्टि जीव कइ बंध होइ इसो कोई त्रिकाल ही कहि सकै नहीं। आगे किसाथकी बंध नहीं। सकलरागद्वेषमोहव्युदासात्—जिहि कारण तहि इसौ छे तिहि कारण तहि बंध न घटै। सकल कहतां जावंत छे शुभरूप अथवा अशुभ रूप राग कहतां प्रीतिरूप परिणाम, द्वेष कहतां दुष्ट परिणाम, मोह कहतां पुद्गल द्रव्यकी विचित्रता विषैं आत्मबुद्धि इसो विपरीत रूप परिणाम तिहि तैं, व्युदासात् कहतां तीन ही परिणाम तहि रहितपनो इसो कारण छे तिहितै छती सामग्री सम्यग्दृष्टि जीव कर्मबंधको कर्ता न छे। छती सामग्री ज्यों छे त्यों कहिजै छे। यद्यपि पूर्वबद्धाः प्रत्ययाः द्रव्यरूपाः सत्तां न हि विजहति—यद्यपि कहतां जोयो फुनि छे पूर्वबद्धाः कहतां सम्यक्की उत्पत्ति पहली जीव मिथ्यादृष्टि थो, तिहितै मिथ्यात्व रागद्वेष परिणाम करि बांध्या था, द्रव्यरूपा प्रत्ययाः कहतां मिथ्यात्वरूप तथा चारित्र मोहरूप पुद्गल कर्मपिंड सत्ता स्थिति बंधरूप जीवका प्रदेशहं कर्मरूप छता छै इसो अस्तित्वपनो, न हि विजहति कहतां नहीं छोड़े छे उदय फुनि होइ छे। इसो कहिजै। समयं अनुसरंतः अपि—समय कहतां समय समय प्रति अखंडित धारा प्रवाह रूप, अनुसरंतः अपि कहतां उदय फुनि देहि छे तथापि सम्यग्दृष्टी कर्मबंधको कर्ता न छे। भावार्थ इसौ—जो कोई अनादिकालको मिथ्यादृष्टी जीव काललब्धि पाया थको सम्यक्त गुण रूप परिणयो। चारित्र मोहकर्मकी सत्ता छती छे, उदय फुनि छतो छे। पंचेंद्रिय विषय संस्कार छतो छे, भोगवै फुनि छे। भोगवतो ज्ञान गुण करि वेदक फुनि छे तथापि

यथा मिथ्यादृष्टी जीव आत्मस्वरूप कहुं नहीं जानै छे कर्म्मका उदयको आपो करि जानै छे, तिहितै इष्ट अनिष्ट विषय सामग्री भोगवतां राग द्वेष करै छे, तिहितै कर्म्मको बंधक होइ छे तथा सम्यग्दृष्टी जीव न छे। सम्यग्दृष्टी जीव आत्माको शुद्ध स्वरूप अनुभवै छे। शरीर आदि समस्त सामग्री कर्म्मको उदय जानै छे। उदय आया खेवै छे (भोगवै छे व वर्त्तै छे) परन्तु अन्तरंग विषै परम उदासीन छे। तिहितै सम्यग्दृष्टि जीवको कर्मबंध न छै। इसी अवस्था सम्यग्दृष्टि जीव कहु सर्वकाल नहीं। जब ताईं सकल कर्म क्षय करि निर्वाण पदवी पावै तब ताईं इसी अवस्था छै। यदा निर्वाण पद पाइसै तबको कांई कहिवो ही नहीं–साक्षात् परमात्मा छै।

भावार्थ–यही है कि सम्यग्दृष्टि जीवके गाढ़ श्रद्धान व रुचि अपनी आत्म सम्पदा हीसे है। उसीको अपना सर्वस्व जानता है। उसी आत्मीक आनंदामृतमें मग्न हैं जिसमें परमात्मा मग्न हैं। इसलिये वह सदा मोक्षरूप है बंधक नहीं है। ऐसा कहना ही ठीक है। वह तो सर्व कर्मसे व कर्मके उदयसे व कर्मोदय जनित विभावोंसे अपनेको मुक्त ही अनुभव करता है। भोगोंको भोगता हुआ कर्मकी निर्जरा करता है। क्योंकि भीतरसे वह अत्यन्त उदासीन है। इसलिये उसको निरास्रव ही कहना उचित है। मिथ्यात्व सम्बन्धी रागद्वेष परिणामोंका उसके बिलकुल अभाव है, जो कुछ चारित्र मोहका उदय है वह सब क्षयकी तरफ जारहा है। यह उस ज्ञानीके आत्मानुभवका महात्म्य है। अल्पबन्ध अनन्त बन्धके सामने नहींके समान है। अनंतबन्ध मिथ्यात्वसे होता था, सो अब नहीं रहा है। संसाररूपी वृक्षकी जड़ कट गई है। ऐसी अवस्थामें यदि कुछ पानीकी तरी वृक्षपर पड़े भी तौभी वह तो सूख ही जायगी। इसी तरह जो कुछ अल्प बन्ध होगा भी सो शीघ्र ही सूख जायगा। सम्यग्दर्शनकी महिमा अपार है। योगसारमें कहा है—

सम्माइट्ठी जीवडह दुग्गइगमणु न होइ जइ जाइ वि तो दोस णवि पुव्वकिउ खवणेउ ॥८७॥

भावार्थ–सम्यग्दृष्टी जीवका दुर्गतिमें गमन नहीं होता है, यदि कदाचित् जाय भी तो दोष नहीं है वहां भी पूर्वकृत कर्मका क्षय ही करता है। सम्यग्दृष्टीके पिछले बांधे कर्म निर्जराके लिये हैं वैसे नूतन बांधे भी निर्जराके लिये हैं। यह उनके वैराग्य व आत्मज्ञानकी महिमा है—

सवैया ३१ सा—पूरव अवस्था जे करम बन्ध कीने अब, तेई उदै आई नाना भांति रस देत है ॥ केई शुभ साता केई अशुभ असाता रूप, दुहूंमें न राग न विरोध समचेत है ॥ यथा-योग्य क्रिया करे फलकी न इच्छा धरे, जीवन मुकतिको विरद गहि लेत है ॥ यातें ज्ञानवन्तको न आश्रव कहत कोउ, मुद्धतासों न्यारे भये शुद्धता समेत है ॥७॥

श्लोक–रागद्वेषविमोहानां ज्ञानिनो यदसंभवः।
ततएव न बन्धोऽस्य ते हि बन्धस्य कारणम् ॥७॥

खंडान्वय सहित अर्थ-इसो कहवो जो सम्यग्दृष्टि जीवको बंधन छे सो इसी प्रतीति ज्यों होइ त्यों और कहिजै छे। यत् ज्ञानिनः रागद्वेषविमोहानां असंभवः ततः अस्यबंधः न-यत् कहतां जिहि कारण तिहि, ज्ञानिनः कहतां सम्यग्दृष्टि जीव कहुं, राग कहतां रंजक परिणाम, द्वेष कहतां उद्वेग, मोह कहतां विपरीतपनो इसो अशुद्ध भावहको, असंभवः कहतां विद्यमानपनो न छे भावार्थ इसो-जो सम्यग्दृष्टि जीव कर्मका उदयको नहीं रंज छे तिहितै रागादिक न छें। ततः कहतां तिहि कारण तहि, अस्य कहतां सम्यग्दृष्टि जीवको बंधः न कहतां ज्ञानावरणादि द्रव्य कर्मको बंध न छै, एव कहतां निहचासों, इसो ही द्रव्यको स्वरूप छे। हि ते बंधस्य कारणं-हि कहतां जिहि कारण तहि, ते कहतां रागद्वेष मोह इसा अशुद्ध परिणाम, बंधस्य कारणं कहतां बंधको कारण छे। भावार्थ इसो जो कोई अज्ञानी जीव इसो मानिसै जो सम्यग्दृष्टि जीवकै चारित्र मोहको उदय तो छे तिहि उदय मात्र होतां आगामि ज्ञानावरणादि कर्मको बंध हो तो होसी, समाधान इसो जो चारित्र मोहकै उदय मात्र बंध नहीं। उदय होतां जो जीवके रागद्वेष मोह परिणाम होहि अन्यथा कारण सहस होइ तौ फुनि कर्मबंध न होइ। राग द्वेष मोह परिणाम फुनि मिथ्यात्व कर्मके उदयका सारांका छै, मिथ्यात्वके जातां एकला चारित्र मोहका उदयका सारांका रागद्वेष मोह परिणमन छे। तिहितै सम्यग्दृष्टीको रागद्वेष मोह परिणाम होहि नहीं तिहितै कर्मबंधको कर्ता सम्यग्दृष्टी जीव न होइ।

भावार्थ-यहां यही बात और भी दृढ़ की है कि जब यह आत्मा तत्वज्ञानी आत्मानुभवी आत्मरसिक होजाता है तब यह केवल आत्मानुभवको ही अपना परम कार्य जानता है। उसका रञ्चमात्र भी मोह अपने स्वरूपको छोड़कर किसी भी पर द्रव्यमें नहीं होता है। जैसा कर्मका उदय आता है उसको ज्ञाता दृष्टा रूपसे भोग लेता है। इसलिये कर्मकी निर्जरा तो होजाती परन्तु बन्ध नहीं होता है। वास्तवमें बन्ध नहीं है जो मिथ्यात्व परिणामकी सत्तामें होता है। मिथ्यात्वके जानेके पीछे जलमें कमलवत् उदासीन भावसे रहनेवाले ज्ञानीके जो कुछ राग अंश या द्वेष अंश होता भी है सो ऐसे अल्प बन्धका कारण है जिसको बन्धके नामसे भी कहना उचित नहीं जंचता। वह सब बंध ज्ञानीकी परिणतिको विकारी बनानेवाला नहीं है। ज्ञानीके ऐसा भाव रहता है जैसा तत्व० में कहा है—

निश्चलः परिणामोऽस्तु स्वशुद्धिचिति मामकः शरीरमोचकं यावदिव भूमौ सुराचलः ॥ १३-६ ॥

भावार्थ-जबतक यह शरीर है तबतक मेरा निश्चल भाव सुमेरुपर्वतके समान अपने शुद्ध आत्मामें ही दृढ़ जमा रहे॥

दोहा—जो हित भावसु राग है, अहित भाव विरोध। भ्रमभाव विमोह है, निर्मल भावसु बोध ॥८॥
राग विरोध विमोह मल, येई आस्रव मूल। येई कर्म बढाइके, करे धरमकी भूल ॥९॥
जहां न रागादिक, दशा सो सम्यक् परिणाम। याते सम्यक्वन्तको, कह्यो निरास्रव नाम ॥१०॥

वसंततिलका छन्द–अध्यास्य शुद्धनयमुद्धतबोधचिह्नमैकाग्र्यमेव कलयंति सदैव ये ते।
रागादिमुक्तमनसः सततं भवन्तः पश्यन्ति बन्धविधुरं समयस्य सारं ॥८॥

खंडान्वय सहित अर्थ–ये शुद्धनयं एकाग्र्यं एव सदा कलयंति–ये कहतां जो कोई आसन्न भव्य जीव, शुद्धनयं कहतां निर्विकल्प शुद्ध चैतन्य वस्तु मात्र, एकाग्र्यं कहतां समस्त रागादि विकल्प तहि चित्त निरोध करि, एव कहतां चित्त माहें निहचौ आन करि, कलयंति कहतां अखंडित धाराप्रवाह रूप अभ्यास करै छे, सदा कहतां सर्वकाल, किसौ छै। उद्धतबोधचिह्नं–उद्धत कहतां सर्व काल प्रगट छै सो, बोध कहतां ज्ञान गुण सोइ छै, चिन्ह कहतां लक्षण जिहिको इसौ छै। कायोकरि, अध्यास्य-कहतां जैसे कैसे मनमाहें प्रतीति आनकरि। ते एव समयस्य सारं पश्यंति–ते एव कहतां तेई जीव निहचासों, समयस्य सारं कहतां सकल कर्म तहि रहित अनंत चतुष्टय विराजमान परमात्मा पद कहुं, पश्यंति कहतां प्रगटपनें पावहि छै, किसो पावै छै। बंधविधुरं–बंध कहतां अनादिकाल तहि एक बंध पर्याय रूप चल्यो आयो थो ज्ञानावरणादि कर्म रूप पुद्गल पिंड तिहिं तहि, विधुरं कहतां सर्वथा रहित छे। भावार्थ इसौ–जो सकल कर्म क्षय करि हुओ छै शुद्ध तिहिकी प्राप्ति होइ, शुद्ध स्वरूपको अनुभव करते संते, किसा छे ते जीव रागादिमुक्त-मनसः–कहतां रागद्वेष मोह तहि रहित छे परिणाम त्यहको इसा छे। और किसा छे। सततं भवन्तः–सततं कहतां निरन्तरपनें भवंतः कहतां इसा ही छै। भावार्थ इसौ–जो कोई जानिसे सर्वकाल प्रमादी रहै छै कब ही एक जिसा कह्या तिसा होहि छै सो यों तो नहीं, सदा सर्वदा काल शुद्धपनें रूप रहै छै।

भावार्थ–यहां यह भाव है कि सम्यग्दृष्टी जीव अपने उपयोगको पर पदार्थोंसे रोक करि शुद्धात्माका सदा अनुभव किया करते हैं। जिससे उनको स्वानुभवके समय परमात्माका ही दर्शन होता है व इसी अभ्याससे वे कभी न कभी अनंत चतुष्टय विराजमान अर्हन परमात्माका पद पा लेते हैं, जिस पदमें आत्मघातक कर्मोंका बंध नहीं रहता है।

परमात्मप्रकाशमें कहा है—

जेण सरूवें झाइ यह अप्पा एहु अणंतु तेण सरूवें परिणवइ जहं फलिहउ मणि मंतु।

भावार्थ–जिस स्वरूपसे आत्माका ध्यान किया जायगा, तिसी रूप वह हो जायगा। जैसे यदि निर्मल स्फटिकमणी रखी जाय तो निर्मल दीखेगी, यदि लाल हरा डाक लगा दिया जाय तो लाल हरी दीखेगी। शुद्ध स्वरूपके अनुभवसे ही यह शुद्धात्मा होता है,

सवैया २३ सा—जे कोई निकट भव्यरासी जगवासी जीव, मिथ्यामत भेदि ज्ञान भाव परिणये हैं॥ जिन्हके सुदृष्टीमें न राग द्वेष मोह कहूं, विमल विलोकनिमें तीनों जीति लये हैं॥ तजि परमाद घट सोधि जे निरोधि जोग, शुद्ध उपयोगकी दशामें मिलि गये हैं॥ तेई बंध पद्धति विडारि पर संग डारि, आपमें मगन है के आपरूप भये हैं॥ ११॥

वसंततिलका छंद—प्रच्युत्य शुद्धनयतः पुनरेव ये तु
रागादियोगमुपयान्ति विमुक्तबोधाः।
ते कर्मबन्धमिह बिभ्रति पूर्वबद्ध
द्रव्यास्रवैः कृतविचित्रविकल्पजालम् ॥ ९ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—तु पुनः कहतां यौं फुनि छै, ये शुद्धनयतः प्रच्युत्य रागादियोगं उपयांति ते इह कर्मबंधं बिभ्रति—ये कहतां जो कोई उपशम सम्यग्दृष्टि अथवा वेदक सम्यग्दृष्टि जीव, शुद्धनयतः कहतां शुद्ध चैतन्य स्वरूपके अनुभव तहि, प्रच्युत्य कहतां भृष्ट हूआ छे। रागादि कहतां रागद्वेष मोहरूप अशुद्ध परिणाम तिहि सो, योग कहतां तिहि रूप होतो उपयांति कहतां इसा हो हि छै। ते कहतां इसा छै जे जीव कर्मबंध कहतां ज्ञानावरणादि कर्मरूप पुद्गलको पिंड, बिभ्रति कहतां नवां उपार्जै छे। भावार्थ इसौ—जो सम्यग्दृष्टि जीव जब ताई सम्यक्तके परिणामहसौं साबितु रहे तब ताई रागद्वेष मोह अशुद्ध परिणामके विन होतां ज्ञानावरणादि कर्मबंध न होइ। सम्यग्दृष्टी जीव यो पाछै सम्यक्तके परिणामतै भ्रष्ट हूओ। रागद्वेष मोह रूप अशुद्ध परिणमह कइ होतां ज्ञानावरणादि कर्मबंध होइ। जिहि तहि मिथ्यात्वके परिणाम अशुद्ध रूप छे। किसा छे ते जीव, विमुक्तबोधाः—विमुक्त कहतां छूटचो छै, बोध कहतां शुद्ध स्वरूप अनुभव ज्यहको इसा छै। किसो छै कर्मबंध, पूर्वबद्धद्रव्यास्रवैः कृतविचित्रजालं—पूर्व कहतां सम्यक्त विन उपजतां, बद्ध कहतां मिथ्यात्व रागद्वेष परिणाम करि बांध्या था, द्रव्यास्रवैः कहतां पुद्गल पिंड रूप मिथ्यात्व कर्म तथा चारित्र मोह कर्म त्यह करि, कृतविचित्रजालं कृत कहतां कीनो छे, विचित्र कहतां नाना प्रकार, विकल्प कहतां रागद्वेष मोह परिणाम त्यहको, जाल कहतां समूह इसौ छै। भावार्थ इसो—जो जेतो काल जीव सम्यक्तके भाव रूप परिणयो थो तेतो काल चारित्र मोह कर्म कीलयां सांपकी नाई आपणो कार्य करिवाको समर्थ न थो, यदा काल सोई जीव सम्यक्तके भावह तहि भृष्ट हूओ मिथ्यात्व भावरूप परिणयौ तदा काल उकीलया सापकी नाई आपनो कार्य करिवाको समर्थ हूओ। चारित्र मोहको कार्य इसो जो जीवके अशुद्ध परिणमनको निमित्त होइ। भावार्थ इसो—जो जीव मिथ्यादृष्टी छतां चारित्र मोहको बंध पण होइ। जब जीव समकित पावै तब चारित्र मोहके उदय बन्ध होइ पण बन्ध शक्ति हीन होइ तो बंध न कहावे। तिहिथी समकित छतां चारित्र मोह कील्या सांपकी नाई ऊपरि कह्यो। जब समकित छूटै तब उकीलया सांपकी नाई चारित्र मोह कह्यो सो ऊपरला भावार्थथी अभिप्राय जाणवो।

भावार्थ—यहां यह भाव है कि जब सम्यग्दर्शन छूट जाता है तब यह जीव राग द्वेष

मोहरूप होकर, अनेक प्रकार कर्मबंध करता है। सम्यग्दर्शनके प्रभावसे सर्व कषाय कीले हुए सांपके समान रहते हैं, आत्माका बिगाड़ नहीं कर सक्ते हैं। सम्यक्त छूटा कि फिर वे खुले हुए सांपके समान होकर अनर्थ करने लगते हैं, भेदज्ञानकी महिमा अपार है। तत्व०में कहा है—

संवरो निर्जरा साक्षात् जायते स्वात्मबोधनात्। तद्भेदज्ञानतस्तस्मात् तच भाव्यं मुमुक्षुणा ॥१४८॥

भावार्थ—आत्माके अनुभवसे कर्मोंका संवर होता है व उनकी निर्जरा भी होती है। यह स्वात्मानुभव भेद विज्ञानसे होता है इसलिये मोक्षार्थीको सदा इसी भेद विज्ञानकी ही भावना करनी चाहिये।

सवैया ३१ सा—जेते जीव पंडित क्षयोपशमी उपशमी, इनकी अवस्था ज्यों लुहारकी संडासी है। खिण आगिमांहि खिण पाणिमांहि तैसे येउ, खिणमें मिथ्यात खिण ज्ञानकला भासी है॥ जोलों ज्ञान रहे तोलों सिथल चरण मोह, जैसे कीले नागकी शकति गति नासी है॥ आवत मिथ्यात तव नानारूप बंध करे, जेउ कीले नागकी शकति परगासी है॥ १२॥

श्लोक—इदमेवात्र तात्पर्यं हेयः शुद्धनयो न हि।
नास्ति बन्धस्तदत्यागात्तत्त्यागाद्बन्ध एव हि ॥ १० ॥

खंडान्वय सहित अर्थ—अत्र इदं एव तात्पर्यं—अत्र कहतां इहि समस्त अधिकार विषैं, इदं एव तात्पर्यं कहतां निहचासौं इतनो हि काज छे। सो काज किसो शुद्धनयः हेयः न हि—शुद्ध नय कहतां आत्माको शुद्ध स्वरूपको अनुभव, हेयः न हि कहतां सूक्ष्म काल मात्र फुनि विसारिवा योग्य न छे। किसा छे—हि तत् अत्यागात् बंधः नास्ति—हि कहतां जिहि कारण तहि, तत् कहतां शुद्ध स्वरूपको अनुभव तिहिको, अत्यागात् कहतां विन छूटतां बंधः नास्ति कहतां ज्ञानावरणादि कर्मका बंध न होइ। और किसा छै—तत्त्यागात् बंध एव तत् कहतां शुद्ध स्वरूपको अनुभव तिहिको त्यागात् कहतां छूट्या थी, बंध एव कहतां ज्ञानावरणादि कर्मको बंध छे। भावार्थ प्रगट छे।

भावार्थ—इस स्थानपर आचार्यने यह निचोड़ बता दिया है कि शुद्ध निश्चय नयका विषय ज्यों शुद्ध आत्मा है उसको सदा ही ध्यानमें रक्खो। मैं शुद्ध ज्ञानानंदमई स्वरूप हूं, अनुभव परम कल्याणकारी है। यह रुचि परम हितकारिणी है, यही रागद्वेषादि विभावोंसे सुरक्षित रखनेवाली है। इसीका धारी सम्यग्दृष्टी है, उसको संसार वर्द्धक कर्मका बंध नहीं होता है। जिसने इसे पाया नहीं वह अशुद्ध आत्माका मनन करनेवाला निरंतर कर्मबंधका पात्र है। योगसारमें कहा है—

पुग्गल अण्णु जि अण्णु जिउ अण्णुवि सहुविवहारु। चयहि विपुग्गलु गहहि जिउ लहु पावहु भवपारु॥५४॥

भावार्थ-पुद्गल अन्य है, जीव अन्य है और सब व्यवहार भी अन्य है, पुद्गलादिको छोड़कर जो अपने आत्माको ग्रहण करता है वह शीघ्र संसारसे पार होजाता है।

दोहा—यह निचोर या ग्रंथको, यहे परम रस पोख। तजे शुद्धनय बंध है, गहे शुद्धनय मोख ॥१३॥

शार्दूलविक्रिडित छंद-धीरोदारमहिम्न्यनादिनिधने बोधे निवध्नन्धृतिम्।

त्याज्यः शुद्धनयो न जातु कृतिभिः सर्वंकषः कर्मणाम् ॥
तत्रस्थाः स्वमरीचिचक्रमचिरात्संहृत्य निर्यद्बहिः।
पूर्णं ज्ञानघनौघमेकमचलं पश्यंति शान्तं महः ॥ ११ ॥

खंडान्वय सहित अर्थ-कृतिभिः जातु शुद्धनयः त्याज्यः नहि-कृतिभिः कहतां सम्यग्दृष्टी जीवहंको, जातु कहतां सूक्ष्म काल मात्र फुनि, शुद्ध नयः कहतां शुद्ध चैतन्य मात्र वस्तुको अनुभव, त्याज्यः नहि कहतां विस्मरण योग्य न छै। किसो छे शुद्धनय। बोधे धृतिं निबन्धन्-बोधे कहतां आत्म स्वरूप विषै, धृतिं कहतां अतीन्द्रिय सुख स्वरूप परिणतिको, निबन्धन् कहतां परिणवावै छे, किसो छे बोध। धीरोदारमहिम्नि-धीर कहतां शाश्वतो, उदार कहतां धाराप्रवाह रूप परिणमन शील, इसो छे महिमा कहतां बड़ाई जिहिको इसो छे और किसो छे। अनादिनिधने-अनादि कहतां नहीं छे आदि, अनिधन कहतां नहीं छे अंत जिहिको इसो छे। औरु किसो छे शुद्धनयकर्मणां सर्वंकपः-कर्मणां कहतां ज्ञानावरणादि पुद्गल कर्म पिंड अथवा राग द्वेष मोह रूप अशुद्ध परिणामहको, सर्वंकषः कहतां मूल तहि क्षयकरण शील छे। तत्रस्थाः शांतं महः पश्यन्ति तत्रस्थाः कहतां शुद्ध स्वरूप अनुभव विषै मग्न छे जे जीव, एकं शांतं कहतां सर्व उपाधि तहि रहित इसो छे, महः कहतां चैतन्य द्रव्यको, पश्यंति कहतां प्रत्यक्षपने पावे छे। भावार्थ इसो-जो परमातम पद कहुं प्राप्त होहि छे, किसो छे महः पूर्णं कहतां असंख्यात प्रदेश ज्ञान विराजमान छे। और किसो छे, ज्ञानघनौघं-कहतां चेतन गुणको पुंज छे। और किसो छे, एकं कहतां समस्त विकल्प तहि रहित निर्विकल्प वस्तु मात्र छे, और किसो छे। अचलं कहतां कर्मको संयोग मिट्या थकी निश्चल छे, कायों करि इसा स्वरूपकी प्राप्ति होइ छे, स्वमरीचिचक्रं अचिरात् संहृत्य-स्वमरीचिचक्रं कहतां झूठो भ्रम छे। जो कर्मकी सामग्री, इंद्रिय, शरीरादि विषै आत्मबुद्धि तिहिको अचिरात कहतां तत्काल मात्र, संहृत्य कहतां विनाश कर। किसो छे मरीचिचक्र। बहिः निर्यत्-कहतां अनात्म पदार्थ विषै भम्यो छे। भावार्थ इसो-जो परमातमपदकी प्राप्ति होतां समस्त विकल्प मिटै छे।

भावार्थ-यही है कि जो शुद्धात्माके रुचिवान हैं व जिनकी रुचि संसार शरीर भोगोंसे निकल गई है। वे ही सम्यग्दृष्टी ज्ञानी हैं, वे ही शांत व आनन्दमय अपने आत्माको

अनुभवमें लेसकते हैं। मिथ्यात्व अवस्थामें जिनको भ्रम था कि इंद्रियोंका सुख ही परम सुख है, शरीरका वास ही हितकारी है व इन्हीं भोगविलासोंसे ही तृप्ति होनेका उसी तरह भ्रम था जिस तरह मृगको जलका भ्रम मरीचिकामें होता है। वह भ्रम ज्ञानीके चित्तसे सदाके लिये निकल गया है। अपना आत्मीक आनंद मेरे पास है, वही परम सुख है वही अमृत है इंद्रिय सुख विष है। ऐसी दृढ़ प्रतीति ज्ञानीको होजाती है। इसीसे ये महात्मा शीघ्र ही मुक्ति प्राप्त करते हैं। योगसारमें कहा है—

तेहउ जज्जर णरयघरु तेहउ बुज्झि सरीर अप्पा भावहु णिम्मलहु लहु पावइ भवतीर ॥ ५० ॥

भावार्थ—जैसा घृणाके योग्य नरक का बिला है वैसा यह शरीर है। परन्तु आत्मा तो निर्मल है, ऐसी भावना करो तो शीघ्र संसार समुद्रके तट पहुंच जाओगे।

सवैया ३१ सा—करमके चक्रमें फिरत जगवासी जीव, ह्वै रह्यो बहिरमुख व्यापत विषमता ॥ अन्तर सुमति आई विमल बड़ाई पाई, पुद्गलसों प्रीति टूटी छूटी माया ममता ॥ शुद्धनै निवास कीनो अनुभौ अभ्यास कीनो, भ्रमभाव छांडि दीनो भिनोचित्त समता ॥ अनादि अनन्त अविकलप अचल ऐसो, पद अवलम्बि अवलोके राम रमता ॥ १४ ॥

मंदाक्रांता छन्द—रागादीनां झगिति विगमात्सर्वतोऽप्यास्रवाणां
नित्योद्योतं किमपि परमं वस्तु सम्पश्यतोऽन्तः ।
स्फारस्फारैः स्वरसविसरैः प्लावयत्सर्वभावा-
नालोकान्तादचलमतुलं ज्ञानमुन्मग्नमेतत् ॥ १२ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—एतत् ज्ञानं उन्मग्नं—एतत् जिसो कह्यो छे तिसो शुद्ध, ज्ञानं कहतां शुद्ध चैतन्य प्रकाश, उन्मग्नं कहतां प्रगट हुओ, जिहिको ज्ञान प्रगट हुओ जीव किसो छे। किमपि वस्तु अन्तः पश्यतः—किमपि वस्तु कहतां निर्विकल्प सत्ता मात्र किछु वस्तु तिहिको, अन्तः संपश्यतः कहतां भाव श्रुत ज्ञान करि प्रत्यक्षपने अवलंबै छे। भावार्थ इसो—जो शुद्ध स्वरूपके अनुभव काल जीव काठकी नाई जड़ छे यों फुनि न छे। सामान्यपने सविकल्पी जीवकी नाई विकल्पी फुनि न छे। भावश्रुतज्ञान करि किछु निर्विकल्प वस्तु मात्र अवलंबै छे। परमं—इसो अवलम्बन वचन द्वार करि कहिवाको समर्थपनो न छे तिहि तहि करि सकाय नहीं। किसो छे शुद्ध ज्ञान प्रकाश नित्योद्योतं—कहतां अविनाशी छे प्रकाश जिहिको, किसाथकी। रागादीनां झगिति विगमात्—रागादीनां कहतां रागद्वेष मोह जाति छे जावंत असंख्यात लोक मात्र अशुद्ध परिणाम त्यहको झगिति विगमात् कहतां तत्काल विनाश थकी। किसा छे अशुद्ध परिणाम। सर्वतः अपि आस्रवाणां—सर्वतः अपि कहतां सर्वथा प्रकार, आस्रवाणां कहतां आस्रव इसी नाम संज्ञा छे ज्यहको इसा छे। भावार्थ इसो—जो जीवका अशुद्ध रागादि परिणामहको साचो आस्रवपनो घटै

तिहिको निमित्त पाइ करि कर्मरूप आस्रवै छे। जे पुद्गलकी वर्गणा ते तो अशुद्ध परिणामका साराकी छे, तिहिंतै त्यहकी कौन बात, परिणामहकै शुद्ध होतां सहज ही मिटै छे। और किसो छे शुद्ध ज्ञान, सर्वभावान् प्लावयन्–सर्व भाव कहतां जावंत ज्ञेय वस्तु अतीत अनागत वर्तमान पर्याय करि सहित तिहिको, प्लावयन् कहतां आपने विषै प्रतिबिंबित करतो होतो, किसैं करि। स्वरसविसरैः–स्वरस कहतां चिद्रूप गुण तिहिको, विसरैः कहतां अनंतशक्ति तिहि करि। स्फारस्फारैः–स्फार कहतां अनंतशक्ति तिहितै फुनि, स्फारैः कहतां अनन्तानन्त गुणा छे। भावार्थ इसो–जो द्रव्य अनन्त छे, तिहितै पर्यायभेद अनंत गुणा छे। तिहि समस्त ज्ञेय तहि ज्ञानकी अनन्तगुणी शक्ति छै। इसो द्रव्यको स्वभाव छे और किसो छे शुद्ध ज्ञान। आलोकांतात् अचलं–कहतां सकल कर्म क्षय होता जिसो निपज्यो तिसो ही अनन्तकाल पर्यंत रहिसै कब ही और सो न होइसे। और किसो छे शुद्ध ज्ञान अतुलं कहतां त्रैलोक्य माहे जिहिका सुख परिणमनको दृष्टांत नहीं छे। इसो शुद्ध ज्ञान प्रकाश प्रगट हुओ।

भावार्थ–यहां यही सार निकाल कर धर दिया है कि सम्यग्दृष्टीको शुद्धात्माका अनुभव होजाता है। उसके मिथ्यात्वके चले जानेसे रागद्वेष मोहका अन्धेरा नहीं रहता है। वह इस विश्वकी परमाणु मात्र वस्तुको नहीं अपनाता। वह अपने आपमें मग्न होकर अन्य सर्व चिंताओंसे रहित होकर शून्य नहीं होता है। किन्तु अपने ही शुद्ध स्वभावका रसपान करते हुए परमानंदका भोग करता है। ऐसे ज्ञानीके भीतर जैसा केवलज्ञान है वैसा ही अनुपम ज्ञान श्रुतज्ञानके बल कर प्रकाशमान होजाता है। जहां रागद्वेष मोह नहीं वहां आस्रव कैसा? भावोंके अभावमें द्रव्यास्रवका अभाव स्वयं सिद्ध है। स्वानुभवकी अपूर्व महिमा है। योगसारमें कहते हैं—

धण्णा ते भयवन्त बुह जे परभाव चयन्ति, लोयालोयपयासयर अप्पा विमल मुणन्ति ॥ ६२ ॥

भावार्थ–वे बड़े भाग्यवंत सम्यग्ज्ञानी हैं, वे धन्य हैं जो रागादि भावोंको पर जानकर छोड़ देते हैं और लोकालोकको प्रकाश करनेवाले अपने निर्मल आत्माका स्वाद लेते हैं।

सवैया ३१-सा—जाके परकाशमें न दीसे राग द्वेष मोह, आश्रव मिटत नहि बंधको तरस है ॥ तिहुं काळ जामें प्रतिबिम्बित अनन्तरूप, आपहु अनन्त सत्ताऽनन्ततें सरस है ॥ भावश्रुत ज्ञान परमाण जो विचारि वस्तु, अनुभौ करे न जहां वाणीको परस है ॥ अतुल अखण्ड अविचळ अविनाशी धाम, चिदानन्द नाम ऐसो सम्यक् दरस है ॥ १५ ॥

इतिश्री नाटक समयसार राजमल्लि टीकाको आस्रव द्वार समाप्त ।

इति आस्रवः निष्क्रांतः। अथ प्रविशति संवरः ।

छट्ठा संवर अधिकार।

दोहा—आस्रवको अधिकार यह, कह्या जथावत जेम। अब संवर वर्णन करूं, सुनहु भविक धरि प्रेम ॥१॥

शार्दूलविक्रीड़ित छंद—आसंसारविरोधिसंवरजयैकान्तावलिप्तास्रव-
न्यक्कारात्प्रतिलब्धनित्यविजयं सम्पादयत्संवरम्।
व्यावृत्तं पररूपतो नियमितं सम्यक् स्वरूपे स्फुर-
ज्ज्योतिश्चिन्मयमुज्ज्वलं निजरसप्राग्भारमुज्जृम्भते ॥१॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—चिन्मयं ज्योतिः उज्जृम्भते—चित् कहतां चेतना तिहि, मयं कहतां सोई छे स्वरूप जिहिको इसो छे, ज्योतिः कहतां प्रकाश स्वरूप वस्तु, उज्जृंभते कहतां प्रगट होइ छे। किसो छे ज्योति, स्फुरत् कहतां सर्व काल प्रगट छे। और किसो छे, उज्वलं कहतां कर्म कलंक तहि रहित छे, और किसो छे। निजरसप्राग्भारं—निज रस कहतां चेतन गुण तिहिको प्राग्भारं कहतां समूह छे, और किसो छे। पररूपतः व्यावृत्तं पर रूपतः कहतां ज्ञेयाकार परिणमन तिहि तहि, व्यावृत्त कहतां पराङ्मुख छे। भावार्थ इसो जो—सकल ज्ञेय वस्तुको जानै छे, तद्रूप नहीं होइ छे, आपणा स्वरूपे रहै छे। और किसो छे। स्वरूपे सम्यक् नियमितं—स्वरूपे कहतां जीवको शुद्ध स्वरूप तिहि विषैं, सम्यक कहतां ज्यों छे त्यों, नियमितं कहतां गाढ़ो थाप्यो छे। और किसो छे, संवरं संपादयत—संवरं कहतां धारा प्रवाहरूप आस्रवै छे ज्ञानावरणादि कर्म त्यांहको निरोध, संपादयत् कहतां करणशील छे। भावार्थ इसो—जो इहांते लेइ करि संवरको स्वरूप कहिजै छे, किसो छे संवर प्रतिलब्धनित्यविजयं—प्रतिलब्ध कहतां पायो छे, नित्यं कहतां शाश्वतो। विजयं कहतां जीतिपनो जेने इसो छे, किसा थकी इसो छे। आसंसारविरोधिसंवरजयैकांतावलिप्तास्रवन्यक्कारात्—आसंसार कहतां अनन्तकाल तहि लेइ करि विरोधी कहतां वैरी छे। इसो जो संवर कहतां बध्यमान कर्मको निरोध, तिहिको जयं कहतां जीतिपनो तिहि करि, एकांतावलिप्त कहतां मोतहि बड़ो त्रैलोक्य मांहि कोई नहीं, इसो हूओ छे गर्व जिहिको इसो, आस्रव कहतां धाराप्रवाहरूप कर्मको आगमन तिहिको, न्यक्कारात् कहतां दूरि करिवो ऐसो मानभंग तिहि थकी। भावार्थ इसो—जो आस्रव तथा संवर माहो माहे अति ही वैरी छे। तिहितै अनन्तकाल तांई लेइ करि सर्व जीवराशि विभाव मिथ्यात्वरूप परिणतिरूप परिणवे छे, तिहितैं शुद्ध ज्ञानको प्रकाश न छे, तिहितै आस्रवका साराका सर्व जीव छे। काललब्धि पाया कोई आसन्न भव्य जीव सम्यक्त रूप स्वभाव परिणति परिणवे छे, तिहितै शुद्ध प्रकाश प्रगट होइ छे। तिहितै कर्मको आस्रव मिटै छे। तिहितै शुद्ध ज्ञानको जीतिपनो घटै छे।

भावार्थ—सम्यक्त सहित ज्ञान ही स्वात्मानुभव करानेवाला है। इस सम्यग्ज्ञानकी अपूर्व महिमा है। इसने प्रगट होते ही कर्मके आस्रवका निरोध कर डाला है। संवरका यही कारण है। अनन्त संसारके कारण मिथ्यात्वके चले जानेसे ज्ञान निर्मल स्वभावरूप होकर अपने शुद्ध प्रकाशमें चमक रहा है। जैसा स्वपर वस्तुका स्वभाव है तैसा ही भान रहा है। रागद्वेषके विकल्पोंसे छूटा हुआ वीतराग रसका पान कर रहा है।

तत्त्व०में कहते हैं—

अछिन्नधारया भेदबोधनं भावयेत् सुधीः, शुद्धचिद्रूपसम्प्राप्त्यै सर्वशास्त्रविशारदः ॥ १३ ॥

भावार्थ—बुद्धिमानको उचित है कि सर्व शास्त्रका पंडित होकर शुद्ध चैतन्य स्वरूपके लाभके लिये धाराप्रवाह रूप निरंतर भेद विज्ञानकी भावना करै।

सवैया ३१ सा—आतमको अहित अध्यातम रहित ऐसो, आस्रव महातम अखण्ड अण्डवत है॥ ताको विसतार गिलिवेकों परगट भयो, ब्रह्मन्डको विकाश ब्रह्ममण्डवत है॥ जामें सब रूप जों सबमें सब रूपसों पै, सबनिसों अलिप्त आकाश खण्डवत है॥ सोहै ज्ञानभान शुद्ध संवरको भेष धरे, ताकी रुचि रेखको हमारे दंडवत है ॥ २ ॥

शार्दुलविक्रीडित छंद—चैद्रूप्यं जडरूपतां च दधतोः कृत्वा विभागं द्वयो-
रन्तर्दारुणदारणेन परितो ज्ञानस्य रागस्य च।
भेदज्ञानमुदेति निर्म्मलमिदं मोदध्वमध्यासिताः
शुद्धज्ञानघनौघमेकमधुना सन्तो द्वितीयच्युताः ॥ २ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—इदं भेदज्ञानं उदेति—इदं कहतां प्रत्यक्ष छे, भेदज्ञानं कहतां जीवको शुद्ध स्वरूपको अनुभव, उदेति कहतां प्रगट होइ छे। किसो छे, निर्मलं कहतां रागद्वेष मोह अशुद्ध परिणति तहि रहित छे। और किसो छे, शुद्धज्ञानघनौघं—शुद्ध ज्ञान कहतां शुद्ध स्वरूपको ग्राहक ज्ञान तिहिको, घन कहतां समूह तिहिको, ओघ कहतां पुंज छे। और किसो छे, एकं कहतां समस्त भेद विकल्प तहि रहित छे, भेदज्ञान ज्यों होइ छे त्यों कहिजे छे। ज्ञानस्य रागस्य च द्वयोर्विभागं परतः कृत्वा—ज्ञानस्य कहतां ज्ञान गुण मात्र, रागस्य कहतां अशुद्ध परिणति त्यहको, द्वयोः कहतां दूवेको, विभागं कहतां भिन्न२ पनो, परतः कहतां एक दूसरे थकी, कृत्वा कहतां इसो करि भेदज्ञान प्रगट होइ छे। किसा छे ते दूवे—चैद्रूप्यं जडरूपतां च दधतोः—कहतां चैतन्य मात्र जीवको स्वरूप, जडत्व मात्र अशुद्धपनाको स्वरूप, किसो करि भिन्नपनो कीयो। अन्तर्दारुणदारणेन—अन्तर्दारुण कहतां अन्तरङ्ग सूक्ष्म अनुभव दृष्टि इसो छे, दारणेन कहतां करोत तिहि करि। भावार्थ इसो—जो शुद्ध ज्ञान मात्र तथा रागादि अशुद्धपनो दूवे भिन्न भिन्नपनै अनुभव करिवाको अति सूक्ष्म छै। जिहितै रागादि अशुद्धपनो चेतनसो देखिजै छे। तिहितै अति

सूक्ष्म दृष्टिकरि यथा पानी कादो सो मिश्रपर्यायकरि मैलो हुओ छ तथापि स्वरूपको अनुभव करतां स्वच्छता मात्र पानी छे, मैलो छे सो कादोकी उपाधि छे तथा रागादि परिणाम कर ज्ञान अशुद्ध इसो दीसे छे तथापि ज्ञानपनो मात्र ज्ञान छे, रागादि अशुद्धपनो उपाधि छ। संतः अधुना इदं मोदध्वं-संतः कहतां सम्यग्दृष्टि जीव, अधुना वर्तमान समय, इदं मोदध्वं कहतां शुद्ध ज्ञानानुभवको आस्वादहु। किसा छे संत पुरुष, अध्यासिताः कहतां शुद्ध स्वरूपको अनुभव छे जीवन ज्यहको इसा छे, और किसा छे द्वितीयच्युताः कहतां हेय वस्तु कहु नहीं अवलंबे छे।

भावार्थ—यहां यह बताया है कि जो रागद्वेषादि परिणति जीवोंमें दिखलाई पड़ती है इसके स्वरूपका विचार करो तो प्रगट होगा कि यह परिणति न तो मात्र चेतनकी है न मात्र जड़की है। जगतको भ्रम यह होरहा है कि यह चेतनकी ही परिणति है, क्योंकि जितने स्थूल जड़ पदार्थ हमारी दृष्टिगोचर हैं उनमें रागद्वेष दिखलाई नहीं पड़ता है परन्तु जितने संसारी आत्मा हैं उन सबमें दिखलाई पड़ता है। यह तो प्रत्यक्ष अनुभव हरएकको होसक्ता है कि यह क्रोध मान माया लोभ कषायरूप रागद्वेष जब किसीमें तीव्रतासे उठते हैं तब आत्माके ज्ञानको मलीन कर देते हैं, इतना ही नहीं ज्ञानका विकाश रोक देते हैं। कषायासक्त प्राणी किसी भी सूक्ष्म ज्ञानकी चर्चाको समझ नहीं सक्ता है तथा जो आकुलता चिंता व क्लेशकी मात्रा न थी वह इन कषायोंकी तीव्रतासे उत्पन्न होजाती है। इन कषायोंके कारण शरीर भी क्षोभित, गर्म व संतप्त होजाता है, आंखोंकी दृष्टि भी विकारयुक्त हो जाती है, समताका नाश होजाता है, इससे यह तो सिद्ध है कि ये रागादि परिणति जीवकी स्वाभाविक परिणति नहीं है। यदि होती तो ज्ञानको नहीं बिगाडती। इसीसे सिद्ध है कि इस रागभावमें जितना अंश जानपना है, उपयोग है वह तो जीवकी परिणति है व जितना अंश रागपना है, व क्रोधमें क्रोधपना है, मानमें मानपना है, काममें कामना है सो अत्यन्त सूक्ष्म मोहनीयकर्मका विपाक या रस है या मैल है। यह कर्म व उसका रस जड़ है, चेतनसे भिन्न है। इस तरह "बार बार विचार करना" रूपी करोतके द्वारा भ्रम बुद्धिके खंड खंड कर डालना उचित है। और सदा ही चेतनके स्वभावको रागादि मैलसे भिन्न ही जानना उचित है। पानीका स्वभाव निर्मल है परन्तु कादेके मिलनेसे मैला होजाता है, ऐसा मैला पानी जिस पदार्थपर पड़ता है उसको शुद्ध करनेकी अपेक्षा मैला ही कर देता है। विचार करके देखा जाय तो पानीका स्वभाव मैला नहीं है न मैला करना है। मैलपना व मैला करना कादेका स्वभाव है। कोई भी बुद्धिमान मैले पानीको देखकर यह नहीं मान सक्ता कि पानीका स्वभाव मैला है। वह सदा ही इसी प्रतीतिमें रहता है कि पानी मैला

नहीं है। पानी स्वच्छ है व स्वच्छ करना ही इसका स्वभाव है। इसी तरह भेदविज्ञानका जाननेवाला बुद्धिमान तत्वज्ञानी सदा ही यह अनुभव करता है कि आत्माका स्वभाव राग-द्वेषरूप नहीं है। यह परमवीतराग ज्ञानानंदमई है। इसलिये जो आनंदके इच्छुक हैं उनका कर्तव्य है कि रागद्वेषादि मैलको मैल जानकर इन मैलसे रति करना छोड़ें और केवल एक अपने शुद्ध आत्मस्वभावमें ही रति करके परमानंदका लाभ लेवें। सारसमुच्चयमें श्रीकुलभद्र आचार्य कहते हैं—

एतदेवपरं ब्रह्म न विन्दन्तीह मोहिनः। यदेतच्चित्तनैर्मल्यं रागद्वेषादिवर्जितम् ॥ १६४ ॥

भावार्थ—रागद्वेषादि मैलसे रहित जो अपने ही चैतन्य भावकी निर्मलता है यही तो परमब्रह्म परमात्माका स्वरूप है। परन्तु यहां जो मोही मिथ्याज्ञानी हैं वे इसका अनुभव नहीं करते हैं।

सवैया ३१ सा—शुद्ध अछेद अभेद अबाधित, भेद विज्ञान सु तीछन आरा। अंतर भेद स्वभाव विभाव करै जड़ चेतन रूप दुफारा॥ सो जिन्हके उरमें उपज्यो, न रुचे तिन्हको परसंग सहारा। आतमको अनुभौ करि ते; हरखे परखे परमातम धारा ॥ ३ ॥

मालिनी छन्द—यदि कथमपि धारावाहिना बोधनेन ध्रुवमुपलभमानः शुद्धमात्मानमास्ते।
तदयमुदयदात्मारामपात्मानमात्मा परपरिणतिरोधाच्छुद्धमेवाभ्युपैति ॥३॥

खंडान्वयसहित अर्थ तत् अयं आत्मा आत्मानं शुद्धं अभ्युपैति तत् कहतां तिहि कारण तहि, अयं आत्मा कहतां यही छै प्रत्यक्षपने जीव, आत्मानं कहतां आपणा स्वरूप कहु, शुद्धं कहतां यावंत छै द्रव्यकर्म, भावकर्म, त्यह तहि रहित। अभ्युपैति कहतां पावै छे, किसो छे आत्मा, उदयदात्मारामं उदयत्—कहतां प्रगट हूओ छे, आत्मा कहतां आपणो द्रव्य इसो छे, आरामं कहतां निवास जिहिको इसो छे, किसो कारण कहतां शुद्धकी प्राप्ति होइ छे। परपरिणतिरोधात्—परपरिणति कहतां अशुद्धपनो तिहिको रोधात् कहतां विनाश थकी। अशुद्धपनाको विनाश ज्यों होइ त्यों कहिजै छे। यदि आत्मा कथमपि शुद्धं आत्मानं उपलभ्यमानः आस्ते—यदि कहतां जो, आत्मा कहतां चेतन द्रव्य, कथमपि कहतां काललब्धि पाइ करि सम्यक्त पर्यायरूप परिणवो होतो। शुद्धं कहतां द्रव्य कर्म, भावकर्म तहि रहित इसो छै, आत्मानं कहतां आपणा स्वरूप कहु, उपलभ्यमानः आस्ते—कहतां आस्वादतो होतो प्रवर्तै छै। किसो करि—बोधनेन कहतां भावश्रुत ज्ञान करि, किसो छै। धारावाहिना—कहतां अखण्डित धारा प्रवाहरूप निरंतरपनै प्रवर्तै छै। ध्रुवं कहतां ई बातको निहचौ छै।

भावार्थ—यहां यह भाव है कि जो जिनवाणीका सार है, इसेस मझकर जो कोई निरंतर आत्मा व अनात्माके भिन्न २ स्वभावको लगातार नित्य विचार करनेका अभ्यास करता है

उसको कभी न कभी सम्यग्दर्शनका लाभ होजाता है। तब वह अपना क्रीड़ावन एक आपको बनाकर उसीमें रमण किया करता है। उसके रमनेका स्थान जो पहले औपाधिक रागादिक भाव थे व द्रव्यकर्मके उदयसे प्राप्त शरीरादि थे उन सबसे रमण करना त्याग देता है। सुन्दर वन मिल गया तब कौन कंटीली झाड़ियोंमें बैठेगा।

तत्व०में कहा है—

शुद्धस्य चित्स्वरूपस्य शुद्धोऽन्योऽस्य च चिंतनात्, लोहं लोहाद् भवेत्पात्रं सौवर्णं च सुवर्णतः ॥२३।२॥

भावार्थ-जैसे लोहेसे लोहेका व सुवर्णसे सुवर्णका बर्तन बनता है, वैसे शुद्ध आत्म स्वरूपके चिन्तवनसे यह जीव शुद्ध होता है। अशुद्ध चिन्तवनसे अशुद्ध ही रहता है।

सवैया २३ सा—जो कबहूं यह जीव पदारथ, औसर पाय मिथ्यात मिटावे॥ सम्यक् धार प्रवाह बहै गुन, ज्ञान उदै मुख ऊरध धावे॥ तो अभिअन्तर दर्वित भावित, कर्म कलेश प्रवेश न पावे॥ आतम साधि अध्यातमके पथ, पूरण व्है परब्रह्म कहावे॥

मालिनी छंद-निजमहिमरतानां भेदविज्ञानशक्त्या भवति नियतमेषां शुद्धतत्त्वोपलम्भः। अचलितमखिलान्यद्रव्यदूरेस्थितानां भवति सति च तस्मिन्नक्षयः कर्ममोक्षः ॥ ४ ॥

खंडान्वय सहित अर्थ-एषां निजमहिमरतानां शुद्धतत्वोपलंभः भवति—एषां कहतां हुमा छे जे, निजमहिम कहतां जीवको शुद्ध स्वरूप परिणमन, तिहि विषै, रतानां कहतां मग्न छे जे केई त्यहको, शुद्धतत्वोपलंभः भवति-कहतां सकल कर्म तहिं रहित अनंत चतुष्टय विराजमान इसो आतम वस्तु तिहिकी प्राप्ति होई। नियतं कहतां अवश्य होई। किसी करि होई-भेदविज्ञानशक्त्या-भेदविज्ञान कहतां समस्त परद्रव्य तहिं आत्मस्वरूप भिन्न छे इसो अनुभव हुवा, शक्ति कहतां सामर्थ्यपनो, तिहिकरि। तस्मिन् सति कर्ममोक्षो भवति-तस्मिन् सति कहतां शुद्धस्वरूपकी प्राप्ति होते संते कर्ममोक्षः भवति कहतां द्रव्यकर्म भावकर्मको मूल तहिं विनाश होइ छे। अचलितं कहतां इयो द्रव्यको स्वरूप अमिट छे। किसो छे कर्मक्षय-अक्षयः कहतां आगामि अनंतकालपर्यंत और कर्मको बंध न होइसे। जयह जीवहको कर्मक्षय होइ छे ते जीव किसा छे। अखिलअन्यद्रव्यदूरेस्थितानां अखिल कहतां समस्त इसा छे अन्य द्रव्य कहतां आपणा जीवद्रव्य तहिं भिन्न जावंत द्रव्य तिहि तहिं, दूरे स्थितानां कहतां सर्व प्रकार भिन्न छे इसा जीव त्यहकों॥

भावार्थ यहां बताया है कि भेदज्ञानके द्वारा जब आत्माको अनात्मासे भिन्न जान लिया गया और स्वानुभवका अभ्यास किया जाने लगा तब अवश्य ऐसे स्वानुभवके अभ्यासी तत्वज्ञानीको शुद्ध स्वरूपकी प्राप्ति होगी और वह परद्रव्यसे भिन्न रहता हुआ कभी न कभी सर्व कर्मोंसे छूट जायगा। मोक्षका एक मात्र उपाय स्वानुभव है। तत्व०में कहा है—

चिद्रूपः केवलः शुद्ध आनंदात्मेत्यहं स्मरे। मुक्त्यर्थं सर्वज्ञोपदेशः श्लोकार्द्धेन निरूपितः ॥ २५३ ॥

भावार्थ–मैं केवल शुद्ध, आनंदमई अपने चैतन्य रूपको स्मरण करता हूं, सर्वज्ञ भगवानने मुक्तिके लिये यही उपाय आधे श्लोकमें झलकाया है।

सवैया ३१ सा—भेदि मिथ्यात्वसु वेदि महा रस, भेद विज्ञान कला जिनि पाई। जो अपनी महिमा अवधारत त्याग करे उरसों जु पराई ॥ उद्धत रीत बसे जिनिके घट, होत निरंतर ज्योति सवाई। ते मतिमान सुवर्ण समान, लगे तिनकों न शुभाशुभ काई ॥ ५ ॥

उपजातिछंद-सम्पद्यते संवर एष साक्षाच्छुद्धात्मतत्त्वस्य किलोपलम्भात्।
स भेदविज्ञानत एव तस्मात्तद्भेदविज्ञानमतीव भाव्यम् ॥ ६ ॥

खंडान्वय सहित अर्थ–तद् भेदविज्ञानं अतीव भाव्यं तत् कहतां तिहि कारण तहि, भेदविज्ञानं कहतां समस्त परद्रव्य तहि भिन्न चैतन्य स्वरूपको अनुभव। अतीव भाव्यं कहतां सर्वथा उपादेय इसो मानि करि अखण्डित धाराप्रवाह रूप अनुभव करना योग्य छे, किसा थकी। किल शुद्धात्मतत्त्वस्य उपलंभात् एषः संवरः साक्षात् सम्पद्यते–किल कहतां निश्चासों शुद्धात्म तत्वरूप कहतां जीवको शुद्ध स्वरूपको, उपलंभात् कहतां प्राप्ति थकी, एषः संवरः कहतां नूतन कर्मको आगमन रूप आस्रव तिहिको निरोध लक्षण संवर, साक्षात् संपद्यते कहतां सर्वथा प्रकार संवर होइ छे। स भेदविज्ञानतः एव–स कहतां शुद्ध स्वरूपको प्रगटपनो, भेदविज्ञानतः कहतां शुद्ध स्वरूपको अनुभव थकी, एव कहतां निश्चासी होइ छे, तस्मात् कहतां तिहि कारण तहि। भेदविज्ञान फुनि विनाशीक छे, तथापि उपादेय छे।

भावार्थ–यह है कि शुद्धात्मानुभवसे वीतरागता होती है, तब कर्मोंका आस्रव रुकता है, परन्तु इस शुद्धात्मानुभवका उपाय निरंतर यही अभ्यास करना जरूरी है कि मैं भिन्न हूं व रागादि सब भिन्न हैं। यह विचार भी विकल्प है, छोड़ने लायक है, तौभी जहांतक स्वानुभव न हो वहांतक आलम्बन रूप है। तत्व०में भेदविज्ञानका स्वरूप बताया है–

भेदो विधीयते येन चेतनादेहकर्मणोः, तज्जातविक्रियादीनां भेदज्ञानं तदुच्यते ॥१८-८॥

भावार्थ–जहां आत्मासे भिन्न शरीर व कर्मोंका भेद तथा कर्मजन्य सर्व विकारोंका भेद जाना जाता है उसको भेदविज्ञान कहते हैं।

अडिल्ल—भेदज्ञान संवर निदान निरदोष है। संवर सो निरजरा अनुक्रम मोक्ष है॥ भेद ज्ञान शिव मूल जगत महि मानिये। जदपि हेय है तदपि उपादेय जानिये ॥ ६ ॥

श्लोक-भावयेद्भेदविज्ञानमिदमच्छिन्नधारया।
तावद्यावत्पराच्च्युत्वा ज्ञानं ज्ञाने प्रतिष्ठते ॥ ६ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ–इदं भेदविज्ञानं तावत् अच्छिन्नधारया भावयेत्–इदं भेदविज्ञानं कहतां पूर्वोक्त लक्षण छे शुद्ध स्वरूपको अनुभव, तावत् कहतां तेतो काल,

अच्छिन्नधारया कहतां अखण्डित धाराप्रवाहरूप, भावयेत् कहतां आस्वाद करिवो यावत् ज्ञानं ज्ञाने प्रतिष्ठते—यावत् कहतां जेतो काल, ज्ञानं कहतां आत्मा, ज्ञाने कहतां शुद्ध स्वरूप विषैं, प्रतिष्ठते कहतां एक रूप परिणवै। भावार्थ इसो—जो निरंतरपनै शुद्ध स्वरूपको अनुभव कर्तव्य छे। यदा काल सकल कर्म क्षय लक्षण मोक्ष होसे तदाकाल समस्त विकल्प सहज ही छूटसै तदां भेदविज्ञान फुने एक विकल्परूप छे, केवल ज्ञानकी नाईं जीवको स्वरूप न छे, तिहितैं सहज ही विनाशीक छे।

भावार्थ—यहां यह भाव है कि सम्यक्त होनेके लिये भी भेदविज्ञानका अभ्यास करना योग्य है जिससे शीघ्र ही शुद्धात्माका लाभ होजावे। सम्यक्त होनेके पीछे इस भेदविज्ञानको छोड़ देना नहीं चाहिये। जहांतक मोक्षका लाभ न हो वहांतक यह भेदविज्ञान उपयोगी है। तत्व०में कहा है—

क्षयं नयति भेदज्ञश्चिद्रूपप्रतिघातकं क्षणेन कर्मणां राशिं तृणानां पावकं यथा ॥ १२ ॥

भावार्थ—भेदज्ञानी चैतन्य स्वभावके घातक कर्मोंका नाश क्षण मात्रमें उसी तरह कर देता है जिस तरह तृणोंके ढेरको अग्नि जला देती है।

दोहा—भेदज्ञान तबलौं भलो, जबलौं मुक्ति न होय। परम ज्योति परगट जहां, तहां विकल्प न कोय ॥७॥

श्लोक—भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन।
तस्यैवाभावतो बद्धा बद्धा ये किल केचन ॥ ७ ॥

खंडान्वयसहित अर्थ—ये किल केचन सिद्धाः ते भेदविज्ञानतः सिद्धाः—ते कहतां आसन्न भव्य जीव छे, जे केई, किल कहतां निहचासों, केचन कहतां संसारजीव राशि मांहि ये केई एक गिनतीका, सिद्धाः कहतां सकल कर्म क्षय करि निर्वाण पदकूं प्राप्त हुआ, ते कहतां तेता समस्त जीव, भेदविज्ञानतः कहतां सकल पर द्रव्य तैं भिन्न शुद्ध स्वरूपको अनुभव थकी, सिद्धाः कहतां मोक्षपद कहुं प्राप्त हुआ। भावार्थ इसो—जो मोक्षमार्गको शुद्ध स्वरूपको अनुभव अनादि संसिद्ध यही एक मोक्षमार्ग। ये केचन बद्धाः ते किल अस्य एव अभावतः बद्धाः—ये केचन कहतां ये केई, बद्धा कहतां ज्ञानावरणादि कर्मह करि बंध्या, ते कहतां तेता समस्त जीव, किल कहतां निहचासो, अस्य एव कहतां इसो जो भेदविज्ञान तिहिका, अभावतः कहतां विन होतां, बद्धाः कहतां बद्ध होइ करि संसार मांहि रुल्या। भावार्थ इसो—जो भेदज्ञान सर्वथा उपादेय छे।

भावार्थ—यही है कि भेदविज्ञानके द्वारा जिन्होंने शुद्धात्म स्वरूपका अनुभव पाया वे ही कर्मोंसे छुटकर सिद्ध हुए। एक मात्र मोक्षमार्ग स्वानुभव है, अन्य कोई नहीं।

योगसारमें कहते हैं—

सोरठा—जीवाजीवह भेउ जो, जाणइ ते जाणियउ। मोक्खहं कारण एउ, भणइ जोइ जोइहि भणिउ ॥ ३८

भावार्थ—जिसने जीव अजीवके भेदको जाना है उसहीने मोक्षमार्गको पहचाना है। ऐसा योगियों द्वारा अनुभवित मार्गको योगीगण कहते हैं।

चौपाई—भेदज्ञान संवर जिन्ह पायो। सो चेतन शिवरूप कहयो॥
भेदज्ञान जिन्हके घट नाहीं। ते जड़ जीव बंधे घट मांही॥ ८॥

दोहा—भेदज्ञान साबू भयो, समरस निर्मल नीर। धोबी अन्तर आतमा, धोवे निजगुण चीर॥९॥

मंदाक्रांता छंद-भेदज्ञानोच्छलनकलनाच्छुद्धतत्त्वोपलम्भा-
द्रागग्रामप्रलयकरणात्कर्मणां संवरेण।
बिभ्रत्तोषं परमममलालोकमम्लानमेकं
ज्ञानं ज्ञाने नियतमुदितं शाश्वतोद्योतमेतत॥ ८॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—एतत ज्ञानं उदितं—एतत् कहतां प्रत्यक्षपने छतो छे, ज्ञानं कहतां शुद्ध चैतन्य प्रकाश, उदितं कहतां प्रगट हूओ, किसो छे। ज्ञाने नियतं-कहतां अनन्तकाल तहि परिणयो हुतो अशुद्ध रागादि विभाव रूप, काल लब्धि पाइ करि। आपणे शुद्ध स्वरूप परिणयो छे। और किसो छे। शाश्वतोद्योतं-कहतां अविनश्वर प्रकाश छे जिहको इसो छे। और किसो छे। तोषं बिभ्रत् कहतां अतीन्द्रिय सुख रूप परिणयो छे, और किसो छे परमं कहतां उत्कृष्ट छे। और किसो छे। अमलालोकं कहतां सर्वथा प्रकार सर्व काल सर्व त्रैलोक्य महे निर्मल छे साक्षात शुद्ध छे, और किसो छे। अम्लानं कहतां सदा प्रकाशरूप छे, और किसो छे। एकं कहतां निर्वि-कल्प छे। शुद्ध ज्ञान इसो ज्यो हूओ छे त्यों कहिजे छे। कर्मणां संवरेण—कहतां ज्ञाना-वरणादिरूप आस्रवे था जो कर्म पुद्गल जिहिको निरोध करि, कर्मको निरोध ज्यों हूओ छे त्यों कहिजे छे। रागग्रामप्रलयकरणात्—राग कहतां रागद्वेष मोहरूप अशुद्ध विभाव परिणाम तिहिको, ग्राम कहतां समूह असंख्यात लोकमात्र भेद तिहिको, प्रलय कहतां मूल सहि सत्ता नाश तिहिके, करण तु कहतां करिवाथकी। इसा फुनि किसा थे। शुद्धतत्त्वोप-लंभात्—शुद्ध तत्व कहतां शुद्ध चैतन्य वस्तु तिहिको उपलंभात् कहतां साक्षात प्राप्ति तिहि-थकी। इसो फुनि किसा थे। भेदज्ञानोच्छलनकलनात्-भेदज्ञान कहतां शुद्ध स्वरूप ज्ञान तिहिको उच्छलन कहतां प्रगटपनो तिहिको कलनात कहतां निरंतरपने अभ्यास तिहिथकी। भावार्थ इसो—जो शुद्ध स्वरूपको अनुभव उपादेय छे।

भावार्थ—यहां यह बताया है कि संवरका मुख्य उपाय शुद्धात्मानुभव है उसका लाभ भेदविज्ञानके द्वारा होता है। स्वानुभवके द्वारा रागद्वेष मोह नहीं होते हैं। इन आस्रव भावोंके रुकनेसे कर्मोंका आस्रव भी रुक जाता है। सम्यग्दृष्टी जीव अपने स्वरूपानन्दमें सदा संतोषी रहता है। उसके भीतर निर्मल ज्ञान झलकता है, जिसके प्रतापसे उसको

प्रयोजनभूत तत्त्वोंके भीतर कभी भ्रम नहीं होता है। तत्त्व०में कहा है—

ये याता यांति यास्यन्ति निर्वृति पुरुषोत्तमाः, मानसं निश्चलं कृत्वा स्वे चिद्रूपे न संशयः ॥१४१॥

भावार्थ—जो महापुरुष मोक्ष गए हैं, जाते हैं व जावेंगे वे ही भव्य हैं जो मनको शुद्ध चैतन्य स्वरूपमें निश्चल करके स्वानुभव करते हैं यही निःसन्देह बात है।

छप्पै—प्रगट भेद विज्ञान, आप गुण परगुण जाने। पर परणति परित्याग, शुद्ध अनुभौ थिति ठाने ॥ करि अनुभौ अभ्यास सहज संवर परकासै। आश्रव द्वार निरोधि, कर्मघन तिमिर विनासै। क्षय करि विभाव समभाव भजि, निरविकल्प निज पद गहै। निर्मल विशुद्ध शाश्वत सुथिर, परम अतींद्रिय सुख लहै ॥ १० ॥

सवैया ३१ सा—जैसे रज सोधा रज सोधिके दरब काढे पावक कनक काढि दाहत उपलको ॥ पंकके गरभमें ज्यों डारिये कुतक फल, नीर करे उज्वल नितारि डारे मलको ॥ दधिको मथैया मथि काढे जैसे माखनको, राजहंस जैसे दूध पीवे त्यागि जलको ॥ तैसे ज्ञानवन्त भेदज्ञानकी शकति साधि, वेदे निज संपति उच्छेदे पर दलको ॥ ११ ॥

इतिश्री नाटक समयसारस्य संवरद्वार—इति संवरो निष्क्रांतः। अथ प्रविशति निर्जरा।

सप्तम निर्जरा अधिकार।

दोहा—वरणी संवरकी दशा, यथा युक्ति परवाण। मुक्ति वितरणी निर्जरा, सुनो भविक धरि कान ॥ जो संवर पद पाइ अनंदे। सो पूरव कृत कर्म निकंदे ॥ जो अफंद व्है बहुरि न फंदे। सो निर्जरा बनारसि वन्दे ॥ १ ॥

शार्दूलविक्रीडित छन्द—रागाद्यास्रवरोधतो निजधुरान्धृत्वा परः संवरः

कर्म्मागामि समस्तमेव भरतो दूरान्निरुन्धन् स्थितः।

प्राग्बद्धं तु तदेव दग्धुमधुना व्याजृम्भते निर्ज्जरा

ज्ञानज्योतिरपावृतं न हि यतो रागादिभिर्मूर्च्छति ॥ १ ॥

खंडान्वय सहित अर्थ—अधुना निर्जरा व्याजृंभते—अधुना कहतां इहां तह लेइ करि, निर्जरा कहतां पूर्वबद्ध कर्मको अकर्मरूप परिणाम, व्याजृंभते कहतां प्रगट होइ छे। भावार्थ—इसो जो निर्जराको स्वरूप ज्यों छे त्यों कहिजे छे। निर्जरा किसे निमित्त छे। तु तत् एव प्राग्बद्धं दग्धं—तु कहतां संवर पूर्वक, तत् ज्ञानावरणादि कर्म्म एव कहतां निहचासों, प्राग्बद्धं कहतां सम्यक्त्व कह विन होतां मिथ्यात्व रागद्वेष परिणाम करि बांध्यो थो तिहिको, दग्धं कहतां मारिवाको, कांई विशेष। संवरः स्थितः—कहतां संवर अग्रेसर हूओ छे जिहिको इसो छे निर्जरा। भावार्थ इसो—जो संवर पूर्वक निर्जरा सो निर्जरा, जिहिते संवर बिना होइ छे सर्व जीवको उदय देइ करि कर्मकी निर्जरा सो निर्जरा न होई। किसो

छे संवर। रागाद्यास्रवरोधतः निजधुरां धृत्वा आगामि समस्तं एव कर्म भरतः दूरात् निरुंधन्—रागाद्याश्रवरोधतः कहतां-रागादि आश्रव भावोंमें निरोध करि, निजधुरां कहतां आपणी एक संवररूप पक्ष कहुं, धृत्वा कहतां धरितै संते, आगामि कहतां अखंड धारा प्रवाहरूप आश्रवै जे पुद्गल, समस्त एव कर्म कहतां नानाप्रकार छे ज्ञानावरणीय कर्म, दर्शनावरणीय इत्यादि अनेक प्रकार कर्मको, भरतः कहतां आपणे मोहपनै, दूरात् निरुंधन् कहतां पासे आवां नहीं देइ छे। संवर पूर्वक निर्जरा कहतां जो क्यों काज हूओ सो कहिजै छे। यतः ज्ञानज्योतिः अपावृत्तं रागादिभिः न मूर्च्छति—यतः कहतां जिहि निर्जराथकी, ज्ञानज्योतिः कहतां जीवको शुद्ध स्वरूप, अपावृतं कहतां निरावरण हूए होतो, रागादिभिः कहतां अशुद्ध परिणाम करि, न मूर्छति कहतां आपणा स्वरूपको छोड़ि रागादिरूप नहीं होइ छे।

भावार्थ- यहां यह बताया है कि जो कर्मोंकी निर्जरा संसारी जीवोंके होती है वह वास्तवमें निर्जरा नहीं है, क्योंकि एक तरफ तो कर्म झड़ता है दूसरी तरफसे राग द्वेष मोह परिणामोंके द्वारा नवीन कर्मका आस्रव होकर बंध होता है। निर्जरा वही हितकारी है जो नवीन कर्मोंको रोकती हुई पूर्व बांधे हुए कर्मोंको दूर करे। ऐसा निर्जरा करने योग्य भाव सम्यग्ज्ञानमय सम्यग्दृष्टीजीवके होता है जिसने रागद्वेष मोहको बिलकुल दूर कर दिया है। जिसके भीतर आत्मज्ञानमई ज्योति परम निर्मल वीतराग रूप झलक रही है।

श्लोक—तज्ज्ञानस्यैव सामर्थ्यं विरागस्यैव वा किल।
यत्कोऽपि कर्म्मभिः कर्म्म भुंजानोपि न बध्यते ॥ २ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—तत् सामर्थ्यं किल ज्ञानस्य एव वा विरागस्य एव—तत्सामर्थ्य कहतां इसो समर्थपनो, किल कहतां निहचासों, ज्ञानस्य एव कहतां शुद्ध स्वरूपको अनुभवको छै, वा विरागस्य कहतां रागादि अशुद्धपनो छूट्यो छे तिहिको छे, सो सामर्थ्यपनो कौन। यत् कोपि कर्म्म भुंजानोऽपि कर्म्मभिः न बध्यते—यत् कहतां जो साम्यर्थ्यपनो इसो, कोपि कहतां कोई सम्यग्दृष्टी जीव, कर्म भुंजानोऽपि कहतां पूर्वे ही बांध्या छै ज्ञानावरणादि कर्म्म तिहिके उदय थकी हूआ छे शरीर मन, वचन, इंद्रिय सुख दुख रूप नानाप्रकार सामग्री तिहिको यद्यपि भोगवै छे तथापि, कर्मभिः कहतां ज्ञानावरणादि तिहिकरि, न बध्यते कहतां नहीं बांधिजै छे। यथा कोई वैद्य प्रत्यक्षपनै विष कछु पीवै छै तौ फुनि नहीं मरै छे और गुण जानै छे तिहितैं अनेक यतन जानैं छे। तिहिकरि विषकी प्राणघातक शक्ति दूर कीनी छे। वही विष अन्य जीव खाय तो तत्काल मरै तिहितैं वैद्य न मरै। इसो ज्ञानपनाको समर्थपनो छे। अथवा कोई शूद्र मदिरा पीवै छे परंतु परिणामह मांहे कांई दुचिताई छे, मदिरा पीवा ऊपर रुचि नहीं होई छे, इसो शूद्र

जीव मतवालो न होइ। जिसो थो तिसो ही रहे। मद्य तो इसो छे जो अन्य कोई पीवै तो तत्काल मतवालो होई। सो जो कोई मतवालो न होइ इसो अरुचि परिणामको गुण जानिजो। तथा कोई सम्यग्दृष्टि जीव नानाप्रकार सामग्री तिहिको भोगवै छे, सुख दुखको जानै छे परंतु ज्ञानविषैं शुद्ध स्वरूप आत्माको अनुभवै छे तिहिकरि इसो अनुभवै छे जो इसी सामग्री कर्मको स्वरूप छै जीवको दुःखमय छे, जीवको स्वरूप नहीं, उपाधि छै इसो जानै छै, तिहि जीवको ज्ञानावरणादि कर्मको बंध नहीं होइ छे। सामग्री तो इसी छे, जो मिथ्या-दृष्टीको भोगवतां मात्र कर्मबंध होइ छे। जिहि जीवको कर्मबंध न होइ, इसो जानिवो ज्ञानपनाको समर्थपनो छे, अथवा सम्यग्दृष्टी जीव नानाप्रकार कर्मको उदय फल भोगवै छे, परन्तु अभ्यन्तर शुद्ध स्वरूपको अनुभवै छे, तिहितैं कर्मको उदय फल विषै रति नहीं उपजै छे उपाधि जानै छे, दुख जानै छे, तिहितैं अत्यन्त रूखो छे। इसा जीवको कर्मको बन्ध नहीं होइ छे। सो जानिज्यो। रूखा परिणामहको सामर्थ्यपनो छे। तिहितै इसो अर्थ ठह-रायो जो सम्यग्दृष्टी जीवको शरीर इंद्रिय आदि विषयको भोग निर्जराकहु लेखइ छे, निर्जरा होइ छे। जिहितै आगामी कर्म तो नहीं बंधै छे पाछलो उदय फल देइ करि मूल तहि निर्जरी जाइ छे तिहितै सम्यग्दृष्टिको भोग निर्जरा छे।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टि कर्मके उदयको व शरीर वचन व मनकी सर्व क्रियाको ज्ञाता दृष्टा होकर करता व भोगता है, मिथ्यादृष्टि जीव उनहीमें रंजायमान होकर उनका स्वामी बन-कर करता है और भोगता है। सम्यग्दृष्टि एक कोठीमें वेतनभोगी मुनीमकी तरह सर्व काम करता हुआ भी भीतरसे जानता है कि यह सब कार्य व्यवहार मेरा नहीं है। इसका स्वामी दूसरा है उसकी भीतरसे रुचि नहीं है क्योंकि कामका लाभ उसके स्वामीको होगा वह तो मात्र नियत वेतन ही पावेगा। मिथ्यादृष्टि जीव स्वामी बनकर करता है तथा भोगता है इससे गाढ़ आसक्तताके कारण कर्मोंसे बंधता है। सम्यग्दृष्टि जीव ऐसा ज्ञानी व उदास है कि कर्मको व कर्मके उदयको व मन वचन कायकी सर्व क्रियाको अपनी नहीं जानता है, आपको नित्य शुद्ध ज्ञाता दृष्टा ज्ञानानंद परिणतिका ही कर्ता व भोक्ता जानता है। अपनेको मुक्तरूप ही सदा पहचानता है। पूर्वबद्ध कषायके उदयसे जो राग अंश होता है उसके कारण गृहस्थमें रहता हुआ, अपनी पदवीके योग्य आरम्भ परिग्रह रखता है व भोग उप-भोग करता है। उस समय उसके उदय प्राप्त कर्म झड़ जाते हैं। परन्तु बन्ध नहीं होता है। यहां बन्ध उसीहीको कहते हैं जो मिथ्यात्व सहित रागभावसे हो, क्योंकि वही सचि-क्कण बन्ध है, देरतक रहनेवाला है व संसारमें भ्रमण करानेवाला है। गुणस्थानकी परिपा-टीके अनुसार जितना कषाय अंश जिस जीवमें होता है उतना बन्ध पड़ता है। परन्तु

वह बंध मिथ्यादृष्टिकी अपेक्षा बहुत अल्प अनुभाग व स्थितिवाला होता है। घातिया कर्मोंमें बहुत कम रस व स्थिति पड़ती है। अघातिया कर्मोंमें जब पुण्यका बन्ध होता है तब बहुत अनुभाग पड़ता है। परन्तु वह पुण्य कर्म उसके लिये मोहित करनेवाला नहीं होता है, किन्तु मोक्षमार्गमें उत्तम निमित्त मिलानेके लिये सहकारी पड़ जाता है। यहांपर भाव यह है कि भेदज्ञान और स्वानुभवका माहात्म्य आचार्यने बताया है कि उसकी उपस्थितिमें गार्हस्थधर्म आत्माका बाधक नहीं होता है किन्तु साधक ही होता है। सम्यग्दृष्टिकी दृष्टि मोक्षकी ओर है। वह निरंतर शिवकन्याका वरण चाहता है। कर्मकी पराधीनतासे छूटकर स्वाधीन होना चाहता है। कर्मके जालको व शरीरको कारावास समझता है। उसकी रंजकता स्वात्मानंदमें है। वह इंद्रिय सुखोंके असारपनेमें विश्वास कर चुका है। वह चतुर वैद्यके समान विषको विष जानता है। तथापि जहांतक पूर्ण त्याग योग्य वीतरागभाव न हो वहांतक विषयोंको भोगता है परंतु उनसे अंतरंग आसक्त भाव नहीं है इसीसे वह भोगता हुआ भी अभोक्ताके समान है। यह उसके ज्ञान व वैराग्यका माहात्म्य है। छः खंड पृथ्वीका राज्य करता हुआ भरत चक्रवर्तीके समान सम्यग्दृष्टि जब नहीं बंधता है तब मिथ्यादृष्टि संसारमें रुचि व रागांधताके कारण भोग सामग्री न होते हुए भी संसारके कारणीभूत कर्मोंसे बंधता है क्योंकि उसके किंचित् भी अरुचिभाव नहीं है। रातदिन यह भावना है कि भोग सामग्री मिले, जबकि सम्यग्दृष्टीकी यह भावना है कि कब स्वाधीन होकर अनंत कालतक निजानन्दका ही विलास करूं। तत्व०में कहा है:—

स्मरन् स्वशुद्धचिद्रूपं कुर्वन् कार्यशतान्यपि, तथापि न हि बध्येत धीमानशुभकर्मणा ॥१३।१४॥

भावार्थ—अपने शुद्ध चैतन्य स्वभावको स्मरण करते हुए सैकड़ों भी कार्योंको करें तो भी ज्ञाता पाप कर्मसे नहीं बंधता है।

दोहा—महिमा सम्यक्ज्ञानकी, अरु विराग बल जोय। क्रिया करत फल भुंजते कर्मबंध नहि होय ॥३॥

सवैया ३१ सा—जैसे भूप कौतुक स्वरूप करे नीच कर्म, कौतुकि कहावे तासो कोन कहे रंक है॥ जैसे व्यभिचारिणी विचारे व्यभिचार वाको, जारहीसों प्रेम भरतासों चित्त बंक है॥ जैसे धाई बालक चुंघाई करे लालपाल, जाने तांहि औरको जदपि वाके अंक है॥ तैसे ज्ञानवंत नाना भांति करतूति ठाने, किरियाको भिन्न माने याते निकलंक है॥ ४॥

रथोद्धता छंद—नाश्नुते विषयसेवनेऽपि यत् स्वं फलं विषयसेवनस्य ना।
ज्ञानवैभवविरागताबलात्सेवकोऽपि तदसावसेवकः॥ ३॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—तत् असौ सेवकः अपि असेवकः स्यात्—तत् कहतां तिहि कारण तहिं, असौ कहतां सम्यग्दृष्टि जीव, सेवकः अपि कर्मके उदयकरि हुवा छै जे शरीर पंचेन्द्रिय विषय सामग्री तिहिको भोगवै छे। तथापि असेवक कहतां नहीं भोगवै छे।

किसा थै-यत् ना विषयसेवनस्य स्वं फलं न अश्नुते-यत् कहतां जिहिं कारणं तहि, ना कहतां सम्यग्दृष्टी जीव, विषयसेवनेपि कहतां पंचेन्द्री सम्बंधी विषय सेवै छे तथापि, विषय सेवनस्य स्वं फलं कहतां पंचेंद्रिय भोगको फल छे ज्ञानावरणादि कर्मको बंध तिहिको, न अश्नुते कहतां नहीं पावै छे। इसो फुनि किसा थे। ज्ञानवैभवविरागताबलात्-ज्ञान वैभव कहतां शुद्ध स्वरूपको अनुभव तिहिकी महिमा तिहि थकी, अथवा विरागताबलात् कहतां कर्मके उदय थकी छे विषयका सुख जीवको स्वरूप नहीं छे तिहितै विषय सुख विषैं रति नहीं उपजै छे उदास भाव छे। तिहि तइ कर्मबंध नहीं होइ छे। भावार्थ इसो-जो सम्यग्दृष्टी जो भोग भोगवै छे सो निर्जराके निमित्त छे।

भावार्थ-यहां भी यही भाव है कि ज्ञानी सम्यग्दृष्टीमें तत्वज्ञान व वैराग्य एक अपूर्व प्रकारका है जिससे उसके भोग भी निर्जराहीके कारण कहे गए हैं। वास्तवमें जैसे कोई मानव राजमहलमें जाता हो बीचमें कुछ कार्य करता भी है तो उसपर भावको जमाता नहीं है। उत्कंठा यह है कि शीघ्र राजमहलमें पहुंचूं, वही दशा तत्वज्ञानीकी है। वह निरंतर निज पदकी ही तरफ बढ़ता चल रहा है। दृष्टि निज शुद्ध स्वरूपकी प्राप्तिकी है। जहांतक मोक्ष न हो वहांतक मार्गमें चलते हुए जो कुछ मन वचन कायकी क्रियाएं करनी पड़ती हैं वे उसको मोक्षमार्गमें गमन करनेसे पीछे नहीं डालती हैं। वह तो सीधा चला ही जारहा है। इसलिये ज्ञानीकी क्रियाएं व भोगादि मोक्षमार्गमें बाधक नहीं हैं। तत्व० में कहा है:-

न संपदि प्रमोदः स्यात् शोको नापदि धीमतां। अहोस्वित् सर्वदात्मीयशुद्धचिद्रूपचेतसां ॥१८।१४॥

भावार्थ-जो सदा निज शुद्ध चैतन्य स्वरूपमें प्रेमालु है उन बुद्धिमानोंको सम्पत्ति बढ़नेपर हर्ष नहीं होता है व विपत्ति आनेपर शोक नहीं होता है। यह उनके ज्ञान वैराग्यकी महिमा है।

सोरठा-पूर्व उदै सम्बन्ध, विषय भोगवे समकीति। करे न नूतन बंध, महिमा ज्ञान विरागकी ॥५॥

मंदाक्रांता छंद-सम्यग्दृष्टेर्भवति नियतं ज्ञानवैराग्यशक्तिः

स्वं वस्तुत्वं कलयितुमयं स्वान्यरूपाप्तिमुक्त्या।
यस्माज् ज्ञात्वा व्यतिकरमिदं तत्त्वतः स्वं परं च
स्वस्मिन्नास्ते विरमति परात्सर्वतो रागयोगात् ॥ ४ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ-सम्यग्दृष्टेः नियतं ज्ञानवैराग्यशक्तिः भवति-सम्यग्दृष्टेः कहतां द्रव्यरूप मिथ्यात्व कर्म उपशम्यो छे, भावरूप शुद्ध सम्यक भावरूप परिणवो छे, जो जीव तिहिको, ज्ञान कहतां शुद्ध स्वरूपको अनुभव रूप जानपनो, वैराग्य कहतां जावंत परद्रव्य-द्रव्यकर्मरूप भावकर्मरूप नोकर्मरूप ज्ञेयरूप तिहि समस्त परद्रव्यको सर्व

प्रकार त्याग इसी दोइ शक्ति। नियतं भवति कहतां अवश्य होहि सर्वथा होहि, दुवे शक्ति ज्यों होहि छे त्यों कहिजे छे। यस्मात् अयं स्वस्मिन् आस्ते परात् सर्वतः रागयोगात् विरमति–यस्मात् कहतां जिहि कारण तहि अयं कहतां सम्यग्दृष्टी, स्वस्मिन् आस्ते कहतां सहज ही शुद्ध स्वरूप विषै अनुभवरूप होहि तथा परात् सर्वतः रागयोगात् कहतां पुद्गल द्रव्यकी उपाधि तहि छे यावंत रागादि अशुद्ध परिणति तिहितहि, सर्वतः विरमति कहतां सर्व प्रकार रहित होई। भावार्थ इसो जो–इसो लक्षण सम्यग्दृष्टि जीवके अवश्य होइ। इसो लक्षण होतां अवश्य वैराग्य गुण छे। कायो करतां इसो होइ छे। स्वं परं च इमं व्यतिकरं तत्वतः ज्ञात्वा–स्वं कहतां शुद्ध चैतन्यमात्र म्हारो स्वरूप छे, परं कहतां द्रव्यकर्म भावकर्म नोकर्मको विस्तार परायो पुद्गल द्रव्यको छे, इमं व्यतिकरं कहतां इसो व्यौरो तिहिको, तत्वतः ज्ञात्वा कहतां कहिवाको न छे, वस्तुस्वरूप योंही छे इसो अनुभव स्वरूप जानै छे। सम्यग्दृष्टि जीव तिहितैं ज्ञानशक्ति छे। आगे इतनो करै छे सम्यग्दृष्टि जीव सो किसाकै अर्थि, उत्तर इसो, स्वं वस्तुत्वं कलयितुं स्वं वस्तुत्वं कहतां आपणी शुद्धपनो तिहिको कलयितुं कहतां निरंतरपनै अभ्यास करतां वस्तुकी प्राप्तिके निमित्त, सो वस्तुकी प्राप्ति किसै करि होइ छे। स्वान्यरूपाप्तिमुक्त्या–कहतां आपणा शुद्ध स्वरूपको लाभ परद्रव्यको सर्वथा त्याग इसा कारण करि।

भावार्थ–सम्यग्दृष्टि जीवके अनंतानुबन्धी कषाय और मिथ्यात्व कर्मका उदय बन्द हो जानेसे संसाराशक्तपना सर्व निकल जाता है। उसके भीतर सम्यग्ज्ञान ऐसा झलक उठता है कि परमाणुमात्र भी परद्रव्य मेरा नहीं है। मेरा वही है जो सदासे ही मेरे साथ है व सदा ही रहेगा। वह मेरा निजी ज्ञान दर्शन, सुख, वीर्य, चरित्रादि गुण है। राग द्वेषादि सर्व औपाधिक व मोहजनित भाव मेरा स्वभाव नहीं। द्रव्यकर्म व नोकर्म तो प्रगट ही भिन्न हैं। वैराग्य ऐसा प्रकाशित होता है कि यह सर्व संसार त्यागने योग्य है। निज स्वभावरूप मुक्तदशा ही ग्रहण करनेयोग्य है। इस सहज ज्ञान वैराग्यके कारण वह सदा ही अपने शुद्ध स्वरूपके अनुभवकी रुचिमें तन्मय रहता है। यही दशा पूर्वबद्ध कर्मकी निर्जरा करती है व आगामीके बंधको रोकती है। योगसारमें कहा है कि सम्यग्दृष्टी ऐसा मानता है–

रयणत्तयसंजुत्त जिउ उत्तम तित्थ पवित्तु, मोक्खहकारण जोइया अण्णु ण तंतु ण मंतु ॥८३॥

भावार्थ–ये योगी, मोक्षका उपाय रत्नत्रय सहित आत्माका अनुभव है यही उत्तम पवित्र तीर्थ है और कोई तंत्र मंत्र नहीं है।

सवैया २३ सा—सम्यक्वन्त सदा उर अन्तर, ज्ञान विराग उभै गुण धारे। जासु प्रभाव लखे निज लक्षण, जीव अजीव दशा निरवारे॥ आतमको अनुभौ करि स्थिर, आप तरे अरु औरनि तारे। साधि स्वद्रव्य लहे शिव सर्मसो, कर्म उपाधि व्यथा वमि डारे॥ ६॥

मंदाक्रांता छन्द–सम्यग्दृष्टिः स्वयमयमहं जातु बन्धो न मे स्या-
दित्युत्तानोत्पुलकवदना रागिणोऽप्याचरन्तु ।
आलम्बन्तां समितिपरतां ते यतोऽद्यापि पापा
आत्मानात्मावगमविरहात्सन्ति सम्यक्त्वरिक्ताः ॥ ५ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ–ईवारो इसो कहिजै छे जो सम्यग्दृष्टि जीवको विषय भोगवतां कर्मको बंध नहीं छै, सो कारण इसो जो सम्यग्दृष्टिको परिणाम अति ही रूखो छै। तिहितैं भोग इसा लागे छे जिसो कांई रोगको उपसर्ग होतो होइ। तिहितै कर्मको बंध नहीं छे, योंही छे। जे केई मिथ्यादृष्टि जीव पंचेंद्रियका विषयका सुख भोगवे छे ते परिणामह करि चीकणा छैं, मिथ्यात्व भावको इसो ही परिणाम सारो कौनको छै। सो ते जीव इसो मानहि छै जो म्हां फुनि सम्यग्दृष्टि छा म्हा है फुनि विषयसुख भोगवतां कर्मको बन्धन छैं, सो ते जीव धोखई परचा छे इसो कहिजे छे। ते रागिणः अद्यापि पापाः–ते कहतां मिथ्यादृष्टी जीव राशि, रागिणः कहतां शरीर पंचेंद्रियके भोग सुख विषै अवश्य करि रंजक छै। अद्यापि कहतां कोड़ि उपाय जो करै अनन्तकाल पर्यंत तथापि पापाः कहतां पापमय छै, ज्ञानावरणादि कर्मबंधको करै छे, महानिंद्य छै, किसा थै इसा छै। यतः सम्यक्त्वरिक्ताः सन्ति–कहतां शुद्धात्म स्वरूपके अनुभव तहि शून्य छै, किसा थकी। आत्मानात्मावगमविरहात्–आत्मा कहतां शुद्ध चैतन्य वस्तु, अनात्मा कहतां द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म तिहिको, अवगम कहतां हेयोपादेय रूप भिन्नपनै रूप जानपनो तिहिको, विरहात् कहतां शून्यपनो तिहि थकी। भावार्थ इसो–जो मिथ्यादृष्टी जीव कहु शुद्ध वस्तुको अनुभवकी शक्ति न होइ इसो नियम छे तिहि तहि मिथ्यादृष्टी जीव कर्मको उदय आयो जानि अनुभवै। पर्याय मात्र सो अत्यन्त रत छै तिहितै मिथ्यादृष्टी सर्वथा रागी होइ। रागी हुआ थकी कर्मबंधको कर्ता छे। किसा छै मिथ्यादृष्टी जीव–अयं अहं स्वयं सम्यग्दृष्टिः जातु मे बन्धः न स्यात्–अयं अहं कहतां यह जो छौं हौं स्वयं सम्यग्दृष्टि कहतां आपुणपै सम्यग्दृष्टी छौं तिहितै, जातु कहतां त्रिकाल ही मे बन्धः न स्यात्–कहतां अनेक प्रकार विषयका सुख भोगवतां फुनि हमहि तो कर्मको बन्ध नहीं छे। इति आचरन्तु–कहतां इसा जीव इसो मानहि छै तो मानहु। तथापि त्याहै कर्मबंध छे। और किसा छे। उत्तानोत्पुलकवदना–उत्तान कहतां ऊंचो करि, उत्पुलक कहतां फुलायो छे। वदन कहतां गल मुह ज्याह इसा छै, अपि कहतां अथवा किसा छे। समितिपरतां आलंबतां–समिति कहतां मौनपनो अथवा थोड़ा बोलवो अथवा आपुनपो हीनो करि बोलवो तिहिंकी, परता कहता सयानयरूप सावधानपनो तिहिको आलंबतां कहतां सर्वथा

प्रकार एनैरूप प्रकृतिको स्वभाव छे ज्याहको इसो छे। तथापि रागी होतां मिथ्यादृष्टी छे। कर्मबंधको करै छे। भावार्थ-इसो जोजे जेई जीव पर्याय मात्र रत होतां मिथ्यादृष्टि छता छे त्याहकी प्रकृतिको स्वभाव छै जो हम सम्यग्दृष्टि, हमको कर्मबंध नहीं। इसो मुहडे कहि करिके गरजहि छे, केई प्रकृतिका स्वभाव थकी मौनसो रहै छे। केई थोरा बोलहि छे सो इसो रहै छे। सो इसो समस्त प्रकृतिको स्वभाव छे। इहमाहइ परमार्थ तो कांई नहीं जावंतकाल जीव पर्याय विषं आपो अनुभवै छे तावंतकाल मिथ्यादृष्टी छे, रागी छे, कर्मबंधको करै छे।

भावार्थ-यहां यह बात झलकाई है कि कोई सम्यग्दृष्टी तो न होय परन्तु ऐसा मान ले कि शास्त्रमें सम्यग्दृष्टिको विषय भोग करते हुए कर्मका बंध नहीं होता है ऐसा कहा है। मैं भी सम्यग्दृष्टि हूं मैंने अनात्माको आत्मासे भिन्न जान लिया है अब मैं चाहे जितना विषय भोग करूं मुझे तो कर्मका बंध न होगा। उसको आचार्य कहते हैं कि धोखा होगया है। जिसके अंतरंगमें विषय सुखोंकी आस्था है, कांक्षा है, मगनता है, लवलीनता है वह सम्यग्दृष्टी कैसे होसक्ता है। जिसके अंतरंगमें विषय सुख विषके समान आत्माके अनुभवमें बाधक प्रतीतमें होरहा है व जो शुद्धात्मानुभवके लिये अत्यन्त रुचिवान है वही सम्यग्दृष्टी जीव है। ऐसा जीव यदि पूर्वबद्ध कषायके उदयसे विषयभोग करता है और उनको छोड़ने योग्य जानता है व उनमें भीतरसे रुचिवान नहीं है, रोगके इलाजके समान कड़वी दवाको पीता है, उस जीवके कर्मका बंध वह नहीं है जो अनंत संसारका कारण हो। जिसके भीतरमें आसक्तभाव-अतिशय राग भाव होता है उसके ही संसारका कारणीभुत कर्मका बंध होता है। सम्यग्दृष्टी जीवकी भूमिका वैराग्यमय होगई है। उसका प्रेम जितना आत्मानुभवमें है उसका सहस्रांश भी विषय भोगमें नहीं है। इसी लिये वह ऐसा अल्प कर्मबंध करता है जो कहनेमें नहीं आता है अथवा उसका बंध बंध ही नहीं है, क्योंकि वह सब शीघ्र झड़नेवाला है। यह महिमा उसके अंतरंग गाढ़ रुचि, गाढ़ ज्ञान, व गाढ़ वैराग्यकी है। जिसके मनमें विषयभोगोंसे गाढ़ रुचि है वह मात्र कहनेको मान ले कि मैंने आत्माको अनात्मासे भिन्न जान लिया मुझे तो बंध न होगा और खूब विषय भोगोंमें लम्पटी रहे, उसको यहां आचार्यने कह दिया है कि वह तो महा पापी व वज्र मिथ्यादृष्टी है। उसको सच्चा आत्मा व अनात्माका-इंद्रिय सुख व अतीन्द्रिय सुखका भेदज्ञान नहीं हुआ है। सम्यग्दृष्टीका तो स्वभाव ही वैराग्यमय बन जाता है। वह ऐसा कभी नहीं मानता है। वह गृहस्थ कार्योंको करता हुआ यह भी जानता है कि जितना अंश चारित्रमोहका उदय हैं उतना अंश वह कर्मबंधका कारक है। सर्वथा अबंधक तो मैं तब ही हूंगा

अब चारित्रमोहका क्षय करके सर्व कषाय रहित वीतरागी क्षीण मोही गुणस्थानी होऊंगा। जो वस्तुको सोलः आना ठीक जानता है वही सम्यग्दृष्टी है। औरका और समझनेसे व अहंकार करनेसे कभी कोई सम्यग्दृष्टी नहीं होसक्ता है। तत्व०में कहा है कि सम्यग्दृष्टीका भाव किस तरह स्वरूपमें रत होता है—

चित्तं निधाय चिद्रूपे कुर्यात् वागंगचेष्टितं। सुधी निरंतरं कुंभे, यथा पानीयहारिणी॥ ३११४॥

भावार्थ—जिस तरह पानी भरनेवाली पनिहारी मस्तकपर पानीका भरा घड़ा रक्खे हुए चलती है, परन्तु उसका मन पानीकी तरफ रहता है कि कहीं पानीका घड़ा गिर न जावे। उसी तरह ज्ञानी सम्यग्दृष्टी जीव अपना मन शुद्ध चैतन्यके स्वरूपमें रुचिवान रखते हुए वचन व कायसे जो करने योग्य क्रिया हैं उनको करते हैं—

सवैया २३ सा—जो नर सम्यकवन्त कहावत, सम्यकज्ञान कला नहीं जागी। आतम अंग अबन्ध विचारत, धारत संग कहे हम त्यागी॥ भेष धरे मुनिराज पटंतर, अंतर मोह महा नल दागी। सून्य हिये करतूति करे परि सो सठ जीव न होय विरागी॥ ७॥

सवैया २३ सा—ग्रन्थ रचे चरचे शुभ पंथ, लखे जगमें विवहार सुपत्ता। साधि सन्तोष अराधि निरंजन, देई सुसीख न लेइ अदत्ता॥ नंग धरंग फिरें तजि संग, छके सरवंग सुधा रस मत्ता। ए करतूति करे सठ पै, समुझे न अनातम आतम सत्ता॥ ८॥

सवैया २३ सा—ध्यान धरे करि इंद्रिय निग्रह, विग्रहसों न गिने निज नत्ता। त्यागि विभूति विभूति मढ़े तन, जोग गहे भवभोग विरत्ता॥ मौन रहे लहि मंद कषाय, सहे वध बंधन होइ न तत्ता। ए करतूति करे सठ पै, समुझे न अनातम आतम सत्ता॥ ९॥

चौपाई—जो विन ज्ञान क्रिया अवगाहे। जो विन क्रिया मोक्षपद चाहे॥
जो विन मोक्ष कहे मैं सुखिया। सो अजान मूढनिमें मुखिया॥ १०॥

मंदाक्रांता छंद—आसंसारात्प्रतिपदममी रागिणो नित्यमत्ताः
सुप्ता यस्मिन्नपदमपदं तद्विबुध्यध्वमन्धाः।
एतैतेतः पदमिदमिदं यत्र चैतन्यधातुः
शुद्धः शुद्धः स्वरसभरतः स्थायिभावत्वमेति॥ ६॥

खंडान्वय सहित अर्थ—भो अंधाः—भो कहतां संबोधवचन, अंधाः कहतां शुद्ध स्वरूप अनुभव तहि शून्य छे जेता जीव राशि। तत् अपदं अपदं विबुध्यध्वं—तत् कहतां कर्मके उदय तहि छे जे चार गतिरूप पर्याय तथा रागादि अशुद्ध परिणाम तथा इंद्रिय विषय-जनित सुख दुख इत्यादि अनेक छे त्यांहको, अपदं अपदं दोइ वार कहतां सर्वथा जीवको स्वरूप न छै, जेती केती कर्म संयोगकी उपाधि छे, विबुध्यध्वं कहतां अवश्य करि इसो जानहु, किसो छे मायाजाल, यस्मिन् अमी रागिणः आसंसारात् सुप्ताः—यस्मिन् कहतां जिहि विषै कर्मके उदय जनित अशुद्ध पर्याय विषै, अमी रागिणः प्रत्यक्षपनै छता छे जे पर्याय मात्र

रंजक जीव, आसंसारात् सुप्ताः कहतां अनादिकाल तहि लेइ करि तिहि रूप अपनपो अनुभवै छे। भावार्थ इसो जो—अनादिकालते लेइ करि इसो स्वाद सर्वथा मिथ्यादृष्टी आस्वादै छे जो हौं देव हौं, मनुष्य हौं, सुखी हौं, दुःखी हौं इसो पर्याय मात्रको आपो अनुभवै छे, तिहिते सर्व जीवराशि जिसो अनुभवै छे सो सर्व झूठो छे, जीवको तो स्वरूप न छे। किसो छे सर्व जीवराशि, प्रतिपदं नित्यमत्ताः—प्रतिपदं कहतां जिसो ही पर्याय लीयो तिसै ही रूप, नित्यमत्ताः कहतां इसा मतवाला हुवा जो कोई काल कोई उपाय करतां मतवालापनो उतरै नहीं। शुद्ध चैतन्य स्वरूप ज्यों छे त्यों दिखाइजै छे। इतः एत एत—कहतां पर्याय मात्र अवधारयौ छे आपो इसै मार्ग मति जाहि जिहिते थारो मार्ग न होय न होय, इतकै मार्ग आओ, हो आओ जिहितै, इदं पदं इदं पदं कहतां थारो मार्ग इहां छे इहां छे। यत्र चैतन्यधातुः यत्र कहतां जिहि विषै चैतन्यधातुः कहतां चेतना मात्र वस्तुको स्वरूप छे। किसो छे, शुद्धः शुद्धः दोइवार कहतां अत्यंत गाढ़ कीजै छे, सर्वथा प्रकार सर्व उपाधि तै रहित छे। और किसो छे, स्थायिभावत्वं एति—कहतां अविनश्वर भावको पावै छे, किसा थकी। स्वरसभरतः स्वरस कहतां चेतना स्वरूप तिहिको भरतः कहतां कहनाई मात्र न छे सत्य स्वरूप वस्तु छे। तिहिते नित्य शाश्वतो छे। भावार्थ इसो जो—ज्याइको पर्याय मिथ्यादृष्टी जीव आपो करि जानै छे तेतो सर्व विनाशीक छे, तिहिते जीवको स्वरूप न छे, चेतना मात्र अविनाशी छे। तिहिते जीवको स्वरूप छे।

भावार्थ—यहां यह शिक्षा दी है कि—हे भव्य जीवो! तुम कर्मजनित अनेक अंतरङ्ग व बहिरंग अवस्थाओंको अपनी मत जानो। इनमें आशक्तपना छोड़ो, इनके मोहमें पड़ अनादिकालसे इष्ट वियोग, अनिष्ट संयोग आदि घोर कष्ट पाए हैं। तथा इनका भला बुरा स्वाद लेते लेते कभी भी तृप्ति न हुई, पार नहीं मिला। भवभवमें जन्म मरणादि कष्ट ही पाए। उन्मत्तकी तरह चेष्टा करता रहा, अपना स्वरूप परमात्मरूप परम वीतराग निरंजन निर्विकार ज्ञाता दृष्टा अविनाशी उसको नहीं पहचाना। अब तो उसे पहचानो। उस ही तरफ उपयोगको साधो, थिरता भजो और अतींद्रिय आनन्दका परम अमृतमई स्वाद भोगो।

परद्रव्यसे विमुख होना ही मोक्षका साधक है। तत्व में कहा है—

कारणं कर्मबन्धस्य परद्रव्यस्य चिंतनं, स्वद्रव्यस्य विशुद्धस्य तन्मोक्षस्यैव केवलं ॥ १६।१५ ॥

भावार्थ—आत्माके सिवाय परद्रव्यकी चिंता कर्मबंधकीही कारक है तथा अपने ही शुद्ध आत्मद्रव्यकी चिंता मात्र मोक्षका ही साधक है।

सवैया ३१ सा—जगवासी जीवनसों गुरु उपदेश करे, तुम्हे यहां सोवत अनन्त काल बीते है॥ जागो व्है सचेत चित्त समता समेत सुनो, केवल वचन जामें अक्ष रस जीते है॥ आवो

मेरे निकट बताऊं मैं तिहारे गुण, परम सुरस भरे करमसों रीते है ॥ ऐसे बैन कहे गुरु तोऊ तें न धरे उर, मित्र कैसे पुत्र किधो चित्र कैसे चीते है ॥ ११ ॥

दोहा—ऐतेपर पुन सद्गुरु, बोले वचन रसाल। शैन दशा जाग्रत दशा, कहे दुहूंकी चाल ॥१२

सवैया ३१ सा—काया चित्रशालामें करम परजंक भारि, मायाकी सवारी सेज चादर कलपना ॥ शैन करे चेतन अचेतनता नींद लिये, मोहकी मरोर यहै लोचनको ढपना ॥ उदै बल जोर यहै श्वासको शवद घोर, विषै सुख कारीजाकि दोर यहै सपना ॥ ऐसे मूढ दशामें मगन रहै तिहुं काल, धावे भ्रम जालमें न पावे रूप अपना ॥ १३ ॥

सवैया ३१ सा—चित्रशाला न्यारी परजंक न्यारी सेज न्यारी, चादर भी न्यारी यहां झूठी मेरी थपना ॥ अतीत अवस्था शैन निद्रा वाहि कोउ पै न विद्यमान पलक न यामें अब छपना श्वास औ सुपन दोउ निद्राकी अलंग बूझे सूझे सब अंक लखि आतम दरपना ॥ त्यागि भयो चेतन अचेतनता भाव छोडि, भाले दृष्टि खोलिके संभाले रूप अपना ॥ १४ ॥

दोहा—इह विधि जे जागे पुरुष, ते शिवरूप सदीव। जे सोवहि संसारमें, ते जगवासी जीव ॥१५॥

श्लोक—एकमेव हि तत्स्वाद्यं विपदामपदं पदम्।
अपदान्येव भासन्ते पदान्यन्यानि यत्पुरः ॥ ७ ॥

खंडान्वय सहित अर्थ—तत्पदं स्वाद्यं—तत् शुद्ध चैतन्य मात्र वस्तु इसो, पदं कहतां मोक्षका कारण, स्वाद्यं कहतां निरंतरपनै अनुभव करणो, किसो छे, हि एकं एव—हि कहतां निहचासों, एकं एव कहतां समस्त भेद विकल्प तहि रहित निर्विकल्प वस्तु मात्र छे, और किसो छे, विपदां अपदं—विपदां कहतां चतुर्गति सम्बंधी नानाप्रकार दुःखको, अपदं कहतां अभाव लक्षण छे। भावार्थ इसो—जो आत्मा सुख स्वरूप छे, साता असाता कर्मके उदयके संयोग होइ छे जो सुख दुःख सो जीवको स्वरूप नहीं छे, कर्मकी उपाधि छे। और किसो छे—यत्पुरः अन्यानि पदानि अपदानि एव भासन्ते—यत्पुरः कहतां जिहि शुद्ध स्वरूपको अनुभव रूप आस्वाद आये संतै, अन्यानि पदानि कहतां चार गतिके पर्याय, राग द्वेष मोह सुख दुःख रूप इत्यादि जावंत अवस्था भेद, अपदानि एव भासंते कहतां जीवको स्वरूप न छे उपाधि रूप छे, विनश्वर छे, दुःखरूप छे। इसो स्वाद स्वानुभव प्रत्यक्षपनै आवै छे। भावार्थ इसो—शुद्ध चिद्रूप उपादेय, अन्य समस्त हेय।

भावार्थ—यहांपर भी यही शिक्षा दी है कि अपने शुद्ध चैतन्य स्वरूप मात्रका अनुभव करो जहां कोई प्रकारकी आपत्ति, संकट, आकुलता व बंध नहीं है। इस अपने सर्वोत्कृष्ट परमानन्दमई पदके सामने सर्व अन्य तीन लोकके सेप हैं व परिणमन हैं वे सर्व क्षणभगुर, आकुलताजनक, रागद्वेष मई व बंधके कारक हैं। सच्चा सुख भी आत्माहीमें है—

सारसमुच्चयमें श्री कुलभद्र आचार्य कहते हैं—

आत्माधीनं तु यत्सौख्यं तत्सौख्यं वर्णितं बुधैः। पराधीनं तु यत्सौख्यं दुःखमेव न तत्सुखं ॥३०१॥

भावार्थ-जो सुख अपने आधीन है अपनेहीसे अपनेको अपनेमें मिलता है वही सुख है ऐसा ज्ञानियोंने कहा है। जो दूसरे द्रव्योंके संयोगके आधीन सुख है वह सुख नहीं है वह तो दुःख ही है, आकुलतारूप है।

दोहा—जो पद भौपद भय हरे, सो पद सेउ अनूप। जिहि पद परसत और पद, लगे आपदा रूप॥१६॥

शार्दूलविक्रीडित छन्द- एकज्ञायकभावनिर्भरमहास्वादं समासादयन्
स्वादं द्वन्द्वमयं विधातुमसहः स्वां वस्तुवृत्तिं विदन्।
आत्मात्मानुभवानुभावविवशो भ्रश्यद्विशेषोदयं
सामान्यं कलयत्किलैष सकलं ज्ञानं नयत्येकतां॥ ८॥

खण्डान्वय सहित अर्थ-एष आत्मा सकलं ज्ञानं एकतां नयति-एष आत्मा कहतां वस्तुरूप छतो छे चेतन द्रव्य, सकलं ज्ञानं कहतां जावंत पर्याय रूप परिणवो छे ज्ञान, मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, केवलज्ञान इत्यादि। अनेक विकल्परूप परिणवो छे ज्ञान तिहिको, एकतां कहतां निर्विकल्प रूप, नयति कहतां अनुभवे छे। भावार्थ इसो-जो यथा उष्णता मात्र अग्नि छे तिहितैं दाह्य वस्तुको जारतैं संतै दाह्यके आकार परिणवे छे, तिहितैं लोगहको इसी बुद्धि उपजै छे जो काष्टकी आग, छानाकी आग, तृणकी आग, सो एता समस्त विकल्प झूठा छे, आगको स्वरूप विचारतां उष्ण मात्र आग छे, एकरूप छे तथा ज्ञानचेतना प्रकाश मात्र छे, समस्त ज्ञेयवस्तुको जानिवाको स्वभाव छे, तिहितैं समस्त ज्ञेय वस्तुको जाने छे, जानतो होतो ज्ञेयाकार परिणवे छे। तिहितैं ज्ञानी जीवहको इसी बुद्धि उपजै छे जो मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, केवलज्ञान इसा भेद विकल्प सब झूठा छे. ज्ञेयकी उपाधि करि मतिश्रुत अवधि मनःपर्यय, केवल इसा विकल्प उपज्या छे, जिहितैं ज्ञेय वस्तु नानाप्रकार छे। जिसा ही ज्ञेयको ज्ञापक होइ तिसो ही नाम पावे. वस्तु स्वरूपको विचारतां ज्ञान मात्र छे। नाम धरिवो सब झूठो छे इसो अनुभव शुद्ध स्वरूपको अनुभव छे। किसो छे अनुभवशीली आत्मा। एकज्ञायकभावनिर्भरमहास्वादं समासादयन्-एक कहतां निर्विकल्प इसो जो, ज्ञायकभाव कहतां चेतनद्रव्य तिहि विषै, निर्भर कहतां अत्यन्त मगनपनो तिहितैं हूओ छे, महास्वाद कहतां अनाकुल लक्षण सौख्य तिहिको समासादयन् कहतां आस्वादतो होतो, और किसो छे। द्वन्द्वमयं स्वादं विधातुं असहः-द्वन्द्वमयं कहतां कर्मका संयोगथकी हूओ छे विकल्परूप आकुलतारूप स्वादं कहतां अज्ञानी जन सुखकरि मानहि छे परंतु दुःखरूप छे इसो इन्द्रिय विषय जनित सुख तिहिको, विधातुं कहतां अंगीकार करिवाको, असहः कहतां असमर्थ छे। भावार्थ इसो-जो विषय कषायको दुखकरि जानहि छे। स्वां वस्तुवृत्तिं विदन्-स्वां कहतां आपणा द्रव्य सम्बन्धी

वस्तुवृत्ति, कहतां आत्माको शुद्ध स्वरूप तिहिको, विदन् कहतां तद्रूप परिणवतो संतो। और किसो छे। आत्मानुभवानुभावविवशः-आत्मा कहतां चेतन द्रव्य तिहिको, अनुभव कहतां आस्वाद तिहिको, अनुभाव कहतां महिमा तिहिकरि, विवशः कहतां गोचर छे, और किसो छे। विशेषोदयं भ्रस्यत-विशेष कहतां ज्ञान पर्याय तिहिकरि, उदय कहतां नानाप्रकार तिहिको भ्रस्यत् कहतां मेटतो होतो। और किसो छे, सामान्यं कलयन्-सामान्यं कहतां निर्भेद सत्तामात्र वस्तु, कलयन् कहतां अनुभव करतो होतो।

भावार्थ-यहां यह झलकाया है कि तत्वज्ञानी जीव अपने आत्माका जब स्वाद लेता है तब उसको वह शुद्ध ज्ञानाकार एक सामान्यरूप अनुभवमें आता है ज्ञेयके व ज्ञानावरणके क्षयोपशमके निमित्तसे सो ज्ञानमें भेद थे सो बिलकुल लुप्त होजाते हैं। उसको अतींद्रिय आनन्दका भी लाभ उस समय होता है। तब इंद्रियजनित अशुद्ध स्वादरूप सुखका पता भी नहीं चलता है। ज्ञानीको जिस सुखमें अनास्था है उसमें वह मग्न कैसे होसक्ता है। वह तो निजानन्दका रुचिवान उसी तरह होजाता है जिस तरह भ्रमर कमलकी वासका रुचिवान होता है। वह ज्ञानी भ्रमरवत् अपने परमानंदमय स्वभावमें लय होजाता है, यही स्वानुभव अवस्था व आत्मध्यानमय परिणति कर्मकी निर्जराका हेतु है।

इष्टोपदेशमें कहा है—

आत्मानुष्ठाननिष्ठस्य व्यवहारबहिः स्थितेः, जायते परमानन्दः कश्चिद्योगेन योगिनः ॥ ४७ ॥
आनन्दो निर्दहत्युद्धं कर्मेन्धनमनारतं, न चासौ खिद्यते योगी बहिर्दुःखेष्वचेतनः ॥ ४८ ॥

भावार्थ-जो योगी योगबलसे सर्व व्यवहार व भेदोंसे बाहर होकर आत्माके स्वभावमें तन्मय होजाता है उसको कोई अपूर्व आनन्द उत्पन्न होता है वही आनन्द निरंतर कर्मके ईंधनको जलाता रहता है। उस समय यदि शरीरपर दुःख भी पड़े तो योगी उनकी ओरसे आकुलित नहीं होता है। क्योंकि उसकी मग्नता निज स्वरूपमें भ्रमरवत् होरही है।

सवैया ३१ सा—जब जीव सोवे तब समझे सुपन सत्य, वहि झूठ लागे जब जागे नींद खोयके ॥ जागे कहे यह मेरो तन यह मेरी सोज, ताहूं झूठ मानत मरण थिति जोइके ॥ जाने निज मरम मरन तब सूझे झूठ, बूझे जब और अवतार रूप होइके ॥ वाही अवतारकी दशामें फिर यहै पेच, याही भांति झूठो जग देखे हम टोइके ॥ १७ ॥

सवैया ३१ सा—पंडित विवेक लहि एकताकी टेक गहि, दुंदुज अवस्थाकी अनेकता हरतु है ॥ मति श्रुति अवधि इत्यादि विकलप मेटि, नीरविकलप ज्ञान मनमें धरतु है ॥ इंद्रिय जनित सुख दुःखसों विमुख व्हैके, परमके रूप व्है करम निर्जरतु है ॥ सहज समाधि साधि त्यागी परकी उपाधि, आतम आराधि परमातम करतु है ॥ १८ ॥

शार्दूलविक्रीडित छन्द—अच्छाच्छाः स्वयमुच्छलन्ति यदिमाः संवेदनव्यक्तयो
निष्पीताखिलभावमण्डलरसप्राग्भारमत्ता इव।

यस्याभिन्नरसः स एष भगवानेकोऽप्यनेकीभवन्
वल्गत्युत्कलिकाभिरद्भुतनिधिश्चैतन्यरत्नाकरः॥ ९॥

खण्डान्वय सहित अर्थ–स एष चैतन्यरत्नाकरः–स एषः कहतां जिहिको स्वरूप कह्यो छे, तथा कहिंजे जो इसो, चैतन्यरत्नाकरः कहतां जीव द्रव्य इसो छै, रत्नाकरः कहतां महा समुद्र। भावार्थ इसो–जो जीव द्रव्य समुद्रकी उपमा करि कह्यो सो इतना कहतां द्रव्यार्थिनय करि एक छै। पर्यायार्थिक नय करि अनेक छै। यथा समुद्र एक छे, तरंगावली करि अनेक छै। उत्कलिकाभिः–कहतां समुद्र पक्ष तरंगावली जीव पक्ष एक ज्ञान गुण तिहि कहु मतिज्ञान, श्रुतज्ञान इत्यादि अनेक भेद त्यांइ करि, वल्गति–कहतां आपने बळ अनादि तहि परिणवै छे। किसो छे–अभिन्नरसः–कहतां जावंत पर्याय त्यांहके तहि भिन्न सत्ता न छे, एक ही सत्त्व छे। और किसो छे, भगवान् कहतां ज्ञान दर्शन सौख्य वीर्य इत्यादि अनेक गुण विराजमान छै, और किसो छे, एकः अपि अनेकीभवन्–एकः अपि कहतां सत्ता स्वरूप करि एक छै। तथापि अनेकीभवन् कहतां अंश भेद कहतां अनेक छै और किसो छे। अद्भुतनिधिः–अद्भुत कहतां अनन्तकाल च्यारि गति माहे फिरतां जिसो सुख कहीं नहीं पायो इसा सुखको निधिः कहतां निधान छै, और किसो छे–यस्य इमाः संवेदनव्यक्तयः स्वयं उच्छलंति–यस्य कहतां जिहि द्रव्यकै, इमाः कहतां प्रत्यक्षपनै छे, इसी संवेदन व्यक्तयः, संवेदन कहतां ज्ञान तिहिकी, व्यक्तयः कहतां मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, केवलज्ञान इत्यादि। अनेक पर्यायरूप अंश भेद, स्वयं कहतां द्रव्यको सहज इसो छै तिहि थकी, उच्छलंति कहतां अवश्य प्रगट होहिं छे। भावार्थ इसो–जो कोई आशंका करिसै जो ज्ञान तो ज्ञान मात्र छे, इसा जे मतिज्ञान आदि पंचभेद ते क्यों छै। समाधान इसो जो ज्ञानका पर्याय छे विरुद्ध तो कांई नहीं वस्तुको इसो ही सहज छे। पर्याय मात्र विचारतां मति आदि देय पंचभेद छता छे। वस्तु मात्र अनुभवतां ज्ञान मात्र छे विकल्प जावंत छे तावंत समस्त झूठा छे। जिहितहि विकल्प कांई वस्तु न छे, वस्तु तो ज्ञानमात्र छे, किसी छे, संवेदनव्यक्तयः अच्छाच्छाः–कहतां निर्मल तहिं निर्मल छे। भावार्थ–इसो जो कोई इसो मानिसै जेता ज्ञानका पर्याय छे तेता समस्त अशुद्धरूप छे सो योतो नहीं, जिहितै यथाज्ञान शुद्ध छे तथा ज्ञानका पर्याय वस्तुको स्वरूप छे तिहितै शुद्ध स्वरूप छे परन्तु एक विशेष–पर्यायमात्रके अवधारतां विकल्प उपजै छे, अनुभव निर्विकल्प छे तिहितै वस्तुमात्र अनुभवतां समस्त पर्याय फुनि ज्ञानमात्र छे तिहितै ज्ञानमात्र अनुभव योग्य छे। और किसो छे। निःपीताखिलभावमंडलरसप्राग्भारमत्ताः इव–निःपीत कहतां गिल्यो छे, अखिल कहतां समस्त, भावमंडल, भाव कहतां जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, काल

आकाश इसा समस्त द्रव्य तिहिको अतीत अनागत वर्तमान अनंतपर्याय इसो छे रस कहतां रसायणभूत दिव्य औषधि तिहिको प्राग्भार कहतां समूह तिहिकरि, मत्ता इव कहतां मग्न हुई छे इसी छे। भावार्थ इसो-जो कोई परम रसायनभूत दिव्य औषधि पीवै छे तो सर्वांग तरंगावलीसी उपजहि छे। तथा समस्त द्रव्यको जानिवा समर्थ छे ज्ञान तिहितहं सर्वांग आनंद तरंगावली करि गर्भित छे।

भावार्थ-यहांपर दिखाया है कि जैसे समुद्र परम शुद्ध क्षीरसागर अपनी निर्मल तरंगावलीको लिये हुए है तथापि समुद्र मात्र अनुभव करतां एकाकार ही अनुभवमें आता है तैसे यह शुद्ध आत्मा ज्ञानकी अनंतपर्यायको लिये हुए है तोभी एकाकार ही अनुभवमें आता है, तैसे यह शुद्ध आत्मा ज्ञानकी अनंतपर्यायको लिये हुए है तौभी एकाकार अनुभवमें आता है। जैसे कोई प्रचुर धनका धनी धनके मदकरि उन्मत्त होजाता है वैसे यह ज्ञानी सर्व द्रव्यगुण पर्यायको जाननेके लिये समर्थ ऐसे ज्ञानके रसमें मग्न हो जाता है और परम आश्चर्यकारी ऐसे आत्मानंदका परम अमृतपान करता है, इस अमृतके स्वादमें भ्रमरवत् तन्मय होजाता है। अथवा जैसे कोई समुद्रको तरंगावली सहित देखते हुए भी जब समुद्रके भीतर गोता लगाता है तब उसीके रसमें ऐसा डूब जाता है मानो समुद्रमें ही चला गया, लुप्त होगया। उसी तरह जब तक आत्मासे बाहर रहकर अपने आत्माके स्वरूपका विचार करता है तब यह ज्ञान रूप दिखता है, साथमें इसके भेद भी झलकते हैं, मतिज्ञानादि पर्याय भी मालूम पड़ती हैं अथवा शुद्ध सहज ज्ञानमें ज्ञेयाकार परिणतियें हैं, ऐसी तरंगें भी चमकती हैं परन्तु जब आत्मारूपी समुद्रमें डूब जाता है अथवा स्वात्मामें मग्न होजाता है तब कोई विकल्प व भेद नहीं दिखते हैं, मग्न होनेवाला उपयोग व जिसमें मग्न होता है ऐसा निज आत्मा दोनों एक रूप होजाते हैं तब यह स्वयं आनन्दरूप होजाता है। यह आत्मानुभवकी अपूर्व महिमा है।

परमात्मप्रकाशमें कहते हैं—

परमसमाहिमहासरहिं जे बुड्डहिं पइसेवि, अप्पा थक्कइ विमलु तहं भवमल जन्ति वहेवि ॥१२०॥

भावार्थ-जो कोई परम समाधिरूप महा सरोवरमें प्रवेश करके मग्न होजाता है, उसको आत्मा निर्मल रूपसे ही अनुभवमें आता है। यही उपाय है जिससे संसार रूप कर्म मैल बहाये जाते हैं।

सवैया ३१ सा—जाके उर अन्तर निरन्तर अनन्त द्रव्य, भाव भासि रहे पै स्वभाव न टरत है॥ निर्मलसों निर्मल सु जीवन प्रगट जाके, घटमें अघट रस कौतुक करत है॥ जाने मति श्रुति औधि मनपर्यं केवलसु, पंचधा तरंगनि उमंगि उछरत है॥ सो है ज्ञान उदधि उदार महिमा अपार, निराधार एकमें अनेकता धरत है॥ १५॥

शार्दूलविक्रीडित छन्द—क्लिश्यन्तां स्वयमेव दुष्करतरैर्मोक्षोन्मुखैः कर्म्मभिः
क्लिश्यन्तां च परे महाव्रततपोभारेण भग्नाश्चिरं।
साक्षान्मोक्ष इदं निरामयपदं संवेद्यमानं स्वयं
ज्ञानं ज्ञानगुणं विना कथमपि प्राप्तुं क्षमन्ते न हि ॥ १० ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—परे इदं ज्ञानं ज्ञानगुणं विना प्राप्तुं कथं अपि न हि क्षमन्ते—परे कहतां शुद्ध स्वरूप अनुभव तइ भ्रष्ट छे जे जीव, इदं ज्ञानं कहतां पूर्व ही कह्यो छे समस्त भेद विकल्प तहि रहित ज्ञान मात्र वस्तु तिहिको, ज्ञानगुणं विना कहतां शुद्ध स्वरूप अनुभव शक्ति पाखै (विना), प्राप्तुं कहतां पाइवाको, कथं अपि कहतां उपाय सहस्र कीजै तौ फुनि, न हि क्षमन्ते कहतां निश्चासों नहीं समर्थ होहि छे, किसो छे, ज्ञानपदं, साक्षात् मोक्षः—कहतां प्रत्यक्षपनै सर्वथा प्रकार मोक्षको स्वरूप छे। और किसो छे, निरामयपदं—कहतां जावंत उपद्रव क्लेश सर्व तहि रहित छे, और किसो छे, स्वयं संवेद्यमानं—स्वयं कहतां आप करि, संवेद्यमानं कहतां आस्वाद करिवा योग्य छै। भावार्थ इसो—जो ज्ञान गुण, ज्ञान गुण करि अनुभव योग्य छे। कारणांतर करि ज्ञान गुण ग्राह्य नाहीं। किसा छे मिथ्यादृष्टी जीव राशि। कर्म्मभिः क्लिश्यन्तां कहतां विशुद्ध शुभोपयोग रूप परिणाम, जैनोक्त सूत्रको अध्ययन, जीवादि द्रव्यको स्वरूपको वार-वार स्मरण, पंचपरमेष्ठिकी भक्ति इत्यादि छे। अनेक क्रिया भेद त्यांह करि, क्लिश्यंतां कहतां बहु आक्षेप करहि छे तौ करहु तथापि शुद्ध स्वरूपकी प्राप्ति होइ से सो तो शुद्ध ज्ञानकरि होइ से। किसा छे करतूति—स्वयं एव दुःकरतरैः—स्वयं एव कहता सहजपने, दुःकरतरैः कहतां कष्ट साध्य छे। भावार्थ इसो—जो जावंत क्रिया तावंत दुःखात्मक छे, शुद्ध स्वरूप अनुभवकी नाइं सुख स्वरूप न छे। और किसो छे, मोक्षोन्मुखैः—कहतां सकल कर्म क्षय तिहिको उन्मुखैः कहतां परंपरा आगे मोक्षको कारण होइ सै इसो भ्रम उपजे छे सो झूठो छे। च कहतां और किसो छे मिथ्यादृष्टि जीव महाव्रततपोभारेण चिरं भग्नाः क्लिश्यंतां—महाव्रत कहतां हिंसा, अनृत, स्तेय, अब्रह्म, परिग्रह तहि रहित-पनो, तपः कहतां महा परीसह सहिवारूप तिहिको भार कहतां बहुत बोझ तिहिकरि, चिरं कहतां बहुत काल पर्यंत, भग्नाः कहतां मरि चूनो हुआ छे, क्लिश्यंतां कहतां बहुत कष्ट करहि छै तौ करहु तथापि इसो करतां कर्मक्षय तो न छे।

भावार्थ—यहां यह बताया है कि मोक्ष आत्माका ही निज स्वरूप शुद्ध ज्ञानचेतना रूप व स्वानुभवगम्य, परम निराकुल आनन्दमय एक अवस्था विशेष है। इसका उपाय भी उसी ही प्रकारका है अर्थात् सर्व क्रियाकांड व संकल्प विकल्पसे रहित मात्र अपने ही

शुद्ध ज्ञान स्वरूप आत्माका रुचिपूर्वक अनुभव व स्वाद लेना है। जिन मिथ्यादृष्टी जीवोंको सम्यक्तके अभावसे यह स्वानुभव कला न प्राप्त हुई हो वे चाहे कितनी भी पंचपरमेष्टीकी भक्ति करो पूजा पाठ करो श्रावकका गृहीधर्म पालो अथवा नग्न होकर पांच महाव्रत व बारह तप पालो व घोर परीसह सह कर शरीरको सुखाओ-इन बाहरी क्रियाओंसे चाहे जितना कष्ट उठाओ-ये कोई भी मोक्षका साधन नहीं होसक्तीं हैं। इसलिये मुमुक्षु जीवको स्वात्मानुभवको ही निर्जराका उपाय समझकर उसहीका अभ्यास करना योग्य है। बाहरी गृहस्थ धर्मकी क्रिया व मुनि धर्मकी क्रिया मात्र चित्तको अन्य विषयारम्भ व प्रपंचरूप क्रियासे रोकनेमें सहकारी हैं तथा शुद्धात्मानुभवकी भूमिकामें पहुंचानेको उस समय मात्र निमित्त कारण है, जब इसी उद्देश्यसे इन श्रावक व मुनिके आचरणको पाला जावे। स्वानुभवके बिना इनसे उसी तरह मोक्ष होना असम्भव है जैसे बालूसे तेल निकालना।

तत्व० में कहा है—

आदेशोऽयं सद्गुरूणां रहस्यं सिद्धांतानामेतदेवाखिलानां।
कर्तव्यानां मुख्यकर्तव्यमेतत्कार्या यत् स्वे चित्स्वरूपे विशुद्धिः ॥ २३।१३ ॥

भावार्थ-सद्गुरुओंकी यही आज्ञा है, सिद्धांतशास्त्रोंका यही रहस्य है, सर्व कार्योंमें यह मुख्य कर्तव्य है जो अपने ही शुद्ध चैतन्यरूपमें विशुद्धि प्राप्त की जाय अर्थात् शुद्धात्मानुभव किया जाय।

सवैया ३१ सा—केई क्रूर कष्ट सहे तपसो शरीर दहे, धूम्रपान करे अधोमुख व्हैके झूले हैं ॥ केई महा व्रत गहे क्रियामें मगन रहे वहे मुनिभार पै पयार कैसे पूले है ॥ इत्यादिक जीवनिको सर्वथा मुकति नांहि, फिरें जगमांहि ज्यों वयारिके वभूले है ॥ जिन्हके हियेमें ज्ञान तिन्हहीको निरवाण, करमके करतार भरममें भूले है ॥ २० ॥

दोहा—लीन भयो व्यवहारमें, उक्ति न उपजे कोय। दीन भयो प्रभुपद जपे, मुक्ति कहांतें होय ॥२१॥
„ प्रभु सुमरो पूजो पढ़ो, करो विविध व्यवहार। मोक्ष स्वरूपी आतमा, ज्ञानगम्य निरधार ॥२२॥

सवैया २३ सा—काजविना न करे जिय उद्यम, लाज विना रण मांहि न जूझे ॥ डील बिना न सधे परमारथ, सील बिना सतसों न अरुझे ॥ नेम विना न लहे निहचे पद, प्रेम बिना रस रीति न बूझे ॥ ध्यान विना न थंभे मनकी गति, ज्ञान विना शिवपंथ न सूझे ॥ २३ ॥

सवैया २३ सा—ज्ञान उदे जिन्हके घट अंतर, ज्योति जगी मति होत न मैली ॥ बाहिज दृष्टि मिटी जिन्हके हिय, आतम ध्यानकला विधि फैली ॥ जे जड़ चेतन भिन्न लखेसो, विवेक लिये परखे गुण थैली। ते जगमें परमारथ जानि, गहे रुचि मानि अध्यातम सैली ॥ २४ ॥

द्रुतविलंबित छन्द-पदमिदं ननु कर्मदुरासदं सहजबोधकलासुलभं किल।
तत इदं निजबोधकलाबलात्कलयितुं यततां सततं जगत् ॥ ११ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—ततः ननु इदं जगत् इदं पदं कलयितुं सततं यततां—ततः कहतां तिहि कारण तहि ननु कहतां अहो, इदं जगत् कहतां छता छे जे त्रैलोक्यवर्ती

जीव राशि इदं पद कहतां निर्विकल्प शुद्ध ज्ञान मात्र वस्तु तिहिको, कलयितु कहतां निरंतरपनै अभ्यास करिवाकै निमित्त, सततं कहतां अखण्ड धाराप्रवाह रूप, यततां कहतां जतन करणो, किसै कारण करि, निजबोधकलाबलात्–निज बोध कहतां शुद्ध ज्ञान तिहिकी, कला कहतां प्रत्यक्ष अनुभव तिहिको, बल कहतां समर्थपनो तिहि थकी, जिहि कारण तहिं, किल कहतां निहचासों, किसो छे ज्ञानपद, कर्मदुरासदं–कर्म कहतां जावंत क्रिया तिहि करि, दुरासह कहतां अप्राप्य छे। किसो छे–सहजबोधकलासुलभं–सहज बोध कहतां शुद्ध ज्ञान तिहिकी, कला कहतां निरंतरपनै अनुभव तिह करि सुलभ कहतां सहज ही पाइजै छे। भावार्थ इसो–जो शुभ अशुभ रूप छे जावंत क्रिया त्यांहको ममत्व छोड़ करि एक शुद्ध स्वरूप अनुभव कारण छे।

भावार्थ–यहां भी यही दिखलाया है कि जो अपने निज स्वभावको झलकाना चाहते हैं उनको सर्व क्रियाकांडसे ही मोक्ष होगी इस मिथ्या बुद्धिको त्याग करके शुद्धात्मानुभवसे ही मुक्ति होगी। इसी श्रद्धाको धारण करके निरंतर इसीका ही यत्न करना कि हम शुद्धात्मानुभव किया करें। यही उपाय मोक्षका साक्षात सहज उपाय है। इसीसे ही स्वभावका लाभ है–अन्य पराश्रित उपायोंसे कभी भी मुक्ति नहीं होसक्ती है। योगसारमें कहा है–

सत्थ पढंतह ते वि जड़ अप्पा जेण मुणंति। तिह कारण ए जीव फुडु णहु णिव्वाण लहंति ॥५२॥

भावार्थ–शास्त्रोंको पढ़ते हुए भी जो आत्माको अनुभव नहीं कर सक्ते हैं वे मूर्ख हैं। इसलिये विना स्वानुभवके ये जीव भी कभी निर्वाण नहीं प्राप्ति कर सक्ते हैं।

दोहा–बहुविधि क्रिया कलापसों, शिवपद लहे न कोय। ज्ञानकला परकाशते, सहज मोक्षपद होय ॥२५॥

,, –ज्ञानकला घटघट वसे, योग युक्तिके पार। निजनिज कला उदोत करि, मुक्त होइ संसार ॥२६॥

उपजाति छन्द–अचिन्त्यशक्तिः स्वयमेव देवश्चिन्मात्रचिन्तामणिरेष यस्मात्।
सर्वार्थसिद्धात्मतया विधत्ते ज्ञानी किमन्यस्य परिग्रहेण ॥१२॥

खण्डान्वय सहित अर्थ–ज्ञानी (ज्ञानं) विधत्ते–ज्ञानी कहतां सम्यग्दृष्टि जीव, ज्ञानं कहतां निर्विकल्प चिद्रूप वस्तु तिहिको, विधत्ते कहतां निरंतरपनै अनुभवै छे। कायो जानिकरि। सर्वार्थसिद्धात्मतया–सर्वार्थसिद्धि कहतां चतुर्गति संसार सम्बन्धी दुःखको विनाश, अतीन्द्रिय सुखकी प्राप्ति, तिहिकी आत्मतया कहतां इसो कार्य सीझइ छे। जिहितै इसो छे शुद्ध ज्ञानपद, अन्यस्य परिग्रहेण किं–अन्यस्य कहतां शुद्ध स्वरूप तहिं बाहिरा छे जावंत विकल्प। व्यौरो–शुभ अशुभ क्रियारूप अथवा रागादि विकल्परूप अथवा द्रव्यांहको भेद विचाररूप इसा छे जे अनेक विकल्प तांहके, परिग्रहेण कहतां सावधानपनै प्रतिपाल अथवा आचरण अथवा स्मरण तिहिकरि, किं कहतां कौन कार्यसिद्धि, अपि तु कार्यसिद्धि नहीं। इसो किसा थे। यस्मात् एषः स्वयं चिन्मात्र चिंतामणिः एव–यस्मात् कहतां

जिहिका मरम वहि, एषः कहतां शुद्ध जीव वस्तु, स्वयं कहतां आपुनपे, चिन्मात्रचिंतामणिः कहतां शुद्ध ज्ञान मात्र इसो अनुभव चिंतामणि रत्न छे, एव कहतां इहि बातको निहचो जानिशो, धोखो काई न छे। भावार्थ इसो जो-यथो कोई पुण्यी जीवके हाथ चिन्तामणि रत्न होइ छे, तिहितें सर्व मनोरथ पूरा होहि छे सो जीव लोह तांबो रूपो इसा धातुको संग्रहै नहीं, तथा सम्यग्दृष्टि जीवको शुद्ध स्वरूप अनुभव इसो चिंतामणि रत्न छे तिहिकरि सकल कर्म क्षय होहिं छे, परमात्मपदकी प्राप्ति होइ छे। अतींद्रिय सुखकी प्राप्ति होइ छे, सो सम्यग्दृष्टि जीव शुभ अशुभ रूप अनेक क्रिया विकल्पको संग्रहै नहीं जिहितांइ एताहु करि कार्यसिद्धि न छे। और किसो छे, अचिंत्यशक्तिः-कहतां वचन गोचर नहीं छे महिमा जिहिकी इसो छे, और किसो छे, देवः कहतां परमपूज्य छे।

भावार्थ-यही है कि सम्यग्दृष्टि ज्ञानी अपने एक शुद्ध स्वरूपके अनुभवको ही निर्जराका कारण मानकर उसीको ही ग्रहण करते हैं-अन्य विकल्पोंको बंधका कारण जानते हैं। योगसारमें कहा है—

जहिं अप्पा तहिं सयलगुण केवलि एम भणंति, तिहि कारण ए जीव फुडु अप्पा विमल मुणन्ति ॥ ८४ ॥

भावार्थ-जहां आत्मानुभव है वहां सब गुण है ऐसा केवली भगवान् कहते हैं इसलिये ये ज्ञानी जीव प्रगटपने अपने शुद्ध आत्माका ही अनुभव करते हैं।

कुण्डलिया छन्द—अनुभव चिंतामणि रतन, जाके हिय परकास ॥ सो पुनीत शिवपद लहै, दहै चतुर्गति वास ॥ दहै चतुर्गतिवास, आस धरि क्रिया न मण्डे। नूतन बंध निरोधि, पूर्वकृत कर्म विहण्डे ॥ ताके न गिणु विकार, न गिणु बहु भार न गिणु भव ॥ जाके हिरदे मांहि रतन चिंतामणि अनुभव ॥ २७ ॥

सवैया ३१ सा—जिन्हके हियेमें सत्य सूरज उद्योत भयो, फैली मति किरण मिथ्यात तम नष्ट है ॥ जिन्हके सुदृष्टीमें न परचै विषमतासों समतासों प्रीति ममतासों लष्ट पुष्ट है ॥ जिन्हके कटाक्षमें सहज मोक्षपथ सधे, सधन निरोध जाके तनको न कष्ट है ॥ तिन्हके करमकी किलोल यह है समाधी, डोले यह जोगासन बोले यह मष्ट है ॥ २८ ॥

वसंततिलका छंद—इत्थं परिग्रहमपास्य समस्तमेव सामान्यतः स्वपरयोरविवेकहेतुं।
अज्ञानमुज्झितुमना अधुना विशेषाद्भूयस्तमेव परिहर्तुमयं प्रवृत्तः ॥ १३ ॥

खंडान्वय सहित अर्थ—अधुना अयं भूयः प्रवृत्तः—अधुना कहतां इहां तहि आरंभकरि, अयं कहतां ग्रंथके कर्ता, भूयः प्रवृत्तः कहतां कछु विशेष कहिवाको उद्यम करे छे। किसो छे ग्रंथको कर्ता, अज्ञानं उज्झितुमना—अज्ञानं कहतां जीवको कर्मको एकत्व बुद्धिरूप मिथ्यात्वभाव तिहिको ज्यों छूटै त्यों छे अभिप्राय जिहिको इसो छे। कायो कह्यो चाहै छे। तं एव विशेषात् परिहर्तुं—तं एव कहतां जावंत पुद्गलरूप परिग्रह तिहिको, विशेषात् परिहर्तुं कहतां भिन्न भिन्न नामहका ब्योरा सहित छोड़िवाके अथवा छुड़ाइवा कह

अर्थ। इतना तांई कह्यो। कायो कह्यो–इत्थं समस्तं एव परिग्रहं सामान्यतः अपास्य–इत्थं कहतां इतना तांई जो कछु कह्यो, सो इसो कह्यो समस्तं एव परिग्रहं कहतां जावंत पुद्गल कर्मकी उपाधिरूप सामग्री तिहिको, सामान्यतः अपास्य–कहतां जो कछु परद्रव्य सामग्री छे सो त्याज्य छे इसो कहिकरि परद्रव्यको त्याग कह्यो। सांपति विशेषरूप कहिजै छे। विशेषार्थ इसो जो जावंत परद्रव्य तावंत त्याज्य छे। इसो कह्यो सांपत क्रोध परद्रव्य छै तिहितै त्याज्य छे, मान परद्रव्य छे तिहितै त्याज्य छे, इत्यादि, भोजन परद्रव्य छे तिहितै त्याज्य छे। पानी पीवो परद्रव्य छै तिहितै त्याज्य छे। किसो छै परद्रव्य परिग्रह–स्वपरयोः अविवेक-हेतुः–स्व कहतां शुद्ध चिद्रूप वस्तु, पर कहतां द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म तिहिको अविवेक कहतां एकत्व रूप संस्कार तिहिको हेतु कहतां कारण छै। भावार्थ इसो–जो मिथ्यादृष्टी जीवको जीव कर्म विषै एकत्व बुद्धि छे तिहितै मिथ्यादृष्टिको परद्रव्यको परिग्रह घटै। सम्यग्दृष्टि जीवके भेद बुद्धि छे तिहितै परद्रव्यका परिग्रह न घटै। इसो अर्थ इहां तहि लेइ करि कहिजैगो।

भावार्थ–ग्रन्थ कर्ता परद्रव्यके त्यागको विशेष रूपसे कहेंगे।

सवैया ३१ सा—आतम स्वभाव परभावकी न शुद्धि ताकों, जाको मन मगन परिग्रहमें रह्यो है॥ ऐसो अविवेकको निधान परिग्रह राग, ताको त्याग इहांलौं समुच्चरूप कह्यो है॥ अब निज पर भ्रम दूर करिवेको काज, बहुरी सुगुरु उपदेशको उमह्यो है॥ परिग्रह अरु परिग्रहको विशेष अंग, कहिवेको उद्यम उदार लहलह्यो है॥ २९॥

दोहा—त्याग जोग परवस्तु सब, यह सामान्य विचार। विविध वस्तु नाना विरति, यह विशेष विस्तार॥ ३०॥

स्वागता छन्द–पूर्वबद्धनिजकर्म्मविपाकाद् ज्ञानिनो यदि भवत्युपयोगः।
तद्भवत्वथ च रागवियोगान्नुनमेति न परिग्रहभावम्॥ १४॥

खण्डान्वय सहित अर्थ–यदि ज्ञानिनः उपभोगः भवति तत भवतु–यदि कहतां जो कदाचित्, ज्ञानिनः कहतां सम्यग्दृष्टि जीवको, उपभोगः कहतां शरीर आदि संपूर्ण भोग सामग्री, भवति कहतां सम्यग्दृष्टी जीव भोगवै छे, तत् कहतां तो, भवतु कहतां सामग्री होउ, सामग्रीको भोग फुनि होहु। नूनं परिग्रहभावं न एति–नूनं कहतां निहचासो परिग्रहभावं कहतां विषय सामग्रीको स्वीकार पनो इसा अभिप्रायको, न एति कहतां नहीं पावै छे। किसा थकी, अथ च रागवियोगात्–अथ च कहतां वहां तहि लेई करि सम्यग्दृष्टि हूओ, रागवियोगात् कहतां तहांतहि लेइ विषय सामग्री विषै रागद्वेष मोह तहि रहित हूओ तिहिथकी। कोई प्रश्न करहि छे। इसा विरागी कहुं सम्य-ग्दृष्टी जीवको विषय सामग्री क्यों होइ छे। उत्तरु इसो जो पूर्वबद्धनिजकर्म्मविपाकात्–पूर्वबद्ध कहतां सम्यक्त उपजतां पहली मिथ्यादृष्टि जीव थो, रागी थो, तिहि रागभाव करि

बांध्या था जे, निजकर्म्म कहतां आपणा प्रदेशहं ज्ञानावरणादि रूप कार्म्मण वर्गणा तिहिंवइ, विपाकात् कहतां उदयथकी। भावार्थ इसो-जो राग द्वेष मोह परिणामके मिटतां द्रव्यरूप बाह्य सामग्रीको भोग बंधको कारण न छे, निर्जराको कारण छे, पूर्वका बांध्या छे जे कर्म त्यहकी निर्जरा छै।

भावार्थ-यहांपर यह दिखलाया है कि सम्यग्दृष्टि जीवके रागद्वेष मोहका त्याग नियमसे होता है। उसके यह ज्ञान है कि मैं शुद्धात्मा हूं, भिन्न हूं और समस्त रागादि भाव व कर्म आदि सब भिन्न हैं। इसलिये अंतरंग श्रद्धामें सब पदार्थोंमें समभाव है। वह ज्ञानी ऐसा ही पर पदार्थोंके भोगमें प्रवर्तन करता है जैसें कोई स्त्री पति वियोगसें चिंतित हो भोग सामग्रीमें प्रवर्तती है। इस स्त्रीका मन स्वपतिकी ओर है। भोगोंमें रंजायमान नहीं है उसी तरह सम्यग्दृष्टी जीवका उपयोग शुद्धात्माकी ओर प्रेमालु है। आत्मरसका ही वह रसिक है। पूर्वमें बांधे हुए कर्मोंके विपाकसे जो भोग सामग्रीका सम्बंध है व उसको भोगता है। तौभी उदासीन है। आत्मभोगके सामने इन भोगोंको तुच्छ जानता है। आसक्तपना जब छूटा था, इंद्रिय सुख विषवत् त्याज्य है यह भावना जब पैदा हुई थी, अतींद्रिय सुख ही सच्चा आनन्द है यह दृढ़ता जब हुई थी तबही वह सम्यग्दृष्टी हुआ था तब ऐसे ज्ञानी जीवके आशक्त बुद्धि कैसे होसक्ती है। उसकी क्रिया गृहस्थावस्थामें रागी जीवके समान दिखती है तथापि वह भीतरसे वैरागी है। इसलिये कर्म्म खिर जाते हैं, नवीन नहीं बंधते हैं। पहले कह ही चुके हैं कि जो कुछ अल्प बंध होता भी है वह शीघ्र ही छूटनेवाला है। गाढ़ कीचड़के समान बंध नहीं होता है। धूल लगनेके समान बंध होता है सो आत्माको मोही, व संसाराशक्त नहीं बना सक्ता है। इसलिये सम्यग्दृष्टी ममता रहित है। विना ममत्व त्यागे सम्यग्दृष्टी होही नहीं सक्ता है। तत्त्व० में कहा है-

ममत्वं ये प्रकुर्वंति परवस्तुषु मोहिनः। शुद्धचिद्रूपसंप्राप्तिस्तेषां स्वप्नेपि नो भवेत् ॥ ७।१०॥

भावार्थ-जो मोही जीव परपदार्थोंमें ममता करते हैं उनको स्वप्नमें भी शुद्ध आत्मस्वरूपकी प्राप्ति नहीं होसक्ती है।

चौपाई—पूरव करम उदै रस भुंजे। ज्ञान मगन ममता न प्रयुंजे ॥
मनमें उदासीनता लहिये। यो बुध परिग्रहवंत न कहिये ॥ ३१ ॥

स्वागता छंद-वेद्यवेदकविभावचलत्वाद्वेद्यते न खलु कांक्षितमेव।
तेन कांक्षति न किंचन विद्वान् सर्वतोऽप्यतिविरक्तिमुपैति ॥१५॥

अर्थ-तेन विद्वान् किंचन न कांक्षति-तेन कहतां तिहिंकारण तहि, विद्वान् कहतां सम्यग्दृष्टि जीव, किंचन कहतां कर्मके उदय करै छे नानाप्रकार सामग्री तिह माहे कोई सामग्री,

न कांक्षति कहतां कर्मकी सामग्री मांहि कोई सामग्री जीवको सुख कारण इसो नहीं मानै छे, सर्व सामग्री दुःखको कारण इसो मानै छे। और किसो छे सम्यग्दृष्टि जीव। सर्वतः अतिविरक्ति उपैति–सर्वतः कहतां जावंत कर्म जनित सामग्री तिहिंतहि मनोवचन काय त्रिशुद्धि करि, अतिविरक्ति कहतां सर्वथा त्याग, उपैति कहतां इसो रूप परिणवे छे, किसाथकी इसो छे। (यतः) खलु कांक्षितं न वेद्यते एव–यतः कहतां जिहि कारण तहिं, खलु कहतां निहचासों, कांक्षितं कहतां जो कुछ चिंतयो छे, न वेद्यते नहीं पाइ जै छे, एव कहतां योंही छे, किसा थकी। वेद्यवेदकविभावचलत्वात्–वेद्य कहतां वांच्छिजै छे जो वस्तुकी सामग्री, वेदक कहतां वांछारूप जीवको अशुद्ध परिणाम इसा छे, विभाव कहतां दूवे अशुद्ध विनश्वर कर्मजनित तिहितह, चलत्वात् कहतां क्षण प्रतिक्षण प्रति औरसा होहि छे, कोई अन्य चिंतनै छे कांई अन्य होइ छे। भावार्थ इसो–जो अशुद्ध रागादि परिणाम तथा विषय सामग्री दूवे समय समय प्रति विनश्वर छै तिहितै जीवको स्वरूप नहीं तिहितै सम्यग्दृष्टिको इसा भावहको सर्वथा त्याग छै। तिहितै सम्यग्दृष्टिको बंध न छे निर्जरा छे।

भावार्थ–सम्यग्दृष्टी जीव सिवाय शुद्ध आत्माके और किसी पदार्थकी इच्छा नहीं रखता है। वह जानता है कि किसी भी पर पदार्थकी इच्छा करना यह अशुद्ध भाव है। सो भी विनाशीक है, तथा अन्य समयमें कदाचित् प्राप्त हुई इच्छाके अनुकूल सामग्री वह भी विनाशीक है। इसलिये नश्वर भावोंमें व पदार्थोंमें रागभाव करना मूर्खता है। इसलिये वह इन सबसे अत्यन्त विरागी रहता है, निर्वांछक भावमें रमण करता है। यही कारण है जिससे यह ज्ञानी जीव कर्मोदयसे प्राप्त भोग सामग्रीमें रंजायमान न होता हुआ बन्धको नहीं पाता है। योगसारमें कहते हैं—

जे परभाव चएवि मुणि अप्पा अप्पु मुणंति, केवलणाणसरूव लियइ ते संसारु मुचंति ॥ ६२ ॥

भावार्थ–जो मुनि परभावोंको त्यागकर अपने आत्मासे अपने आत्माका ही अनुभव करते हैं वे ही केवलज्ञान स्वरूपको पाकर संसारसे पार होजाते हैं।

सवैया ३१ सा—जे जे मन वांछित विलास भोग जगतमें, ते ते विनासीक सब राखे न रहत है॥ और जे जे भोग अभिलाष चित्त परिणाम, तेते विनासीक धाररूप ह्वै वहत है॥ एकता न दुहो मांहि ताते वांछा फूरे नांहि, ऐसे भ्रम कारिजको मूरख चहत है॥ सतत रहे सचेत परसों न करै हेत, याते ज्ञानवंतको अवंछक कहत है॥ ३२॥

स्वागता छन्द–ज्ञानिनो न हि परिग्रहभावं कर्मरागरसरिक्ततयैति।

रङ्गयुक्तिरकषायितवस्त्रे स्वीकृतैव हि बहिर्लुठतीह ॥ १६ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ–कर्म ज्ञानिनः परिग्रहभावं न हि एति–कर्म कहतां जावंत विषय सामग्री भोगरूप क्रिया, ज्ञानिनः कहतां सम्यग्दृष्टि जीवको, परिग्रहभावं कहतां

ममतारूप स्वीकारपनाको, नहि एति कहतां निहचा सो नहीं छे। किसाथकी, रागरस-रिक्ततया-राग कहतां कर्मकी सामग्रीको आपो जानिकरि रंजक परिणाम इसो छै, रस कहतां वेग तिहतहि, रिक्ततया कहतां रीतो छे इसा भावथकी दृष्टांत कहिजै छे, हि इह अकषायितवस्त्रे रंगयुक्तिः बहिर्लुठति एव-हि कहतां यथा, इह कहतां सर्वलोक विषै प्रगट छे अकषायित कहतां नहीं लागी छे फिटकरी लोद जिहिको इसो छै वस्त्र कहतां कपड़ा विषै, रंगयुक्तिः कहतां मजीठको रंगको संयोग कीजै छे। तथापि बहिर्लुठति कहतां कपड़ा सो नहीं लगै छे बारह बारह फिरइ छे। भावार्थ इसो-जो तथा सम्यग्दृष्टि जीवको पंचेंद्रिय विषय सामग्री छे, भोगवै फुनि छे। परन्तु अंतरंग रागद्वेष मोहभाव नहीं छे। तिहितै कर्मको बन्ध न छे निर्जरा छै। किसा छे रंगयुक्तिः। स्वीकृता कहतां कपड़ा रंग एकट्ठा किया छै।

भावार्थ-यहां यह बताया है कि जैसे कपड़ेको विना लोद फिटकरी लगाए यदि रंगा जाय तो वह रंग पक्का नहीं होता है कच्चा होता है, बाहर बाहर रहता है। शीघ्र ही छूट जाता है। वह रंग कपड़ेकी असल भूमिकाको रंगीन नहीं बनाता है। इसी तरह मिथ्यात्व व अनंतानुबंधी कषायरूप लोद फिटकरीके विना प्राप्त भोगोंमें रंजायमानपना नहीं होता। भोगते हुए भी ज्ञानी अत्यन्त उदास है। इसीलिये उदय प्राप्त कर्मोंकी निर्जरा होजाती है। संसार कारणीभूत कर्मोंका बंध नहीं होता है। अप्रत्याख्यान व प्रत्याख्यान कषायजनित राग शीघ्र ही छूट जानेवाला है। वह कच्चे रंगके समान बाधक नहीं, अंतरंगको रागी बनानेवाला नहीं है। यह सम्यक्त भावकी अपूर्व महिमा है। सम्यग्दृष्टीके स्वभावका वर्णन तत्व०में कहा है—

रागद्वेषौ न जायेते परद्रव्ये गतागते शुभाशुभेऽगिनः शुद्धचिद्रूपासक्तचेतसः ॥ १७।१४ ॥

भावार्थ-जिस ज्ञानीका मन शुद्ध आत्मामें स्वरूपमें आसक्त है उसके भीतर अच्छे या बुरे परद्रव्योंके मिलनेपर या चले जानेपर राग व द्वेष नहीं होता है। और भी वहीं कहा है—

हर्षो न जायते स्तुत्या विषादो न स्वनिंदया। स्वकीयं शुद्धचिद्रूपमन्वहं स्मरतोऽगिनः ॥१६।१४॥

भावार्थ-जो भव्य जीव अपने आत्माके शुद्ध स्वरूपका निरंतर स्मरण करते रहते हैं उनकी स्तुति किये जानेपर हर्ष व उनकी निन्दा किये जानेपर विषाद उनको नहीं होता हैं।

सवैया ३१ सा—जैसे फिटकड़ि लोद हरडेकि पुट विना, स्वेत वस्त्र डारिये मजीठ रंग नीरमें ॥ भीग्या रहे चिरकाल सर्वथा न होइ लाल, भेदे नहि अन्तर सुपेदी रहे चीरमें ॥ तैसे समकितवन्त रागद्वेष मोह विन, रहे निशि वासर परिग्रहकी भीरमें ॥ पूरव करम हरे नूतन न बन्ध करे, जाचे न जगत सुख राचे न शरीरमें ॥ ३३ ॥

स्वागता छन्द–ज्ञानवान् स्वरसतोऽपि यतः स्यात्सर्वरागरसवर्ज्जनशीलः।
लिप्यते सकलकर्मभिरेषः कर्म्ममध्यपतितोऽपि ततो न ॥ १७ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ–यतः ज्ञानवान् स्वरसतः अपि सर्वरागरसवर्जनशीलः स्यात्–यतः कहतां जिहि कारण तहि, ज्ञानवान् कहतां शुद्ध स्वरूप अनुभवशीली जो जीव, स्वरसतः कहतां विभाव परिणमन मिट्यो छे तिहिते शुद्धतारूप द्रव्य परिणयो छे तिहिते, सर्व राग कहतां जावंत रागद्वेष मोहरूप परिणाम, इसो रस कहतां अनादिको संस्कार तिहिते, वर्जनशीलः स्यात् कहतां रहित छे स्वभाव जिहको इसो छे। ततः एषः कर्ममध्यपतितः अपि सकलकर्मभिः न लिप्यते–ततः कहतां तिहि कारण तहि। एषः कहतां सम्यग्दृष्टि जीव, कर्म कहतां कर्मके उदयजनित अनेक प्रकार भोग सामग्री तिहि विषै मध्यपतितः अपि कहतां पंचेन्द्रिय भोग सामग्री भोगवै छे सुख दुःखको पावै छे तथापि, सकल कर्मभिः कहतां आठ ही प्रकार छें जे ज्ञानावरणादि कर्म्म त्यांहकरि, न लिप्यते कहतां नहीं बांधिजै छे। भावार्थ इसो–जो अंतरंग चिकण न छे तिहते बंध न होई निर्जरा होइ छे।

भावार्थ–यही है कि ज्ञानी अंतरंग इच्छा रहित है परमाणु मात्रको भी अपना नहीं जानता है, मात्र अतींद्रिय आनन्दका रसिक है। ऐसा होते हुए भी यदि कर्मोदयसे भोग सामग्री प्राप्त हों व उनको भोगे भी तथापि रंजायमान न होनेसे वह कर्मका बंध नहीं करता है। उदय प्राप्त कर्म झड़ जाता है। कर्मका लेप जिस कषायसे होता था वह कषाय ज्ञानीके पास रही नहीं है। वह परपदार्थोंमें ममता रहित है। तत्व०में कहा है–

ममेति चिंतनाद्बंधो मोचनं न ममेत्यतः। बंधनं द्व्यक्षराभ्यां च मोचनं त्रिभिरक्षरैः ॥३।१०॥

भावार्थ–पर पदार्थ मेरे हैं इस आसक्त बुद्धिसे ही बंध है, मेरे नहीं है इस भावसे कर्मकी निर्जरा है। मम ऐसे दो अक्षरोंसे बंध है। न मम ऐसे तीन अक्षरोंसे मुक्ति है।

सवैया ३१ सा–जैसे काहू देशको बसैया बलवंत नर, जंगलमें जाइ मधु छत्ताको गहत है ॥ वाकों लपटाय चहुं ओर मधु मच्छिका पैं, कंबलकि ओटसों अडंकीत रहत है ॥ तैसे समकिती शीव सत्ताको स्वरूप साधे, उदैके उपाधीको समाधीसि कहत है ॥ पहिरे सहजको सनाह मनमें उच्छाह, ठाने सुख राह उदवेग न लहत है ॥ ३४ ॥

दोहा–ज्ञानी ज्ञान मगन रहे, रागादिक मल खोय ॥ चित्त उदास करणी करे, कर्मबंध नहिं होय ॥३५॥
मोह महातम मल हरे, धरे सुमति परकास। मुक्ति पंथ परगट करे, दीपक ज्ञान विलास ॥३६॥

शार्दूलविक्रीडित छन्द–यादृक् तादृगिहास्ति तस्य वशतो यस्य स्वभावो हि यः
कर्तुं नैष कथंचनापि हि परैरन्यादृशः शक्यते।
अज्ञानं न कदाचनापि हि भवेत् ज्ञानं भवेत्सन्ततम्
ज्ञानिन् भुङ्क्ष्व परापराधजनितो नास्तीह बन्धस्तव ॥ १८ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—इहां कोई प्रश्न करै छे जो सम्यग्दृष्टी जीव परिणाम करि शुद्ध छे, तथापि पंचेंद्रिय विषय भोगवै छे सो विषय भोगवतां कर्मको बंध छे कि नहीं छे। समाधान इसो जो कर्मको बंध न छे। ज्ञानिन् भुङ्क्ष्व—ज्ञानिन् कहतां भो सम्यग्दृष्टी जीव! भुङ्क्ष्व कहतां कर्मके उदय करि हुई छे जे भोग सामग्री तिहिको भोगवहि छे तो भोगवो तथापि तव बन्धः नास्ति—तव कहतां तो कहुं, बन्ध कहतां ज्ञानावरणादि कर्मको आगमन, नास्ति नहीं छे। किसो बंध नहीं छै, परापराधजनितः पर कहतां भोगवै जे छे तिहितै, जनितः कहतां उपजै छे। भावार्थ इसो—जो सम्यग्दृष्टी जीवको विषय सामग्री भोगवतां बन्ध न होइ, निर्जरा छे। जिहितै सम्यग्दृष्टी जीव सर्वथा अवश्य करि परिणामह करि शुद्ध होइ। इसो ही वस्तुको स्वरूप छे। परिणामहकी शुद्धता छतां बाह्य भोग सामग्रीके कहे बन्ध कीयो न जाइ। इसो वस्तुको स्वरूप छे। इहां कोई आशंका करै छे जो सम्यग्दृष्टी जीव भोग भोगवै छे सो भोग भोगवतां रागरूप अशुद्ध परिणाम होतां होसे—त्यांह राग परिणामह करि बंध हो तो होसी, सो यो तो नहीं, जातहि वस्तुको स्वरूप यों छे। जो शुद्ध ज्ञान हुओ होतो भोग सामग्रीके कहे अशुद्ध रूप कीयो न जाइ केती ही भोग सामग्री भोगवो, तथापि शुद्ध ज्ञान आपणे स्वरूप शुद्ध ज्ञान स्वरूप रहै वस्तुको इसो सहज छे। इसो कहिजै छे। ज्ञानं कदाचनापि अज्ञानं न भवेत्—ज्ञानं कहतां शुद्ध स्वभावरूप परिणयो छे आत्म द्रव्य कदाचन अपि कहतां अनेक प्रकार भोग सामग्रीको भोगवतां अतीत अनागत वर्तमान काल विषै, अज्ञानं कहतां विभाव अशुद्ध रागादिरूप, न भवेत् कहतां न होइ। किसो छे ज्ञान, सततं भवत्—कहतां शाश्वतो शुद्ध स्वरूप जीव द्रव्य परिणवो छे मायाजालकी नाई क्षण विनश्वर न छे। आगे दृष्टांत करि वस्तुको स्वरूप साधिजै हि यस्य वशतः यः यादृक् स्वभावः तस्य तादृक् इह अस्ति—हि कहतां जिह कारण तहि, यस्य कहतां जो कोई वस्तुको, यः यादृक् स्वभावः कहतां जो स्वभाव जैसो स्वभाव छे, वशतः कहतां अनादि निधन छे, तस्य कहतां तिहि वस्तुको, तादृक् इह अस्ति कहतां तिसो ही छे, यथा शंखको श्वेत स्वभाव छे, श्वेत छतो छे। तथा सम्यग्दृष्टीको शुद्ध परिणाम हो तो शुद्ध छे। एषः परैः कथंचन अपि अन्यादृशः कर्तुं न शक्यते—एषः कहतां वस्तुको स्वभाव, परैः कहतां अन्य वस्तुकै करतां, कथंचन अपि कहतां कौन हूं प्रकार करि, अन्यादृशः कहतां और सो, कर्तुं कहतां करिवाको, न शक्यते कहतां नहीं समर्थ होइ छे। भावार्थ इसो—जो स्वभाव करि श्वेत शंख छे, सो शंख कारी माटी खाइ छे, पीरी माटी खाइ छे नाना वर्ण माटी खाइ छै—इसी माटी खातो होतो शंख तिह माटी कै रंग नहीं होइ छे आपणे श्वेतरूप रहै छे, वस्तुको इसो ही सहज छै। तथा सम्यग्दृष्टी जीव स्वभाव करि रागद्वेष मोह तहि रहित शुद्ध परिणाम छे, सो जीव नाना वर्ण प्रकार भोग सामग्री भोगवै छे।

[तथापि आपणा अशुद्ध परिणाम रूप परिणवायो जाइ नहीं। इसो वस्तुको स्वभाव छे। तिहितै सम्यग्दृष्टीको कर्मको बंध न छे, निर्जरा छे।

भावार्थ—यहांपर यह बात दिखलाई है कि सम्यग्दृष्टीके भोग निर्जराके कारण हैं बंधके कारण नहीं हैं। बन्धका कारण रागद्वेष मोह है। सो अनन्तानुबन्धी कषाय और मिथ्यात कर्मके न उदय होनेसे हो नहीं सक्ता। संसार कारणीभूत बन्धके हेतु ऐसे ही रागद्वेष मोह है। अप्रत्याख्यानावरणादि कषायोंके उदयसे जो राग है वह बहुत ही अल्प है। उसके द्वारा जो कुछ कर्म बन्धता है वह बहुत अल्प स्थिति व अनुभागको लिये हुए होता है। इसलिये वह भी शीघ्र ही निर्जरारूप है, सम्यग्दृष्टीको संसारमें ठहरानेवाला नहीं। इसलिये यहां आचार्यने उस बन्धको बंध ही नहीं मानकर सम्यग्दृष्टीको अबंध कह दिया है। वास्तवमें सम्यग्दृष्टीकी दृष्टी सदा वस्तु स्वरूप पर रहती है; वह अपने आत्म द्रव्यको सदा शुद्ध अनुभव करता है। वह भलेप्रकार जानता है कि आत्म द्रव्यसे कर्मोंका प्रपंच भिन्न स्वरूप है। उसको यह भी निश्चय है कि भोगने योग्य तो स्वात्मीक आनंद है। अब तो सातावेदनीय आदि कर्मोंके उदयसे भोग सामग्री प्राप्त है और वह कषाय अति मंद हुए विना छोड़ी नहीं जासक्ती है। इसलिये वह ज्ञानी उनका उपभोग कर लेता है-शरीर व वचनसे उपभोग करता दिखाई पड़ता है, मनमें वह ज्ञानी उन भोगोंसे, भोग सामग्रीसे, व उन कषायोंसे जिनकी प्रेरणासे वह भोगनेके लिये प्रवृत्त हुआ है अत्यन्त वैरागी है। वह जलमें कमलवत् व कादेमें हेमवत व वेश्याकी प्रीतिवत् वर्तन करता है। भोगोंको उपादेय बुद्धिसे न भोग कर हेय बुद्धिसे भोगता है। जैसे रोगी कड़वी औषधिको हेय बुद्धिसे पीता है वह रोगसे व कड़वी औषधि दोनोंसे उदास है। चाहता है कि रोग न हो जिससे कड़वी दवा पीना पड़े। वैसे ही सम्यग्दृष्टी उस कषायसे व भोगसे व भोग सामग्रीसे अत्यन्त उदास है। भरत चक्रवर्ती जैसे सम्यग्दृष्टी छः खण्ड पृथ्वीका राज्य करते हुए भी वैरागी प्रसिद्ध थे। यह बात असंभव नहीं है; बहुतसी क्रिया अरुचि पूर्वककी जाती हैं। जैसे किसीको इच्छानुकूल भोजन नहीं प्राप्त हुआ है तौभी वह क्षुधा रोगके शमनके लिये उस भोजनमें अरुचि रखता हुआ भी खा लेता है। सम्यग्दृष्टी यह भी जानता है कि भोगोंके भोगसे कभी तृप्ति नहीं होसक्ती है व कषाय भावके शमनका भोग भोगना सच्चा उपाय भी नहीं है। परन्तु कषाय जनित बाधा सहनेको असमर्थ होकर भोग भोग लेता है। स्वानुभवामृत पान करना ही कषाय भावोंके शमनकी अमोघ औषधि है। ऐसा जानते हुए निरंतर आत्माके मनोहर उपवनमें रमण करता रहता है। उसकी अपूर्व शोभाके सामने जगतके पर पदार्थोंका दृश्य इस ज्ञानीको मूर्छित नहीं कर सक्ता व इसी

स्वात्मानुभवके प्रतापसे अप्रत्याख्यानादि कषायोंका रस सूखता जाता है । जब मात्र संज्वलन कषायका ही उदय रह जाता है तब भोगोंसे बिलकुल विरक्त होकर साधुपदमें पहुंच जाता है। श्री ऋषभदेव तीर्थंकरने ८१ लाख पूर्व गार्हस्थमें बिताया। अरुचि पूर्वक भोग भी भोगा किये । प्रजाका पालन भी किया, परन्तु अपने सम्यक्त भावको कभी भी मैला न कर सके । स्वात्मानुभवकी शक्तिको ज्योंका त्यों रखते हुए उसीके प्रतापसे जब कषायोंका रस उदय विहीन होगया मात्र संज्वलन कषायका ही उदय रह गया । स्वयं दीक्षित हो साधु होगए । बंधका कारण वास्तवमें मिथ्यात्व व अनंतानुबन्धी कषाय हैं । जिनके इनका दमन है व इनका क्षय है उन ज्ञानी जीवोंका भोग भोगना उनकी ज्ञान वैराग्यमई शुद्ध भावकी शक्तिके विराजनेमें कारण नहीं होसक्ता । सम्यक्तकी अपूर्व महिमा है, वह सर्व जगतकी क्रियाको करता हुआ भी कर्ता नहीं होता है, स्वामी नहीं बनता है, ज्ञाता दृष्टा रहता है, कर्मोदयका नाटक है, कर्मका विपाक है, ऐसा समझता है । इसलिये उसके उदय प्राप्त कर्म फल देकर झड़ते जाते हैं, वह हलका होता जाता है । अल्प बंध भी निर्जराके ही सन्मुख रहता है । इस सूक्ष्म तत्वको समझना वास्तवमें बड़ा कठिन है । इस कथनीको सुनकर व जानकर कोई यह समझ ले कि मैं तो शुद्ध आत्माको पहचाननेवाला सम्यग्दृष्टी हूं मुझे भोगोंसे बंध होगा नहीं इसलिये खूब भोग भोगूं. तो वह अज्ञानी ही है मिथ्यादृष्टी ही है । वह तत्वज्ञानी नहीं वह तो विषयलम्पटी, इच्छावान है, उसके निःकांक्षित अंग नहीं जो सम्यग्दृष्टीमें होना ही उचित है । सम्यग्दृष्टीके भोग भोगनेकी भावना नहीं होती है । किन्तु आत्मानंदके भोगकी भावना होती है । वह आत्म रसिक होता है भोग रसिक नहीं होता है । श्री देवसेनाचार्य तत्वसारमें कहते हैं—

जे होइ भुंजियव्वं कम्मं उदयस्स जाणियं तववो, सयमागयं च तं जइ सोलाहो णत्थि संदेहो ॥५४॥
भुंजतो कम्मफलं कुणइण रायं च तहय दोसं वा, सो संचियंपि णासइ, णहिणवकम्मं ण बंधेइ ॥५५॥

भावार्थ—ज्ञानी विचारता है कि जिस भोगने योग्य कर्मको तपके द्वारा उदयमें लाकर दूर करना था वह कर्म यदि स्वयं ही उदयमें आगया और नष्ट होता जाता है, तो इसमें लाभ ही लाभ है इसमें शंकाकी कोई जगह नहीं है । जैसे पाप कर्मके उदयसे दुःखी व रोगी होनेपर वह समताभावसे भोग लेता है वैसे पुण्यके उदयसे प्राप्त भोग सामग्रीको समता भावसे भोग लेता है । इसलिये पुण्य पाप दोनोंकी निर्जरा करता है । इस तरह कर्मके फलको भोगते हुए जो रागद्वेष नहीं करता है वह संचित कर्मोंका नाश करता है और नवीन कर्मोंसे बन्धता नहीं है ।

सवैया ३१ सा—जामें धूमको न लेश वातको न परवेश, करम पतंगनिको नाश करे पलमें ॥ दशाको न भोग न सनेहको संयोग जामें, मोह अन्धकारको वियोग जाके थलमें ॥ जामें

न तताई नहि राग रकताई रंच, लहै लहै समता समाधि जोग जलमें ॥ ऐसे ज्ञान दीपकी सिखा जगी अभंगरूप, निराधार फूरि पै दुरी है पुदगलमें ॥ ३७ ॥

सवैया ३१ सा—जैसो जो दरब तामें तैसा ही स्वभाव सधे, कोउ द्रव्य काहूको स्वभाव न गहत है ॥ जैसे शंख उज्जल विविध वर्ण माटी भखे, माटीसा न दीसे नित उज्जल रहत है ॥ तैसे ज्ञानवन्त नाना भोग परिग्रह जोग, करत विलास न अज्ञानता लहत है । ज्ञानकला दूनी होय द्वन्द दशा सूनी होय, ऊनि होय भव थिती बनारसी कहत है ॥ ३८ ॥

शार्दूलविक्रीडित छन्द—ज्ञानिन् कर्म्म न जातु कर्तुमुचितं किंचित्तथाप्युच्यते

भुंक्षे हन्त न जातु मे यदि परं दुर्भुक्त एवासि भोः।

बन्धः स्यादुपभोगतो यदि न तत्किं कामचारोऽस्ति ते

ज्ञानं सन्च सबन्धमेष्यपरथा स्वस्यापराधाद्ध्रुवम् ॥ १९ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—ज्ञानिन् जातु कर्म कर्तुं न उचितं–ज्ञानिन् कहतां हो सम्यग्दृष्टी जीव, जातु कहतां कौनहू प्रकार कबहू ही, कर्म कहतां ज्ञानावरणादिरूप पुद्गल पिंड कर्तुं कहतां बांधिवाको, न उचितं कहतां योग्य न छै। भावार्थ इसो–जो सम्यग्दृष्टी जीवको कर्मको बन्ध नहीं छै। तथापि किंचित् उच्यते–तथापि कहतां तो फुनि, किंचित् उच्यते कहतां कांई विशेष छै सो कहिजे छे। हंत यदि मे परं न यातु भुंक्षे भोः दुर्भुक्तो एव असि–हंत कहतां आकरा वचन करि कहिजे छै। यदि कहतां जो इसो जानि करि भोग सामग्री भोगवे छै कि मैं कहतां मो कहुं, परं न यातु कहतां कर्मको बन्ध नहीं छै। इसो जानि करि, भुंक्षे कहतां पंचेंद्रिय विषय भोगवे छै। भोः कहतां हो, जीव दुर्भुक्तः एव असि कहतां इसो जानि भोगहको भोगइवो भलो नहीं। जिहिते वस्तु स्वरूप यो छै। यदि उपभोगतः बन्धः न स्यात् तत् ते किं कामचारः अस्ति–यदि कहतां जो योछे, उपभोगतः कहतां भोग सामग्री भोगवतां, बंधः न स्यात् कहतां ज्ञानावरणादि कर्मको बंध नहीं छे; तत् कहता तौ, ते कहतां अहो सम्यग्दृष्टी जीव तो कहुं कामचारः कहतां स्वेच्छा आचरण किं अस्ति कहतां कांयो यो छे अपितु योतो न छे। भावार्थ इसो–जो सम्यग्दृष्टि जीव रागद्वेष मोह तहि रहित छे। सोई सम्यग्दृष्टी जीव ज्यों सम्यक्त छूटै मिथ्यात्वरूप परिणवे तो ज्ञानावरणादि कर्मबंध कहू अवश्य करै जिहिते मिथ्यादृष्टी होतो संतो रागद्वेष मोहरूप परिणवे छे इसो कहिजै छै। ज्ञानं सन् वश कहतां सम्यग्दृष्टी होतो संतो जेतो काल प्रवर्ते तेतो काल बन्ध न छे। अपरथा स्वस्य अपराधात् बंधं ध्रुवं एषि–अपरथा कहतां मिथ्यादृष्टि होतो संतो, स्वस्य अपराधात् कहतां आपणे ही दोष थकी रागादि अशुद्ध रूप परिणमनथकी बंधं ध्रुवं एषि कहतां ज्ञानावरणादि कर्मबंधको तू ही अवश्य करे छे।

भावार्थ—यहांपर यह स्पष्ट कर दिया है कि सम्यग्दृष्टी जीवका आचरण निरर्गल व

स्वच्छन्द नहीं होता है, वह भोगोंका इच्छापान नहीं होता है। जिसी समय किसी सम्यक्तीके यह भाव होजांय कि मुझे बंध न होगा मैं चाहे जितना भोग करूं अर्थात् भोगोंकी इच्छामें फंस जाय उसी समय वह सम्यक्तसे छूटकर मिथ्यादृष्टी होजाता है। सम्यक्त अवस्थामें मनोज्ञ विषयोंसे राग व अमनोज्ञ विषयोंसे द्वेष न था तथा पर पदार्थोंपर मोह न था, मिथ्यात्वमें आते ही रागी द्वेषी मोही होजाता है तब उसके अवश्य कर्मका बंध होने लगता है। सम्यक्तीके यह भाव कभी संभव नहीं है कि वह स्वेच्छारूप विषयप्रवृत्ति करे। व परपदार्थोंमें अंध होजावे। सम्यक्ती ममता रहित है, मिथ्यात्वी ममता सहित है इसीसे बंधको प्राप्त होता है। इष्टोपदेशमें पूज्यपाद स्वामी कहते हैं—

बध्यते मुच्यते जीवः सममो निर्ममो क्रमात् । तस्मात् सर्वप्रयत्नेन निर्ममत्वं विचिंतयेत् ॥ २६ ॥

भावार्थ—जो जीव मोही है वह बंधता है जो निर्मोही है वह बंधको प्राप्त नहीं होता है इसलिये पूर्ण प्रयत्न करके ममत्व रहित भावमें रहनेकी ही भावना करनी उचित है।

सवैया ३१ सा—जोलों ज्ञानको उद्योत तोलों नहि बंध होत, बरते मिथ्यात्व तब नाना बंध होहि है ॥ ऐसो भेद सुनके लग्यो तू विषय भोगनमूं, जोगनीसुं उद्यमकी रीति तैं बिछोहि है ॥ सुनो भैया संत तू कहे मैं समकितवंत, यह तो एकंत परमेश्वरका द्रोही है ॥ विषैसुं विमुख होहि अनुभौ दशा आरोहि मोक्ष सुख ढोहि तोहि ऐसी मति सोही है ॥ ३९ ॥

चौपाई—ज्ञानकला जिसके घट जागी। ते जगमांही सहज वैरागी ॥
ज्ञानी मगन विषै सुखमांही। यह विपरीत संभवै नाहीं ॥ ४० ॥

दोहा—ज्ञानशक्ति वैराग्य बल, शिव साधे समकाल। ज्यों लोचन न्यारे रहे, निरखे दोऊ ताल ॥ ४१ ॥

शार्दूलविक्रीडित छन्द—कर्तारं स्वफलेन यत्किल बलात्कर्मैव नो योजयेत्
कुर्वाणः फललिप्सुरेव हि फलं प्राप्नोति यत्कर्मणः।
ज्ञानं संस्तदपास्तरागरचनो नो बध्यते कर्मणा
कुर्वाणोऽपि हि कर्म तत्फलपरित्यागैकशीलो मुनिः ॥ २० ॥

खण्डान्वय संहित अर्थ—तत् मुनिः कर्मणा न बध्यते—तत् कहतां तिहि कारणतहि, मुनिः कहतां शुद्ध स्वरूप अनुभव विराजमान सम्यग्दृष्टि जीव, कर्मणा कहतां ज्ञानावरणादि कर्म करि, नो बध्यते कहतां नहीं बांधिजै छे, किसो छे सम्यग्दृष्टि जीव। हि कर्म्म कुर्वाणः अपि—हि कहतां निहचासों कर्म्म कहतां कर्मजनित विषय सामग्री भोगरूप क्रिया तिहको, कुर्वाणः अपि कहतां करै छे यद्यपि भोगवै छे, तत् फलपरित्यागैकशीलः—तत्फल कहतां कर्मजनित सामग्री विषै आत्मबुद्धि जानिकरि रंजक परिणाम तिहिको परित्याग कहतां सर्वथा प्रकार स्वीकार छूट्यो इसो छे एक कहतां सुखरूप शील कहतां स्वभाव जिहको इसो छे। भावार्थ इसो—जो सम्यग्दृष्टि जीवके विभावरूप मिथ्यात्व परिणाम मिट्यो

छे तिहके मिटतां अनाकुलत्व लक्षण अतीन्द्रिय सुख अनुभवगोचर हूओ छे और किसो छे, ज्ञानं सत् तदपास्तरागरचनः—कहतां ज्ञानमय होतां दूरि कीयो छे रागभाव जिहं इसो छे। तिहितें कर्मजनित छे जे चार गतिकी पर्याय तथा पंचेंद्रियका भोग तेता समस्त आकुलता लक्षण दुःखरूप छे। सम्यग्दृष्टी जीव इसो अनुभवे छे। तिहितें जेतो काई साता असाता रूप कर्मको उदय तिहितें जो कुछ नीका विषय अथवा अनिष्ट विषयरूप सामग्री सो सम्यग्दृष्टीके सर्वे अनिष्टरूप छे। तिहितें यथा कोई जीवको अशुभ कर्मके उदय रोग, शोक, दालिद्र आदि होइ छे जीव छोड़िवाको घनो ही करे छे, परि अशुभ कर्मके उदय नहीं छूटै छे, तिहितें भोगया सरै। तथा सम्यग्दृष्टी जीवको पूर्व अज्ञान परिणाम करि बांध्या छे सातारूप असातारूप कर्म तिहके उदय अनेक प्रकार विषय सामग्री होइ छे। सम्यग्दृष्टी दुःखरूप अनुभवै छे, छोड़िवाको घनो ही करे छे। परि जब ताई क्षपक श्रेणि चढ़ै तब ताई छूटिवाको अशक्य छे। तातहि परवश हुओ भोगवै छे। हीया माहे अत्यन्त विरक्त छे तिहितै अरंजक छे तिहितै भोग सामग्री भोगवतां कर्मको बंध न छे, निर्जरा छे। इहां दृष्टांत कहिजै छे। यत् किल कर्म्म कर्तारं स्वफलेन बलात् योजयेत्—यत् कहतां जिहि कारण तहियो छे, किल कहतां वोही छे संदेह नाहीं, कर्म कहतां राजाकी सेवा आदि देय करि जावंत कर्म भूमिकी क्रिया, कर्तारं कहतां क्रिया विषै अरंजक होइ करि तन्मय होइ करि करै छे जो कोई पुरुष तिहिको स्वफलेन कहतां यथा राजाकी सेवा करतां द्रव्यकी प्राप्ति, भूमिकी प्राप्ति, यथा खेती करतां अन्नकी प्राप्ति, बलात् योजयेत् कहतां अवश्य करि कर्ता पुरुषको क्रियाका फल सो संयोग होइ। भावार्थ इसो—जो क्रियाको न करै तिहिको क्रियाके फलकी प्राप्ति न होइ। तथा सम्यग्दृष्टी जीवको बन्ध न होइ, निर्जरा होइ जिहितै सम्यग्दृष्टी जीव भोग सामग्री क्रियाको कर्ता न छे तिहितै क्रियाको फल न छे। कर्म बंध सो तो सम्यग्दृष्टीको न होइ, दृष्टांत दृढ़ कीजे छे। यत् कुर्वाणः फललिप्सुः एव हि कर्मणः फलं प्राप्नोति—यत् कहतां जिहि कारण तहि, पूर्वोक्त नाना प्रकार क्रिया, कुर्वाणः कहतां कोई करतो होतो, फललिप्सुः कहतां फलको अभिलाष करि क्रिया करै छे इसा ना कहतां कोई पुरुष, कर्मणः फलं कहतां क्रियाका फलको, प्राप्नोति कहतां पावै छे, भावार्थ इसो—जो कोई पुरुष क्रिया करै छे निरभिलाष हुओ करै छे तिहिको फुनि क्रियाको फल न छे।

भावार्थ- यहां श्लोकमें पहले चरणमें मुद्रित पुस्तकमें नो योजयेत् है तब राजमल्ल कृत टीकाकी तीन भिन्न २ प्रतियोंमें ना योजयेत् है। ऐसा ही अर्थ किया है। नाके अर्थ पुरुष किये हैं। यदि नो योजयेत लेवें तब तो यह अर्थ होता है कि जो कोई क्रियाको उदासीनपने करता है उसको बलात् फल नहीं होजाता है अर्थात् वह कर्मसे

बंध प्राप्त नहीं करता है। भावार्थ इस श्लोकका यही है कि जो कोई तन्मय होकर क्रियाको करता है वह फल पाता है, जो उदासीन होकर क्रियाको करता है वह उसके फलको नहीं पाता है। सम्यग्दृष्टि ज्ञानी है इससे वह जो कुछ क्रिया करता है व विषय सामग्री भोगता है उसमें बिलकुल तन्मय नहीं है सर्वथा प्रकार उदासीन है, विरक्त है क्योंकि सम्यक्तके प्रभावसे उसकी आत्मामें ज्ञान वैराग्यकी शक्ति पैदा होगई है, इससे उसके निर्जरा होती है बंध नहीं होता है। जैसे कोई राजाकी सेवा सेवाके फल पानेकी इच्छासे करे तो वह अवश्य कुछ द्रव्यादि पावेगा। परन्तु जो कोई राजाकी सेवा विना किसी फलके करता है उसे राजा कोई फल नहीं देता है—वह प्रतिष्ठाका भाजन माना जाता है, उसकी मान्यता फल चाहनेवालेसे बहुत अधिक होती है। मिथ्यादृष्टी रंजक है फल चाहनेवाला है, सम्यग्दृष्टी अरंजक है फलका इच्छुक नहीं है। दोनोंमें बड़ा ही भेद है—एक मिथ्यादृष्टी भोगोंमें लौलीन है। सम्यग्दृष्टी भोगोंको भी रोग जान पीड़ा सहनेमें असमर्थ होकर भोग लेता है। ज्ञानी जीवके तो प्रेम एक निजानंदके विलासमें ही रहता है, निर्ममत्व भाव ज्ञानीका चिन्ह है। तत्व०में कहा है—

सद्दृष्टिर्ज्ञानवान् प्राणी निर्ममत्वेन संयमी, तपस्वी च भवेत्तस्मान्निर्ममत्वं विचिंतयेत् ॥ १५।१०॥

भावार्थ—निर्ममत्व भावसे ही सम्यग्दृष्टी, ज्ञानी, व संयमी व तपस्वी होता है, इसलिये निर्ममत्व भाव विचारने योग्य है।

चौपाई—मूढ़ कर्मको कर्ता होवे। फल अभिलाष धरे फल जोवे ॥
ज्ञानी क्रिया करे फल सूनी। लगे न लेप निर्जरा दूनी ॥ ४२ ॥

दोहा—बंधे कर्मसों मूढ ज्यों, पाट कीट तन पेम। खुले कर्मसों समकिती, गोरख धंदा जेम ॥ ४३ ॥

शार्दूलविक्रीडित छन्द—त्यक्तं येन फलं स कर्म कुरुते नेति प्रतीमो वयं
किन्त्वस्यापि कुतोऽपि किञ्चिदपि तत्कर्मावशेनापतेत्।
तस्मिन्नापतिते त्वकम्पपरमज्ञानस्वभावे स्थितो
ज्ञानी किं कुरुतेऽथ किं न कुरुते कर्मेति जानाति कः ॥ २१ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—येन फलं त्यक्तं स कर्म्म कुरुते इति वयं न प्रतीमः—येन कहतां जो कोई सम्यग्दृष्टि जीव तेनें फलं त्यक्तं कहतां कर्मके उदय करि छे जो भोग सामग्री तिहिको फलं कहतां अभिलाष, त्यक्तं कहतां सर्वथा ममत्व छोड्यो छे, स कहतां सोई सम्यग्दृष्टि जीव, कर्म कुरुते कहतां ज्ञानावरणादि कर्मको करै छे, इति वयं न प्रतीमः—कहतां इसो ही तो हम प्रतीति न करां। भावार्थ इसो—जो कर्मके उदय तहि उदासीन छे तिहिको कर्मको बन्ध न होइ छे, निर्जरा छे। किन्तु—कहतां कांई विशेष, अस्य अपि कहतां इसा सम्यग्दृष्टिको फुनि, अवशेन कुतोऽपि किंचिदपि कर्म्म आपतेत्—अवशेन

कहतां विन ही अभिलाष करतां बलात्कार ही, कुतोऽपि किंचिदपि कर्म कहतां पूर्वे ही बांध्या था जे ज्ञानावरणादि कर्म तिहका उदय थकी हूआ छे जे पंचेंद्रिय विषय-भोग क्रिया, आपतेत् कहतां प्राप्त होइ छे। भावार्थ इसो जो–यथा कोईको रोग, शोक, दालिद्र विन ही वांछो होइ छे। तथा सम्यग्दृष्टी जीवको जो कोई क्रिया होइ छे सो विन ही वांछा होइ छे। तस्मिन् आपतिते–कहतां अनिच्छक छे सम्यग्दृष्टी पुरुष तिहको बलात्कार होइ छे भोग क्रिया तिहि करि हुवे सतै ज्ञानी किं कुरुते–ज्ञानी कहतां सम्यग्दृष्टी जीव, किं कुरुते कहतां अनिच्छक छे कर्मके उदय क्रिया करे छे तौ क्रियाको कर्ता होइ कांयो। अथ न कुरुते–कहतां सर्वथा क्रियाको कर्ता सम्यग्दृष्टी जीव न छे। किसाको कर्ता न छे, कर्म इति कहतां भोग रस क्रियाको। किसो छे सम्यग्दृष्टी जीव, जानाति कः कहतां ज्ञायक स्वरूप मात्र छे। तथा किसा छे सम्यग्दृष्टी जीव–अकंपपरमज्ञानस्वभावे स्थितः–कहतां निश्चल परम ज्ञान स्वभाव माहे स्थित छे।

भावार्थ–यह है कि सम्यग्दृष्टी ज्ञानी है वह बिलकुल इच्छा रहित है फिर वह कर्मको बांधेगा, यह विश्वासमें नहीं आसक्ता। वह सदा आत्मरसिक ही रहता है। पूर्व कर्मोंके उदयसे उसको रोगके इलाजवत् जो कुछ काम करना पड़ता है व विषयभोग करना पड़ता है उससे वह अपने ज्ञान स्वभावसे विचलित नहीं होता है। इसलिये वह न तो कर्ता है न भोक्ता है–वह मात्र ज्ञाता दृष्टा है। इस कारण कर्मकी निर्जरा होजाती है। परन्तु तन्मयता रखनेसे जो बंध होता था सो नहीं होता है। सम्यक्त्वकी अपूर्व महिमा है। परमात्मप्रकाशमें ज्ञानीके लिये कहा है—

भवतणुभोयविरत्तमणु जो अप्पा झाएइ, तासु गुरुक्की वेल्लडी संसारिणि तुट्टेइ ॥ ३२ ॥

अर्थात् जो संसार शरीर भोगोंसे विरक्त चित्त होकर आत्माको ध्याता है उसकी बड़ी भारी संसाररूपी वेल टूट जाती है।

सवैया ३२ सा–जे निज पूरव कर्म उदै सुख, भुंजत भोग उदास रहेंगे। जे दुखमें न विलाप करें, निर वैर हिये तन ताप सहेंगे ॥ है जिनके दृढ़ आतम ज्ञान, क्रिया करके फलको न चहेंगे। ते सु विचक्षण ज्ञायक है, तिनको करता हम तो न कहेंगे ॥ ४४ ॥

शार्दूलविक्रीडित छन्द–सम्यग्दृष्टय एव साहसमिदं कर्तुं क्षमन्ते परं

यद्वज्रेऽपि पतत्यमी भयचलत्त्रैलोक्यमुक्ताध्वनि।

सर्वामेव निसर्गनिर्भयतया शङ्कां विहाय स्वयं

जानन्तः स्वमवध्यबोधवपुषं बोधाच्च्यवन्ते न हि ॥ २२ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ–सम्यग्दृष्टयः एव इदं साहसं कर्तुं क्षमन्ते–सम्यग्दृष्टयः कहतां स्वभाव गुण रूप परिणया छे जे जीवराशि, एव कहतां निहचासों, इदं साहसं कहतां इसो

धीर्यपनो, कर्तुं कहतां करिवाको, क्षमंते कहतां समर्थ होहि छै, किसो छे साहस, परं कहतां सर्व तहि उत्कृष्ट छे। कौन साहस, यत् वज्रे पतति अपि अमी बोधात् नहि च्यवंते-यत् कहतां जो साहस इसो छे, वज्रे पतति अपि कहतां महान वज्रके परतै संतै तो फुनि, बोधात् कहतां शुद्ध स्वरूपके अनुभवथकी नहि च्यवन्ते कहतां सहज गुण सो चलित नहीं होइ छै। भावार्थ इसो-जो कोई अज्ञानी इसो मानिसे जो सम्यग्दृष्टी जीवको साता कर्मके उदय अनेक प्रकार इष्ट भोग सामग्री छे असाता कर्मके उदय अनेक प्रकार रोग, शोक, दरिद्र, परीसह, उपसर्ग इत्यादि अनिष्ट सामग्री होइ छे, तिहिके भोगवतां शुद्ध स्वरूप अनुभव तहि चूकतो होइसी, समाधान इसो जो अनुभव तहि नहीं चूके छै। जिसो अनुभव छे तिसो ही रहै छे वस्तुको इसो ही स्वरूप छे। किसो छे वज्र-भयचलत्त्रैलोक्यमुक्ताध्वनि-भय कहतां वज्र परतां ताको त्रास तिहिंकरि, चलत् कहतां छोहर (साहस) छूट्यो छे। इसो त्रैलोक्य कहतां सर्व संसारी जीव तेनै, मुक्त कहतां छोड्यो छे, अध्वनि कहतां आपणी आपणी क्रिया जिहिके परतां इसो छे वज्र। भावार्थ इसो-जो इसा छे। उपसर्ग परीसह ज्याहके परतां मिथ्यादृष्टीको ज्ञानकी सुधि नहीं रहै छे, किसो छे सम्यग्दृष्टी जीव, स्वं जानंतः-स्वं कहतां शुद्ध चिद्रूप तिहिको, जानंतः कहतां प्रत्यक्षपनै अनुभवै छे। अवध्यबोधवपुषं-अवध्य कहतां शाश्वतो इसो छे, बोध कहतां ज्ञान गुण इसो छे वपुः कहतां शरीर जिहिको इसो छे। कायो करिके सर्वां एव शंकां विहाय-सर्वां एव कहतां सात प्रकार छे शंकां कहतां भय ताको विहाय कहतां छोडि करि ज्यों भय छूटे त्यों कहिजे छे। निसर्गनिर्भयतया-निसर्ग कहतां स्वभाव तहि, निर्भयतया कहतां भय तहि रहितपनो तिहिकरि। भावार्थ इसो-जो सम्यग्दृष्टी जीवहको निर्भय स्वभाव छे तिहितै सहज ही अनेक प्रकार परीसह उपसर्गको भय न छे। तिहितै सम्यग्दृष्टी जीवको कर्मको बंध न छे, निर्जरा छे, क्यों छे निर्भयपनो, स्वयं कहतां इसो सहजै छे।

भावार्थ-यहांपर यह दिखलाया है कि जैसे सम्यग्दृष्टी ज्ञानी जीव संपत्तिको भोगते हुए अपने शुद्ध स्वरूपके श्रद्धानसे व अनुभवसे विचलित नहीं होते हैं वैसे अनेक विपत्तियोंके आनेपर भी विचलित नहीं होते हैं। जिन संकटोंके पड़नेपर मिथ्यादृष्टी घबड़ाकर बुद्धि रहित हो अपने कार्यके नियमको छोड़ बैठते हैं, बावले होजाते हैं व अपघात कर लेते हैं व न करने योग्य कार्य करने लग जाते हैं, श्रद्धा रहित वर्तन कर बैठते हैं उन संकटोंके वज्रोंके पड़नेपर भी सम्यग्दृष्टी अपने स्वाभाविक शुद्ध स्वरूपके ज्ञानमें सुमेरुपर्वतके समान दृढ़ रहते हैं। ज्ञानीके लिये शुभ व अशुभ दोनों ही प्रकारका कर्मका उदय एक मात्र कर्मका नाटक दिखता है। वे रोग, शोक, वियोग, मरण

आदिको मात्र पर पदार्थका वियोग व बिगाड़ जानते हैं, अपने आत्माके भीतर रोगादि व मरणको किंचित् भी आरोपण नहीं करते हैं। वीर क्षत्रीके समान संसाररूप कर्मक्षेत्रमें निर्भयतासे डटे रहते हैं, उनके ऊपर कर्मोंके उदयरूप आक्रमण व्यर्थ जाते हैं। अर्थात् कर्मकी निर्जरा होजाती है। वे कर्मसे बांधे नहीं जाते, कर्म उनको बांध नहीं सक्ता। ऐसा अपूर्व स्वभाव सम्यग्दृष्टी जीवका झलक जाता है। मैं अनन्तबली परमानन्दी ज्ञाता दृष्टा आत्मा हूं। ऐसा अनुभव सम्यग्दृष्टिको सदा ही निर्भय रखता है। इष्टोपदेशमें कहा है—

न मे मृत्युः कुतो भीतिर्न मे व्याधिः कुतो व्यथा। नाहं बालो न वृद्धोहं न युवैतानि पुद्गले ॥२९॥

भावार्थ—सम्यग्दृष्टी यह अनुभव करता है कि मैं अविनाशी चैतन्यमई पदार्थ हूं। मेरा मरण नहीं, फिर भय किससे, मुझे कोई ज्वर, श्वास आदिका रोग नहीं तब कष्ट क्या। न मैं बालक हूं, न वृद्ध हूं, न युवान हूं। ये सब विकार शरीरमें हैं जो कि पुद्गल है मैं नित्य ही परमानंदमय परम वीतरागी हूं।

सवैया ३१ सा—जिन्हके सुदृष्टीमें अनिष्ट इष्ट दोउ सम, जिन्हको आचार सु विचार शुभ ध्यान है ॥ स्वारथको त्यागि जे लगे हैं परमारथको, जिन्हके बनिजमें न नफा है न ज्यान है ॥ जिन्हके समझमें शरीर ऐसो मानीयत, धानकोसो छीलक कृपाणकोसो म्यान है ॥ पारखी पदारथके साखी भ्रम भारथके, तेई साधु तिनहीको यथारथ ज्ञान है ॥ ४५ ॥

सवैया ३१ सा—जमकोसो भ्राता दुखदाता है असाता कर्म, ताके उदै मूरख न साहस गहत है ॥ सुरगनिवासी भूमिवासी औ पतालवासी, सबहीको तन मन कंपत रहत है ॥ उरको उजारो न्यारो देखिये सपत भैसे, डोलत निशंक भयो आनन्द लहत है ॥ सहज सुवीर जाको सास्वत शरीर ऐसो, ज्ञानी जीव आरज आचारज कहत है ॥ ४६ ॥

दोहा—इहभव भय परलोक भय, मरण वेदना जात। अनरक्षा अनगुप्त भय, अकस्मात भय सात ॥४७॥

सवैया ३१ सा—दशधा परिग्रह वियोग चिंता इह भव, दुर्गति गमन भय परलोक मानिये ॥ प्राणनिको हरण मरण भै कहावै सोई, रोगादिक कष्ट यह वेदना वखानिये ॥ रक्षक हमारो कोउ नाहीं अनरक्षा भय, चोर भय विचार अनगुप्त मन आनिये ॥ अनचिंत्यो अबहि अचानक कहांधो होय, ऐसो भय अकस्मात जगतमें जानिये ॥ ४८ ॥

शार्दूलविक्रीडित छन्द—लोकः शाश्वत एक एष सकलव्यक्तो विविक्तात्मन-
श्चिल्लोकं स्वयमेव केवलमयं यल्लोकयत्येककः।
लोको यन्न तवापरस्तदपरस्तस्यास्ति तद्भीः कुतो
निःशङ्कः सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विन्दति ॥२३॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—स सहजं ज्ञानं स्वयं सततं सदा विंदति—स कहतां सम्यग्दृष्टी जीव, सहजं कहतां स्वभाव ही तें ज्ञानं कहतां शुद्ध चैतन्य वस्तु, विंदति कहतां अनुभवै छे, आस्वादै छे। क्यों अनुभवै छे, स्वयं कहतां आपुनपै आपको अनुभवै छे केने प्रकार, सततं कहतां निरंतर पनै, सदा कहतां अतीत अनागत वर्तमान अनुभवै छे। किसो

छे सम्यग्दृष्टी जीव, निःशंकः कहतां सप्त भय तहि रहित छे। किसाथकी जिहितै तस्य तद्भीः कुतः अस्ति-तस्य कहतां तिहि सम्यग्दृष्टिको, तद्भीः कहतां इहलोक भय, परलोक भय, कुतः अस्ति-कहतां कहांतहि होइ, अपि तु न होइ। ज्यों विचारतां भय नहीं होइ त्यों कहिजे छे। तव अयं लोकः तदपरः अपरः न-तव कहतां भो जीव तेरो, अयं लोकः कहतां छतो छे जो चिद्रूप मात्र इसो लोक छे, तदपरः कहतां तिहितै और जो कुछ छे, इहलोक परलोक। व्यौरो-इहलोक कहतां वर्तमान पर्याय तिहि विषै इसी चिंता जो पर्याय पर्यंत सामग्री रहसे कै न रहसे, परलोक कहतां इहां तहि मरि नीकी सी गति ज्यास्यां कै न ज्यास्यां इसी चिंता। इसो जो, अपरः कहतां इहलोक परलोक पर्यायरूप, न कहता जीवको स्वरूप नहीं छे। यत एषः अयं लोकः केवलमयं चिल्लोकं स्वयमेव लोकयति-यत कहतां जिहि कारण तहि, एषः अयं लोकः कहतां छता छे जो चैतन्यलोक, केवलमयं कहता निर्विकल्प छे। चिल्लोकं स्वयमेव लोकयति कहतां ज्ञानस्वरूप आत्माको स्वयं ही देखै छे। भावार्थ इसो जो-जीवका स्वरूप ज्ञानमात्र ही छे किसो छे चैतन्य लोक, शाश्वतः कहतां अविनाशी छे, और किसो छे, एककः कहतां एक वस्तु छे और किसो छे, सकलव्यक्तः सकल कहतां त्रिकाल विषय, व्यक्त कहतां प्रगट छे, कौनको प्रगट छे। विविक्तात्मनः-विविक्त कहतां भिन्न छे, आत्मनः कहतां आत्मास्वरूप जिहको इसो छे भेदज्ञानी पुरुष।

भावार्थ-सम्यग्दृष्टी ज्ञानीको इहलोक परलोकका भय नहीं होता। जिसने शरीरको अपना नहीं माना उसको यह भय कैसे होसक्ता है कि यह शरीर बिगड़ेगा तो क्या होगा व परलोकमें खराब गति होगी तो क्या होगा। वह निश्चय नयपर आरूढ़ होता हुआ भेद विज्ञानके बलसे अपने शुद्ध, अविनाशी, एक आत्माको ही अपना लोक तथा परलोक अर्थात् उत्कृष्ट लोक मानता है। जहां सर्व ज्ञेय हों वही लोक व परलोक है। उसके आत्माका यह स्वभाव ही है जो सर्वको जैसाका तैसा स्वयं जानने वाला है। ज्ञानीका लोक परलोक अपना शुद्ध आत्मा ही है इसलिये ज्ञानीको व्यवहारमई क्षणिक इहलोक परलोकका रंचमात्र भय नहीं होता, वह सदा ही निर्भय रहकर अपने स्वाभाविक आनंदका उपभोग करता है। यही सम्यग्दृष्टीका निःशंकित गुण है। तत्त्व० में कहा है-

यदि शुद्धं चिद्रूपं निजं समस्तं त्रिकालगं युगपत्। जानन् पश्यन् पश्यति तदा स जीवः सुदृक् तत्त्वात् ॥१२

भावार्थ-जो अपने शुद्ध चैतन्यमई आत्माको सर्व त्रिकाल गत पदार्थोको एकसाथ जानता देखता हुआ अनुभव करता है वही निश्चयसे सम्यग्दृष्टी है।

छप्पै-नख शिख मित परमाण, ज्ञान अवगाह निरक्षत। आतम अंग अभंग, संग पर धन इम अक्षत। छिन भंगुर संसार विभव, परिवार भार जसु। जहां उतपति तहां प्रलय, जासु संयोग

वियोग तसु। परिग्रह प्रपंच परगट परखि, इहभव भय उपजे न चित। ज्ञानी निशंक निकलंक निज, ज्ञानरूप निरखंत नित ॥ ४९ ॥

छप्पै छन्द—ज्ञानचक्र मम लोक, जासु अवलोक मोक्ष सुख। इतर लोक मम नाहिं नाहिं जिस मांहि दोष दुख ॥ पुन्य सुगति दातार, पाप दुर्गति दुखदायक। दोऊ खण्डित खानि मैं, अखण्डित शिव नायक ॥ इहविधि विचार परलोक भय, नहि व्यापत वरते सुखित। ज्ञानी निशंक निकलंक निज, ज्ञानरूप निरखंत नित ॥ ५० ॥

शार्दूलविक्रीडित छन्द—एषैकैव हि वेदना यदचलं ज्ञानं स्वयं वेद्यते।
निर्भेदोदितवेद्यवेदकबलादेकं सदानाकुलैः ॥
नैवान्यागतवेदनैव हि भवेत्तद्भीः कुतो ज्ञानिनो
निःशङ्कः सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विन्दति ॥ २४ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—स स्वयं सततं सदा ज्ञानं विन्दति—स कहतां सम्यग्दृष्टि जीव, स्वयं कहतां आपुनपै, सततं कहतां निरंतरपनै, सदा कहतां त्रिकाल विषै, ज्ञानं कहतां जीवको शुद्ध स्वरूप तिहिको, विन्दति कहतां अनुभवै छे, आस्वादै छे। किसो छे ज्ञान, सहजं कहतां स्वभाव तहि उत्पन्न छे। किसो छे सम्यग्दृष्टी जीव, निःशंकः कहतां सप्त भय करि मुक्त छे, ज्ञानिनः तद्भीः कुतः—ज्ञानिनः कहतां सम्यग्दृष्टी जीव कहुं, तद्भीः कहतां वेदनाका भय, कुतः कहतां सम्यग्दृष्टीको कहांतै होइ, अपि तु न होइ। जिहितहि सदा अनाकुलैः—कहतां सदा भेदज्ञान बिराजमान छे जे पुरुष त्यांह पुरुष, स्वयं वेद्यते कहतां स्वयं इसो अनुभव कीजै छे। यत अचलं ज्ञानं एषा एका एव वेदना—यत कहतां जिहि कारण तहि, अचलं ज्ञानं कहतां शाश्वतो छे जो ज्ञान, एषा कहतां यही, एका वेदना कहतां जीवको एक वेदना छे। एव कहतां निहचासों। अन्यागतवेदना एव न भवेत—अन्या कहतां इहितहि छाडेइ जो अन्य, आगत वेदना एव कहतां कर्मके उदय थकी हुई छे सुखरूप अथवा दुःखरूप वेदना, न भवेत् कहतां जीवको छे ही नहीं। ज्ञान किसो छे एकं कहतां शाश्वतो छे, किसा छे एक रूप छे। निर्भेदोदितवेद्यवेदकबलात्—निर्भेदोदित कहतां अभेदपनै करि छे, वेद्यवेदक कहतां जो वेदै छे, सोई वेदजै छे। इसो बल कहतां समर्थपनो तिहि थकी। भावार्थ इसो—जो जीवको स्वरूप ज्ञान छे सो एकरूप छे। जो साता असाता कर्मकै उदय सुख-दुःखरूप वेदना सो जीवको स्वरूप न छे तिहितै सम्यग्दृष्टो जीवको रोग उपजिवाको भय न होइ।

भावार्थ—यहां निश्चयनयसे बताया है कि वेदना नाम ज्ञान स्वरूप अनुभव करनेका है सो ज्ञानी सम्यग्दृष्टीका ज्ञान निरन्तर आपसे आपको शुद्धरूप अनुभव कर रहा है। यही उसको एकाकार वेदना है। वह अपने आत्माको ही अपना जानता है। शरीरादि

परको अपना नहीं मानता। तब कर्मके उदयसे जो रोगादिक हों उनसे ज्ञानीको भय कैसे होसक्ता है ? जैसे शरीरसे कपड़ा भिन्न है, कपड़ा यदि सड़े व बिगड़े तो कोई भी अपनेको बिगड़ा हुआ नहीं मानता है, वैसे ज्ञानी शरीरकी अवस्थासे अपना बिगाड़ या सुधार नहीं समझता है। वह अपने ज्ञानबलसे अपने ज्ञानका ही निरंतर स्वाद लेता है। इस स्वाधीन वेदनामें कोई भय होही नहीं सक्ता है।

समाधिशतकमें श्री पूज्यपाद स्वामी कहते हैं—

नष्टे वस्त्रे यथात्मानं न नष्टं मन्यते तथा। नष्टे स्वदेहेऽप्यात्मानं न नष्टं मन्यते बुधः॥ ६५॥

भावार्थ—जैसे शरीरके बिगड़नेसे कोई अपनेको बिगड़ा हुआ नहीं मानता है वैसे अपनी मानी हुई इस देहके नष्ट होते हुए ज्ञानी अपने आत्माका बिगाड़ नहीं मानता है।

छप्पै—वेदनहारो जीव, जांहि वेदंत सोउ जिय,। यह वेदना अभंग, सो तो मम अंग नांहि थिय। करम वेदना द्विविध, एक सुखमय दुतीय दुख। दोऊ मोह विकार, पुद्गलाकार बहिर्मुख। जब यह विवेक मनमें धरत, तब न वेदना भय विदित। ज्ञानी निशंक निकलंक निज, ज्ञानरूप निरखंत नित॥ ५१॥

शार्दूलविक्रीडित छन्द—यत्सन्नाशमुपैति तन्न नियतं व्यक्तेति वस्तुस्थिति-

ज्ञानं सत्स्वयमेव तत्किल ततस्त्रातं किमस्यापरैः।
अस्यात्राणमतो न किंचन भवेत्तद्भीः कुतो ज्ञानिनो
निःशङ्काः सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विन्दति॥ २५॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—स ज्ञानं सदा विन्दति—स कहतां सम्यग्दृष्टी जीव, ज्ञानं कहतां शुद्ध स्वरूप सदा कहतां त्रिकालपनै, विंदति कहतां अनुभवै छे, आस्वादै छे, किसो छे ज्ञान, सततं कहतां निरंतरपनै वर्तमान छे, और किसो छे ज्ञान, स्वयं कहतां अनादि निधन छै, और किसो छे, सहजं कहतां कारण विना द्रव्यरूप छे। किसो छे, सम्यग्दृष्टी जीव, निःशंकः कहतां म्हारो रक्षक कोई छे कै न छे इसी भय तहि रहित छे, किसा थकी, ज्ञानिनः तद्भीः कुतः—ज्ञानिनः कहतां सम्यग्दृष्टी जीवको, तद्भीः कहतां म्हारो रक्षक कोई छे कै न छे इसी भय, कुतः कहतां कहां तहि होइ, अपि तु न होइ। अतः अस्य किंच अत्राणं न भवेत्—अतः कहतां इहि कारण तहि, अस्य कहतां जीव वस्तुको, अत्राणं कहतां अरक्षकपनो, किंच कहतां परमाणु मात्र फुनि, न भवेत् कहतां नहीं छे, किसा थकी नहीं छे। यत् सत् तत् नाशं न उपैति—यत् सत् कहतां जो कुछ सत्ता स्वरूप वस्तु छे तत् नाशं न उपैति कहतां सो तो विनाश कहुं नहीं पावै छे। इति नियतं वस्तुस्थितिः व्यक्ता—इति कहतां इहि कारण तहि नियतं कहतां अवश्यमेव, वस्तुस्थितिः कहतां वस्तुको अविनश्वरपनो व्यक्ता कहतां प्रगट छे। किल तत् ज्ञानं स्वयमेव सत् ततः

अस्य अपरैः किं त्रातं–किल कहतां निह्चासो, तत् ज्ञानं कहतां इसो छे जीवको शुद्ध स्वरूप, स्वयमेव सत् कहतां सहज ही सत्ता स्वरूप छे, ततः कहतां तिहि कारणतहि, अस्य कहतां कोई द्रव्यांतर तिहकरि, किं त्रातं कहतां इहि वस्तुको कायो राखिसेगो। भावार्थ इसो जो–म्हाको रक्षक कोई छे कि नहीं सो इसो भय सम्यग्दृष्टि जीवको न होई जातहि इसो अनुभवै छे जो शुद्ध जीव स्वरूप सहज ही शाश्वतो छे इहिको कोई कांयो राखिसे।

भावार्थ–यहांपर यह झलकाया है कि अरक्षाभय तो उसे होसक्ता है जिसके पास ऐसी कोई वस्तु हो जिसे कोई परकी रक्षाकी जरूरत हो–ज्ञानी समझता है कि मैं नित्य ज्ञानस्वरूप हूं। मेरा ज्ञान सत् स्वरूप है। यह सदा ही सुरक्ष्य है। इसके लिये किसी परकी रक्षाकी आवश्यक्ता नहीं। इसलिये बिलकुल निश्चिंत होकर अपने शुद्ध स्वरूपका अनुभव करता है। परमात्मप्रकाशमें कहा है–

दव्वइ जाणहि ताहं छह–तिहुयणु भरियउ जेहिं। आइविणासविवज्जियहिं णाणिहि पभणियएहिं ॥१४२॥

भावार्थ–इस लोकमें छः द्रव्य भरे हुए हैं न उनका आदि है न नाश है ज्ञानी ऐसा जानता है। व ज्ञानियोंने ऐसा ही कहा है। इसलिये मेरा भी नाश नहीं है मैं सत् हूं, जो जो सत् है सो सुरक्ष्य हैं–

छप्पै—जो स्ववस्तु सत्ता स्वरूप, जगमांहि त्रिकाल गत। तास विनाश न होय, सहज निश्चय प्रमाण मत। सो मम आतम दरब, सरवथा नहि सहाय धर ॥ तिहि कारण रक्षक न होय भक्षक न कोय पर। जब यह प्रकार निरधार किय, तब अनरक्षा भय नसित। ज्ञानी निशंक निकलंक निज, ज्ञानरूप निरखंत नित ॥ ५२ ॥

शार्दूलविक्रीडित छन्द–स्वं रूपं किल वस्तुनोऽस्ति परमा गुप्तिः स्वरूपेण य-
च्छक्तः कोऽपि परः प्रवेष्टुमकृतं ज्ञानं स्वरूपं च नुः।
अस्या गुप्तिरतो न काचन भवेत्तद्भीः कुतो ज्ञानिनो
निशङ्कः सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विन्दति ॥ २६ ॥

खंडान्वय सहित अर्थ–स ज्ञानं सदा विन्दति–स कहतां सम्यग्दृष्टि जीव, ज्ञानं कहतां शुद्ध चैतन्य वस्तुको, सदा विंदति कहतां निरंतरपनै अनुभवै छे, आस्वादै छे। किसो छे ज्ञान, स्वयं कहतां अनादि सिद्ध छे, और किसो छे, सहजं कहतां शुद्ध वस्तु स्वरूप छे। और किसो छे, सततं कहतां अखंड धाराप्रवाह रूप छे। किसो छे सम्यग्दृष्टी जीव। निःशंकः कहतां वस्तु जतन सो राखिजै नहीं तो कोई चुराइ लेसै इसो जो अगुप्तिभय तिहितै रहित छे। अतः अस्य काचन अगुप्तिः एव न भवेत ज्ञानिनः तद्भीः कुतः–अतः कहतां इहि कारण तहि, अस्य कहतां शुद्ध जीवको, काचन

अगुप्तिः कहतां कोई प्रकारको अगुप्तपनो, न भवेत् कहतां नहीं छे। ज्ञानिनः कहतां सम्यग्दृष्टि जीवको तद्भीः कहतां म्हारो कछु कोई छिनाइ मत लेइ इसी अगुप्तभय, कुतः कहतां सम्यग्दृष्टिको कहां तहि होइ अपि तु न होइ। किसा थकी–किल वस्तुनः स्वरूपं परमा गुप्तिः अस्ति–किल कहतां निहचासों, वस्तुनः कहतां जो कोई द्रव्य छे तिहको स्वरूप कहतां जो कछु निज लक्षण छे, परमा गुप्तिः अस्ति कहतां सर्वथा प्रकार गुप्त छे, किसा थकी–यत्स्वरूपे कोपि परः प्रवेष्टुं न शक्तः यत् कहतां वस्तु के सत्व विषै, कोपि परः कहतां कोई अन्य द्रव्य अन्य द्रव्य विषै, प्रवेष्टुं कहतां संक्रमण कहु, न शक्तः कहतां समर्थ नहीं छे। नुः ज्ञानं स्वरूपं च–नुः कहतां आत्म द्रव्यको ज्ञानं स्वरूपं कहतां चैतन्य स्वरूप छे, च कहतां सोई ज्ञानस्वरूप किसो छे। अकृतं–कहतां कि नहीं कीयो नहीं कोई हरि सके नहीं। भावार्थ इसो–जो सर्व जीवहको इसो भय होइ छै, जो म्हारो कछु कोई चुराइ लेसी, छीन लेसी सो इसो भय सम्यग्दृष्टीको न होइ। जिहि कारण तहि सम्यग्दृष्टी इसो अनुभवै छे, म्हारो तो शुद्ध चैतन्य स्वरूप छे तिहइ तो कोई चुराइ सकै नहीं छिनाइ सकै नहीं, वस्तुको स्वरूप अनादि निधन छे।

भावार्थ–सम्यग्दृष्टी जीव अपनी वस्तु अपने ही शुद्ध आत्माके ज्ञानादि गुणोंको मानता है धनादिको मानता ही नहीं। इससे उसको धनादिके चले जानेका भय नहीं होता है। योग्य उपाय करते हुए भी यदि चला जाय तो खेद नहीं करता है। लक्ष्मी कर्म आधीन थी, पुण्य कर्मके क्षयसे चली गई। इसमें कोई आश्चर्य नहीं मानता है। अपने आत्मीक गुण तो आत्मासे अमिट हैं। उनको न कोई दूसरा कर सक्ता है न कोई छीन सक्ता है। ऐसा ज्ञान सदा निर्भय रहकर निज सम्पदाका भोग करता है। तत्व०में कहा है–

स्मरन्ति परद्रव्याणि मोहान्मूढाः प्रतिक्षणं, शिवाय स्वं चिदानन्दमयमेव कदाचन ॥ १८।५॥

भावार्थ–मूर्ख मिथ्यादृष्टी ही मोहसे परद्रव्योंकी चिंता किया करते हैं, वे कभी भी मोक्षके लिये चिदानन्दमई स्वभावका अनुभव नहीं करते, सम्यग्दृष्टि इससे विपरीत होता है।

छप्पै–परम रूप परतच्छ, जासु लच्छन चित मंडित। पर परवेश तहं नांहि, मांहि महि अगम अखंडित। सो मम रूप अनूप, अकृत अनमित अटूट धन। तांहि चोर किम गहे, ठौर नहिं लहे और जन। चितवंत एम धरि ध्यान जब, तब अगुप्त भय उपशमित। ज्ञानी निशंक निकलंक निज, ज्ञानरूप निरखंत नित ॥ ५१ ॥

शार्दूलविक्रीडित छन्द–प्राणोच्छेदमुदाहरन्ति मरणं प्राणाः किलास्यात्मनो
ज्ञानं तत्स्वयमेव शाश्वततया नोच्छिद्यते जातुचित्।
तस्यातो मरणं न किञ्चन भवेत्तद्भीः कुतो ज्ञानिनो
निःशङ्कः सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विन्दति ॥ २७ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—स ज्ञानं सदा विन्दति—स कहतां सम्यग्दृष्टि जीव, ज्ञानं कहतां शुद्ध चैतन्य वस्तुको, सदा कहतां निरंतरपनै, विंदति कहतां आस्वादे छे, किसो छे ज्ञानं, स्वयं कहतां अनादि सिद्ध छे, और किसो छे सततं कहतां अखंड धाराप्रवाह रूप छे, और किसो छे, सहजं कहतां विना कारण सहज ही निःपन्न छे, किसो छे सम्यग्दृष्टि जीव, निःशंकः कहतां मरण शंका दोष तहि रहित छे, कायो विचारतां निःशंक छे। अतः तस्य मरणं किंचन न भवेत् ज्ञानिनः तद्भीः कुतः—अतः कहतां इहि कारण तहि, तस्य कहतां आत्मद्रव्यको, मरणं कहतां प्राण वियोग, किंचन कहतां सूक्ष्म मात्र, न भवेत् कहतां नहीं होइ छे तिहितै, ज्ञानिनः कहतां सम्यग्दृष्टिको, तद्भीः कहतां मरणनो भय, कुतः कहतां कहां तहि होइ, अपि तु न होइ, जिहि कारण तहि। प्राणोच्छेदं मरणं उदाहरन्ति—प्राणोच्छेदं कहतां इंद्रिय बल उस्वासु आयु इसा छे जे प्राण त्यहको विनाश इसो, मरणं कहतां इसा सो मरणो कहिजै, उदाहरंति कहतां अरहंतदेव इसो कहै छे। किल आत्मनः ज्ञानं प्राणाः—किल कहतां निहचासों, आत्मनः कहतां जीव द्रव्यकै, ज्ञानं प्राणाः कहतां शुद्ध चैतन्य मात्र इसो प्राण छे। तत् जातुचित् न उच्छिद्यते—तत् कहतां शुद्ध ज्ञान, जातुचित् कहतां कौनहू काल, न उच्छिद्यते कहतां नहीं विनशै छे। किसा थकी—स्वयं एव शाश्वतया—स्वयं एव कहतां विना ही जतन, शाश्वतया कहतां अविनश्वर छे। तिहि थकी। भावार्थ इसो—जो सर्व मिथ्यादृष्टी जीवको मरणको भय होइ छे। सम्यग्दृष्टी जीव इसो अनुभवै छे। जो म्हारो शुद्ध चैतन्य मात्र स्वरूप छे सो तो विनशै नहीं। प्राण विनशै छे सो तो म्हारो स्वरूप छे ही नहीं पुद्गलको स्वरूप छे, तिहितै म्हारो मरण होय तो डरवौं, हौं किसाको डरवौं म्हारो स्वरूप शाश्वतो छे।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टी अपने शुद्ध ज्ञानमय आत्माको ही अपना प्राण समझता है सो अविनाशी है। इसलिये उसको व्यवहार प्राणोंके वियोग व मरणकी कोई चिंता नहीं होती है वह सदा अपनेको जीवन्मुक्त समझता है। तत्व०में कहा है—

पुरुसायार पमाणु जिय अप्पा एहु पवित्तु। जोइज्जइ गुणणिम्मलउ णिम्मलतेय फुरंतु ॥ ९२ ॥

भावार्थ—ज्ञानी अपने आत्माको-पुरुषाकार, पवित्र, शुद्ध गुणधारी व निर्मलज्ञानरूपी तेजसे प्रकाशमान अनुभव करता रहता है।

छप्पै—फरस जीभ नाशिका, नयन अरु श्रवण अक्ष इति। मन वच तन बल तीन, स्वास उस्वास आयु थिति। ये दश प्राण विनाश, ताहि जग मरण कहीजे। ज्ञान प्राण संयुक्त, जीव तिहुं काल न छीजे। यह चिंत करत नहि मरण भय, नय प्रमाण जिनवर कथित। ज्ञानी निशंक निकलंक निज, ज्ञानरूप निरखंत नित ॥ ५४ ॥

शार्दूलविक्रीडित छन्द—एकं ज्ञानमनाद्यनन्तमचलं सिद्धं किलैतत्स्वतो

यावत्तावदिदं सदैव हि भवेन्नात्र द्वितीयोदयः ।
तन्नाकस्मिकमत्र किञ्चन भवेत्तद्भीः कुतो ज्ञानिनो
निःशङ्कः सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विन्दति ॥ २८ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—स ज्ञानं सदा विंदति—स कहतां सम्यग्दृष्टि जीव, ज्ञानं कहतां शुद्ध चैतन्य वस्तुको, सदा कहतां त्रिकाल विषै, विंदति कहतां आस्वादै छे, किसो छे ज्ञान, स्वयं कहतां सहजही तहि उपज्यो छे, और किसो छे, सततं कहतां अखंड धाराप्रवाह रूप छे और किसो छे, सहजं कहतां बिन उपाय इसो ही वस्तु छे । किसो छे सम्यग्दृष्टी जीव, निःशंकः कहतां आकस्मिक भय तहि रहित छे, आकस्मिक कहतां अनचिंत्यो तत्काल मात्र अनिष्ट उपजै । कांथी विचारे छे सम्यग्दृष्टी जीव, अत्र ततः आकस्मिकं किंच न भवेत ज्ञानिनः तद्भीः कुतः—अत्र कहतां शुद्ध चैतन्य वस्तु विषै, तत् कहतां कह्यो छे लक्षण जिहिको इसो, आकस्मिकं कहतां क्षण मात्र माहै अन्य वस्तु तहि अन्य वस्तुपनो, किंच न भवेत कहतां इसो क्यों छे ही नहीं, तिहितै, ज्ञानिनः कहतां सम्यग्दृष्टी जीवको, तद् भीः कहतां आकस्मिकपनाको भय, कुतः कहतां कहां तहि होइ, अपि तु न होइ । किसा थे, एतत् ज्ञानं स्वतः यावत्—एतत् ज्ञानं कहतां शुद्ध जीव वस्तु, स्वतः यावत् कहतां आपणे सहज जिसो छे जेतो छे । इदं तावत् सदा एव भवेत्—इदं कहतां शुद्ध वस्तु मात्र तावत कहतां तिसो छे तेतो छे । सदा कहतां अतीत अनागत वर्तमान काल गोचर, एव भवेत् कहतां निहचासों इसो ही होइ । अत्र द्वितीयोदयः न—अत्र कहतां शुद्ध वस्तु विषै, द्वितीयोदयः कहतां और किसो स्वरूप, न कहतां नहीं होइ छे । किसो छे ज्ञान, एकं कहतां समस्त विकल्प तहि रहित छे, और किसो छे । अनाद्यनन्तं कहतां नहीं छे आदि नहीं छे अन्त जिहिको इसो छे, और किसो छे, अचलं कहतां आपणा स्वरूप तहि नहीं विचलै छे । और किसो छे, सिद्धं कहतां निःपन्न छे ।

भावार्थ—ज्ञानीको अकस्मात् भय भी नहीं होता क्योंकि वह अपने ज्ञानादि गुणोंको ही सम्पत्ति मानता है जिनका कभी नाश हो नहीं सक्ता । शरीरादि पदार्थोंका बिगाड़ व नाश यदि अकस्मात् कर्मोंके उदयसे हो तो ज्ञानीको इसकी चिंता नहीं क्योंकि वे सब परवस्तु हैं व शाश्वत नहीं हैं, यानी शुद्ध आत्माहीका अनुभव करता है ।

आराधना सारमें कहा है—

सद्दा दंसण णाणं चारित्तं तह तवो य सो अप्पा चइऊण रायदोसे आराहउ सुद्धमप्पाणं ॥ १० ॥

भावार्थ—सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तथा तपरूप यही आत्मा है इसलिये रागद्वेष छोड़कर शुद्धात्माका ही आराधन करो ।

छप्पै—शुद्ध बुद्ध अविरुद्ध, सहज सुसमृद्ध सिद्ध सम। अलख अनादि अनंत, अतुल अविचल स्वरूप मम। चिदविलास परकाश, वीत विकलप सुख थानक। जहां दुविधा नहि केइ, होइ तहां कछु न अचानक। जब यह विचार उपजंत तब, अकस्मात भय नहि उदित। ज्ञानी निशंक निकलंक निज, ज्ञानरूप निरखंत नित ॥ ५५ ॥

मंदाक्रांता छन्द—टंकोत्कीर्णस्वरसनिचितज्ञानसर्वस्वभाजः
सम्यग्दृष्टेर्यदिह सकलं घ्नन्ति लक्ष्माणि कर्म।
तत्तस्यास्मिन्पुनरपि मनाक् कर्म्मणो नास्ति बन्धः
पूर्वोपात्तं तदनुभवतो निश्चितं निर्ज्जरैव ॥ २९ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—यत् इह सम्यग्दृष्टेः लक्ष्माणि सकलं कर्म्म घ्नन्ति—यत् कहतां जिहि कारण तहि, इह कहतां विद्यमान छे, सम्यग्दृष्टेः कहतां शुद्ध स्वरूप परिणवी छे जो जीव, तिहिके, लक्ष्माणि कहतां निःशंकित, निःकांक्षित निर्विचिकित्सा, अमूढ दृष्टि, उपगूहन, स्थितिकरण, वात्सल्य, प्रभावनांग इसा छे जे गुण, सकलं कर्म कहतां ज्ञानावरणादि अष्ट प्रकार पुद्गल द्रव्यको परिणमन, घ्नंति कहतां हनहि छे। भावार्थ इसो—जो सम्यग्दृष्टी जीवके जेते केई गुण छे ते शुद्ध परिणमन रूप छे तिहिते कर्मकी निर्जरा छे। तत् तस्य अस्मिन् कर्मणः मनाक् बन्धः पुनरपि नास्ति—तत् कहतां तिहि कारण तहिं, तस्य कहतां सम्यग्दृष्टी जीव कहुं, अस्मिन् कहतां शुद्ध परिणामके होते संते कर्मणः कहतां ज्ञानावरणादि कर्मको, मनाक् बंधः कहतां सूक्ष्म मात्र फुनि बंध, पुनरपि नास्ति कहतां कवहू नाहीं। तत् पूर्वोपात्तं अनुभवतः निश्चितं निर्जरा एव—तत् कहतां ज्ञानावरणादि कर्म, पूर्वोपात्त कहतां सम्यक्त उपजतां पहिले अज्ञान राग परिणाम करि बांध्या था जे कर्म तिहिको उदयको, अनुभवतः कहतां भोगवै छे। इसा सम्यग्दृष्टी जीवको, निश्चितं कहतां निहचासों, निर्जरा एव कहतां ज्ञानावरणादि कर्मको गलिवो छे। किसो छे सम्यग्दृष्टि जीव, टंकोत्कीर्णस्वरसनिचितज्ञानसर्वस्वभाजः—टंकोत्कीर्ण कहतां शाश्वतो छे इसो, स्वरस कहतां स्वपर ग्राहक शक्ति तिहिकरि, निचित कहतां संपूर्ण छे, ज्ञान कहतां प्रकाशगुण सोई छे, सर्वस्व कहतां आदि मूल जिहिको इसो छे जीवद्रव्य तिहिको, भाजः कहतां अनुभव समर्थ छे, इसो छे सम्यग्दृष्टि जीवको नूतन कर्मको बंध नहीं छे, पूर्वबद्ध कर्मकी निर्जरा छे।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टीके भीतर निश्चयनयसे आठों अंग विराजमान रहते हैं वह न तो सातों भय करता है, न विषयाकांक्षा रखता है, न ग्लानि भाव किसी पर लाता है, न वह गूढ़ भाव ही रखता है, वह नित्य आत्मगुणोंका वर्द्धक है। उन हीका स्थितिकरण करता है उन हीमें प्रेमालु है व उन हीकी प्रभावना करता हुआ परमानंदका भोग करता है। ऐसे आत्म रसमें भीजे हुए ज्ञानीके उदय प्राप्त कर्मकी निर्जरा ही होती है, बंध जो कुछ

गुणस्थानानुसार है वह अबंधके तुल्य है, उसके शुद्धात्मानुभवमें कभी भी बाधक नहीं हो सक्ता है। निर्ममत्व भाव ज्ञानीका चिन्ह है, उसके सम्बंधमें तत्व० में कहा है—

निर्ममत्वं परं तत्वं ध्यानं चापि व्रतं सुखं, शीलं स्वरोधनं तस्मान्निर्ममत्वं विचिंतयेत् ॥ १४।१० ॥

भावार्थ—ममता रहित होना बड़ा तत्व है यही ध्यान है, व्रत है, सुख है, शील है, व इंद्रिय निरोध है। इसलिये निर्ममत्व भावका सदा चिंतवन करें।

छप्पै—जो परगुण त्यागन्त, शुद्ध निज गुण गहंत ध्रुव। विमल ज्ञान अंकुरो, जास घटमांहि प्रकाश हुव ॥ जो पूरव कृतकर्म, निर्जरा धारि बहावत। जो नव बन्ध निरोधि, मोक्ष मारग मुख धावत ॥ निःशंकितादि जस अष्ट गुण, अष्ट कर्म अरि संहरत। सो पुरुष विचक्षण तासु पद, बनारसी वन्दन करत ॥ ५६ ॥

सोरठा—प्रथम निसंशे जानि, द्वितीय अवंछित परिणमन। तृतीय अंग अगिलान, निर्मल दृष्टि चतुर्थ गुण ॥ पंच अकथ परदोष, थिरी करण छट्ठम सहज। सप्तम वत्सल पोष, अष्टम अंग प्रभावना ॥ ५७।५८ ॥

सवैया ३१ सा—धर्ममें न संशे शुभकर्म फलकी न इच्छा, अशुभको देखि न गिलानि आणे चित्तमें ॥ साचि दृष्टि राखे काहू प्राणीको न दोष भाखे, चंचलता भानि थीति ठाणे बोध चित्तमें ॥ प्यार निज रूपसों उच्छाहकी तरंग उठे, एह आठो अंग जब जागे समकितमें ॥ ताहि समकितको धरेसो समकितवंत, वेहि मोक्ष पावे वो न आवे फिर इत्वमें ॥ ५९ ॥

मंदाक्रांता छन्द—रुन्धन्बन्धं नवमिति निजैः सङ्गतोऽष्टाभिरङ्गैः

प्राग्बद्धं तु क्षयमुपनयन्निर्जरोज्जृम्भणेन।
सम्यग्दृष्टिः स्वयमतिरसादादिमध्यान्तमुक्तं
ज्ञानं भूत्वा नटति गगनाभोगरङ्गं विगाह्य ॥ ३० ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—सम्यग्दृष्टिः ज्ञानं भूत्वा नटति—सम्यग्दृष्टिः कहतां शुद्ध स्वभावरूप होइ करि परिणयो छे जो जीव, ज्ञानं भूत्वा कहतां शुद्ध ज्ञान स्वरूप होइ करि, नटति कहतां आपणा शुद्ध स्वरूप सो परिणवे छे, किसो छे शुद्ध ज्ञान, आदिमध्यांतमुक्तं—कहतां अतीत अनागत वर्तमान काल गोचर शाश्वतो छे, कायो करि। गगनाभोगरङ्गं विगाह्य—गगन कहतां जीवको शुद्ध स्वरूप इसो छे, अभोगरंग कहतां अखाड़ाकी नाचिवाकी भूमि, तिहिको विगाह्य कहतां करि छे अनुभव गोचर जहां इसो छे ज्ञान मात्र वस्तु, किसा थकी, स्वयं अतिरसात्—कहतां अनाकुलत्व लक्षण अतींद्रिय सुख तिहिके पाया थकी, किसो छे सम्यग्दृष्टि जीव, नवं बन्धं रुन्धन्—नवं कहतां धाराप्रवाहरूप परिणवे छें, जो ज्ञानावरणादि रूप पुद्गल पिंड इसो जो बन्धं कहतां जीवका प्रदेशह सो एक क्षेत्रावगाह तिहिको, रुन्धन् कहतां मेटतो होतो। जिहिते निजैः अष्टाभिः अङ्गैः संगतः—निजैः अष्टाभिः कहतां अपने ही निःशंकित, निःकांक्षित इत्यादि कह्या छे जे आठ, अंगैः कहतां

सम्यक्त्वका सारका गुण छे त्याहसो, संगतः कहतां भावरूप परिणवो छे। इसो छे, और किसो छै सम्यग्दृष्टि जीव, तु प्राग्वद्धं कर्म्म क्षयं उपनयन्-तु कहतां दूजा काज इसो फुनि होइ छै। प्राग्बद्धं कहतां दुबेला बांधा छे, ज्ञानावरणादि कर्म कहतां पुद्गल पिंड तिहिको, क्षयं कहतां मूल तहि सत्ताको नाश, उपनयन् कहतां करतो होतो किसे करि। निर्ज्जरोज्जृम्भणेन-निर्जरा कहतां शुद्ध परिणाम तिहिके, अजृंभणेन-कहतां प्रगटपना करि।

भावार्थ-सम्यग्दृष्टी जीवकी परिणति बिलकुल संसारसे पराङ्मुख होजाती है, वह अपने शुद्ध आत्मीक रसका ही आस्वादी होजाता है। उसी आत्मीक अखाडेमें ही कल्लोल करता है। इस शुद्ध स्वात्मानुभवके प्रतापसे ऐसा नवीन कर्मोंका बंध नहीं होता कि जिसको बंध कहा जासके। पूर्व कर्म उदयमें आकर लगातार झड़ते जाते हैं, व योंही गलते जाते हैं। इसीसे वह शीघ्र ही मुक्त होनेके सन्मुख होजाता है, आत्मानुभवकी बड़ी अपूर्व महिमा है। तत्व०में कहा है—

शुद्ध-चिद्रूपके लब्धे कर्तव्यं किंचिदस्ति न अन्य, कार्यकृतो चिंता वृथा मे मोहसम्भवा ॥१०।१३॥

भावार्थ-शुद्ध चैतन्य रूपके लाभ होनेपर कोई और काम करना रहा नहीं। इसलिये मोहमई अन्य कार्यकी चिंता मेरे लिये वृथा है।

सवैया ३१ सा—पूर्व बन्ध नासे सो तो संगीत कला प्रकासे, नव बन्ध रोधि ताल तोरत उछारिके ॥ निशंकित आदि अष्ट अंग संग सखा जोरि, समता अलाप चारि करे स्वर भरिके ॥ निरजरा नाद गाजे ध्यान मिरदंग बाजे, छक्यो महानन्दमें समाधि रीझी करिके ॥ सत्ता रंगभूमिमें मुकत भयो तिहूं काल, नाचे शुद्धदृष्टि नट ज्ञान स्वांग धरिके ॥ ६० ॥

इति निर्जरा द्वार समाप्त। अथ प्रविशति बन्धः-

आठवां बंध अधिकार।

दोहा-कही निर्जराकी कथा, शिवपथ साधन हार। अब कछु बंध प्रबन्धको, कहुं अल्प व्यवहार ॥ ६१ ॥

शार्दूलविक्रीडित छन्द-रागोद्गारमहारसेन सकलं कृत्वा प्रमत्तं जग-
त्क्रीडन्तं रसभावनिर्भरमहानाट्येन बन्धं धुनत्।
आनन्दामृतनित्यभोजिसहजावस्थां स्फुटन्नाटय-
द्धीरोदारमनाकुलं निरुपधिज्ञानं समुन्मज्जति ॥ १ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ-ज्ञानं समुन्मज्जति-ज्ञानं कहतां शुद्ध जीव, समुन्मज्जति कहतां प्रगट होइ छै। भावार्थ-इहांतै लेइ करि जीवका शुद्ध स्वरूप कहिजै छे। किसो छे शुद्ध ज्ञान, आनन्दामृतनित्यभोजि-आनन्द कहतां अतींद्रिय सुख इसो छे अमृत कहतां अपूर्व लब्धि तिहको, नित्यभोजि कहतां निरंतरपने आस्वादन शील छै। स्फुटं सहजावस्थां

नाटयत्-स्फुटं कहतां प्रगटपने, सहजावस्थां कहतां आपणो शुद्ध स्वरूप कहु, नाटयत् कहतां प्रगट करै छै। और किसो छे, धीरोदारं-धीर कहतां अविनश्वर सत्ता रूप छे। उदारं कहतां धाराप्रवाह रूप परिणमन स्वभाव छे। और किसो छे, अनाकुलं-कहतां सर्व दुःख तहि रहित छे। और किसो छे। निरुपधि-कहतां समस्त कर्मकी उपाधि तहि रहित छै। कांयो करतो होतो ज्ञान प्रगट होइ छै। बंधं धुनत्-बन्धं कहतां ज्ञानावरणादि तिहिको; धुनत् कहतां मेटतो होतो। किसो छे बंध, क्रीडंतं कहतां प्रगटपने गर्भ छै, किसे करि क्रीडै छै। रसभावनिर्भरमहानाट्येन-रसभाव कहतां समस्त जीव राशिको अपने वश करि उपजो छे, अहंकार लक्षण गर्व तिह करि, निर्भर कहतां भयो छै इसो जो, महानाटयेन कहतां अनंतकाल तहि लेइ करि अखारेको संप्रदाय तिह करि, कायोकरि इसो छै बंध, सकलं जगत् प्रमत्तं कृत्वा-संकलं जगत् कहतां सर्व संसार जीवराशि तिहिको, प्रमत्तं कृत्वा कहतां जीवको शुद्धस्वरूप तहि भ्रष्ट करि, किसे करि-रागोद्गारमहारसेन-राग कहतां रागद्वेष मोह रूप अशुद्ध परिणति तिहको, उद्गार कहतां अति ही आधिक्यपनो इसो जो महारस कहतां मोहरूप मदिरा तिहकरि। भावार्थ इसो जो यथा कोई जीव मदिरा पिवाइ करि विकल कीनै छै, सर्वस्व छिनाइ लीजे छे। पदतैं भ्रष्ट कीजे छे तथा अनादि तहि लेइ करि सर्व जीवराशि रागद्वेष मोह अशुद्ध परिणाम करि मतवालो हूओ छे, तिहितें ज्ञानावरणादि कर्मको बंध होइ छे। इसा बंधको शुद्ध ज्ञानको अनुभव मेटनशील छै, तिहितें शुद्ध ज्ञानउपादेय छै।

भावार्थ-यहां बंध तत्त्वको कहते हुए शुद्ध ज्ञानके अनुभवकी महिमा बताई है। जिस बंधने अनादिसे संसारी जीवोंको अपने पदसे भ्रष्ट कर रक्खा है उस बंधको स्वात्मानुभव नाश कर डालता है।

सवैया ३१ सा—मोह मद पाइ जिन्हे संसारी विकल कीने, याहीते अजानवान विरद वहत है ॥ ऐसो बंधवीर विकराल महा जाल सम, ज्ञान मन्द करे चन्द राहु ज्यों गहत है ॥ ताको बल भंजिवेको घटमें प्रगट भयो, उद्धत उदार जाको उदिम महत है ॥ सो है समकित सूर आनन्द अंकूर ताहि, नीरखि बनारसी नमोनमो कहत है ॥ १ ॥

छंद स्रग्धरा—न कर्म्मबहुलं जगन्नचलनात्मकं कर्म्म वा-
नेककरणानि वा न चिदचिद्वधो बन्धकृत।
यदैक्यमुपयोगभूः समुपयाति रागादिभिः
स एव किल केवलं भवति बन्धहेतुर्नृणाम् ॥ २ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ-प्रथम ही बंधको स्वरूप कहिजे छे। यत् उपयोगभूः रागादिभिः ऐक्यं समुपयाति स एव केवलं किल नृणां बंधहेतुः भवति-यत् कहतां जो,

उपयोग कहतां चेतनागुण सोई छे, मूः कहतां मूळ वस्तु, रागादिभिः कहतां रागद्वेष मोह रूप अशुद्ध परिणाम त्यांह सो ऐक्यं कहतां मिश्रितपनो तिहको, समुपयाति कहतां तिहरूप परिणवै छे, एव कहतां एतावन्मात्र केवलं कहतां अन्य सहाय विना, किल कहतां निहचासों, नृणां कहतां जावंत संसारि जीव राशि त्यांहको, बंधहेतुः भवति कहतां ज्ञानावरणादि कर्म बंधको कारण होइ छे। इहां कोई प्रश्न करै छे जो बंधको कारण इतनो ही छे, के और फुनि किछू बंधको कारण छै, समाधान इसो जो बंधको कारण इतनो ही छै, और तो क्यों न छे इसो कहिये छे, कर्म्मबहुलं जगत न बंधकृत वा चलनात्मकं कर्म्म न बंधकृत् व अनेककरणानि न बंधकृत् वा चिद्‌चिद्वधः न बंधकृत्—कर्म कहतां ज्ञानावरणादि कर्मरूप बंधिवाको योग्य छे जे कार्मण वर्गणा त्यांह करि बहुलं कहतां घृत घटकीनांई भर्यो छै इसो जो, जगत कहतां तीनसै तेतालीस राजू प्रमाण लोकाकाश प्रदेश, न बंधकृत कहतां सो फुनि बंधको कर्ता न छै। समाधान इसो जो रागादि अशुद्ध परिणाम विना कार्मण वर्गणा मात्र करि बंध होतौ तो मुक्त जीव छे त्यांह फुनि बंध होतो। भावार्थ इसो—जो रागादि परिणाम छै तो ज्ञानावरणादि कर्मको बंध छे तो फुनि कार्मण वर्गणाको सारो क्यों न छे। जो रागादि अशुद्धभाव न छे तो कर्मको बंध न छे, तो फुनि कार्मण वर्गणाको सारो क्यों न छे, चलनात्मकं कहतां मनोवचकाय योग, न बंधकृत कहतां सो फुनि बन्धको कर्ता न छे। भावार्थ इसो जो—मन बचन काय योग बन्धको कर्ता होतो तो तेरहवें गुणस्थान मनोवचन कायका योग छै त्यांह करि फुनि कर्मको बन्ध होतो तिहितै जो रागादि अशुद्ध भाव छे तो कर्मको बंध छे तो फुनि मनोवचन काय योगइको सारो क्यों न छे। रागादि अशुद्ध भाव न छे तो कर्मको बंध न छे तो फुनि मनो वचन कायका योगको सारो क्यों न छै। अनेक करणानि कहतां पांच इंद्रिय, ब्यौरो स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र, छठो मन, न बंधकृत् कहतां एता फुनि बन्धको कर्ता न छे। समाधान इसो जो सम्यग्दृष्टि जीवको पांच इंद्रिय छे, मन फुनि छे, त्यांह करि पुद्गल द्रव्यका गुणको ज्ञायक फुनि छै। जो पंच इंद्रिय मन मात्र करि कर्मको बन्ध होतो तो सम्यग्दृष्टि जीवको फुनि बन्ध सिद्ध होतो तिहितैं, भावार्थ इसो—जो रागादि अशुद्ध भाव छे तो कर्मको बन्ध छे तो फुनि पंच इंद्रिय छठा मनको सारो क्यों न छे। जो रागादि अशुद्ध भाव न छै तो कर्मको बन्ध न छे तो फुनि पंच इंद्रिय छठा मनको सारो क्यों न छे। चित् कहतां जीवको सम्बन्ध एकेंद्रियादि शरीर, अचित् कहतां जीव संबंध विना पाषाण लोह माटी त्यांहको, वध कहतां मूलतहि विनाश, अथवा पीड़ा, न बन्धकृत कहतां सो फुनि बन्धको कर्ता न होइ। समाधान इसो—जो कोई महा मुनीश्वर साद्र लिंगी मार्ग चलै छे, दैवसंयोग सूक्ष्म जीवहको बाधा होइ छे, सो भो जीव घात मात्र

बन्ध होतो तो मुनीश्वरके कर्मबंध होतो तिहिंतै भावार्थ इसो जो-रागादि अशुद्ध परिणाम छे तो कर्मको बन्ध छे। सो फुनि जीव घातको सारो क्यों न छे। जो रागादि अशुद्ध भाव न छे तो कर्मका बंध न छे तो जीव घातको सारो क्यों न छे।

भावार्थ-यहां यह बताया है कि कर्मबंधका निमित्त कारण संसारी जीवके भीतर वह उपयोग है जो रागद्वेप मोहसे मिला हुआ हो। इसके सिवाय और कुछ भी बन्धका कारण नहीं है भले ही लोकमें वर्गणा हमारे आसपास भरी हों, मन, वचन, कायका हलन चलन हो, इंद्रियाँ व मन अपने द्वारा ज्ञानका काम करें व कदाचित् जड़ चेतनका घात भी हो। तोभी बंध न होगा, यदि परिणाममें रागद्वेष मोह न हो। प्रयोजन यह है कि बंधके नाशका उपाय रागद्वेप मोह छोड़कर वीतराग शुद्ध परिणतिमें रमण करना है। हम यदि बाहरी आरम्भ भी छोड़ दें, परन्तु रागद्वेष मोह न छोड़ा तो कर्मका बंध रुक नहीं सक्ता है।

योगसारमें कहते हैं---

रायदोस बे परिहरइ जो अप्पा णिवसेइ। सो धम्मु वि जिणुउत्तियउ जो पंचम गइ देइ॥४७॥

भावार्थ-जो रागद्वेप दोनोंको त्याग कर अपने आत्मामें निवास करता है वही धर्मको सेवन करता है, वही मुक्ति प्राप्त करेगा, ऐसा श्री जिनेन्द्रने कहा है।

सवैया ३१ सा—जहां परमातम कलाको परकाश तहां, धरम धरामें सत्य सूरजकी धूप है॥ जहां शुभ अशुभ करमको गढास तहां, मोहके विलासमें महा अंधेर कूप है॥ फेली फिरे घटासी छटासी घन घटा बीचि, चेतनकी चेतना दुहूंधा गुपचूप है॥ बुद्धीसों न गही जाय बैनसों न कही जाय, पानीकी तरंग जैसे पानीमें गुडूप है॥ २॥

सवैया ३१ सा—कर्मजाल वर्गणासों जगमें न बंधे जीव, बंधे न कदापि मन वच काय जोगसों॥ चेतन अचेतनकी हिंसासों न बंधे जीव, बंधे न अलख पंच विषै विष रोगसों॥ कर्मसों अबंध सिद्ध जोगसों अबंध जिन, हिंसासों अबंध साधु ज्ञाता विषै भोगसों॥ इत्यादिक वस्तुके मिलापसों न बंधे जीव, बंधे एक रागादि अशुद्ध उपयोगसों॥ ३॥

शार्दूलविक्रीडित छन्द—लोकः कर्म्म ततोऽस्तु सोऽस्तु च परिस्पन्दात्मकं कर्म्मतत्-
तान्यस्मिन् करणानि सन्तु चिदचिद्व्यापादनं चास्तु तत्।
रागादीनुपयोगभूमिमनयद् ज्ञानं भवेत् केवलं
बन्धं नैव कुतोऽप्युपैत्ययमहो सम्यग्दृगात्मा ध्रुवं॥ ३॥

खण्डान्वय सहित अर्थ-अहो अयं सम्यग्दृगात्मा कुतः अपि ध्रुवं एव बन्धं न उपैति-अहो कहतां हो भव्यजीव! अयं सम्यग्दृष्टात्मा कहतां इसो छे जो शुद्ध स्वरूपको अनुभवनशील सम्यग्दृष्टी जीव, कुतोपि कहतां भोग सामग्रीको भोगवतां अथवा विन भोगवतां, ध्रुवं कहतां अवश्यकरि, एव कहतां निहचासों, बंधम् न उपैति कहतां ज्ञानावरणादि

कर्मबंधको नहीं करे छे। किसा छे सम्यग्दृष्टी जीव। रागादीन् उपयोगभूमिं अनयन्-रागादीन् कहतां अशुद्धरूप विभाव परिणामहको उपयोग, भूमि कहतां परिचेतनामात्र गुण प्रति, अनयन् कहतां विन परिणवतो होतो। केवलज्ञानं भवेत-कहतां मात्र ज्ञान स्वरूप रहै छे। भावार्थ इसो जो-सम्यग्दृष्टी जीवको बाह्य आभ्यंतर सामग्री ज्यों थी त्यों ही छे परंतु रागादि अशुद्ध रूप विभाव परिणति नहीं छे तिहितैं ज्ञानावरणादि कर्मको बंध न छे। ततः लोकः कर्म अस्तु व तत परिस्पंदात्मकं कर्म्म अस्तु अस्मिन् तानि करणानि संतु च तत् चिदचित् आपादनं अस्तु-ततः कहतां तिहिं कारण तहि, लोकः कर्म अस्तु कहतां कार्मण वर्गणा करि भरयो छे जो समस्त लोकाकाश सो तो ज्यों छे त्योंही रहो। च कहतां और, तत् परिस्पंदात्मकं अस्तु कहतां इसो छे जो आत्मप्रदेश कम्परूप मनोवचन कायके तीन योग ते फुनि ज्यों छे त्योंही रहो तथापि कर्मको बंध नहीं। कार्यो हुवे संते, तस्मिन् कहतां रागद्वेष मोहरूप अशुद्ध परिणामको गए संते, तानि करणानि संतु कहतां ते फुनि पांच इंद्रिय तथा मन सोइ छे त्योंही रहो, च कहतां और, तत चिदचित् व्यापादनं अस्तु कहतां पूर्वोक्त चेतन अचेतनको घात ज्यों होइथो त्योंही रहो। तथापि शुद्ध परिणामके होतां कर्मको बंध न छे।

भावार्थ-यहां यह बताया है कि सम्यग्दृष्टी जीवके ऐसा कुछ शुद्ध आत्माका प्रकाश भीतर होजाता है कि वह मिथ्यादृष्टीकी तरह मनोवचन कायसे बाहरी क्रिया करता रहता भी व भोग भोगता भी बंधको नहीं प्राप्त होता। मिथ्यादृष्टी जब लिप्त रहता है तब सम्यग्दृष्टी जलमें कमलकी तरह अलिप्त रहता है। अनन्तानुबंधी व मिथ्यात्व कर्मके उदय न होनेसे न तो उसके मोह है न गाढ़ रागद्वेष है। इसीसे उसके संसारवर्द्धक बंध नहीं होता है। बाहरसे दिखता है कि रागी है परंतु वह भीतर वीतरागी है। जैसा तत्व० में कहा है-

स्वात्मध्यानामृतं स्वच्छं विकल्पानपसार्य सत्। पिबति क्लेशनाशाय जलं शैवालवत्सुधीः ॥४।१०॥

भावार्थ-ज्ञानी जैसे प्यास दूर करनेको जलके ऊपर आई हुई काईको हटाकर निर्मल जलका पान करता है उसी तरह सम्यग्दृष्टी जीव सर्व अशुद्ध विकल्पोंको हटाकर अपने आत्माका ध्यान करके स्वच्छ आनन्दामृतका पान करता है।

सवैया ३१ सा-कर्मजाल वर्गणाको वास लोकाकाश मांहि, मन वच कायको निवास गति आयुमें ॥ चेतन अचेतनकी हिंसा वसे पुद्गलमें, विषै भोग वरते उदैके उरझायमें ॥ रागादिक शुद्धता अशुद्धता है अलखकी, यहै उपादान हेतु बंधके वढावमें ॥ याहीते विचक्षण अबंध कह्यो तिहूं काल, राग द्वेष मोह नाहि सम्यक् स्वभावमें ॥ ४ ॥

शार्दूलविक्रीडित छन्द-तथापि न निरर्गलं चरितुमिष्यते ज्ञानिनां
तदायतनमेव सा किल निरर्गला व्यापृतिः।

अकामकृतकर्म तन्मतमकारणं ज्ञानिनां
द्वयं न हि विरुद्धयते किमु करोति जानाति च ॥ ४॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—तथापि ज्ञानिनां निरर्गलं चरितुं न इष्यते—तथापि कहतां यद्यपि कार्मण वर्गणा, मनो वचन काय योग, पांच इंद्रिय मन, जीवको घात इत्यादि बाह्य सामग्री कर्मबंधको कारण न छे। कर्मको बन्धको कारण रागादि अशुद्धपनो छे, वस्तुको स्वरूप योंही छै तो फुनि, ज्ञानिनां कहतां शुद्ध स्वरूपको अनुभवशील छे जे सम्यग्दृष्टि जीव त्याहको निरर्गलं चरितुं कहतां प्रमादी होइ करि विषयभोग सेयां तो सेया ही। जीवहको घात हुओ तो हुओ ही। मनो, वचन, काय ज्यों प्रवर्तो त्यों ही इसी निरंकुश वृत्ति, न इष्यते कहतां जानि करि करतां कर्मको बंध नहीं छै। इसो तो गणधरदेव नहीं मानहि छे। किसा थै नहीं मानै छे। जिहितै, सा निरर्गला व्यापृतिः किल तदायतनं एव—सा कहतां पूर्वोक्त निरर्गला, व्यापृतिः कहतां बुद्धिपूर्वक जानि करि अन्तरंग रुचि करि विषय कषायह विषै निरंकुशपनै आचरण, किल कहतां निहचासों, तदायतनं एव कहतां अवश्य करि मिथ्यात्व रागद्वेष रूप अशुद्ध भावहं लीया छे, तिहिंतै कर्मबंधको कारण छे। भावार्थ इसो—जो इसी युक्तिका भाव मिथ्यादृष्टि जीवका होहि छे सो मिथ्यादृष्टि कर्मको कर्ता छतो ही छै, जिहितै, ज्ञानिनां तत् अकामकृत कर्म अकारणं मतं—ज्ञानिनां कहतां सम्यग्दृष्टि जीवहको, तत् कहतां जो कछु पूर्वबद्ध कर्मकै उदै करै छै, अकामकृत कर्म कहतां सो समस्त अवांछित क्रियारूप छे। तिहितै अकारणं मतं कहतां कर्मबंधको कारण न छै। इसो गणधरदेवइं मान्यो और योंही छे। कोई कहिसी, करोति जानाति च—करोति कहतां कर्मकै उदय करि होइ छे। जो भोग सामग्री सो हुई होती अन्तरंग रुचि सुहाइ छे। इसो फुनि छे, जानाति च कहतां शुद्ध स्वरूपको अनुभवै छे, समस्त कर्म जनित सामग्रीको हेय रूप जानै छे। इसो फुनि छे, इसो कोई कहै छे सो झूठो छे। जिहितै द्वयं किमु न हि विरुद्धयते—द्वयं कहतां ज्ञाता फुनि वांछक फुनि इसी दोइ क्रिया, किमु न हि विरुद्धयते कहतां विरुद्ध नहीं कांयो अपि तु सर्वथा विरुद्ध छै।

भावार्थ—यहांपर इस बातको स्पष्ट कर दिया है कि कोई हो तो वास्तवमें मिथ्यादृष्टि, और अपनेको सम्यग्दृष्टि मान ले, और यह समझ ले कि शास्त्रमें सम्यग्दृष्टिको भोग भोगते हुए भी कर्मका बंध नहीं कहा है, इसलिये मैं स्वच्छंद हो कर खूब भोग भोगूं मैं तो आपा परको भिन्न जानता हूं। मैं जीवका स्वभाव कर्ता भोक्ता नहीं है ऐसा समझता हूं, इससे मुझे कर्मका बंध नहीं होगा। जिस किसीके यह विपरीत बुद्धि होगी वह सम्यग्दृष्टी नहीं है मिथ्यादृष्टी ही है। सम्यग्दृष्टीके भीतर निःकांक्षित अंग होता

है इससे उसकी रुचि विषयभोगोंमें नहीं होती, वह तो आत्मसुखका रसिक होता है। ऐसे ज्ञानी जीवके जबतक अन्य अप्रत्याख्यान व प्रत्याख्यान कषायका उदय रहता है तबतक वे श्रावक तथा मुनिके व्रत पालनेको असमर्थ होते हैं व गृहस्थावस्थामें रहते हैं तब कषायकी प्रेरणासे जो कुछ अर्थ व काम पुरुषार्थका उद्यम करते हैं उसको कर्तव्य नहीं समझते हैं। त्यागने योग्य समझकर ही अरुचिपूर्वक करते हैं। जैसे कोई क्रीड़ामें आशक्त विद्यार्थी माता पिता व गुरुकी प्रेरणासे विद्या पढ़ता है परंतु रुचि नहीं लगाता है उसका चित्त विद्या पढ़ते हुए भी क्रीड़ाकी तरफ है वह विद्या पढ़ते हुए भी विद्या नहीं पढ़ रहा है, उसके चित्तमें विद्याका रंजायमान पना नहीं है। ज्ञानी सम्यग्दृष्टीके मनमें स्वात्मानन्दका भोग ही सुहाता है उसीमें उसका रंजायमानपना रहता है। वह अपनी श्रद्धा पूर्वक परिणतिसे रंच मात्र भी शरीर सम्बंधी क्रियाका करना नहीं चाहता है। परन्तु पूर्वबद्ध कषायके उदयसे लाचार होकर गार्हस्थ्य योग्य आचरण व विषयभोग करता है। परन्तु अपनेको ज्ञाता ही जानता है यह अमुक कर्मका उदय है ऐसा पहचानता है—अपनेको उस क्रियाका स्वामी कर्ता नहीं समझता है। यही कारण है जो विषयभोगोंका ऐसा प्रभाव ज्ञानीकी बुद्धिमें नहीं पड़ता है जिससे वह आत्म रुचिको छोड़ बैठे व विषय रुचिमें आरूढ़ होजावे। जैसे एक म्यानमें दो तलवार एक साथ नहीं रह सक्ती है इसी तरह एक ही भावमें एक साथ ज्ञातापना और कर्तापना नहीं रह सक्ता है। रुचिपना व अरुचिपना दोनों नहीं रह सक्ता है। तात्पर्य यह है कि जिस किसीमें अंतरंग रूचि विषय भोगोंकी ओर होगी वह सम्यग्दृष्टी नहीं है वह मिथ्यादृष्टी ही है। किसके रूचि है व किसके नहीं है, कौन मात्र ज्ञाता है व कौन मात्र कर्ता है यह पहचान स्वयं एक ज्ञानीहीको होसक्ती है। बड़ा ही सूक्ष्म विषय है। बहुधा बड़े बड़े पंडित व साधुसंत भी इसके समझनेमें भूल कर बैठते हैं और अपनेको तत्त्वज्ञानी व सम्यग्दृष्टी मानते हुए स्वच्छंद रूपसे विषयभोगोंमें प्रवृत्ति रखते रहते हैं। आचार्यका यह मत है कि ज्ञानीके भीतर तत्वरुचि ही होगी विषयरुचि न होगी, वह अतीन्द्रिय आनन्दका रुचिवान होगा। विषवत् कटुक विषयभोगोंके क्षणिक, अतृप्तिकारी, आकुलतामय सुखोंका रुचिवान न होगा। जिस किसीके रंजक भाव होगा वह रागद्वेष मोह सहित मिथ्यादृष्टी है। जिसके रंजकभाव नहीं है वह रागद्वेष मोह रहित सम्यग्दृष्टी है। इसीसे मिथ्यादृष्टी बन्धक है सम्यग्दृष्टी अबन्धक है। अज्ञानी संसारमार्गी है। ज्ञानी मोक्षमार्गी है। ज्ञानीके भावोंको ज्ञानी ही समझता है।

ज्ञानी जीवके भीतर जो भाव रहता है उस सम्बंधमें तत्व०में कहा है—

विषयानुभवे दुःखं व्याकुलत्वात् सतां भवेत्। निराकुलत्वतः शुद्धचिद्रूपानुभवे सुखं ॥ १९ ॥

भावार्थ-विषयोंके भोगोंसे आकुलता होती है, इससे प्राणियोंको दुःख होता है। शुद्ध चैतन्यरूपके अनुभवसे निराकुलता रहती है, इससे जीवोंको सुख रहता है।

सवैया ३१ सा—कर्मजाल जोग हिंसा भोगसों न बंधे है, तथापि ज्ञाता उद्यमी वखान्यो जिन वनेमें ॥ ज्ञानदृष्टि देत विषे भोगनिसों हेत दोऊं, क्रिया एक खेत योंतो बने नांहि जैनमें ॥ उदे बल उद्यम गहै पै फलको न चहै, निरदे दशा न होइ हिरदेके नैनमें ॥ आलस निरुद्यमकी भूमिका मिथ्यात मांहि, जहां न संभारे जीव मोह नींद सेनमें ॥ ५ ॥

दोहा—जब जाको जैसे उदै, तब सो है तिहि थान। शक्ति मरोरी जीवकी, उदे महा बलवान ॥६॥

सवैया ३१ सा—जैसे गजराज पर्यो कर्दमके कुण्डबीच, उद्दम अहढे पै न छूटे दुःख दंदसों ॥ जैसे लोह कंटककी कोरसों उझ्यो मीन, चेतन असाता लहे साता लहे संदसों ॥ जैसे महाताप सिरबाहिसो गगस्यो नर, तैसे निज काज उठि शके न सु छन्दसों ॥ तैसे ज्ञानवन्त सबै जाने न बसाय कछु, बंध्यो फिरे पूरव करम फल फंदसों ॥ ७ ॥

चौपाई—जो जिय मोह नींदमें सोवे। ते आलसी निरुद्यमी होवे ॥
दृष्टि खोलि जे जगे प्रवीना। तिनि आलस तजि उद्यम कीना ॥ ८ ॥

सवैया ३१ सा—काच बांधे शिरसों सुमणि बांधे पायनीसों, जाने न गंवार कैसा मणि कैसा कांच है ॥ योंही मूढ झूठमें मगन झूठहीकों दोरे, झूठ बात माने पै न जाने कहां सांच है ॥ मणिको परखि जाने जोहरी जगत मांहि, सांचकी समझ ज्ञान लोचनकी जांच है ॥ जहांको जु वासी सो तो तहांको परम जाने जाको जैसो स्वांग ताको तैसे रूप नाच है ॥ ९ ॥

दोहा—बंध बढावे बंध व्है, ते आलसी अजान। मुक्त हेतु करणी करे, ते नर उद्यम वान ॥१०॥

वसंततिलका—जानाति यः स न करोति करोति यस्तु जानात्ययं न खलु तत्किल कर्मरागः।
रागं त्वबोधमयमध्यवसायमाहुर्मिथ्यादृशः स नियतं स च बन्धहेतुः ॥९॥

खण्डान्वय सहित अर्थ-यः जानाति स न करोति-यः कहतां जो कोई सम्यग्दृष्टी जीव, जानाति कहतां शुद्ध स्वरूपको अनुभवे छे, स कहतां सो सम्यग्दृष्टी जीव, न करोति कहतां कर्मकी उदय सामग्री विषै अभिलाष न करै छे। तु यः करोति अयं न जानाति-तु कहतां और यः कहतां जो कोई मिथ्यादृष्टी जीव, करोति कहतां कर्मकी विचित्र सामग्री कहुं आपो जानि अभिलाष करै छे, अयं कहतां सो मिथ्यादृष्टी जीव, न जानाति कहतां शुद्ध स्वरूप जीवं इसो नहीं जानै छे। भावार्थ इसो जो-मिथ्यादृष्टीको जीव स्वरूपको जानपनो न घटै, खलु कहतां इसो वस्तुको निहचो छे, इसो कह्यो जो मिथ्यादृष्टी कर्ता छे, करिवो सो कांयो। तत् किल कर्म रागः-तत् कर्म कहतां कर्मके उदय सामग्रीको करवो, किल कहतां वास्तवमें, रागः कहतां जो कर्म सामग्री विषै अभिलाष रूप चीकनो परिणाम। कोई मानिसे कर्म सामग्रीं विषै अभिलाष हूओ तो कांयी न हूओ तो कांयो। सो यो तो न छे, अभिलाष मात्र पूरो मिथ्यात्व परिणाम छे, इसो कहिजे छे। तु रागं अबोधमयं अध्यवसायं आहुः-तु कहतां सो वस्तु इसी छे, रागं अबोधमयं अध्यवसाय कहतां

परद्रव्य सामग्री विषै छे जो अभिलाष सो निःकेवल मिथ्यात्त्व परिणाम छे। इसो आहुः कहतां गणधरदेव कहै छे। स नियतं मिथ्यादृशः भवेत्–स कहतां कर्मकी सामग्री विषै राग, नियतं कहतां अवश्य करि, मिथ्यादृशः कहतां मिथ्यादृष्टि जीवको होइ। सम्यग्दृष्टि जीवको निह्चासों न होइ। स च बन्धहेतुः–कहतां सोई राग परिणाम कर्मबन्धको कारण होइ तिहिंते। भावार्थ इसो–मिथ्यादृष्टी जीव कर्मबंध करै। सम्यग्दृष्टी न करै।

भावार्थ–यहांपर यही भाव है कि सम्यग्दृष्टी कर्मकृत नाटकका मात्र ज्ञाता दृष्टा रहता है उसमें अपना स्वामित्व व लिप्तपना नहीं रखता है। किन्तु अत्यन्त उदास है, कर्म नाटकके प्रपंचसे छूटना चाहता है, स्वाधीनताकी प्राप्तिका पूर्ण रुचिवान है तब मिथ्या-दृष्टी कर्मके उदयसे जो सातारूप अवस्थाएँ प्राप्त होती हैं उनमें रंजायमान होजाता है। उनको तन्मय होकर बड़ी रुचिसे भोगता है तथा उन अवस्थाओंके मिटनेको अपना बड़ा संकट मानता है। यदि अशुभ दशाएं प्राप्त होती हैं तो तीव्र आर्त्त परिणाम करके क्लेशित होता है। सम्यग्दृष्टि वही है जो अतीन्द्रिय आनन्दका रुचिवान है और विषय सुखका विरागी है। मिथ्यादृष्टी इसके विपरीत है। विषय सुखका रागी है अतीन्द्रिय सुखसे बिलकुल अनजान है इसलिये सम्यग्दृष्टी ज्ञाता है, मिथ्यादृष्टी रागी है व कर्ता है। सार-समुच्चयमें कुलभद्र आचार्य कहते हैं—

आत्मायत्तं सुखं लोके परायत्तं न तत् सुखं। एतत् सम्यग्विजानन्तो मुह्यन्ते मानुषाः कथम् ॥३०३॥

भावार्थ–इस लोकमें आत्माधीन ही सच्चा सुख है पराधीन विषय सुख सुख नहीं है ऐसा भले प्रकार जानते हुए ज्ञानी मानव कैसे मोही होसक्ते हैं?

सवैया ३१ सा—जबलग जीव शुद्ध वस्तुकों विचारे ध्यावे, तबलग भोगसों उदासी सरवंग है। भोगमें मगन तब ज्ञानकी जगन नांहि, भोग अभिलाषकी दशा मिथ्यात अंग है॥ ताते विषै भोगमें मगनसों मिथ्याति जीव, भोगसों उदासिसों समकिति अभंग है। ऐसे जानि भोगसों उदासि व्है सुगति साधे, यह मन चंगतो कठोठी मांहि गंग है ॥११॥

दोहा–धर्म अर्थ अरु काम शिव, पुरुषारथ चतुरंग। कुधी कल्पना गहि रहे, सुधी गहे सरवंग ॥१२॥

सवैया ३१ सा—कुलको विचार ताहि मूरख धरम कहे, पंडित धरम कहे वस्तुके स्वभावकों। खेहको खजानो ताहि अज्ञानी अरथ कहे, ज्ञानी कहे अरथ दरव दरसावकों॥ दंपत्तिको भोग ताहि दुरबुद्धि काम कहे सुधी काम कहे अभिलाष चित्त चावकों। इंद्रलोक थानको अजान लोक कहे मोक्ष, सुधि मोक्ष कहे एक बंधके अभावकों ॥१३॥

सवैया ३१ सा—धरमको साधन जो वस्तुको स्वभाव साधे अरथको साधन विलक्ष द्रव्य षटमें। यहै काम साधन जो संग्रहे निराशपद, सहज स्वरूप मोक्ष शुद्धता प्रगटमें॥ अंतर सुदृष्टिसों निरंतर विलोके बुध, धरम अरथ काम मोक्ष निज घटमें। साधन आराधनकी सोज रहे जाके संग भूल्यो फिरे मूरख मिथ्यातकी अलटमें ॥१४॥

वसंततिलका—सर्वं सदैव नियतं भवति स्वकीयकर्मोदयान्मरणजीवितदुःखसौख्यम् ।
अज्ञानमेतदिह यत्तु परः परस्य कुर्यात्पुमान् मरणजीवितदुःखसौख्यम् ॥६॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—इह एतत् अज्ञानं—इह कहतां मिथ्यात्व परिणामको एक अंग दिखाइजे छे, एतत् अज्ञानं कहतां इसो भाव मिथ्यात्व मय छे। तु यत् परः पुमान् परस्य मरणजीवितदुःखसौख्यं कुर्यात्—तु कहतां सो किसो भाव, यह कहतां जो भाव इसो, परः पुमान् कहतां कोई पुरुष, परस्य कहतां अन्य पुरुष कहुं, मरणजीवितदुःखसौख्यं कुर्यात्—मरण कहतां प्राणघात, जीवित कहतां प्राण रक्षा, दुःख कहतां अनिष्ट संयोग, सुख कहतां इष्ट प्राप्ति। इसा कार्य कहु, कुर्यात् कहतां करे छे। भावार्थ इसो—जो यथा अज्ञानी लोगह माहे इसी कहनावति छे, जो एनै जीव यहु जीव मार्यो, एनै जीव यहु जीव जिवायो, एनै जीव यह जीव सुखी कीयो, एनै जीव यह जीव दुःखी कीयो, इसी कहनावति छे। त्योंही प्रतीति जिहि जीवको होइ सो जीव मिथ्यादृष्टि छे, निःसंदेहपने जानियो, धोखो कांई नहीं, क्यों जानिजे ? मिथ्यादृष्टि छे। जिहितै-मरणजीवितदुःखसौख्यं सर्वं सदा एव नियतं स्वकीयकर्मोदयात् भवति—मरण कहतां प्राण घात, जीवित कहतां प्राण रक्षा, दुःखसौख्यं कहतां इष्ट अनिष्ट संयोग इसो जो सर्वं कहतां सर्व जीव राशि कहु होइ छे, जावंत सदा एव कहतां सर्व काल होइ छे, नियतं कहतां निहचासौं, स्वकीय कर्मोदयात्, भवति-कहतां जैनै जीव आपणा परिणाम विशुद्ध अथवा संक्लेशरूप तिहकरि पूर्वंही बांध्या छे जे आयुःकर्म्म अथवा साताकर्म्म अथवा असाता कार्म तिहि कर्म्मके उदयकरि तिहि जीवको मरण अथवा जीवन अथवा दुःख अथवा सुख होइ छे इसो निहचो छे। इन बात माहे धोखो कांई नहीं। भावार्थ इसो जो-कोई जीव कोई जीवके मारिवा समर्थ न छे जिवाइवा समर्थ न छे। सुखी दुःखी करिवा समर्थ न छे।

भावार्थ—यहां यह बताया है कि अज्ञानी जीवकी मान्यतामें और ज्ञानी जीवकी मान्यतामें बड़ा भारी अन्तर है। अज्ञानी जीव मानता है कि एक जीव दूसरेको सुखी दुखी कर सक्ता है जिला सक्ता है व मार सक्ता है। ज्ञानी जीव मानता है कि जबतक किसी जीवके स्वयं बांधा आयुकर्म है तबतक ही वह जीवैगा, आयुकर्मके क्षयसे ही मरेगा, जिसके असाताका उदय होगा वह दुःख जिसके साताका उदय होगा वह सुख भोगेगा। दूसरा जीव मात्र बाहरी निमित्त कारण होजाय तो होजाय। मूल कारण कर्मोका उदय है। इसलिये अज्ञानीका कोप व राग पर जीवोंपर विशेष रहता है। ज्ञानी जीव न राग करता है, न द्वेष—कर्मकी विचित्रतामें समभाव रखता है। ज्ञानी विचारता है, जैसा तत्व०में कहा है—

अवश्यं च परद्रव्यं नश्यत्येव न संशयः, तद्विनाशे विधातव्यो न शोको धीमता क्वचित् ॥११।१५॥

भावार्थ—यह शरीरादि सर्व परद्रव्य है सो कर्माधीन है, कर्मके क्षयसे अवश्य नाश होजायगा। इसमें संशय नहीं है, ऐसा जानकर ज्ञानी इनके नाश होते हुए रंच मात्र भी शोक नहीं करते हैं।

सवैया ३१ सा—तिहूं लोक मांहि तिहूं काल सब जीवनिको, पूरव करम उदै आय रस देत है ॥ कोऊ दीरघायु धरे कोऊ अलप आयु मरे, कोऊ दुखी कोऊ सुखी कोऊ समचेत है ॥ या ही मैं जिवाऊं याहि मारूं, याहि सुखी करूं, याहि दुःखी करूं ऐसे मूढ मान लेत है ॥ याहि अहं बुद्धिसों न विनसे भरम भूल, यहै मिथ्या धरम करम बन्ध हेत है ॥ १५ ॥

वसंततिलका—अज्ञानमेतदधिगम्य परात्परस्य पश्यन्ति ये मरणजीवितदुःखसौख्यम्।
कर्म्माण्यहंकृतिरसेन चिकीर्षवस्ते मिथ्यादृशो नियतमात्महनो भवन्ति ॥७॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—ये परात् परस्य मरणजीवितदुःखसौख्यं पश्यंति—ये कहतां जे केई अज्ञानी जीवराशि, परात् कहतां अन्य जीवतहि, परस्य कहतां अन्य जीवको, मरणजीवितदुःखसौख्यं कहतां मरिवो जीवो दुःख सुख, पश्यंति कहतां मानहि छे। कांयोकरि। एतत् अज्ञानं अधिगम्य—एतत् अज्ञानं कहतां मिथ्यात्वरूप अशुद्ध परिणाम, अधिगम्य इसो अशुद्धपनो पाइकरि। ते नियतं मिथ्यादृशः भवंति—ते कहतां जे जीवराशि इसो मानहिं छे, नियतं कहतां निहचांसो, मिथ्यादृशः भवंति कहतां सर्वप्रकार मिथ्यादृष्टी राशि छे। किसो छे। अहंकृतिरसेन कर्माणि चिकीर्षवः—अहंकृति कहतां हौं देव, हौं मानुष्य, हौं तीर्यंच, हौं नारक, हौं दुःखी, हौं सुखी। इसा कर्मजनित पर्याय तिहिंविषैं छे आत्मत्वबुद्धि। इसो रस कहतां मग्नपनो तिहिंकरि, कर्माणि कहतां कर्मके उदै छे जावंत क्रिया, चिकीर्षवः कहतां हौं करौं छौं, मैं कीयो हो, इसो करिस्यों इसो अज्ञानको लियो मानै छे। और किसा छे। आत्महनः कहतां आपणा घातनशील छे।

भावार्थ—यहांपर भी यही भाव है कि कर्मोदयको नहीं समझकर एकसे दूसरे जीवको सुख दुख जीवन मरण मानते हैं वे मिथ्यादृष्टी आत्मघाती हैं क्योंकि वे कर्मजनित दशाको ही अपना स्वरूप मान लेते हैं उनको कभी भी अपने शुद्ध आत्माका अनुभव नहीं होता है।

परमात्मप्रकाशमें कहते हैं—

जिउ मिच्छत्तें परिणमिउ विवरिउ तच्चु मुणेइ। कम्मविणिम्मियभावडा ते अप्पाणु भणेइ ॥ ८० ॥

भावार्थ—यह जीव मिथ्यात्वभावमें परिणमता हुआ विपरीत तत्वको मानता है। कर्मोदय जनित भावोंको अपना कहा करता है।

सवैया ३१ सा—जहालों जगतके निवासी जीव जगतमें, सबे असहाय कोउ काहुको न धनी है ॥ जैसें जैसे पूरव करम सत्ता बांधि जिन्हे, तैसे तैसे उदैमें अवस्था आइ बनी है ॥ एतेपरी जो कोऊ कहे कि मैं जिवाऊं मारूं, इत्यादि अनेक विकलप वात घनी है ॥ सोतो अहंबुद्धिसों विकल भयो तिहुं काल, डोले निज आतम शकति तिन्ह हनी है ॥ १६ ॥

सवैया ३१ सा—उत्तम पुरुषकी दशा ज्यों किसमिस द्राख, बाहिर अभिंतर विरागी मृदु अंग है ॥ मध्यम पुरुष नालियर कीसी भांति लिये, बाहिज कठिण हिए कोमल तरंग है ॥ अधम पुरुष बदरी फल समान जाके, बाहिरसों दीखे नरमाई दिल संग है ॥ अधमसों अधम पुरुष पूंगी फल सम, अंतरंग बाहिर कठोर सरबंग है ॥ १७ ॥

सवैया ३१ सा—कीचसों कनक जाके नीचसों नरेश पद, मीचसि मित्ताइ गुरुवाई जाके गारसी ॥ जहरसी जोग जाति कहरसी करामति, हहरसि हौंस पुद्गल छबि छारसी ॥ जालसों जग विलास भालसों भुवन वास, कालसों कुटुंब काज लोक लाज लारसी ॥ सीठसों सुजस जाने वीठसों बखत माने, ऐसी जाकि रीति ताहि बंदत बनारसी ॥ १८ ॥

सवैया ३१ सा—जैसे कोऊ सुभट स्वभाव ठग मूरखाई, चेरा भयो ठगनके घेरामें रहत है ॥ ठगोरि उतर गई तबं ताहि शुधि भई, पर्यो परवस नाना संकट सहत है ॥ तैसेहि अनादिको मिथ्याति जीव जगतमें, डोले आठो जाम विसराम न गहत है ॥ ज्ञानकला भासी तब अंतर उदासी भयो, पै उदय व्याधिसों समाधि न लहत है ॥ १९ ॥

सवैया ३१ सा—जैसे रंक पुरुषके भावे कानी कौड़ी धन, उलुवाके भावे जैसे संझा ही विहान है ॥ कूकरके भावे ज्यों पिंडोर जिरवानी मठा, सूकरके भावे ज्यों पुरीष पकवान है ॥ बायसके भावे जैसे नींवकी निंबोरी द्राख, बालकके भावे दन्तकथा ज्यों पुरान है ॥ हिंसकके भावे जैसे हिंसामें धरम तैसे, मूरखके भावे शुभ बन्ध निरवान है ॥ २० ॥

सवैया ३१ सा—कुंजरको देखि जैसे रोष करि भुंके स्वान, रोष करे निर्धन विलोकि धनवन्तको ॥ रैनके जैगरशको विलोकि चोर रोष करे, मिथ्यामति रोष करे सुनत सिद्धांतको ॥ हंसको विलोकि जैसे काग मन रोष करे, अभिमानि रोष करे देखत महन्तको ॥ सुकविको देखि ज्यों कुकवि मन रोष करे, त्योंही दुरजन रोष करे देखि सन्तको ॥ २१ ॥

सवैया ३१ सा—सरलको सठ कहे वकताको धीठ कहे, विनै करै तासों कहे धनको आधीन है ॥ क्षमीको निर्बल कहे दमीको अदत्ति कहे, मधुर वचन बोले तासों कहे दीन है ॥ धरमीको दंभि निसप्रहीको गुमानी कहे, तृपणा घटावे तासों कहे भाग्यहीन है ॥ जहां साधुगुण देखे तिनको लगावे दोष; ऐसो कछु दुरजनको हिरदो मलीन है ॥ २२ ॥

श्लोक—मिथ्यादृष्टेः स एवास्य बन्धहेतुर्विपर्य्ययात् ।
य एवाध्यवसायोऽयमज्ञानात्माऽस्य दृश्यते ॥ ८ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—अस्य मिथ्यादृष्टेः स एव बंधहेतुर्भवति—अस्य मिथ्यादृष्टेः कहतां इसा मिथ्यादृष्टि जीवको, स एव कहतां मिथ्यात्व रूप छे जो इसो परिणाम एने जीव यह जिवायो इसो भाव, बंधहेतुः भवति कहतां ज्ञानावरणादि कर्मबंधको कारण होइ छे, किसा थकी । विपर्ययात्—कहतां जिहि तइ इसो परिणाम मिथ्यात्त्व रूप छे । य एव अयं अध्यवसायः—कहतां इहिको मारौं, इहको जिवाऊं, इसो छे जो मिथ्यात्त्व रूप परिणाम जिहिको, अस्य अज्ञानात्मा दृश्यते—अस्य कहतां इसा जीवको, अज्ञानात्मा कहतां मिथ्यात्व मय स्वरूप, दृश्यते कहतां देखिजे छे ।

भावार्थ–अपने आत्माके यथार्थ स्वरूपको न समझकर जो कोई अज्ञानी रागद्वेषमय वर्तन करता है वह अपने मिथ्यात्व भावके कारणसे कर्मबंधको प्राप्त होता है–

चौपाई–मैं कहता मैं कीन्ही कैसी। अब यों करो कहे जो ऐसी॥
ए विपरीत भाव है जामें। सो वरते मिथ्यात्व दशामें॥ २२॥

श्लोक–अनेनाध्यवसायेन निःफलेन विमोहितः।
तत्किञ्चनापि नैवाऽस्ति नात्माऽऽत्मानं करोति यत्॥९॥

खण्डान्वय सहित अर्थ–आत्मा आत्मानं यत् न करोति तत् किंचन अपि न एव अस्ति–आत्मा कहतां मिथ्यादृष्टि जीव, आत्मानं कहतां आपको, यत् न करोति कहतां जिहि रूप न आस्वादै, तत् किंचन कहतां इसो पर्याय इसो विकल्प, न एव अस्ति कहतां त्रैलोक्य माहै छे ही नहीं। भावार्थ इसो जो–मिथ्यादृष्टी जीव जिसो पर्याय धरै जिस ही भावको परिणवै तेता समस्त आपो जानि अनुभवै, तिहितै कर्म्मको स्वरूप जीवके स्वरूपते भिन्न करि नहीं जानै छे, एक रूप अनुभव करै छे। अनेन अध्यवसायेन–कहतां इहिको मारौं, इहको जिवाऊं, यह मैं मार्‍यो, यह मैं जिवायो, यह मैं सुखी कीयो, यह मैं दुःखी कीयो इसा परिणाम करि, विमोहितः कहतां गहलो हूओ छे; किसो छे परिणाम, निःफलेन कहतां झूठो छे। भावार्थ इसो जो–यद्यपि मारिवा कहै छे, जिवाइवा कहे छे, तथा कर्मका उदयके हाथ छे। इहिका परिणामहको सारे न छे। यह आपणा अज्ञानपनाको लीयो अनेक झूठा विकल्प करै छे।

भावार्थ–अज्ञानी मिथ्यादृष्टी जीवको शुद्ध आत्माका और कर्मोंके बन्ध, उदय, सत्ता आदिका भेद विदित नहीं है। इसलिये वह जिस शरीरको धरता है उसमें पूर्णपने मगन होजाता है। मैं देव, मैं नारकी, मैं पशु, मैं मनुष्य, ऐसा मानकर किसीको यदि उससे सुख पहुंचता है तो यह अहंकार कर लेता है मैंने सुखी किया। यदि किसीको दुःख पहुंचता है तो यह अहंकार करता है, मैंने दुःखी किया। यदि कोई उसके निमित्तसे मर गया तो यह मद करता है कि मैंने इसको मार डाला। यदि कोई इसके निमित्तसे बचाया गया तो यह अहंकार करता है, मैंने बचा दिया। यदि रागद्वेष भाव कर्मोंके उदयसे होता है व अन्य कोई भी विभाव होता है उस सबको यह अपना ही भाव मान लेता है। तीन लोकमें जितने पर भाव हैं, व पर्याय हैं उन सबको यह अपना माना करता है। यही बावलेपनेकी चेष्टा इसके लिये दीर्घ संसारका कारण है। परमात्मप्रकाशमें कहते हैं—

पज्जयरत्तउ जीवडउ मिच्छादिट्ठि हवेइ। बंधइ बहुविहकम्मडा जे संसारु भमेइ॥ ७८॥

भावार्थ–जो कर्मजनित पर्यायमें रागी जीव हैं वे नाना प्रकार कर्मोंको बांधकर संसारमें भ्रमण करते हैं—

दोहा—अहंबुद्धि मिथ्यादशा, धरे सो मिथ्यावंत ।। विकल भयो संसारमें, करे विलाप अनंत ।। २४ ।।

सवैया ३१ सा—रविके उदोत अस्त होत दिन दिन प्रति, अंजुलीके जीवन ज्यों जीवन घटत है ।। कालके ग्रसत छिन छिन होत छिन तन, आरेके चलत मानो काठ ज्यों कटत है ।। एतेपरि मूरख न खोजे परमारथको, स्वारथके हेतु भ्रम भारत ठटत है ।। लाग्यो फिरे लोकनिसों पग्योपरे जोगनिसों विषैरस भोगनिसों नेक न हटत है ।। २५ ।।

सवैया ३१ सा—जैसे मृग मत्त वृषादित्यकी तपति मांहि, तृषावंत मृषाजल कारण अटत है ।। तैसे भववासी मायाहीसों हित मानिमानि, ठानि २ भ्रम भूमि नाटक नटत है ।। आगेको दुकत धाइ पाछे वछारा चवाई, जैसे दृगहीन नर जेवरी वटत है ।। तैसे मूढ चेतन सुकृत करतूति करे, रोवत हसत फल खोवत खटत है ।। २६ ।।

सवैया ३१ सा—लिये दृढ पेच फिरे लोटण कबूतरसों, उलटो अनादिको न कहूं सुलटत है ।। जाको फल दुःख ताहि सातासों कहत सुख सहत लपेटि असि धारासी चटत है ।। ऐसे मूढ जन निज संपति न लखे क्योंहि, योंही मेरी २ निशि वासर रटत है ।। याहि ममतासों परमारथ विनसि जाइ, कांजिको फरस पाय दूध ज्यों फटत है ।। २७ ।।

सवैया ३१ सा—रूपकी न झांक हिये करमको डांक पिये, ज्ञान दवि रह्यो मिरगांक जैसे घनमें ।। लोचनकी ढांकसों न माने सद्गुरु हांक, डोले मूढ रंकसों निःशंक तिहूं पनमें ।। टांक एक मांसकी डलीसी तामें तीन फांक, तीन कोसो अंक लिखि राख्यो काहूं तनमें ।। तासों कहे नांक ताके राखवेको करे कांक, वांकसों खडग वांधि वांधि धरे मनमें ।। २८ ।।

सवैया ३१ सा—जैसे कोऊ कूकर क्षुधित सूके हाड चावे, हाडनकी कोर चहुंओर चुभे मुखमें ।। गाल तालु रसनासों मुखनिका मांस फाटे, चाटे निज रुधिर मगन स्वाद सुखमें ।। तैसे मूढ विषयी पुरुष रति रीत ठाणे, तामें चित्त साने हित माने खेद दुःखमें ।। देखे परतक्ष बल हानि मल मूत खानि, गहे न गिलानि पगि रहे राग रुखमें ।। २९ ।।

श्लोक-विश्वाद्विभक्तोऽपि हि यत्प्रभावादात्मानमात्मा विदधाति विश्वम् ।
मोहैककन्दोऽध्यवसाय एष नास्तीह येषां यतयस्त एव ।। १० ।।

खण्डान्वय सहित अर्थ- ते एव यतयः कहतां तेई यतीश्वर छे येषां इह एष अध्यवसाय नास्ति-येषां कहतां ज्याहको, इह कहतां सूक्ष्म रूप वा स्थूल रूप एष अध्यवसायः कहतां इहिको मारौं, इहिको जिवाऊं इसो मिथ्यात्व रूप परिणाम, नास्ति कहतां नहीं छे किसो छे परिणाम । मोहैककन्दः-मोह कहतां मिथ्यात्व तिहिको, एककंदः कहतां मूल कारण छे । यत्प्रभावत्-कहतां जिहि मिथ्यात्व परिणाम थकी, आत्मा आत्मानं विश्वं विदधाति-आत्मा कहतां जीव द्रव्य, आत्मानं कहतां आप कहुं, विश्वं कहतां हौं देव, हौं मनुष्य, हौं क्रोधी, हौं मानी, हौं सुखी, हौं दुखी इत्यादि नाना रूप, विदधाति कहतां अनुभवे छे, किसो छे आत्मा । विश्वात विभक्तः अपि-कहतां कर्मके उदय करि समस्त पर्याय तहि भिन्न छे इसो छे यद्यपि । भावार्थ इसो जो-मिथ्यादृष्टि जीव पर्याय सो रत...

तिहिते पर्यायको आपो करि अनुभवै छे इसा मिथ्यात्व भावके छूटतां ज्ञानी भी सांचो आचरण भी सांचो ।

भावार्थ—ज्ञानी जीव वही है जिसके अंतरंगमें आत्मा एकाकार शुद्ध झलकता है जो कर्मकृत अवस्थाओंको अपनी नहीं मानता है, जिसने मिथ्यात्व भावको जड़से उखाड़ डाला है । परमात्मा प्रकाशमें कहा है—

अप्पा माणुसु देउ णवि, अप्पा तिरिउ ण होइ । अप्पा णारउ कहिंवि णवि, णाणिउ जाणइ जोइ ॥९१॥

भावार्थ—यह आत्मा निश्चयसे न तो मनुष्य है, न देव है, न पशु है, न नारकी है, ज्ञानी इस बातको पहचानता है ।

अडिल्ल—सदा मोहसों भिन्न, सहज चेतन कह्यो । मोह विकलता मानि मिथ्यात्वी हो रह्यो ॥
करे विकल्प अनन्त, अहंमति धारिके । सो मुनि जो थिर होइ, ममत्व निवारिके ॥ १० ॥

शार्दूलविक्रीडित छन्द—सर्वत्राध्यवसानमेवमखिलं त्याज्यं यदुक्तं जिनै-
स्तन्मन्ये व्यवहार एव निखिलोऽप्यन्याश्रयस्त्याजितः ।
सम्यग्निश्चयमेकमेव तदमी निःकम्पमाक्रम्य किं
शुद्धज्ञानघने महिम्नि न निजे बध्नन्ति सन्तो धृतिम् ॥ ११ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—अमी सन्तः निजे महिम्नि धृतिं किं न बध्नंति—अमी सन्तः कहतां सम्यग्दृष्टी जीवराशि, निजे महिम्नि कहतां आपणा शुद्ध चिद्रूप स्वरूप विषै, धृति कहतां स्थिरता रूप सुखको, किं न बध्नंति कहतां कायो न करहि छे । अपि तु सर्वथा करै छे किसो छे निज महिमा—शुद्धज्ञानघने—कहतां रागादि रहित इसो ज्ञान कहतां चेतनागुण तिहको घन कहतां समूह छे । कायो करि, तत् सम्यग्निश्चयं आक्रम्य—तत् कहतां तिहि कारण तहि सम्यग्निश्चयं कहतां निर्विकल्प वस्तु मात्र तिहिको, आक्रम्य कहतां ज्यों छे त्यों अनुभव गोचर करि, किसो छे निहचौ एकं एव—कहतां निर्विकल्प वस्तु मात्र छे निहचासों । और किसो छे, निःकम्पं—कहतां सर्व उपाधि तहि रहित छे । यत् सर्वत्र अध्यवसानं अखिलं एव त्याज्यं—यत् कहतां जिहिकारण तहि, सर्वत्र अध्यवसानं कहतां हौं मारौं, हौं जिवाऊं, हौं दुखी करौं हौं सुखी करौं, हौं मनुष्य, इत्यादि छे जे मिथ्यात्वरूप असंख्यात लोक मात्र परिणाम, अखिलं एव त्याज्यं कहतां समस्त परिणाम हेय छे, किसो छे परिणाम, जिनैः उक्तं—कहतां परमेश्वर केवलज्ञान विराजमान त्यांहको इसो कह्यो छे, तत् कहतां मिथ्यात्व भावको हुओ छे त्यागमन्ये कहतां तिहिको इसौ मानों निखिलः अपि व्यवहारः त्याजितः एव—निखिलः अपि कहतां जावंत छे, सत्य रूप अथवा असत्य रूप व्यवहारः कहतां शुद्ध स्वरूप मात्र तहि विपरीत जावंत मनोवचन कायके विकल्प, त्याजितः कहतां सर्व प्रकार छोड्यो । भावार्थ इसो—जो पूर्वोक्त मिथ्या भाव जिहिके छूटे तिहिको

समस्त व्यवहार छूटयो। जिहितै मिथ्यात्वके भाव तथा व्यवहारके भाव एक वस्तु छे। किसो छे व्यवहार, अन्याश्रयः—अन्य कहतां विपरीतपनो मोह छे, आश्रय कहतां अवलम्बन जिहिको इसो छे।

भावार्थ—यहां यह बताया है कि सम्यग्दृष्टी जीव अपने एक शुद्ध ज्ञान स्वरूप आत्मामें ही थिरता भजते हैं। वे सर्व ही परकृत भावोंको त्यागने योग्य समझकर उनसे ममता नहीं करते हैं। वास्तवमें वे परालम्बन रूप सर्व व्यवहारसे उदास हैं। व्यवहारमें रतिभाव वही मिथ्यात्त्वभाव है। निज आत्मामें रमणभाव सो ही सम्यग्दर्शनभाव है। परमात्मप्रकाशमें कहते हैं—

अप्पा मिल्लिवि णाणियहं अण्णु ण सुन्दरु वत्थु। तेण ण विसयहं मणु रमइ जाणतहं परमत्थु ॥२०४॥

भावार्थ—ज्ञानी पुरुषोंको आत्माको छोड़कर और कोई सुन्दर वस्तु नहीं दिखती है। इसीसे उनका मन परमार्थको जानते हुए विषयोंमें रमण नहीं करता है।

सवैया ३१ सा—असंख्यात लोक परमान जे मिथ्यात्व भाव, तेई व्यवहार भाव केवली उकत है॥ जिन्हके मिथ्यात्व गयो सम्यक्दरस भयो; ते नियत लीन व्यवहारसों मुकत हैं॥ निर्विकल्प निरुपाधि आतम समाधि, साधि जे सुगुण मोक्ष पंथको ढुकत है॥ तेई जीव परम दशामें थिर रूप ह्वैके, धरममें धुके न करमसो रुकत है॥ ११॥

उपजाति छन्द—रागादयो बन्धनिदानमुक्तास्ते शुद्धचिन्मात्रमहोऽतिरिक्ताः।
आत्मा परो वा किमु तन्निमित्तमिति प्रणुन्नाः पुनरेवमाहुः ॥ १२ ॥

खंडान्वय सहित अर्थ—पुनः एवं आहु—कहतां इसो कहै छे ग्रंथका कर्ता श्री कुन्दकुन्दाचार्य, किसा छे। प्रणुन्नाः—कहतां इसी प्रश्नरूप नम्र होइ बूझा छे। किसी प्रश्न—ते रागादयः बन्धनिदानं उक्ताः—हो स्वामिन्, ते रागादयः कहतां अशुद्ध चेतना रूप छे रागद्वेष मोह इत्यादि असंख्यात लोक मात्र विभाव परिणाम, बन्धनिदानं उक्ताः—कहतां ज्ञानावरणादि कर्मबंधको कारण छे। इसो कह्यो, सुन्यो, जान्यो, मान्यो, किसा छे ते भाव, शुद्धचिन्मात्रमहोतिरिक्ताः—शुद्ध चिन्मात्र कहतां शुद्ध ज्ञान चेतना मात्र छे। इसो मह कहतां ज्योतिस्वरूप जीव वस्तु तिहितैं अतिरिक्ताः कहतां बाहिरा छे। सांप्रतं एक प्रश्न म्हां करां छां। तन्निमित्तं आत्मा वा परः—तन्निमित्तं कहतां त्याह रागद्वेष मोहरूप अशुद्ध परिणामहको कारण कौन छे. आत्मा कहतां जीव द्रव्य कारण छे, वा कहतां कै, परः कहतां मोह कर्मरूप परिणवो छै। पुद्गल द्रव्यको पिंड सो कारण छे। इसा पुछा होता आचार्य उत्तर कहै छै।

भावार्थ—यहां शिष्यने प्रश्न किया कि जब रागादिभाव आत्माके नहीं हैं तब इनका कारण कौन है। क्या यह पुद्गलके ही हैं? इसका समाधान आगे है।

कवित्त—जे जे मोह कर्मकी परणति, बंध निदान कही तुम सव्व ॥ संतत भिन्न शुद्ध चेतनसों, तिन्हको मूल हेतु कहु अव्व ॥ कै यह सहज जीवको कौतुक, कै निमित्त है पुद्गल दव्व ॥ सीस नवाइ शिष्य इम पूछत, कहे सुगुरु उत्तर सुनि भव्व ॥ ३२ ॥

उपजाति छन्द—न जातुरागादिनिमित्तभावमात्माऽऽत्मनो याति यथार्ककान्तः।
तस्मिन्निमित्तं परसङ्ग एव वस्तुस्वभावोऽयमुदेति तावत् ॥ १३ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—तावत् अयं वस्तुस्वभावः उदेति–तावत् कहतां कीना थी प्रश्न, तिहिको उत्तर इसो, अयं वस्तुस्वभावः कहतां यह वस्तुको स्वरूप, उदेति कहतां सर्व काल प्रगट छे, किसो छे वस्तु स्वभाव, जातु आत्मा आत्मनः रागादिनिमित्त भावं न याति–जातु कहतां कौनहू काल, आत्मा कहतां जीव द्रव्य, आत्मनः रागादिनिमित्त भावं कहतां आप सम्बंधी छै जे रागद्वेष मोह अशुद्ध परिणाम त्यांहको कारणपनो इसो रूप, न याति कहतां नहीं परिणवै छे। भावार्थ इसो—जो द्रव्यका परिणामहको कारण दोइ प्रकार छै। एक उपादान कारण छै एक निमित्त कारण छे। उपादान कारण कहतां द्रव्यके अन्तर्गभित छे आपणा परिणाम पर्यायरूप परिणमन शक्ति सो तो जिहि द्रव्यकी तेही द्रव्य मांहे होइ। इसो निहचो छै, निमित्त कारण जिहि द्रव्यको संयोग पाया थकी अन्य द्रव्य आपणा पर्याय रूप परिणवै छे सो तो जिहि द्रव्यको तिहि द्रव्य मांहे होइ अन्य द्रव्य गोचर न होइ। इसो निहचो छे, यथा मृत्तिका घट पर्यायरूप परिणवै छे। तिहिको उपादान कारण छै, मृत्तिका मांहे छे, घटरूप परिणमनकी शक्ति निमित्त कारण छे, बाह्यरूप कुम्भार, चक्र दंडा इत्यादि। तथा जीव द्रव्य अशुद्ध परिणाम मोह रागद्वेष रूप परिणवे छै तिहिको उपादान कारण छै, जीव द्रव्य मांहे अन्तर्गभित विभावरूप अशुद्ध परिणमन शक्ति, तस्मिन् निमित्तं कहतां निमित्त कारण छै, परसङ्ग एव–कहतां दर्शन मोह चारित्र मोह कर्मरूप बंध्या छे जीवको प्रदेशहं एक क्षेत्रावगाह रूप पुद्गल द्रव्यको पिंड तिहिको उदय। यद्यपि मोह कर्म रूप पुद्गल पिंडको उदय आपणा द्रव्य सो व्याप्य व्यापकरूप छे, जीव द्रव्य सो व्याप्य व्यापक रूप नहीं छै। तथापि मोह कर्मको उदय होतां जीव द्रव्य आपणा विभाव परिणाम रूप परिणवं छे। इसो ही वस्तुको स्वभाव सारो कौनको। यहां दृष्टांत छे, यथा अर्ककांतः—कहतां जैसे स्फटिकमणि राती पीली काली इत्यादि अनेक छविरूप परिणवै छे तिहिको उपादान कारण छे, स्फटिकमणिके अन्तर्गभित नाना वर्णरूप परिणमन शक्ति, निमित्त कारण छे। बाह्यरूप नाना वर्णरूप पूरीको संयोग।

भावार्थ—यहां स्पष्ट यह बात दिखला दी है कि रागद्वेष मोहरूप जितने भी अशुद्ध भाव होते हैं उनका उपादान कारण जीवके भीतर रहनेवाली वैभाविक शक्ति है, निमित्त कारण दर्शन मोह व चारित्र मोह कर्मका उदय है। यह विभावपना तब ही होता है जब

अन्य द्रव्यका संयोग हो। यदि संयोग न हो तो हो नहीं सक्ता है। संसारी जीवोंके साथ कर्मका संयोग उनके आत्म प्रदेशोंमें जल दूधके समान एक क्षेत्रावगाह रूप होरहा है। इसलिये जब उन कर्मोंका उदय स्वयं अपने ही विपाकसे अपनेमें ही होता है तब निकट रहा हुआ ज्ञानोपयोग रागादिरूप होजाता है। सिद्ध आत्माके कर्म संयोग नहीं है, इससे वहां रागादि भाव नहीं होसक्ता है। यह वस्तुका स्वभाव है कि जीवमें एक वैभाविक शक्ति है; यदि यह शक्ति न होती तो कभी भी जीवके परिणाम रागद्वेष मोहरूप न होते। जैसे लाल डांक लगनेसे स्फटिकमणिकी छवि लालरूप होजाती है। इसमें स्फटिकके भीतर लाल रूप होनेकी परिणमन शक्ति उपादान कारण है, लाल डांकका सम्बंध निमित्त कारण है। यह कथन पर्याय दृष्टि या व्यवहार नयकी अपेक्षासे ही है। निश्चयनयमें तो आत्मामें रागादिभाव दिखते ही नहीं। क्योंकि निश्चयनय वस्तुके शुद्ध निज भावको ही देखनेवाली है। निश्चयनयसे स्फटिक लाल नहीं है। पर संयोग होनेसे जो पर्याय हुई उसको देखनेकी दृष्टिसे लाल स्फटिक है, ऐसा कहा जाता है। अर्थात् रागद्वेष मोहादि विभाव भाव आत्माके स्वभाव कदापि नहीं है। यह समझना योग्य है, पुरुषार्थ०में कहा है—

> परिणममाणस्य चितश्चिदात्मकैः स्वयमपि स्वकैर्भावैः।
> भवति हि निमित्तमात्रं पौद्गलिकं कर्म तस्यापि ॥ १३ ॥

भावार्थ—यह आत्मा स्वयं ही अपने चैतन्य भावोंसे परिणमन करता है उनमें निमित्त कारण मात्र पुद्गल कर्मका उदय होता है।

सवैया ३१ सा—जैसे नाना वरण पुरी बनाइ दीजे हेठ, उजल विमल मणि सूरज क्रांति है ॥ उजलता भासे जब वस्तुको विचार कीजे, पुरीकी झलकसों वरग भांति भांति है ॥ तैसे जीव दरबको पुद्गल निमित्तरूप, ताकी ममतासों मोह मदिराकी भांति है ॥ भेदज्ञान दृष्टिसों स्वभाव साधि लीजे तहां, सांची शुद्ध चेतना अवाचि सुखशांति है ॥ ३३ ॥

सवैया ३१ सा—जैसे महि मंडलमें नदीको प्रवाह एक, ताहीमें अनेक भांति नीरकी दरनि है ॥ पाथरको जोर तहां धारकी मरोर होत, कांकरकी खानि तहां झागकी झरनि है ॥ पौनकी झकोर तहां चंचल तरंग ऊठे, भूमिकी निचान तहां भौरकी परनि है ॥ ऐसे एक आतमा अनंत रस पुद्गल, दूहुके संयोगमें विभावकी भरनि है ॥ ३४ ॥

श्लोक—इति वस्तुस्वभावं स्वं नाज्ञानी जानाति तेन सः।
रागादीन्नात्मनः कुर्यादतो भवति कारकः ॥ १४ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—ज्ञानी इति वस्तुस्वभावं स्वं जानाति—ज्ञानी कहतां सम्यग्दृष्टि जीव, इति कहतां पूर्वोक्त प्रकार, वस्तुस्वभावं कहतां द्रव्यको स्वरूप इसो छे। स्वं कहतां आपणो शुद्ध चैतन्य तिहिको, जानाति कहतां आस्वाद रूप अनुभवै छे। तेन

स रागादीन् आत्मनो न कुर्यात्—तेन कहतां तिहि कारण तहि स कहतां सम्यग्दृष्टि जीव, रागादीन् कहतां रागद्वेष मोहरूप अशुद्ध परिणाम, आत्मनः कहतां जीव द्रव्यको स्वरूप छे इसो, न कुर्यात् कहतां नहीं अनुभवै छै। अतः कारको न भवति—अतः कहतां इहि कारण तहि, कारकः कहतां रागादि अशुद्ध परिणामहको कर्ता, न भवति कहतां न होइ। भावार्थ इसो—जो सम्यग्दृष्टी जीवके रागादि अशुद्ध परिणामहको स्वामित्वपनो न छै तिहितै सम्यग्दृष्टी जीव कर्ता न छै।

भावार्थ—ज्ञानी सम्यग्दृष्टी जीव रागादि भावोंको एक उपाधि या रोग समझता है, अपने स्वभावको नहीं जानता है। इसलिये वह इनका स्वामी नहीं बनता है वह तो स्वामी अपने वीतराग विज्ञानमई स्वभावका है। उसके तो रागादि भावोंसे अत्यन्त अरुचि है—कब मिटैं यही भावना है। इसलिये वह स्वयं रागादिका न होना चाहता है न करता है। कर्मोदयका उपशम या क्षय जबतक नहीं होता है तबतक उनका उदय उपयोगमें मलीनता झलकाता है जिसको ज्ञानी भलेप्रकार जानता है। जैसा परमात्मप्रकाशमें कहा है—

देहविभिण्णउ णाणमउ, जो परमप्पु णिएइ। परमसमाहिपरिट्ठियउ पंडिउ सो जि हवेइ ॥१४॥

भावार्थ—जो कोई अपने ही आत्माको देहादिसे भिन्न परमात्मारूप परम समाधिमें स्थित होकर जानता है वही पंडित ज्ञानी सम्यग्दृष्टी है।

दोहा—इहि विधि वस्तु व्यवस्था जाने, रागादिक निजरूप न मानै।
तातै ग्यानवंत जग माहीं, करम बंधको करता नाहीं॥

दोहा—चेतन लक्षण आतमा, जड़ लक्षण तन जाल। तनकी ममता त्यागिके, लीजे चेतन चाल ॥३५॥

सवैया २३ सा—जो जगकी करणी सब ठानत, जो जग जानत जोवत जोई। देह प्रमाण पै देहसुं दूसरो, देह अचेतन चेतन सोई॥ देह धरे प्रभु देहसुं भिन्न, रहे परछन्न लखे नहीं कोई। लक्षण वेदि विचक्षण बूझत, अक्षनसों परतक्ष न होई॥ ३६॥

सवैया २३ सा—देह अचेतन प्रेत दरी रज, रेत भरी मल खेतकि क्यारी। व्याधिकि पोट आराधीकि ओट, उपाधीकि जोट समाधिसों न्यारी॥ रे जिय देह करे सुख हानि, इते पर तौ तोहि लागत प्यारी। देह तो तोहि तजेगी निदान पैं, तूंहि तजे क्यों न देहकि प्यारी ॥३७॥

दोहा—सुन प्राणी सदूगुरु कहे, देह खेहकी खानि। धरे सहज दुख पोषियो, करे मोक्षकी हानि ॥३८॥

सवैया ३१ सा—रेतकीसी गढी कीधो मढि है मसाण कीधि, अंदर अंधेरि जैसी कंदरा है सैलकी। ऊपरकी चमक दमक पट भूषणकि, धोके लगे भली जैसी कलि है कनैलकी॥ औगुणकी उंडि महा भोंडि मोहकी कनोंडि, मायाकी मसूरति है मूरति है मैलकी। ऐसी देह याहीके सनेह याके संगती सों; व्है रही हमारी मति कोल्हूकेसे बैलकी॥ ३९॥

सवैया ३१ सा—ठौर ठौर रकतके कुंड केसनीके झुंड, हाड़निसों भरि जैसे थरि है चुरैलकी। थोरसे धकाके लगे ऐसे फटजाय मानो, कागदकी पूरी कीधो चादर है चैलकी॥ सूचे भ्रम वानि ठानि मूढनीसों पहिचानि, करे सुख हानि अरु खानी बद फैलकी। ऐसी देह याहीके सनेह याके संगतिसों ठानि व्हैरहे हमारी मति कोल्हूकेसे बैलकी॥ ४०॥

सवैया ३१ सा—पाटी बांधी लोचनीसों संकुचै द्वोचनीसों, कोचनीके सोंचसों निवेदे खेद तनको। धाइवोही धंधा अरु कंधा माहि लग्यो जोत, बार बार आर सहे कायर व्है मनको॥ भूख सहै प्यास सहै दुर्जनको त्रास सहे, थिरता न कहै न उसास लहे छिनको। पराधीन घूमे जैसे कोल्हूका कमेरा बैल, तैसा ही स्वभाव भैया जगवासी जनको॥४१॥

सवैया ३१ सा—जगतमें डोले जगवासी नररूप धरि, प्रेत कैसे दीप कीधो रेत कैसे धूहे है। दीसे पट भूषण आडंबरसों नीके फीरे, फीके छिन मांहि सांस अंबर ज्यों सूहे है॥ मोहके अनल दगे मायाकी मनीसों पगे, डाभकी अणीसों लगे ऊस कैसे फूहे हैं। धरमकी बूझि नांहि उरझे भरम मांहि, नाचि नाचि मरिजाहि मरी कैसे चूहे है॥४२॥

सवैया ३१ सा—जासूं तूं कहत यह संपदा हमारी सो तो, साधुनि ये डारी ऐसे जैसे नाक सिनकी। तासूं तूं कहत हम पुण्य जोग पाइ सो तो, नरककि साई है बढ़ाई डेढ दिनकी॥ पेग मांहि पऱ्यो तूं विचारे सुख आखिनिको, माखिनके चूटत मिठाई जैसे भिनकी। एतेपरि होई न उदासी जगवासी जीव, जगमें असाता है न साता एक छिनकी॥४३॥

दोहा—यह जगवासी यह जगत, इनसों तोहि न काज। तेरे घटमें जग बसे, तामें तेरो राज॥४४॥

सवैया ३१ सा—याहि नर पिंडमें बिराजे त्रिभुवन थिति, याहीमें त्रिविधि परिणामरूप सृष्टि है। याहीमें करमकी उपाधि दुःख दावानल, याहीमें समाधि सुखवारिदकि वृष्टि है॥ याहीमें करता करतूति यामें विभूति, यामें भोग याहीमें वियोग यामें घृष्टि है। याहीमें विलास सर्व गर्भित गुपतरूप; ताहिको प्रगट जाके अन्तर सुदृष्टि है॥४५॥

सवैया २३ सा—रे रुचिवंत पचारि कहे गुरु, तूं अपनो पद बूझत नाहीं। खोज हिये निज चेतन लक्षण, है निजमें निज गूझत नाहीं॥ शुद्ध स्वच्छंद सदा अति उज्जल, मायाके फंद अरूझत नाहीं। तेरो स्वरूप न दुंदकि दोहिमें, तोहिमें तोहि है सूझत नाहीं॥४६॥

सवैया २३ सा—केइ उदास रहे प्रभु कारण, केइ कहीं उठि जांहि कहींके। केइ प्रणाम करें घडि मूरति, केइ पहार चढे चढि छींके। केइ कहें असमानके ऊपरि, केइ कहे प्रभु हेठ जमींके। मेरो धनी नहि दूर दिसान्तर, मोहिमें है मोहि सूझत नीके॥४७॥

कहे सुगुरु जो समकिती, परम उदासी होय। सुथिर चित अनुभौ करे, प्रभुपद परसे सोइ॥४८॥

सवैया ३१ सा—छिनमें प्रवीण छिनहीमें मायासों मलीन, छिनकमें दीन छिनमांहि जैसो शक्र है। लिये दोर धूप छिन छिनमें अनंतरूप, कोलाहल ठानत मथानकोसो तक्र है॥ नट कोसो थार कीधों हार है रहट कोसो, नदीकोसो भौरकि कुंभार कोसो चक्र है। ऐसो मन भ्रामकसु थिर आज कैसे होई, औरहीको चंचल अनादि हीको वक्र है॥४९॥

सवैया ३१ सा—धायो सदा काल पै न पायो कहुं साचो सुख, रूपसों विमुख दुख कूपवास बसा है। धरमको घाती अधरमको संघाती महा, कुरापाति जाकी संनिपात कीसि दसा है॥ मायाकों झपटि गहे कायसों लपटि रहे, भूल्यो भ्रम भीरमें बहीर कोसो ससा है। ऐसो मन चंचल पताका कोसो अंचल सु ज्ञानके जगेसे निरवाण पंथ धसा है॥५०॥

दोहा—जो मन विषय कषायमें, वरते चंचल सोइ। जो मन ध्यान विचारसों, रुके सु अविचल होइ॥५१॥

तातें विषय कषायसों, फेरि सुमनकी वाणी। शुद्धातम अनुभौ विषें, कीजे अविचल आणि॥५२॥

शार्दूलविक्रीडित छन्द- इत्यालोच्य विवेच्य तत्किल परद्रव्यं समग्रं बला-
त्तन्मूलां बहुभावसन्ततिमिमामुद्धर्तुकामः समम्।
आत्मानं समुपैति निर्भरवहत्पूर्णैकसंविद्युतम्
येनोन्मूलितबन्ध एष भगवानात्माऽऽत्मनि स्फूर्जति ॥ १८ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ-एषः आत्मा आत्मनि समुपैति येन आत्मनि स्फूर्जति- एषः आत्मा कहतां प्रत्यक्ष छे जो जीव द्रव्य, आत्मानं समुपैति कहतां अनादिकालको स्वरूप तहि भ्रष्ट हुओ थो तथापि एनै अनुक्रम आपणा स्वरूप कहु प्राप्त हुओ, येन कहतां स्वरूपकी प्राप्ति करि, आत्मनि स्फूर्जति कहतां परद्रव्यसो सम्बंध छूट्यो, आपसो सम्बंध रह्यो, किसो छे उन्मूलितबंधः-उन्मूलित कहतां मूल सत्ता तहि दूर कियो छे, बंधः कहतां ज्ञानावरणादि कर्मरूप पुद्गल द्रव्यको पिंड जेनै इसो छे, और किसो छे, भगवान् कहतां ज्ञान स्वरूप छे। किसो करि अनुभवै छे, निर्भरवहत्पूर्णैकसंविद्युतम्-निर्भर कहतां अनंत शक्तिको पुंजरूप छे, तिहिते वहत कहतां निरंतरपनै परिणवै छे, इसो जो एक संवित् कहतां विशुद्ध ज्ञान तिह करि युतं कहतां मिल्यो छे। इसो शुद्ध स्वरूपको अनुभवै छे। और किसो छे आत्मा, इमां बहुभावसंततिं समं उद्धर्तुकामः-इमां कहतां कह्यो छे स्वरूप जिहिको इसो छे बहु भाव कहतां राग द्वेष मोह आदि अनेक प्रकार अशुद्ध परिणाम तिहिको, संततिम् कहतां परंपरा तिहिको समं कहतां एक ही काल, उद्धर्तुकामः कहतां उखाड़ि दूर करिवाको छे अभिप्राय जिहिको इसो छे, किसो छे, भाव संतति, तन्मूलां कहतां परद्रव्यको स्वामित्वपनो छे मूल कारण जिहिको इसो छे, कांयोकरि—किल बलात् तत समग्र परद्रव्यं इति आलोच्य विवेच्य—किल कहतां निहचासों, बलात् कहतां ज्ञानके बल करि, तत कहतां द्रव्य कर्म्म भावकर्म्म नोकर्म रूप, समग्र परद्रव्य कहतां इसो छे जावंत पुद्गल द्रव्यकी विचित्र परिणति तिहिकों, इति आलोच्य कहतां पूर्वोक्त प्रकार विचारि करि; विवेच्य कहतां शुद्ध ज्ञान स्वरूप तहिं भिन्न कीयो छे। भावार्थ इसो—जो शुद्ध स्वरूप उपादेय छे, अन्य समस्त परद्रव्य हेय छे।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टी ज्ञानी जीवने अपने भेद ज्ञानके बलसे अपने आत्माके सिवाय सर्व परद्रव्योंसे व परभावोंसे मोह छोड़कर एक निज आत्माको ही पहचानकर उसीके अनुभवमें इसीलिये तन्मय होगया है कि जिससे उनपर भावोंके उत्पन्न होनेके मूल कारण मोहनीयादि कर्मोंका सर्वथा नाश होजावे और तब यह भगवान आत्मा आप आपमें ही नित्य प्रकाशमान रहे। परमात्मप्रकाशमें कहा है—

अप्पा गुणमउ णिम्मलउ अणुदिणु जे झायंति। ते पर णियमें परममुणि लहु णिव्वाणु लहंति ॥१५॥

भावार्थ—जो परम मुनि अपने निर्मल व गुणपूर्ण आत्माको रात्रिदिन ध्याते हैं वे ही नियमसे शीघ्र ही निर्वाणका लाभ करते हैं।

सवैया ३१ सा—अलख अमूरति अरूपी अविनाशी अज, निराधार निगम निरंजन निरंध है॥ नानारूप भेष धरे भेषको न लेश धरे, चेतन प्रदेश धरे चैतन्यका खंध है॥ मोह धरे मोहीसों विराजे तामें तोहीसों, न मोहीसों तोहीसों न रागी निरबंध है॥ ऐसो चिदानंद याहि घटमें निकट तेरे, ताहि तूं विचार मन और सब धंध है॥ ५३॥

सवैया ३१ सा—प्रथम सुदृष्टिसों शरीररूप कीजे भिन्न, तामें और सूक्षम शरीर भिन्न मानिये॥ अष्ट कर्म भावकी उपाधि सोइ कीजे भिन्न, ताहूमें सुबुद्धिको विलास भिन्न जानिये॥ तामें प्रभु चेतन विराजत अखंडरूप, वहै श्रुत ज्ञानके प्रमाण ठीक आनिये॥ वाहिको विचार करि वाहिमें मगन हूजे, वाको पद साधिवेकों ऐसी विधि ठानिये॥ ५४॥

चौपाई—इहि विधि वस्तु व्यवस्था जाने। रागादिक निजरूप न माने॥
तातें ज्ञानवंत जग मांही। करम बंधको करता नाहीं॥ ५५॥

सवैया ३१ सा—ज्ञानी भेदज्ञानसों विलक्ष पुद्गल कर्म, आतमीक धर्मसों निरालो करि मानतो॥ ताको मूल कारण अशुद्ध राग भाव ताके, नासिवेको शुद्ध अनुभौ अभ्यास ठानतो॥ याही अनुक्रम पररूप भिन्न बंध त्यागि, आपमांहि आपनो स्वभाव गहि आनतो॥ साधि शिव-चाल निरबंध होत तीहूं काल, केवल विलोक पाइ लोकालोक जानतो॥ ५६॥

मंदाक्रांता छन्द-रागादीनामुदयमदयं दारयत्कारणानां
कार्यं बन्धं विविधमधुना सद्य एव प्रणुद्य।
ज्ञानज्योतिः क्षपिततिमिरं साधु सन्नद्धमेत-
त्तद्यद्वत्प्रसरमपरः कोऽपि नास्यावृणोति॥ १६॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—एतत् ज्ञानज्योतिः तद्वत् सन्नद्धं—एतत् ज्ञानज्योतिः कहतां स्वानुभवगोचर छे शुद्ध चेतन्य वस्तु, तद्वत् सन्नद्धं आपणा बल पराक्रम सेती इसो प्रगट हूओ, यद्वत् अस्य प्रसरं अपरः कोपि न आवृणोति—यद्वत् कहतां जैसे, अस्य प्रसरं कहतां शुद्ध ज्ञानको लोक अलोक सम्बन्धी सकल ज्ञेय जानिवाको इसो पसार तिहिको, अपरः कोपि कहतां अन्य कोऊ दूसरो द्रव्य, न आवृणोति कहतां कोई नहीं मेटि सके छे। भावार्थ इसो—जो जीवको स्वभाव केवलज्ञान केवलदर्शन छे सो ज्ञानावरणादि कर्मबंध करि आछाद्यो छे इसो आवरण शुद्ध परिणाम करि मिटै छे, वस्तु स्वरूप प्रगट होइ छे, किसो छे ज्ञानज्योतिः क्षपिततिमिरं—क्षपित कहतां विनाश्यो छे, तिमिरं कहतां ज्ञानावरण, दर्शनावरण कर्म जिहि इसो छे, साधु कहतां सर्व उपद्रव तहिं रहित छे। और किसो छे, कारणानां रागादीनां उदयं दारयत्—कारणानां कहतां कर्मबन्धको कारण छे। इसा छे, रागादीनां कहतां रागद्वेष मोहरूप अशुद्ध परिणाम त्यांहको, उदयं कहतां प्रगटपनो तिहिको, दारयत् कहतां मूलतहिं उखाड़तो होतो, क्यों उपारे छे, अदयं कहतां निर्दयपनेकी नांई

और कार्यो कहतां इसो होइ छे। कार्यं बन्धं अधुना सद्य एव प्रणुद्य—कार्यं कहतां रागादि अशुद्ध परिणाम होतां होइ छे इसो, बन्धं कहतां धाराप्रवाहरूप होइ छे पुद्गल कर्मको बंध तिहिको, अधुना सद्य एव कहतां जेनैकाल रागादि मिट्यातेही काल, प्रणुद्य कहतां मेटि करि, किसो छे बंध, विविधं—कहतां ज्ञानावरण, दर्शनावरण इत्यादि असंख्यात लोक मात्र छे। कोई वितर्क करिसे जो इसो तो द्रव्यरूप छतो ही छे। तथापि प्रगटरूप बंधके दूरि करतां हुओ।

भावार्थ—ज्ञानी जीवके भीतर रागादि दोष नष्ट भए तब उनका कार्यबंध भी नष्ट हुआ तब ज्ञानमई ज्योति जैसीकी तैसी अनुभवमें भले प्रकार आगई। यही अनुभूति आत्माके सर्व बंधको काटकर उसको पूर्ण ज्ञानानंदमय कर देती है अतएव स्वात्मानुभव करना ही परम हित है। परमात्मप्रकाशमें कहते हैं—

पेच्छइ जाणइ अणुचरइ, अप्पिं अप्पउ जो जि। दंसणु णाणु चरित्तु जिउ, मुक्खहं कारणु सो जि ॥१३८॥

भावार्थ—जो आत्मासे आत्माको देखता जानता व अनुभवता है वह रत्नत्रयमई जीव मोक्षका कारण होजाता है।

सवैया ३१ सा—जैसे कोउ मनुष्य अजान महा बलवान, खोदि मूल वृक्षको उखारे गहि बाहुसों ॥ तैसे मतिमान द्रव्यकर्म भावकर्म त्यागि, व्है रहे अतीत मति ज्ञानकी दशाहुसों ॥ याहि क्रिया अनुसार मिटे मोह अंधकार, जगे जोति केवल प्रधान सवितासों ॥ चूके न शकतिसों लुके न पुदगल मांहि, धुंके मोक्ष थलको रुके न फिरि काहुसों ॥ ५७ ॥

दोहा—बंधद्वार पूरण भयो, जो दुख दोष निदान। अब वरणूं संक्षेपसे, मोक्षद्वार सुखथान ॥५८॥

इतिश्री नाटक समयसार राजमल्लि टीकाको बंधद्वार समाप्तः। बंधो निस्क्रमितः। अथ प्रविशति मोक्षः।

नववां मोक्ष अधिकार।

शिखरिणी छंद—द्विधाकृत्य प्रज्ञाक्रकचदलनाद्बन्धपुरुषौ
नयन्मोक्षं साक्षात्पुरुषमुपलम्भैकनियतं।
इदानीमुन्मज्जत्सहजपरमानन्दसरसं
परं पूर्णं ज्ञानं कृतसकलकृत्यं विजयते ॥१॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—इदानीं—कहतां इहां तहि लेइ करि, पूर्णं ज्ञानं—कहतां समस्त आवरणको विनाश होतां होइ छे शुद्ध वस्तु प्रकाश, विजयते कहतां आगामि अनंतकाल पर्यंत तेहीरूप रहै छे। अन्यथा नहीं होइ छे, किसो छे शुद्ध ज्ञान, कृतसकलकृत्यं—कृत कहतां कीनो छे, सकलकृत्यं कहतां करिवा योग्य थो जो समस्त कर्मको विनाश कीने छे जेने इसो छे, और किसो छे, उन्मज्जत्सहजपरमानन्दसरसं—उन्मज्जत् कहतां

अनादिकाल तहि गयो थो सो प्रगट हुओ छे। इसो सहज परमानन्द कहतां द्रव्यके स्व-भाव तहि परिणवै छे, अनाकुलत्व लक्षण अतींद्रिय सुख तिहि करि सरसं कहतां संयुक्त छे। भावार्थ इसो—जो मोक्षको फल अतींद्रिय सुख छे। कायो करतां ज्ञान प्रगट होइ छे। पुरुषं साक्षात् मोक्षं नयत्—पुरुषं कहतां सकल कर्मको विनाश होतां शुद्धत्व अवस्थाको प्रगटपनो तिहिको, नयत् कहतां परिणवावतो होतो। भावार्थ इसो—जो इहां तहि आरम्भ करि सकल कर्म क्षय लक्षण मोक्षको स्वरूप निरुपिजै छे। और किसो छे, परं कहतां उत्कृष्ट छे और किसो छे, उपलंभैकनियतं कहतां एक निश्चय स्वभावको प्राप्त छे, कायो करतां आत्मा मुक्ति होइ। बंधपुरुषौ द्विधा कृत्य—बंध कहतां द्रव्यकर्म भावकर्म नोकर्मकी उपाधि; पुरुष कहतां शुद्ध जीवद्रव्य तिहिको, द्विधा कृत्य कहतां सर्व बंध हेय; शुद्ध जीव उपादेय इसा भेदज्ञान प्रतीति उपजाइ करि इसी प्रतीति ज्यों उपजै छे त्यों कहिजै छे। प्रज्ञा-क्रकचदलनात्—प्रज्ञा कहतां शुद्ध ज्ञानमात्र जीवद्रव्य, अशुद्ध रागादि उपाधि बंध इसी भेदज्ञान रूपी बुद्धि इसी छे क्रकच कहतां करौत तिहिको दलनात् कहतां निरंतरपनै अनु-भवको अभ्यास करतां। भावार्थ इसो जो—यथा करोतु कै वारंवार चालतां करतां पुद्गलवस्तु काठ इत्यादि दोइ खंड होइ छे तथा भेदज्ञान करि जीव पुद्गलको वार २ भिन्न २ अनु-भवतां भिन्न २ होइ छे तिहितै भेदज्ञान उपादेय छे।

भावार्थ—मोक्षका उपाय यह है कि भेदज्ञानका वारवार अभ्यास करके द्रव्यकर्मादिसे भिन्न आत्माका वारवार अनुभव किया जावे। स्वात्मानुभवसे ही कर्मकी निर्जरा होती है। मोक्ष एक परम उत्कृष्ट आत्माकी अवस्था है जहां नित्य परमानन्द रहता है व पूर्ण ज्ञान रहता है तथा इसका कभी नाश नहीं होता है। उसका उपाय उसीका अनुभव है।

परमात्मप्रकाशमें कहते हैं—

जो परमप्पा णाणमउ, सो हउं देउ अणंतु। जो हउं सो परमप्पु परु, एहउ भावि णिभंतु॥२०६॥

भावार्थ—जो अनंत ज्ञानमई परमात्मा देव है सोही मैं हूं व जो मैं हूं सोही परमात्मा है इसीकी भावना संदेह रहित होकर कर।

सवैया ३१ सा—भेदज्ञान आरासों दुफारा करे ज्ञानी जीव, आतम करम धारा भिन्न भिन्न चरचे॥ अनुभौ अभ्यास लहे परम धरम गहै, करम भरमको खजानो खोलि खरचे॥ योंही मोक्ष मुखे धावे केवल निकट आवे, पूरण समाधि लहे परमको परचे। भयो निरदोर याहि करनो न कछु और, ऐसो विश्वनाथ ताहि बनारसि अरचे॥ १॥

स्रग्धरा छन्द—प्रज्ञाच्छेत्री शितेयं कथमपि निपुणैः पातिता सावधानैः

सूक्ष्मेऽन्तःसन्धिबन्धे निपतति रभसादात्मकर्मोभयस्य।

आत्मानं मग्नमन्तःस्थिरविशदलसद्धाम्नि चैतन्यपूरे
बन्धं चाज्ञानभावे नियमितमभितः कुर्वती भिन्नभिन्नौ ॥ २ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ-भावार्थ इसो जो-जीवद्रव्य तथा कर्मपर्यायरूप परिणयो छे पुद्गलद्रव्यको पिंड त्याहे दूनेको एक बंध पर्यायरूप सम्बन्ध अनादितहि चल्यो आयो छे। सो इसो सम्बन्ध यदा चूके जीवद्रव्य आपणा शुद्ध स्वरूप परिणवै अनंत चतुष्टय रूप परिणवै तथा पुद्गल ज्ञानावरणादि कर्म पर्याय कहु छोड़े जीवका प्रदेशह तहि सर्वथा अबंध रूप होइ सम्बन्ध चूकै। जीव पुद्गल दूवे भिन्न २ होहि तिहिको नाम मोक्ष इसो कहिजे। तिहि भिन्न २ होवाको कारण इसो जो मोह राग द्वेष इत्यादि विभाव-रूप अशुद्ध परणतिकै मिटतां जीवको शुद्धत्वरूप परिणमन, तिहिको ब्यौरो-इसो जो शुद्धत्व परिणमन सर्वथा सकल कर्मका क्षय करिवाको कारण छे। इसो शुद्धत्व परिण-मन सर्वथा द्रव्यको परिणमन रूप छे, निर्विकल्प रूप छे, तिहितै वचन करि कहिवाको समर्थपनो नहीं छे, तिहितै इसो करि कहिजै छे। जो जीवको शुद्ध स्वरूपको अनुभवरूप परिणवावे छे ज्ञान गुण सो मोक्षका कारण छे। तिहिको समाधान इसो जो शुद्ध स्वरूपको अनुभव रूप छे जो ज्ञान सो जीवको शुद्धत्व परिणमनको सर्वथा लीया छे, जिहिको शुद्धत्व परिणमन होइ तिहि जीवको शुद्ध स्वरूपको अनुभव अवश्य होइ धोखो नहीं, अन्यथा सर्वथा प्रकार अनुभव न होइ। तिहितै शुद्ध स्वरूपको अनुभव मोक्षका कारण छे। इहां अनेक प्रकार मिथ्यादृष्टि जीव नानाप्रकार विकल्प करै छे त्यांहको समाधान कीजै छे। केई कहै छे जो जीवको स्वरूप बंधको स्वरूप जान्यो होतो मोक्षमार्ग छे, केई कहै छे जो बंधको स्वरूप जानि करि इसो चिंतवन कीजै जु बंध कब मिटै क्यों मिटे इसी चिंता मोक्षका कारण छे इसो कहे छे जे जीव झूठा छे मिथ्यादृष्टि छे। मोक्षको कारण ज्यों कहिजै छे त्यों छे-इयं प्रज्ञाच्छेत्री आत्मकर्मोभयस्य अंतःसंधिबंधे निपतति इयं कहतां वस्तु स्वरूप छता छै, प्रज्ञा कहतां आत्माको शुद्ध स्वरूप अनुभव समर्थ इहिरूप परिणयो छे, जीवको ज्ञान गुण सोई छे, छेत्री कहतां छैनी, भावार्थ इसो जो-सामान्यपनै जो क्यों वस्तु भानि दोइ कीजै छे, सो छैनी करि भानिजै छे। इहां फुनि जीव कर्म भानि दोइ कीजे छे तिहको दोइ भानिवाको स्वरूप अनुभव समर्थ ज्ञानरूप छैनी छे। और तो दूसरो कारण न हूओ न होइसी। इसी प्रज्ञाछैनी ज्यो भानि दोइ करै छै त्यो कहिजै छै, आत्मकर्मोभयस्य-आत्मा कहतां चेतना मात्र, द्रव्य कर्म कहतां पुद्गलका पिंड अथवा मोह रागद्वेषरूप अशुद्ध परिणति इसो छै, उभयस्य कहतां दोइ वस्तु तिहिको, अंतःसंधि कहतां यद्यपि एक क्षेत्रावगाह रूप छै बंधपर्यायरूप छै, अशुद्धत्व विकाररूप

परिणवो छे तथापि माहोमाहे संधि छे निसंधि नहीं हुवा छे, दोइ द्रव्यको एक द्रव्य रूप नहीं हुओ छे। इसो छे, बंधे कहतां ज्ञान छैनी पैठ वाको ठौर तिहि विषै, निपतति कहतां ज्ञान छैनी पैठे छे, पैठो होती भानि करि भिन्न भिन्न करइ छे। किसो छे प्रज्ञा छैनी। शिता—कहतां ज्ञानावर्णी कर्मको क्षयोपशम होतां मिथ्यात्व कर्मको नाश होतां शुद्ध चैतन्य स्वरूप विषैं अत्यंत पैठन समर्थ छे। भावार्थ इसो—जो यथा यद्यपि लोहसारकी छैनी अति पैनी होइ छे तौ फुनि संधि विचारि दीनी होती भानि दोइ करै छे तथा यद्यपि सम्यग्दृष्टि जीवको ज्ञान अत्यन्त तीक्ष्ण छे तथापि जीव कर्मकी छे जो मांहे संधि तिहि विषे प्रवेश करते संते प्रथम तो बुद्धिगोचर भानि दोइ करै छे। पछै सकल कर्म क्षय हुवा थकी साक्षात् भानि२ करै छे। किसो छे जीवकर्मको संधि बंध, सूक्ष्मे कहतां अति ही दुर्लभ संधि छे, तिहिको ब्यौरो इसो—जो द्रव्य कर्म छे ज्ञानावरणादि, पुद्गलको पिंड यद्यपि एक क्षेत्रावगाह रूप छे तिहि सो तो जीव तहि भिन्नपनाकी प्रतीति विचारतां उपजै छे। जिहितै द्रव्य कर्म पुद्गल पिंड रूप छे। यद्यपि एक क्षेत्रावगाह रूप छे तथापि भिन्न भिन्न प्रदेश छे अचेतन छे, बंधै छे, खुलै छे। इसो विचारतां भिन्नपनाकी प्रतीति उपजै छे। नोकर्म छे शरीर मनो वचन त्यांइसो फुनि एनै प्रकार विचारतां भेद प्रतीति उपजै छे। भावकर्म कहतां मोह राग द्वेषरूप अशुद्ध चेतनारूप परिणाम ते अशुद्ध परिणाम सांप्रत जीव सो एक परिणमनरूप छे। तथा अशुद्ध परिणाम हूं सांप्रत जीव व्याप्य व्यापक रूप परिणवै छे। तिहितै त्याइ परिणामह सो जीव तहि भिन्नपनाको अनुभव कठिन छे। तथापि सूक्ष्म संधिके भैदं पातो भिन्न प्रतीति होइ छे। तिहिको विचार इसो जो यथा स्फटिकमणि स्वरूप करि स्वच्छता मात्र वस्तु छे। राती पीरी कारी बुरीके संयोग पावाथकी रातो पीरो कारो एनै रूप स्फटिकमणि झलकै छे, सांप्रत स्वरूपके विचारतां स्वच्छता मात्र भूमिका स्फटिकमणि वस्तु छे। तिहिविषै रातो पीरो कारो पनो पर संयोगकी उपाधि छे। स्फटिकमणिको स्वभाव गुण नहीं छे। तथा जीवद्रव्यको स्वच्छ चेतना मात्र स्वभाव छे, अनादि संतानरूप मोहकर्मके उदयथकी मोह रागद्वेषरूप रंजक अशुद्ध चेतना रूप परिणवै छे। तथापि सांप्रत स्वरूपकै विचारतां चेतना भूमि मात्र तो जीव वस्तु छे। तिहि विषै मोह रागद्वेष रूप रंजकपनो कर्मकी उदयकी उपाधि छे। वस्तुको स्वभाव गुण नहीं छे। यों करि विचारतां भेद भिन्न प्रतीति उपजै छे, अनुभव गोचर छे। कोई प्रश्न करै छे जो केताकाल, माहिं प्रज्ञा छैनी परै छे, भिन्न भिन्न करै छे। उत्तर इसो, रभसात् कहतां अति सूक्ष्मकाल एक समय मांहे परै छे, तेही काल भिन्न२ करै छे, किसी छे प्रज्ञा छैनी। निपुणैः कथमपि पातिता—निपुणैः कहतां आत्मानुभव विषै प्रवीण छे जे सम्य-

ग्दृष्टि जीव त्याहृ करि, कथमपि कहतां संसारको निकटपनो इसी काल लब्धि पाया थकी, पातिता कहतां स्वरूप विषै पैसारी होती पैसे छे। भावार्थ इसो-जो भेदविज्ञान बुद्धिपूर्वक विकल्परूप छे, ग्राह्य ग्राहकरूप छे, शुद्ध स्वरूपकी नाईं निर्विकल्प नहीं छे। तिहितै उपाय रूप छे, किसा छे सम्यग्दृष्टि जीव, सावधानैः कहतां जीवको स्वरूप कर्मको स्वरूप तिहिको भिन्न२ विचार विषै जागरूक छे, प्रमादी नहीं छे, किसी छे प्रज्ञा छैनी, अभितः भिन्नभिन्नौ कुर्वती अभितः कहतां सर्वथा प्रकार, भिन्नभिन्नौ कुर्वती कहतां जीवको कर्मको जुदा जुदा करे छे-भिन्न भिन्न करे छे त्यों कहिजे छे-चैतन्यपूरे आत्मानं मग्नं कुर्वती अज्ञानभावे बंधं नियमितं कुर्वती-चैतन्य कहतां स्वपर स्वरूप ग्राहक इसो प्रकाश गुण तिहिको, पूरे कहतां त्रिकालगोचर प्रवाह तिहि विषै, आत्मानं कहतां जीव द्रव्य तिहिको, मग्नं कुर्वती कहतां एक वस्तु रूप इसो साधे छे। भावार्थ इसो जो-शुद्धचेतना मात्र जीवको स्वरूप इसो अनुभवगोचर आवे छे। अज्ञानभावे कहतां रागादिपनो तिहि विषै नियमितं बंधं कुर्वती कहतां नियमसे बन्धको स्वभाव इसो साधे छे। भावार्थ इसो जो-रागादि अशुद्धपनो कर्मबन्धकी उपाधि छे, जीवको स्वरूप नहीं छे इसो अनुभवगोचर आवे छे। किसो छे चैतन्यपूर, अंतः कहतां सर्व असंख्यात प्रदेश विषै एक स्वरूप इसो छे। स्थिर कहतां सर्व काल शाश्वतो छे, विशद कहतां सर्वकाल शुद्ध स्वरूप इसो छे, लसत् कहतां सर्वकाल प्रत्यक्ष इसो छे, धाम्नि कहतां केवलज्ञान केवलदर्शन तेजपुंज जिहिको इसो छे।

भावार्थ-भेद विज्ञानके द्वारा सम्यग्दृष्टि पुरुष अपने आत्म स्वरूपको सर्व द्रव्यकर्म, नोकर्म, भावकर्मसे भिन्न प्रतीतिमें लाकर सर्व अन्य भावोंको छोड़कर एक निज स्वरूपको ग्रहण कर लेते हैं अर्थात् स्वात्मानुभवमें लीन होजाते हैं, यही मोक्षका उपाय है। मात्र जाननेसे ही काम नहीं चलेगा। पुरुषार्थ करके स्वानुभवके अभ्यासकी जरूरत है। आराधनासारमें कहा है—

उव्वसिये मणगेहे णट्ठे णीसेसकरणवावारे। विप्फुरिए ससहावे अप्पा परमप्पओ हवइ ॥८५॥

भावार्थ-मनरूपी घरको ऊजड़ बनानेपर व सर्व इंद्रियके व्यापारोंको नष्ट कर देनेपर आत्मा जब अपने स्वभावमें तन्मय होता है तब वह परमात्मा स्वरूप होजाता है।

सवैया ३१ सा—काहू एक जैनी सावधान ह्वै परम पैनि, ऐसी बुद्धि छैनी घटमाहि डार दीनी है। पैठी जो करम भेदि दरव करम छेदि, स्वभाव विभावताकी संधि शोध लीनी है॥ तहां मध्यपाती होय लखी तिन धारा दोय, एक मुधामई एक सुधारस भीनी है। मुधासों विरचि सुधासिंधुमें मगन होय, येति सब क्रियां एक समै बीचि कीनी है ॥ २॥

दोहा-जैसी छैनी लोहकी, करे एकसों दोय। जड़ चेतनकी भिन्नता, त्यों सुबुद्धिसों होय ॥३॥

सवैया ३१ सा—धरत धरम फल हरत करम मल, मन वच तन बल करत समरपे।

भखत अखन वित चखत, रसन रित, लखत अमित वित कर चित दरपे ॥ कहत मरम धुर दहत भरम पुर, गहत परम गुर उर उपसरपे। रहत जगत हित लहत भगति रित, चहत अगत गति यह मति परपे ॥ ४ ॥

सवैया ३१ सा—राणाकोसो बाणालीने आपासाधे थानाचीने, दानाअंगी नानांगी खाना जंगी जोधा है। मायावेली जेतीतेती रेतेमें धरेती, सेती, फंदाहीको कंदा खोदे खेतीकोसो लोधा है ॥ बाधासेती हांआलोरे राधासेती तांता जोरे, बांदीसेती नांता तोरे चांदीकोसो सोधा है। जानेजाही ताहीनीके मानेराही पाहींपीके, ठानेबातें डाही ऐसो धारावाही बोधा है ॥ ५ ॥

सवैया ३१ सा—जिन्हकेजु द्रव्य मिति साधत छखंड थिति, विनसे विभाव अरि पंकति पतन है। जिन्हकेजु भक्तिको विधान एइ नौ निधान, त्रिगुणके भेद मानो चौदह रतन है॥ जिन्हके सुबुद्धिराणी चूरे महा मोह वज्र, पूरे, मंगलीक जे जे मोक्षके जतन है। जिन्हके प्रणांम अंग सोहे चमूं चतुरंग, तेइ चक्रवर्ति धनु धरे ये अतन है ॥ ६ ॥

दोहा—श्रवण कीरतन चितवन, सेवन वंदन ध्यान। लघुता समता एकता, नौधा भक्ति प्रमाण ॥७॥

श्लोक—भित्त्वा सर्वमपि स्वलक्षणबलाद्भेत्तुं हि यच्छक्यते
चिन्मुद्राङ्कितनिर्विभागमहिमा शुद्धश्चिदेवास्म्यहम्।
भिद्यन्ते यदि कारकाणि यदि वा धर्मा गुणा वा यदि
भिद्यन्तां न भिदाऽस्ति काचन विभौ भावे विशुद्धे चिति ॥३॥

खंडान्वय सहित अर्थ—भावार्थ इसो जो जिहिको शुद्ध स्वरूपको अनुभव होइ सो जीव इसो परिणाम संस्कार होइ। अहं शुद्धः चित् अस्मि एव—अहं कहतां हौं, शुद्धः चित् अस्मि कहतां शुद्ध चैतन्य मात्र छौं। एव कहतां निहचासो इसो ही छौं, चिन्मुद्रांकित निर्विभागमहिमा—चिन्मुद्रा कहतां चेतना गुण तिहि करि, अंकित कहतां चीन्ही दीयो छे इसो छे, निर्विभाग कहतां भेद तहि रहित छे, महिमा कहतां बड़ाई जिहिकी इसो छौं। इसो अनुभव ज्यों होइ छे त्यों कहिजै छे। सर्वं अपि भित्वा—सर्वं कहतां जावंत कर्मके उदयकी उपाधि तावंत, भित्वा कहतां अनादिकाल तहि आपो जानि अनुभवै थो सो परद्रव्य जानि स्वामित्व छूट्यो, किसो छे परद्रव्य, यत्तु भेत्तुं शक्यते—यत् कहतां जो कर्मरूप परद्रव्य वस्तु, भेत्तुं कहतां जीव तहि भिन्न करिवा कहु, शक्यते कहतां दूरी कीनो जाइ छे। किसा थकी, स्वलक्षणबलात्—स्वलक्षण कहतां जीवको लक्षण चेतन, कर्मको लक्षण अचेतन इसो भेद तिहिको बल कहतां सहाय तिहि थकी किसो छौ हौं। यदि कारकाणि वा धर्मा व गुणाः भिद्यन्ते भिद्यन्तां चिति भावे काचन भिदा न—यदि कहतां जो, कारकाणि कहतां आत्मा आत्माको आत्माकरि आत्माविषै इसो भेद, वा कहतां अथवा, धर्म्मा कहतां उत्पाद व्यय ध्रौव्य रूप, द्रव्य गुण पर्याय रूप भेद बुद्धि, अथवा गुणा कहतां ज्ञानगुण, दर्शनगुण, सौख्यगुण इत्यादि अनंत गुणरूप भेद बुद्धि, भिद्यंते कहतां जो इसो

भेद वचनकरि उपजाया होतां उपनै छे, तदा भिद्यंता कहतां तो वचनमात्र भेद होहु। परंतु चिति भावे कहतां चैतन्य सत्ता विषे तो कांचन भिदा न कहतां कोई भेद न छे। निर्विकल्प मात्र चैतन्य वस्तुको सत्व छे, किसो छे चैतन्यभाव, विभौ कहतां आपणा स्वरूपको आपन शीली छे, और किसो छे, विशुद्धं कहतां सर्व कर्म्मकी उपाधि तहि रहित छे।

भावार्थ-जिस ज्ञानीको स्वात्मानुभव होता है वह एकरूप अभेद निज आत्माको उसके शुद्ध लक्षणको ग्रहण कर अनुभव करता है। उसके अनुभवमें द्रव्य कर्म व भावकर्म, व नोकर्मसे तो भिन्नता दीखती ही है। इसके सिवाय जितने विकल्प आत्माके सम्बन्धमें भी व्यवहारमें वचन द्वारा कहे जाते हैं कि यह अमुक२ स्वभाव व अमुक२ गुणका धारी है सो भी नहीं उठते हैं। शुद्ध ज्ञान चेतनारूप ही स्वानुभव होता है।

आराधनासारमें कहते हैं—

विसयालंवणरहिओ णाणसहावेण भाविओ संतो। कीलइ अप्पसहावे तक्काले मोक्खसुक्खे सो ॥६७॥

भावार्थ-जिस समय स्वात्मानुभव होता है तब यह मन इंद्रिय विषयोंके आलम्बनसे रहित हो ज्ञान स्वभावकी भावना करता करता मोक्ष सुखमई आत्माके स्वभावमें बिलकुल कील जाता है या तन्मय होजाता है।

सवैया ३१ सा—कोऊ अनुभवी जीव कहे मेरे अनुभौमें, लक्षण विभेद भिन्न करमको जाल है ॥ जाने आप आपकोंजु आपकरी आपविखे, उतपति नाश ध्रुव धारा असराल है ॥ सारे विकलप मों सो न्यारे सरवथा मेरे, निश्चय स्वभाव यह व्यवहार चाल है ॥ मैंतो शुद्ध चेतन अनन्त चिनमुद्रा धारि, प्रभुता हमारि एकरूप तीहूं काल है ॥ ८ ॥

शार्दूलविक्रीडित छन्द-अद्वैताऽपि हि चेतना जगति चेद्दृग्ज्ञप्तिरूपं त्यजे-
त्तत्सामान्यविशेषरूपविरहात्साऽस्तित्वमेव त्यजेत्।
तत्त्यागे जडता चितोऽपि भवति व्याप्यो विना व्यापका-
दात्मा चान्तमुपैति तेन नियतं दृग्ज्ञप्तिरूपास्तु चित् ॥ ४ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ-तेन चित् नियतं दृग्ज्ञप्तिरूपा अस्तु-तेन कहतां जिहि कारण तहि, चित् कहतां चेतना मात्र सत्ता नियतं कहतां अवश्य करि, दृग्ज्ञप्तिरूपा अस्तु कहतां दर्शन इसो नाम, ज्ञान इसो नाम, दोइ नाम संज्ञा करि उपदेश होहु। भावार्थ इसो जो-एक सत्यरूप चेतना तिहिका नाम दोइ। एक तो दर्शन इसो नाम, दूजो ज्ञान इसो नाम, इसो भेद होइ छे तो होउ विरुद्ध तो कांई न छे। इसा अर्थको दृढ़ करै छे। चेत् जगति चेतना अद्वैता अपि तत् दृग्ज्ञप्तिरूपं त्यजेत् सा अस्तित्वं एव त्यजेत्—चेत् कहतां जो यो होई, जगति कहतां त्रैलोक्यवर्ती जीवहं विषै प्रगट छै, चेतना कहतां स्वपर ग्राहक शक्ति किसी छे, अद्वैता अपि कहतां एक प्रकाशरूप छै। तथापि दृग्ज्ञप्तिरूपं त्यजेत् कहतां

दर्शनरूप चेतना, ज्ञानरूप चेतना इसा दोइ नाम कहुं छोड़े तो तीन दोष उपजे एक दोषर, सा अस्तित्वं एव त्यजेत्—कहतां आपणा सत्वको अवश्य छांडे। भावार्थ इसो—जो चेतना सत्त्व न छै। इसो भाव पाइजे, किसा थकी। सामान्यविशेषरूपविरहात्—सामान्य कहतां सत्ता मात्र, विशेष कहतां पर्यायरूप तिहिके, विरहात् कहतां रहित पना थकी। भावार्थ इसो—जो यथा समस्त जीवादि वस्तु सत्वरूप छै सोई सत्व पर्यायरूप छे। तथा चेतना अनादि निधन सत्ता स्वरूप वस्तु मात्र निर्विकल्प छै। तिहितै चेतनाको दर्शन इसो नाम कहिजे छै। जिहितै समस्त ज्ञेय वस्तुको ग्रहै छै, जिसे तिसे ज्ञेयाकार परिणवे छै। तिहितै चेतनाको ज्ञान इसो नाम छै। इसी दोइ अवस्थाको छोड़तो चेतना वस्तु नहीं छै। इसी प्रतीति उपजै। इहां कोई आशंका करिसै जो चेतना नहीं तो नहीं लामो। जीव द्रव्य तो छतो छै—उत्तर इसो जो चेतना मात्र करि जीव द्रव्य साध्यो छे। तिहितै चेतनाविन सिद्ध होतां, जीव द्रव्य फुनि सधिसै नहीं अथवा जो सधिसै तो पुद्गल द्रव्यकी नाई अचेतन सधिसै चेतन नहीं सधिसै। इसो अर्थ कहिजे छे—दूजो दोष इसो, तत्त्यागे चितः अपि जडता भवति—तत्त्यागे कहतां चेतनाको अभाव होता, चितः अपि कहतां जीव द्रव्यको फुनि, जडता भवति कहतां पुद्गल द्रव्यकी नाई जीव द्रव्य फुनि अचेतन छे। इसी प्रतीति उपजे छे। च कहतां ही जो दोष इसो जो—व्यापकात् विना व्याप्य आत्मा अंतं उपैति—व्यापकात् विना कहतां चेतना गुणके अभाव होतां, व्याप्यः आत्मा कहतां चेतना गुण मात्र छे जो जीव द्रव्य, अंतं उपैति कहतां मुल तहि जीव द्रव्य न छे। इसी प्रतीति फुनि उपजै, इसा तीन दोष मोटा दोष छे। इसा दोषइ थकी जो कोई भय करै छे, सो इसो मानिज्यो, जो चेतना दर्शन ज्ञान इसो दोइ नाम संज्ञा विराजमान छे। इसो अनुभव सम्यक्त छै।

भावार्थ—यहां यह बताया है कि सर्व वस्तु सत्ता सामान्य विशेष रूप है, चेतना सबको जानने देखनेवाली है। सामान्य निर्विकल्प ग्रहण होनेसे चेतना दर्शनरूप है। विशेष ज्ञेयाकार ग्रहण होनेसे चेतना ज्ञानरूप है। यदि दर्शन या ज्ञानरूप उभयरूप चेतना न होवे तो चेतनाकी सत्ता सिद्ध न हो। एक दोष यह आवे। दूसरा दोष यह हो कि चेतना विना जीव जड़ पुद्गल होजावे। तीसरा दोष यह हो कि जीवका नाश ही होजावे। सो ऐसा कभी नहीं होसक्ता, इससे दर्शन ज्ञानमई चेतना है। वह एकरूप होकर भी उभयरूप है। ऐसा ही वस्तुका स्वरूप है व ऐसा ही मानना सम्यक्त है।

सवैया ३१ सा—निराकार चेतना कहावे दरशन गुण, साकार चेतना शुद्ध गुण ज्ञान सार है॥ चेतना अद्वैत दोउ चेतन दरव माहि, सामान्य विशेष सताहीको विसतार है॥ कोउ कहे चेतना चिन्ह नांही आतमामें, चेतनाके नाश होत त्रिविधि विकार है॥ लक्षणको नाश सत्ता नाश मूल वस्तु नाश, ताते जीव दरवको चेतना आधार है॥ ९॥

दोहा—चेतना लक्षण आतमा, आतम सत्ता मांहि। सत्ता परिमित वस्तु है, भेद तिहूंमें नांहि ॥१०॥

सवैया २३ सा—ज्यों कलधौत सुनारकी संगति, भूषण नाम कहे सब कोई ॥ कंचनता न मिटी तिहि हेतु, वहे फिरि औटिके कंचन होई ॥ त्यों यह जीव अजीव संयोग, भयो बहुरूप हुवो नहि दोई ॥ चेतनता न गई कबहूं तिहि, कारण ब्रह्म कहावत सोई ॥ ११ ॥

सवैया २३ सा—देख सखी यह ब्रह्म विराजत, याकी दशा सब याहिको सोहै ॥ एकमें एक अनेक अनेकमें, द्वंद्व लिये दुविधा महिं दो है॥ आप संभारि लखे अपनो पद, आप विसारिके आपहि मोहै ॥ व्यापकरूप यहै घट अंतर, ज्ञानमें कौन अज्ञानमें को है ॥ १२ ॥

सवैया २३ सा—ज्यों नट एक धरे बहु भेष, कला प्रगटे जब कौतुक देखे ॥ आप लखे अपनी करतूति, वहै नट भिन्न विलोकत पेखे ॥ त्यों घटमें नट चेतन राव, विभाव दशा धरि रूप विसेखे ॥ खोलि सुदृष्टि लखे अपनो पद, दुंद विचार दशा नहि लेखे ॥ १३ ॥

उपजाति छंद—एकश्चितश्चिन्मय एव भावो भावाः परे ये किल ते परेषाम्।
ग्राह्यस्ततश्चिन्मय एव भावो भावाः परे सर्वत एव हेयाः ॥ ५ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—चितः चिन्मयः भावः एव—चितः कहतां जीवद्रव्यको चिन्मयः कहतां चेतना मात्र इसो भावः कहतां स्वभाव छे। एव कहतां निहचासौं योही छे, अन्यथा नहीं छे। किसो छे चेतना मात्र भाव, एकः कहतां निर्विकल्प छे, निर्भेद छे, सर्वथा शुद्ध छे। किल ये परे भावा ते परेषां—किल कहतां निहचासौं, ये परे भावाः कहतां शुद्ध चैतन्य स्वरूप विन मिलता छे जै द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म संबन्धी परिणाम, ते परेषां कहतां सो समस्त पुद्गल कर्मका छे जीवका नही छे। ततः चिन्मयः भावः ग्राह्यः एव परे भावाः सर्वतः हेया एव—ततः कहतां तिहि कारणतहि, चिन्मयः भावः कहतां शुद्ध चेतनामात्र छे जो स्वभाव जीवको स्वरूप छे, ग्राह्यः एव कहतां इसो अनुभव करिवा योग्य छे, परे भावाः कहतां इहिसो विनि मिलतां छे जे द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म स्वभाव, सर्वतः हेया एव कहतां सर्वथा प्रकार जीवको स्वरूप नहीं छे इसो अनुभव करिवाको योग्य छे। इसो अनुभव सम्यक्त छे। सम्यक्तगुण मोक्षको कारण छे।

भावार्थ-यहां बताया है कि जो भव्यजीव अपने स्वाधीन स्वभावरूप मोक्षको प्राप्त करना चाहें उनको उचित है कि अपने शुद्ध चैतन्यमई स्वभावका ही अनुभव करें। अन्य समस्त रागादि परभावका अनुभव नहीं करें। क्योंकि ये परभाव पुद्गलकृत है, जीवके निज स्वभाव नहीं है। आराधनासारमें कहा है—

जो खलु सुद्धो भावो सो जीवो चेयणापि सा उत्ता। तं चेव हवदि णाणं दंसणचारित्तयं चेव ॥७९॥

भावार्थ—जो कोई निश्चयसे शुद्ध भाव है, वही जीव है, वही चेतना है, वही ज्ञान है, वही दर्शन है, वही चारित्र है।

अडिल्ल छन्द—जाके चेतन भाव चिदातम सोइ है। और भाव जो धरे सो औरं कोइ है॥ जो चिन मंडित भाव उपादे जानने। त्याग योग्य परभाव पराये मानने॥ १४॥

सवैया ३१ सा—जिन्हके सुमति जागी भोगसों भये विरागि, परसंग त्यागि जे पुरुष त्रिभुवनमें॥ रागादिक भावनिसों जिन्हकी रहनि न्यारी, कबहू मगन ह्वै न रहे धाम धनमें॥ जे सदैव आपकों विचारे सरवांग शुद्ध, जिन्हके विकलता न व्यापे कहु मनमें॥ तेई मोक्ष मारगके साधक कहावे जीव, भावे रहो मंदिरमें भावे रहो वनमें॥ १५॥

शार्दूलविक्रीडित छन्द—सिद्धान्तोऽयमुदात्तचित्तचरितैर्मोक्षार्थिभिः सेव्यतां
शुद्धं चिन्मयमेकमेव परमं ज्योतिः सदैवास्म्यहम्।
एते ये तु समुल्लसन्ति विविधा भावाः पृथग्लक्षणा-
स्तेऽहं नाऽस्मि यतोऽत्र ते मम परद्रव्यं समग्रा अपि॥ ६॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—मोक्षार्थिभिः अयं सिद्धांतः सेव्यतां—मोक्षार्थिभिः कहतां सकल कर्मको क्षय होतां होइ छे अतीन्द्रिय सुख तिहिको उपादेय करि अनुभवै छे इसा छे जे केई जीव त्यांह करि, अयं सिद्धांतः कहतां जिसो कहिसै जो वस्तुको स्वरूप, सेव्यतां कहतां निरंतरपनें अनुभव करहु। किसा छे मोक्षार्थी जीव उदात्तचित्तचरितैः—उदात्त कहतां संसार शरीर भोग तहिं रहित छे, चित्तचरितैः कहतां मनको अभिप्राय ज्यंहको इसा छे सो किसो छे परमार्थ। अहं शुद्धं चिन्मयं ज्योतिः सदा एव अस्मि—अहं कहतां स्वसंवेदन प्रत्यक्ष छौं जो हौं जीव द्रव्य, शुद्धचिन्मयं ज्योतिः कहतां शुद्ध ज्ञानस्वरूप प्रकाश, सदा कहतां सर्वकाल विषैं, एव कहतां इसो छे। तु ये एते विविधा भावाः ते अहं नास्मि—तु कहतां एक विशेष छे, ये एते विविधाः भावाः कहतां शुद्ध चैतन्य स्वरूपको विन मिलतां छे जे रागादि अशुद्ध भाव शरीर आदि सुख दुःख आदि नानाप्रकार अशुद्ध पर्याय, ते अहं नास्मि कहतां एता समस्त जीवद्रव्य स्वरूप नहीं छे। किसा छे अशुद्ध भाव। पृथग् लक्षणाः कहतां म्हारो शुद्ध चैतन्य स्वरूप सो नहीं मिले छे, किसाथकी। यतः अत्र ते समग्रा अपि मम परद्रव्यं—यतः कहतां जिहि कारण तहि अत्र कहतां निजस्वरूपकै अनुभवतां, ते समग्रा अपि कहतां जावंत छे रागादि अशुद्ध विभाव पर्याय, मम परद्रव्यं कहतां मौ कहुं पर द्रव्य रूप छे, जिहितै शुद्ध चैतन्य लक्षण सो मिलतां नहीं छे। तिहितै समस्त विभाव परिणाम हेय छे।

भावार्थ—यहां यह बताया है कि मोक्षार्थी पुरुषोंको यही सिद्धांत मानना चाहिये कि मैं एक शुद्ध चैतन्य मात्र ज्योति हूं। ऐसा ही सदासे था व सदा ही रहूंगा। रागादि पर भावोंका स्वरूप मलीन है, मैं परम पवित्र हूं। यही अनुभव स्वरूप विकाशका कारण है। परभावसे शून्य होकर स्वात्म ध्यान ही मोक्षका हेतु है। आराधनासारमें कहते हैं—

जत्थ ण झाणं झेयं झायारो णेव चिंतणं किंपि णय धारणा वियप्पो तं सुण्णं सुट्ठु भाविज्ज ॥७८॥

भावार्थ—जहां न ध्यान, ध्येय व ध्याताके विकल्प हैं न कोई चिंतना ही है न कोई धारणा है न कोई विकल्प है वही परसे शून्य आत्मभाव है उसका ही अनुभव करना योग्य है।

सवैया २३ सा—चेतन मंडित अंग अखंडित, शुद्ध पवित्र पदारथ मेरो ॥ राग विरोध विमोह दशा, समझे भ्रम नाटक पुद्गल केरो ॥ भोग संयोग, वियोग व्यथा, अवलोकि कहे यह कर्मजु घेरो ॥ है जिन्हकों अनुभौ इह भांति, सदा तिनकों परमारथ नेरो ॥ १६ ॥

श्लोक—परद्रव्यग्रहं कुर्वन् बध्येतैवापराधवान्।
बध्येतानपराधो न स्वद्रव्ये संवृतो मुनिः ॥ ७ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—अपराधवान्—कहतां शुद्ध चिद्रूप अनुभव स्वरूप तहि भ्रष्ट छे जो जीव बध्येत—कहतां ज्ञानावरणादि कर्मइ करि बांधिजे छे, किसो छे। परद्रव्यग्रहं कुर्वन्—परद्रव्य कहतां शरीर मनो वचन, रागादि अशुद्ध परिणाम तिहिको, ग्रहं कहतां आत्म बुद्धिरूप स्वामित्व कहु, कुर्वन् कहतां करतो होतो। अनपराधः मुनिः न बध्येत—अनपराधः कहतां कर्मके उदयको भाव आत्माको जानि नाहीं अनुभवै छे। इसो छे जो, मुनिः कहतां परद्रव्य तहि विरक्त सम्यग्दृष्टी जीव, न बध्येत कहतां ज्ञानावरणादि कर्म पिंड करि नहीं बांधिजे छे। भावार्थ इसो—जो यथा कोई चोर परद्रव्य चुरावै छै, गुणहगार होइ छै। गुणहगार थकी बांधिजे छे, तथा मिथ्यादृष्टी जीव परद्रव्य रूप छे द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म त्यांहको आपो जानि अनुभवै छे, शुद्ध स्वरूप अनुभव तहि भ्रष्ट छे। परमार्थ बुद्धि विचारतां गुणहगार छे। ज्ञानावरणादि कर्मको बंध छे। सम्यग्दृष्टी जीव इसा भाव तहि रहित छे। किसा छे सम्यग्दृष्टी जीव—स्वद्रव्ये संवृतः—कहतां अपने आत्म द्रव्यके विषैं संवर रूप छे। अर्थात् आत्मा माहे मगन छे।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टी ज्ञानी स्वद्रव्यको अपना व परद्रव्य रागादिको कर्मका स्वरूप जानता है। वह परमाणु मात्र भी परद्रव्यको अपनाता नहीं, इससे वह अपराधी नहीं होता और कर्मोंसे नहीं बांधा जाता। जब कि मिथ्यादृष्टी अपने शुद्ध द्रव्य स्वरूपको भूलकर परद्रव्य रागादि भावोंको अपना ही स्वरूप मानकर व धन धान्यादिका मैं स्वामी ऐसा अहंकार करके अपराधी होता है और कर्मोंसे बांधा जाता है। इष्टोपदेशमें कहते हैं—

अविद्वान् पुद्गलद्रव्यं योऽभिनन्दति तस्य तत्। न जातु जंतोः सामीप्यं चतुर्गतिषु मुंचति ॥४६॥

भावार्थ—जो मूर्ख पुद्गल द्रव्यको अपनाता है उसका सम्बंध वह पुद्गल चारों ही गतिमें भ्रमण करते हुए कभी नहीं छोड़ता है। अर्थात् वह अपराधी कर्मोंसे बन्धा हुआ चारों ही गतियोंमें दुःख उठाता है।

दोहा-जो पुमान परधन हरे, सो अपराधी-अज्ञ। जो अपने धन व्यवहरे, सो धनपति सर्वज्ञ ॥१७॥
परकी संगति जो रचे, बंध बढ़ावे सोय। जो निज सत्तामें मगन, सहज मुक्त सो होय ॥१८॥
उपजे विनसे थिर रहे, यहुतो वस्तु बखान। जो मर्यादा वस्तुकी, सो सत्ता परमान ॥१९॥

सवैया ३१ सा—लोकालोक मान एक सत्ता है आकाश द्रव्य, धर्म द्रव्य एक सत्ता लोक परमीत है ॥ लोक परमान एक सता है अधर्म द्रव्य, कालके अणु असंख्य सत्ता अगणीत है ॥ पुद्गल शुद्ध परमाणुकी अनंत सत्ता जीवकी अनंत सत्ता न्यारी न्यारी थीत है ॥ कोउ सत्ता काहुसों न मिले एकमेक होय, सबे असहाय यों अनादिहीकी रीत है ॥ २० ॥

सवैया ३१ सा—एई छः द्रव्य इनहीको है जगतजाल, तामें पांच जड़ एक चेतन सुजान है ॥ काहूकी अनंत सत्ता काहूसों न मिले कोइ, एक एक सत्तामें अनंत गुण गान है ॥ एक एक सत्तामें अनंत परजाय फिरे, एकमें अनेक इहे भांति परमाण है ॥ यहै स्यादवाद यह संतनकी मरयाद, यहै सुख पोष यह मोक्षको निदान है ॥ २१ ॥

३१ सा—साधि दधि मंथनमें राधि रस पंथनमें, जहां तहां ग्रंथनमें सत्ताहीको सोर है ॥ ज्ञान भान सत्तामें सुधा निधान सत्ताहीमें, सत्ताकी दुरनि सांझ सत्ता मुख भोर है ॥ सत्ताको स्वरूप मोख सत्ता भूल यहै दोष, सत्ताके उलंघे धूम धाम चहूं ओर है ॥ सत्ताकी समाधिमें विराजि रहे सोइ साहु, सत्ताते निकसि और गहे सोई चोर है ॥ २२ ॥

सवैया ३१ सा—जामें लोक वेदनांहि थापना उछेद नांहि, पाप पुन्य खेद नांहि क्रिया नांहि करनी। जामें राग द्वेष नांहि जामें बंध मोक्ष नांहि, जामें प्रभु दास न आकाश नांहि धरनी ॥ जामें कुल रीत नांहि जामें हार जीत नांहि, जामें गुरु शिष्य नांहि विष नांहि भरनी ॥ आश्रम वरण नांहि काहूका सरण नांहि, ऐसि शुद्ध सत्ताकी समाधि भूमि बरनी ॥ २३ ॥

मालनी छन्द—अनवरतमनन्तैर्बध्यते सापराधः स्पृशति निरपराधो बन्धनं नैव जातु।
नियतमयमशुद्धं स्वं भजन्सापराधो भवति निरपराधः साधुशुद्धात्मसेवी ॥८॥

खण्डान्वय सहित अर्थ-सापराधः अनवरतं अनन्तैः बध्यते—सापराधः कहतां परद्रव्य रूप छे पुद्गल कर्म तिहिको आपो करि जानें छे। इसो मिथ्यादृष्टी जीव, अनवरतं कहतां अखण्ड धाराप्रवाह रूप, अनंतैः कहतां गणनातहि अतीत ज्ञानावरणादि रूप बंधे छे पुद्गल पुद्गणा त्यांह करि, बध्यते कहतां बांधिजै छे। निरपराधः जातु बन्धनं न एव स्पृशति—निरपराधः कहतां शुद्ध स्वरूपको अनुभवै छे। इसो सम्यग्दृष्टी जीव, जातु कहतां कौनहू काल, बन्ध कहतां पूर्वोक्त कर्मबंधको, न स्पृशति कहतां नहीं छूवै छे, एव कहतां निहिचासों। आगे सापराध निरपराधको लक्षण कहिजै छे। अयं अशुद्धं स्वं नियतं भजन् सापराधः भवति—अयं कहतां मिथ्यादृष्टि जीव, अशुद्धं कहतां रागादि अशुद्ध परिणाम रूप परिणवो छे इसो, स्वं कहतां आप सम्बंधी जीव द्रव्य, तिहिको नियतं भजन् कहतां इसो ही निरंतर अनुभवतो होतो, सापराधो भवति कहतां अपराध सहित होइ छे। साधु शुद्धात्मसेवी निरपराधः भवति—साधु कहतां ज्यों छे त्यों, शुद्धात्म कहतां सकल रागादि

अशुद्धपना तहि भिन्न शुद्ध चिद्रूप मात्र इसो जीव द्रव्य तिहिको सेवी कहतां अनुभव विराजमान छे सम्यग्दृष्टी जीव, निरपराधः भवति कहतां समस्त अपराध तहि रहित छे, तिहिते कर्मको बन्धक न होइ।

भावार्थ-मिथ्यादृष्टी जीव सदा ही अपने आत्माको अशुद्ध रूप ही अनुभव करता है। मैं देव, मैं नारकी, मैं पशु, मैं मनुष्य, मैं रागी, मैं क्रोधी, मैं परोपकारी, मैं बड़ा, मैं दीन, मैं तपस्वी। इस तरह पर कृत भावोंको व अवस्थाओंको अपनी मानता है। इसलिये वह अपराधी होता हुआ निरंतर कर्मोको बांधता है। सम्यग्दृष्टी जीव कभी भी पररूप अपने आत्माको अनुभव नहीं करता है। किन्तु जैसा उसका स्वभाव है वैसा ही उसको मानकर उसे शुद्ध स्वरूप ही अनुभव करता है। इसलिये वह अपराधी न होता हुआ कर्मोसे नहीं बंधता है। योगसारमें कहते हैं—

जो ण वि जाणइ अप्प पर ण वि परभाव चएवि। सो जाणउ सच्छइ सयलु ण हु सिवसुक्ख लहेवि ॥९५॥

भावार्थ—जो अपने आत्मा व परके भेदको नहीं पहचानता है व परभावोंका त्याग नहीं करता है वह अनेक शास्त्रोंको पढ़कर भी मोक्षके आनंदको अनुभव नहीं करता है।

दोहा—जाके घट समता नहीं, ममता मगन सदीव। रमता राम न जानही, सो अपराधी जीव ॥२४॥
अपराधी मिथ्यामती, निरदे हिरदे अंध। परको माने आतमा, करे करमको बंध ॥ २५ ॥
झूठी करणी आचरे, झूठे सुखकी आस। झूठी भगती हिय धरे, झूठो प्रभुको दास ॥२६॥

सवैया ३१ सा—माटी भूमि सैलकी सो संपदा बखाने निज, कर्ममें अमृत जाने ज्ञानमें जहर है। अपना न रूप गहे औरहीसों आपा कहे, साताको समाधि जाके असाता कहर है॥ क्रोधको कृपान लिये मान मंद पान कीये, मायाकी मरोर हिये लोभकी लहर है। याही भांति चेतन अचेतनकी संगतीसों, सांचसों विमुख भयो झूठमें बहर है॥ २७ ॥

सवैया २३ सा—तीन काल अतीत अनागत वरतमान, जगमें अखंडित प्रवाहको डहर है। तासों कहे यह मेरो दिन यह मेरी घरी, यह मेरो ही परोई मेरोही पहर है॥ खेहको खजानो जोरे तासों कहे मेरा गेह, जहां बसे तासों कहे मेरा ही शहर है। याहि भांति चेतन अचेतनकी संगतीसों, सांचसो विमुख भयो झूठमें बहर है ॥ २८ ॥

दोहा—जिन्हके मिथ्यामति नहीं, ज्ञानकला घट मांहि। परचे आतम रामसों, ते अपराधी नाहि ॥२९॥

आर्या—अतो हताः प्रमादिनो गताः सुखासीनतां प्रलीनं चापलमुन्मूलितमालम्बनमात्मन्येवालानितं च चित्तमासम्पूर्णविज्ञानघनोपलब्धेः ॥ ९ ॥ (!)

खण्डान्वय सहित अर्थ—अतः प्रमादिनः हताः—अतः प्रमादिना कहतां शुद्ध स्वरूपकी प्राप्ति तहिं भ्रष्ट छे जे जीव, हताः कहतां मोक्षमार्गको अधिकारी न छे। इसो मिथ्यादृष्टि जीवहको धिक्कार कीयो, किसा छे। सुखासीनतां गताः—कहतां कर्मके उदय भोग सामग्री तिहि विषै सुखकी वांछा करै छे, चापलं प्रलीनं—चापलं कहतां रागादि अशुद्ध

परिणामथी होइ छे प्रदेशहं आकुलता, मलीनं कहतां सो फुनि हेय छे, आलम्बनं उन्मूलितं-आलम्बनं कहतां बुद्धिपूर्वक ज्ञान करिते संते जावंत पढ़िवो, विचारिवो चिंतवो स्मरण करिवो इत्यादि, उन्मूलितं कहतां मोक्षका कारण नहीं छे। इसो जानि हेय कीयो, आत्मनि एव चित्तं आलानितं-आत्मनि एव कहतां शुद्ध स्वरूप विषैं एकाग्र होइ करि। चित्तं आलानितं कहतां मन बांध्यो। इसो कार्य ज्यों हुओ त्यों कहिजै छे, आसम्पूर्णविज्ञानघनोपलब्धे-आसंपूर्णविज्ञानं कहतां निरावरण केवलज्ञान तिहिको घन कहतां समूह छे। आत्मद्रव्य तिहिकी, उपलब्धिः कहतां प्रत्यक्षपनै प्राप्ति तिहि थकी।

भावार्थ-जो शुद्ध स्वरूपके अनुभवमें मग्न हैं वे ही धन्य हैं जिन्होंने रागादिकी व्याकुलता छोड़ी, व जिन्होंने शास्त्रादि पठन पाठनके आलम्बनको भी त्यागा व एक मात्र अपने आपमें अपने मनको बांध दिया, जिनके भावोंमें अपने शुद्ध स्वरूपका पूर्ण स्वरूप यथार्थ झलक रहा है। परन्तु संसारके सुखमें मग्न होकर आत्म कार्यमें आलसी हैं वे मिथ्यादृष्टी अवश्य धिक्कारने योग्य हैं, क्योंकि वे अपने हाथों अपना बिगाड़ कर रहे हैं।

योगसारमें कहा है—

धम्मु ण पढिया होइ धम्मु ण पोच्छापिच्छयइ धम्म णु मढियपयेसि धम्मु ण मुच्छालुञ्चियइ ॥४६॥
जेहउ मणु विसयह रमइ तिम जे अप्प मुणेइ। जोइउ भणइ रे जोइहु लहु णिव्वाण लहेइ ॥४९॥

भावार्थ-धर्म पुस्तकोंके पढ़नेसे नहीं होता है, न धर्म पोथियोंके अवलोकनसे होता है, न धर्म किसी मठमें प्रवेश करनेसे होता है, न धर्म मूछोंके लोच करनेसे होता है। योगेन्द्राचार्य कहते हैं-हे योगी! जैसा मन विषयोंमें रमता है वैसा मन जो आत्मामें अनुभवी होजावे तो शीघ्र निर्वाणकी प्राप्ति होजावे।

सवैया ३१ सा—जिन्हके धरम ध्यान पावक प्रगट भयो, संसे मोह विभ्रम विरख तीनों बढ़े हैं। जिन्हके चितौनि आगे उदै स्वान भुसि भागे, लागे न करम रज ज्ञान गज चढ़े हैं॥ जिन्हके समझकी तरंग अंग आगमसे आगममें निपुण अध्यातममें कढे हैं। तेई परमारथी पुनीत नर आठों याम, राम रस गाढ करे यह पाठ पढे हैं॥ ३०॥

सवैया ३१ सा—जिन्हके चिहुंटी चिमटासी गुण चूनवेकों, कुकथाके सुनिवेकों दोउ कान मढे हैं। जिन्हके सरल चित्त कोमल वचन बोले, सौम्यदृष्टि लिये डोले मोम कैसे गढे हैं॥ जिन्हके सकति जगी अलख अराधिवेकों, परम समाधि साधिवेकों मन बढे है। तेई परमारथ पुनीत नर आठों याम, राम रस गाढ़ करे यह पाठ पढ़े हैं॥ ३१॥

वसंततिलका-यत्र प्रतिक्रमणमेव विषं प्रणीतम् तत्राप्रतिक्रमणमेव सुधा कुतः स्यात्।
तत्किं प्रमाद्यति जनः प्रपतन्नधोऽधः किं नोर्द्ध्वमूर्द्ध्वमधिरोहति निःप्रमादः ॥१०॥

खण्डान्वय सहित अर्थ-तत् जनः किं प्रमाद्यति-तत् कहतां तिहि कारण तहि, जनः कहतां समस्त संसारी जीवराशि, किं प्रमाद्यति कहतां क्यों प्रमाद करै छे। भावार्थ

इसो—जो कृपासागर छे सूत्रका कर्ता आचार्य इसो कहै छे। नानाप्रकारका विकल्प करि साध्य सिद्धि तो नहीं छे। किसा छे नानाप्रकार विकल्प करै छे। किसो छे जन। अधः अधः प्रपतन् कहतां जिसे जिसे अधिकी क्रिया करै छे, अधिको अधिको विकल्प करै छे तैसे तैसे अनुभव थकी भृष्ट तहि भृष्ट होइ छे। तिहि कारण तहि, जनः ऊर्द्धं ऊर्द्धं किं न अधिरोहति—जनः कहतां संसारी जीव राशी, ऊर्द्ध ऊर्द्ध कहतां निर्विकल्प तहि निर्विकल्प अनुभव रूप, किं न अधिरोहति कहतां क्यों नहीं परिणवै छे, किसो छे जन, निःप्रमादः कहतां निर्विकल्प है। किसो छे निर्विकल्प अनुभव। यत्र प्रतिक्रमणं विषं एव प्रणीतं—यत्र कहतां जिहि विषै, प्रतिक्रमणं कहतां पठन पाठन, स्मरण, चिंतन, स्तुति, वन्दना इत्यादि अनेक क्रियारूप विकल्प, विषं एव प्रणीतं कहतां विषकी नाईं कह्यो छे। तत्र अप्रतिक्रमणं सुधा कुटः एव स्यात्-तत्र कहतां तिहि निर्विकल्प अनुभव विषै, अप्र-तिक्रमण कहतां न पढ़िवो न पढ़ाइवो, न बंदिवो, न निंदवो। इसो भाव सुधा कुटः एव स्यात् कहतां अमृतको निधानकी नाई छे। भावार्थ इसो—जो निर्विकल्प अनुभव सुखरूप छे तिहितै उपादेय छे, नानाप्रकारका विकल्परूप आकुलतारूप छे, तिहितै हेय छे।

भावार्थ—यहां यह बताया है कि निश्चय मोक्षमार्ग निश्चय रत्नत्रयरूप स्वानुभव या स्वसमय या स्वचारित्र है जहां मन, वचन, कायकी कोई क्रिया नहीं है मात्र आत्मा आत्मामें स्थिर है वही अमृतका कुण्ड है। उसके सामने पढ़ना पढ़ाना, पश्चात्ताप आलोचना करना आदि व्यवहार धर्म विषके समान है। क्योंकि इनमें शुभ भाव होनेसे पुण्यका बंध है जब कि स्वानुभव बंधके नाशका उपाय है। इसलिये व्यवहार चारित्रमें मगन जीवको आचार्यने शिक्षा दी है कि तू अधिक२ व्यवहारमें फंसकर क्यों नीचे गिरता है। स्वानुभवके समान ऊँचे स्थानपर क्यों नहीं चढ़ता है। वास्तवमें यही मोक्षके लिये सोपान है। तत्व०में कहा है—

क्षणे क्षणे विमुच्यते शुद्धचिद्रूपचिंतया तदन्यचिंतया नूनं बध्यतेव न संशयः॥ ९।१८॥

भावार्थ—शुद्ध चिद्रूपके अनुभवसे तो समय २ कर्मोंकी निर्जरा होगी—जब कि अन्यकी कुछ भी चिंता संशय रहित बंधकी कारण है।

दोहा—राम रसिक अरु राम रस, कहन सुननको दोइ। जब समाधि परगट भई, तब दुविधा नहिं कोइ॥३२॥
नंदन वंदन थुति करन, श्रवण चितवन जाप। पठन पठावन उपदिशन, बहुविधि क्रिया कलाप॥३३॥
शुद्धातम अनुभव जहां, शुभाचार तिहिं नांहि। करम करम मारग विषै शिव मारग शिव मांहि॥३४॥

चौपाई—इहि विधि वस्तु व्यवस्था जैसी, कही जिनेन्द्र कही मैं तैसी।
जे प्रमाद संयुत मुनिराजा, तिनके शुभाचारसों काजा॥ ३५॥
जहां प्रमाद दशा नहिं व्यापे, तहां अवलम्बन आपो आपे।
ता कारण प्रमाद उतपाती, प्रगट मोक्ष मारगको घाती॥ ३६॥

चौपाई—जे प्रमाद संयुक्त गुसांई, उठहिं गिरहिं गिंदुकके नांई ।
जे प्रमाद तजि उद्धत होई, तिनको मोक्ष निकट द्रिग सोई ॥ ३७ ॥
घटमें है प्रमाद जब तांई, पराधीन प्राणी तब तांई ॥
जब प्रमादकी प्रभुता नासे, तब प्रधान अनुभौ परकासे ॥ ३८ ॥

दोहा—ता कारण जगपंथ इत, उत शिव मारग जोर । परमादी जगकूं ढुके, अपरमाद शिव ओर ॥३५॥

मालिनी छन्द—प्रमादकलितः कथं भवति शुद्धभावोऽलसः
कषायभरगौरवादलसता प्रमादो यतः ।
अतः स्वरसनिर्भरे नियमितः स्वभावे भवन्
मुनिः परमशुद्धतां व्रजति मुच्यते चाचिरात् ॥ ११ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—अलसः प्रमादकलितः शुद्धभावः कथं भवति—अलसः कहतां अनुभव विषै शिथिल छे इसो जीव, शुद्धभावः कथं भवति कहतां शुद्धोपयोगी कहां तहिं होइ । अपि तु न होइ । यतः अलसतः प्रमादः कषायभरगौरवात्—यतः कहतां जिहि कारण तहिं, अलसतः कहतां अनुभव विषैं शिथिलता । प्रमादः कहतां नानाप्रकार विकल्प तिसाथकी होइ छे । कषाय कहतां रागादि अशुद्ध परिणति, भर कहतां उदय तिहिको गौरवात् कहतां तीव्रपना थकी होइ छे । भावार्थ इसो—जो जीव शिथिल छे विकल्पी छे सो जीव शुद्ध न छे । जिहितें शिथिलपनो विकल्पपनो अशुद्धपनाको मूल छे । अतः मुनिः परमशुद्धतां व्रजति च अचिरात् मुच्यते—अतः कहतां इहि कारण तहिं, मुनिः कहतां सम्यग्दृष्टी जीव, परमशुद्धतां व्रजति कहतां शुद्धोपयोग परिणति परिणवै छे । च कहतां इसो होतां, अचिरात् मुच्यते कहतां तेही काल कर्मबंध तहिं मुक्त होइ छे, किसो छे मुनि । स्वभावे नियमितः भवन्—स्वभावे कहतां शुद्ध स्वरूप विषैं, नियमितः भवन् कहतां एकाग्रपनें मग्न होतो संतो, किसो छे स्वभाव, स्वरसनिर्भरे—स्वरस कहतां चेतनागुण तिहिकरि निर्भर कहतां परिपूर्ण छे ।

भावार्थ—कोई ऐसा मानते हैं कि मात्र आत्माके जान लेनेसे मुक्ति होजायगी, स्वानुभव करनेकी जरूरत नहीं ऐसा मानकर अन्य कार्योंमें रात दिन लीन रहते हैं परन्तु स्वरूप चिंतन व अनुभवमें प्रमादी हैं उनको आचार्य कहते हैं कि यदि तुम्हारे प्रमादभाव है तो अवश्य तीव्र कषायका उदय है । इससे तो बंध होगा । शुद्ध स्वरूपका निश्चय करके स्वरूपमें अनुभव पाना ही मात्र एक मुक्तिका उपाय है, जहां प्रमादका नाम भी नहीं रहता रहता है । इसलिये सदा अप्रमत्त रहना ही योग्य है । आराधनासारमें कहा है—

हणिऊण अट्टरुद्दे अप्पा परमप्पयम्मि ठविऊण । भाविय सहाउ जीवो कइवत्तु देहाउ मलमुत्तो ॥१०६॥

भावार्थ—हे भव्य जीव ! तू आर्तरौद्र ध्यानसे दूर करके अपने आत्माको परम शुद्ध

स्वभावमें स्थापित करके स्वानुभव कर और अपने जीवको कर्म मलसे छुड़ाकर मोक्ष द्वीपमें प्राप्त कर।

दोहा—जे परमादी आलसी, जिन्हके विकलप भूर। होइ सिथल अनुभौविषे, तिन्हको शिवपथ दूर ॥४०॥
जे परमादी आलसी, ते अभिमानी जीव। जे अविकलपी अनुभवी, ते समरसी सदीव ॥४१॥
जे अविकलपी अनुभवी, शुद्ध चेतनायुक्त। ते मुनिवर लघुकालमें, होई करमसे मुक्त ॥४२॥

कवित्त—जैसे पुरुष लखें पहाड़ चढ़ि, भूचर पुरुष तांहि लघु लग्गे।
भूचर पुरुष लखे ताको लघु उतर मिले दुहूको भ्रम भग्गे॥
तैसे अभिमानी उन्नत गल, और जीवको लघुपद दग्गे।
अभिमानीको कहे तुच्छ सब, ज्ञान जगे समता रस जग्गे ॥४३॥

सवैया ३१ सा—करमके भारी समुझे न गुणको मरम, परम अनीति अधरम रीती गहे है॥ होइ न नरम चित्त गरम घरम हूते, चरमकि दृष्टिसों भरम भूलि रहे है॥ आसन न खोले मुख वचन न बोले सिर, नायेहू न डोले मानो पाथरके चहे है॥ देखनके हाउ भव पंथके बढाऊ ऐसे, मायाके खटाउ अभिमानी जीव कहे है॥ ४४॥

सवैया ३१ सा—धीरके धरैय्या भव नीरके तरैय्या भय, भीरके हरैया वर वीर ज्यों उमहे हैं॥ मारके मरैय्या सुविचारके करैय्या सुख, ढारके ढरैय्या गुण लोसों लह लहे है॥ रूपके रूसैय्या सब नयके समैय्या सब, हीके लघु भैय्या सबके कुबोल सहे है॥ वामके वमैय्या दुख दामके दमैय्या ऐसे, रामके रमैय्या नर ज्ञानी जीव कहे है॥ ४५॥

शार्दूलविक्रीडित छन्द—त्यक्त्वाऽशुद्धिविधायि तत्किल परद्रव्यं समग्रं स्वयं
स्वद्रव्ये रतिमेति यः स नियतं सर्वापराधच्युतः।
बन्धध्वंसमुपेत्य नित्यमुदितः स्वज्योतिरच्छोच्छल-
च्चैतन्यामृतपूरपूर्णमहिमा शुद्धो भवन्मुच्यते॥ १२॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—स मुच्यते—स कहतां सम्यग्दृष्टी जीव, मुच्यते कहतां सकल कर्मको क्षयकरि अतीन्द्रिय सुख लक्षण मोक्षको प्राप्त होइ छे किसो छे। शुद्धो भवन्—कहतां रागद्वेष मोहरूप अशुद्ध परिणति तिहितहि भिन्न होतो संतो, और किसो छे। स्वज्योतिरच्छोच्छलच्चैतन्यामृतपूरपूर्णमहिमा—स्वज्योतिः कहतां द्रव्यको स्वभाव गुण इसो छे अच्छ कहतां निर्मल इसो छे, उच्छलत् कहतां धारारूप परिणमन इसो छे, चैतन्य कहतां चेतना गुण तिहिरूप छे, अमृत कहतां अतीन्द्रिय सुख तिहिको, पूर कहतां प्रवाह, तिहिकरि पूर्ण कहतां तन्मय छे, महिमा कहतां महात्म्य जिहिको इसो छे। और किसो छे। नित्यमुदितः कहतां सर्वकाल अतीन्द्रिय सुख स्वरूप छे। और किसो छे। नियतं सर्वापराधच्युतः नियतं कहतां अवश्यकरि, सर्वापराध कहतां यावंत सूक्ष्म स्थूलरूप रागद्वेष मोह परिणाम तिहितै, च्युतः कहतां सर्व प्रकार रहित छे। कायों करतां इसो होइ छे। बंधध्वंसं उपेत्य—बंध कहतां ज्ञानावरणादि पुद्गल कर्मको बंधरूप पर्याय तिहिको ध्वंस

कहतां सत्ताको नाश तिहिको उपेत्य कहतां इसी अवस्थाको पाइकरि और कायो करतो इसो होइ छे। तत समग्रं परद्रव्यं स्वयं त्यक्त्वा-कहतां द्रव्यकर्म, भावकर्म नोकर्म सामग्रीको मूल तहि ममत्वको स्वयं छोड़िकरि, किसो छे परद्रव्य, अशुद्धिविधायि-कहतां अशुद्ध परिणतिको बाह्यरूप निमित्त मात्र छे। किल कहतां निहचासों। यः स्वद्रव्ये रतिं एति-यः कहतां जो सम्यग्दृष्टि जीव स्वद्रव्ये कहतां शुद्ध चैतन्य विषै, रतिं एति कहतां निर्विकल्प अनुभवतैं उपज्यो छे सुख तिहिविषै मग्नपनाको प्राप्त हुओ छे। भावार्थ इसो-जो सर्व अशुद्धपनाके मिटतां होइ छे शुद्धपनो तिहिका सारको छे शुद्ध चिद्रूपको अनुभव इसो मोक्षमार्ग छे।

भावार्थ-यह है कि मोक्षका मार्ग मात्र एक स्वात्मानुभव है जहां रागद्वेष मोह नहीं है, जहां कोई परिग्रह नहीं है। इसी स्वानुभवको ध्यानाग्नि कहते हैं। इसीसे सर्व कर्म जल जाते हैं और आत्मा परमात्मा होता हुआ मुक्त होजाता है। परमात्मप्रकाशमें कहा है-

सव्वहिं रायहिं छहिं रसहिं पंचहि रूवहिं जन्तु। चित्तु णिवारिवि झाइ तुहुं अप्पा देउ अणंतु ॥२०२।

भावार्थ-सर्व प्रकार रागादि भावोंसे, छः रसोंके स्वादसे, पांच तरहके रूपोंसे अपने मनको हटा करके तू एक मात्र अनन्त गुणधारी आत्माका ही ध्यान कर यही मोक्षमार्ग है।

चौपाई—जे समकिती जीव समचेती, तिनकी कथा कहू तुमसेती।
जहां प्रमाद क्रिया नहिं कोई, निरविकल्प अनुभौ पद सोई ॥ ४५ ॥
" परिग्रह त्याग जोग थिर तीनो, करम बंध नहिं होय नवीनो।
जहां न राग द्वेष रस मोहै, प्रगट मोक्ष मारग सुख सोहै ॥ ४७ ॥
" पूरव बंध उदय नहिं व्यापे, जहां न भेद पुण्य अरु पापे।
द्रव्य भाव गुण निर्मल धारा, बोध विधान विविध विस्तारा ॥ ४८ ॥
" जिन्हके सहज अवस्था ऐसी, तिन्हके हिरदे दुविधा कैसी।
जे मुनि क्षपक श्रेणि चढ़ि धाये, ते केवलि भगवान कहाये ॥ ४९ ॥

दोहा—इह विधि जे पूरण भये, अष्टकर्म वन दाहि। तिन्हकी महिमा जे लखे, नमे बनारसि ताहि ॥५०॥

मंदाक्रांता छन्द—बन्धच्छेदात्कलयदतुलं मोक्षमक्षय्यमेत-
नित्योद्योतस्फुटितसहजावस्थमेकान्तशुद्धम्।
एकाकारस्वरसभरतोऽत्यन्तगम्भीरधीरं
पूर्णं ज्ञानं ज्वलितमचले स्वस्य लीनं महिम्नि ॥ १२ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ-एतत् पूर्णं ज्ञानं ज्वलितं-एतत् कहतां यो जो कह्यो छे, पूर्णं ज्ञानं कहतां समस्त कर्ममल कलंकको विनाश होतां जीव द्रव्य जिसो थो अनन्त गुण विराजमान तिसो; ज्वलितं कहतां प्रगट हुओ। किसो प्रगट हुओ। मोक्षं कलयत्-मोक्षं कहतां जीवकी निःकर्म अवस्था तिहिको, कलयत् कहतां तिहि अवस्थारूप परिणवतो होतो

किसो छे मोक्ष, अक्षयं—कहतां आगामि अनन्तकाल पर्यन्त अविनश्वर छे। अतुलं—कहतां उपमा रहित छे, किसा थकी। बन्धछेदात्—बन्ध कहतां ज्ञानावरणादि अष्टकर्म तिहिको, छेदात् कहतां मूल सत्ता नाश तिहि थकी, किसो छे शुद्ध ज्ञान, नित्योद्योतं स्फुटितसहजावस्थां—नित्योद्योतं कहतां शाश्वतो प्रकाश तिहि करि स्फुटित कहतां प्रगट हुई छे, सहजावस्थां कहतां अनंतगुण विराजमान शुद्ध जीव द्रव्य जिहिको इसो छे। और किसो छे, एकांतशुद्धं—कहतां सर्वथा प्रकार शुद्ध है और किसो छे। अत्यन्तगम्भीरधीरं—अत्यंत गम्भीर कहतां अनंतगुण विराजमान इसो छे, धीर कहतां सर्व काल शाश्वतो छे। किसा थकी—एकाकारस्वरसभरतः—एकाकार कहतां एकरूप हुओ छे, स्वरस कहतां अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनंतसुख, अनंतवीर्य, तिहिको, भरतः कहतां अतिशय थी। और किसो छे, स्वस्य महिम्नि लीनं—स्वस्य महिम्नि कहतां आपणो प्रताप विषै, लीनं कहतां मग्नरूप छै। भावार्थ इसो—जो सकल कर्म क्षय लक्षण मोक्ष विषै आत्मद्रव्य स्वाधीन छै। अन्यच्च चतुर्गति विषै जीव पराधीन छै। मोक्षको स्वरूप कह्यो।

भावार्थ-यहां मोक्षका स्वरूप बताया है कि मोक्ष आत्माका पूर्ण शुद्ध स्वभाव है जहां निर्मल केवलज्ञान प्रगट है, जो स्वाभाविक अवस्था क्षय रहित है, क्योंकि कर्मके क्षयसे प्रगट है तथा अनुपम है व परमानंदरूप है। ऐसा मोक्षपद परमानंदमई है, उसको स्वानुभवी जीव ही पाते हैं। आराधनासारमें कहते हैं—

णीसेसकम्मणासे पयडेइ अणन्तणाणचउखन्धअण्णे। वि गुणा य तहा झाणस्स ण दुल्लहं किंपि ॥८७॥

भावार्थ—सर्व कर्मोंके बन्ध नाश होजानेपर अनंत ज्ञानादि चतुष्टय व अन्य अनेक गुण प्रगट होजाते हैं। वास्तवमें ध्यानसे ऐसी कोई कठिन बात नहीं है जो सिद्ध न होसके।

छप्पै छन्द—भयो शुद्ध अंकुर, गयो मिथ्यात्व मूल नसि। क्रम क्रम होत उद्योत, सहज जिम शुक्ल पक्ष ससि॥ केवल रूप प्रकाश, भासि सुख राशि धरम ध्रुव। करि पूरण थिति आउ, त्यागि गत भाव परम हुव॥ इह विधि अनन्य प्रभुता धरत, प्रगटि बुंद सागर भयो। अविचल अखंड अनभय अखय, जीवद्रव्य जगमांहि जयो ॥५१॥

सवैया ३१ सा—ज्ञानावरणीके गये जानिये जु है सु सब, दर्शनावरणके गयेते सब देखिये। वेदनी करमके गयेते निराबाध रस, मोहनीके गये शुद्ध चारित्र विसेखिये॥ आयुकर्म गये अवगाहन अटल होय, नाम कर्म गयेते अमूरतीक पेखिये। अगुरु अलघुरूप होय गोत्र कर्म गये, अंतराय गयेते अनन्त बल लेखिये ॥ ५२ ॥

दोहा—जो निहचौ निरमल सदा, आदि मध्य अरु अंत। सो चिद्रूप बनारसी, जगत मांहि जयवंत॥

इतिश्री नाटक समयसार नवमां मोक्षद्वार समाप्तः। शुद्धविशुद्धि प्रविशति।

दशवां शुद्धात्म द्रव्य अधिकार।

दोहा—इति श्री नाटकग्रंथमें, कह्यो मोक्ष अधिकार। अब वरनों संक्षेपसों, सर्व विशुद्धीद्वार ॥१॥

मंदाकांता छन्द—नीत्वा सम्यक् प्रलयमखिलान्कर्तृभोक्त्रादिभावान्
दूरीभूतः प्रतिपदमयं बन्धमोक्षप्रक्लृप्तेः।
शुद्धः शुद्धस्वरसविसरापूर्णपुण्याचलार्चि-
ष्टङ्कोत्कीर्णप्रकटमहिमा स्फूर्जति ज्ञानपुंजः ॥ १ ॥

खंडान्वय सहित अर्थ—अयं ज्ञानपुंजः स्फूर्जति—अयं कहतां विद्यमान छे, ज्ञानपुञ्ज कहतां शुद्ध जीव द्रव्य, स्फूर्जति कहतां प्रगट होइ छे। भावार्थ इसो—जो यहां तहिं लेइ करि जीवको जैसो शुद्ध स्वरूप छे तिसो कहिजै छे। किसो छै ज्ञानपुञ्ज, टङ्कोत्कीर्णप्रकट-महिमा—टंकोत्कीर्ण कहतां सर्व काल एकरूप इसो छै। प्रगट कहतां स्वानुभव गोचर महिमा कहतां स्वभाव जिहिको इसो छे। और किसो छै, स्वरसविसरापूर्णपुण्याचलार्चिः—स्वरस कहतां शुद्ध ज्ञान चेतना तिहिको विसर कहतां अनंत अंश भेद तिहि करि आपूर्ण कहतां संपूर्ण छे, इसी पुण्य कहतां निरावरण ज्योतिः, अचल कहतां निश्चल अर्चिः कहतां प्रकाश स्वरूप जिहिको इसो छै। और किसो छे, शुद्धः शुद्ध—दोइवार कहनेते अति ही विशुद्ध छे। और किसो बंधमोक्ष प्रक्लृप्तेःप्रतिपदं दूरीभूतः—बंध कहतां ज्ञानावरणादि कर्म पिंड सो संबन्धरूप एक क्षेत्रावगाह, मोक्ष कहतां सकल कर्मको नाश होतां जीव स्व-रूपको प्रगटपनो तिहि थकी, प्रक्लृप्तेः कहतां इसो दोइ विकल्प तिहिथकी, प्रतिपदं कहतां एकेन्द्रिय आदि देइ पंचेंद्रिय पर्यायरूप जहां छे तहां, दूरीभूतः कहतां अतिही भिन्न छे। भावार्थ इसो—जो एकेन्द्रिय आदि देइ पंचेंद्रिय मर्याद करि जीवद्रव्य जहां तहां द्रव्य स्वरूपके विचार बंध इसो, मुक्त इसो विकल्प तहिं रहित छे, द्रव्यको स्वरूप ज्योंही छे त्योंही छे। कायों करता जीवद्रव्य इसो छे। अखिलान् कर्तृभोक्त्रादि भावान् सम्यक् प्रलयं नीत्वा—अखिलान् कहतां गणना करतां अनंत छे इसा जे, कर्तृ कहतां जीव कर्ता छे इसो विकल्प, भोक्ता कहतां जीव भोक्ता छे इसो विकल्प इहि आदि देइ करिके अनंत भेद त्याहको सम्यक् कहतां मूल तहिं, प्रलयं नीत्वा कहतां विनाशिकरि इसो कहिजै छे।

भावार्थ—यहां शुद्ध द्रव्यादिक नयसे जीव द्रव्यकी महिमा बताई है कि यह जीव सदा ही शुद्ध है, पर पदार्थके बन्धसे रहित है इसमें बन्ध व मोक्षकी कल्पना नहीं है न यह परभावोंका कर्ता है न परभावोंका भोक्ता है, यद्यपि एकेंद्रियादि पर्यायोंमें गया व रहा तथापि द्रव्यरूप जैसाका तैसा ही बना रहा। यही अनुभव परम हितकारी है। सर्व जीवोंको एक समान द्रव्य दृष्टिसे देखना ही साम्यभाव प्राप्त कराता है। परमात्मप्रकाशमें कहते हैं—

जो ण वि मण्णइ जीव जिय, सयलवि एक्कसहाव । तासु ण थक्कइ भाउ समु, भवसायरि जो णाव ॥२३२॥

भावार्थ—जो सब जीवोंको एक स्वभाव रूप नहीं मानता है उसको समभाव नहीं होता है । समभाव भवसागरसें तिरनेके वास्ते नावके समान है ।

सवैया ३१ सा—कर्मनिको करता है भोगनिको भोगता है, जाके प्रभुतामें ऐसो कथन अहित है । जामें एक इंद्रियादि पंचधा कथन नाहि, सदा निरदोष बंध मोक्षसों रहित है ॥ ज्ञानको समूह ज्ञान गम्य है स्वभाव जाको, लोक व्यापि लोकातीत लोकमें महित है । शुद्ध वंश शुद्ध चेतनाके रस अंश भर्यो, ऐसो हंस परम पुनीतता सहित है ॥१॥ दोहा—जो निश्चै निर्मल सदा, आदि मध्य अरु अंत । सो चिद्रूप बनारसी, जगत मांहि जैवंत ॥२॥

श्लोक-कर्तृत्वं न स्वभावोऽस्य चितो वेदयितृत्ववत् ।
अज्ञानादेव कर्त्ताऽयं तदभावादकारकः ॥ २ ॥

खण्डान्वयसहित अर्थ—अस्य चितः—कहतां चैतन्य मात्र स्वरूप जीव कहुं, कर्तृत्वं कहतां ज्ञानावरणादि कर्मको करै अथवा रागादि परिणामको करै । इसो न स्वभावः कहतां जीवको इसो सहजको गुण नहीं छे। दृष्टांत कहिजै वेदयितृत्ववत्—कहतां यथा जीवकर्मको भोक्ता फुनि न छे । भावार्थ इसो—जो जीव द्रव्य कर्मको भोक्ता होइ तो कर्ता होइ सो तो भोक्ता फुनि नही छे । तिहिमें कर्ता फुनि ना छे । अयं कर्ता अज्ञानात् एव—अयं कहत यही जीव कर्ता कहतां रागादि अशुद्ध परिणामको करै छे इसो फुनि छे किसाथकी, अज्ञानात् एव कहतां कर्मजनित भावविषै आतमबुद्धि इसो छे जो मिथ्यात्वरूप विभाव परिणाम तिहिंथकी जीव कर्ता छे । भावार्थ इसो—जो जीववस्तु रागादि विभाव परिणामको कर्ता छे इसो जीवको स्वभाव गुण नहीं छे । परन्तु अशुद्ध रूप विभावपरिणति छे । तदभावात् अकारकः तदभावात् कहतां मिथ्शात्व रागद्वेषरूप विभाव परिणति मिटै छे तिहिके मिटतां अकारकः कहतां जीव सर्वथा अकर्ता होइ छे ।

भावार्थ—शुद्ध निश्चय नयसे इस जीवका स्वभाव न परभावको करनेका है न भोगनेका है । यह तो अपने ज्ञानमय परिणतिका ही कर्ता व अपने आनन्दमय भावका ही भोक्ता है । सम्यग्दृष्टी ऐसा ही अनुभव करता है । परन्तु जिनको सम्यक्त रत्नकी प्राप्ति नहीं हुई है, जिनकी ज्ञानदृष्टि मिथ्यात्वके उदयके तमसे आच्छादित है वे अज्ञानसे जीवको कर्म भोक्ता मानते हैं । इस सम्बंधका कथन कर्ता भोक्ता अधिकारमें विशेष रूपसे कहा जा चुका है । परमात्मप्रकाशमें कहते हैं—

जेम सहावि णिम्मलउ, फलिहउ तेम सहाउ । भंतिए मइलु म मणि जिय, मइलउ देक्खवि काउ ॥३०८॥

भावार्थ—जैसे फटिकमणि स्वभावसे निर्मल है वैसा तेरा आत्मा है । शरीरादिको मैला देखकर आत्माको भ्रांतिसे मैला व रागी द्वेषी न समझ ।

चौपाई—जीव करम करता नहिं ऐसें, रस भोक्ता स्वभाव नहिं तैसे।
मिथ्या मतिसों करता होई, गये अज्ञान अकरता सोई॥ ३॥

शिखरिणी छंद—अकर्ता जीवोऽयं स्थित इति विशुद्धः स्वरसतः
स्फुरच्चिज्ज्योतिर्भिश्छुरितभुवनाभोगभवनः।
तथाप्यस्यासौ स्याद्यदिह किल बन्धः प्रकृतिभिः
स खल्वज्ञानस्य स्फुरति महिमा कोऽपि गहनः॥ ३॥

खण्डान्वय सहित अर्थ-अयं जीवः अकर्ता इति स्वरसतः स्थितः—अयं जीवः कहतां विद्यमान छे जो चैतन्य द्रव्य, अकर्ता कहतां ज्ञानावरणादिको अथवा रागादि अशुद्ध परिणामको कर्ता न छे। इति कहतां इसो सहज, स्वरसतः स्थितः कहतां स्वभाव थकी अनादि निधन योंही छै। किसो छे, विशुद्धः कहतां द्रव्यकी अपेक्षा द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म तहिं भिन्न छै। स्फुरच्चिज्ज्योतिर्भिच्छुरितभुवनाभोगभवनः—स्फुरत्, कहतां प्रकाशरूप छे। इसी चिज्जोतिर्भिः कहतां चेतना गुण तिंहि करि, छुरित कहतां प्रतिबिंबित छे, भुवनाभोगभवनः कहतां अनंत द्रव्य जावंत आपणा अतीत अनागत वर्तमान पर्याय सहित जिहिं विषै इसो छै। तथापि किल इह अस्य प्रकृतिभिः यत् असौ बंधः स्यात्—तथापि कहतां शुद्ध छे जीव द्रव्य, तौ फुनि किल कहतां निहचासौं, इह कहतां संसार अवस्था विषैं, अस्य कहतां जीवको, प्रकृतिभिः कहतां ज्ञानावरणादि कर्मरूप, यत् अस्य बंधः स्यात् कहतां जो कछु बंध होइ छै। स खलु अज्ञानस्य कोपि महिमा स्फुरत्—स कहतां बन्ध होइ छे। इसो खलु कहतां निहचासौं, अज्ञानस्य कोऽपि महिमा स्फुरति कहतां मिथ्यात्वरूप विभाव परिणमन शक्तिको कोई इसो ही स्वभाव छे, किसो छे, गहनः कहतां असाध्य छे। भावार्थ इसो—जो जीव द्रव्य संसार अवस्था विभावरूप मिथ्यात्व रागद्वेष मोह परिणामरूप परिणयो छे तिहितैं ज्यों परिणयो छे तिसा भावको कर्ता होइ छे। अशुद्ध भावको कर्ता होइ छे, अशुद्ध भावहके मिटता जीवको स्वभाव अकर्ता छे।

भावार्थ—निश्चय नयसे जीव शुद्ध स्वभावी है ज्ञाता दृष्टा है यह कर्ता नहीं है। जबतक इसके मिथ्यात्व है तबतक अज्ञानसे यह कर्मकृत भावोंमें आपा मानकर कर्ता भोक्ता बनता है और बंधको पाता है व संसारमें भ्रमण किया करता है। परमात्मप्रकाशमें कहते हैं—

दुक्खहं कारणि जे विसय, ते सुहहेउ रमेइ। मिच्छाइट्ठिउ जीवडउ, इत्थु ण काइ करेइ॥८४॥

भावार्थ—मिथ्यादृष्टी जीव दुःखके कारण जो इंद्रियोंके विषय हैं उनको सुखका कारण जानकर रमण करता है ऐसे अज्ञानीसे क्या क्या अकार्य संभव नहीं हैं।

सवैया ३१ सा—निहचै निहारत स्वभाव जाहि आतमाको, आतमीक धरम परम परकासना॥ अतीत अनागत वरतमान काल जाको, केवल स्वरूप गुण लोकालोक भासना॥ सोई जीव संसार

अवस्था मांहि करमको करतासो दीसे लिये भरम उपासना । यहै महा मोहको पसार यहै मिथ्याचार, यहै भो विकार यह व्यवहार वासना ॥ ४ ॥

श्लोक—भोक्तृत्वं न स्वभावोऽस्य स्मृतः कर्तृत्ववच्चितः ।
अज्ञानादेव भोक्ताऽयं तदभावादवेदकः ॥ ४ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—अस्य चितः भोक्तृत्वं स्वभावः न स्मृतः—अस्य चितः कहतां चैतन्य द्रव्यको, भोक्तृत्वं कहतां ज्ञानावरणादि कर्मको फल अथवा सुख दुःख रूप कर्म फल चेतनारूप अथवा रागादि अशुद्ध परिणामरूप कर्म चेतनाको भोक्ता जीव छे इसो, स्वभावः कहतां जीव द्रव्यको सहज गुण, न स्मृतः कहतां गणदेवांह इसो तो न कह्यो छे, जीवको भोक्ता स्वभाव न छे इसो कह्यो छे। दृष्टांत कहै छै। कर्तृत्वत् कहतां यथा जीव द्रव्य कर्मको कर्ता फुनि न छै। अयं जीवः भोक्ता—कहतां योंही जीव द्रव्य आपणा सुख दुःख रूप परिणामको भोगवे छे, इसो फुनि छे सो किसा थकी। अज्ञानात् एव—कहतां अनादि तहि कर्मको संयोग छे, तिहितै मिथ्यात्व रागद्वेष रूप अशुद्ध विभाव परिणवो छे, तिहि थकी भोक्ता छे। तदभावात् अवेदकः—कहतां मिथ्यात्वरूप विभाव परिणामके विनाश होतां जीव द्रव्य साक्षात् अभोक्ता छे। भावार्थ इसो—यथा जीव द्रव्यको अनंतचतुष्टय स्वरूप छे तथा कर्मको अकर्तापनो भोक्तापनो स्वरूप नहीं छे, कर्मकी उपाधि थकी विभाव रूप अशुद्ध परिणतिको विकार छे तिहितै विनाशीक छे, तिहि विभाव परिणतिके विनशतां जीव अकर्ता अभोक्ता छे। आगे मिथ्यादृष्टि जीव द्रव्यकर्मको अथवा भावकर्मको कर्ता छे, सम्यग्दृष्टि कर्ता नहीं छे इसो कहिजे छे।

भावार्थ—यहांपर यही बताया है कि निश्चयनयसे न तो जीव परभावका कर्ता है न भोक्ता है, आत्माका स्वभाव मात्र ज्ञाता दृष्टा है। कर्मकी उपाधिसे जो रागादि भाव होते हैं उनको सम्यग्दृष्टि अपना स्वरूप नहीं मानता है, उससे वह कर्ता भोक्ता बनता नहीं जब कि मिथ्यादृष्टी जीव अज्ञानसे उन विभाव भावोंको अपना मानकर कर्ता तथा भोक्ता बन जाता है। परमात्मप्रकाशमें कहा है—

जो जिण परमाणंदमउ केवलणाणसहाउ। सो परमप्पउ परमपउ सो जिय अप्पसहाउ॥१२८॥

भावार्थ—जो जिनेन्द्र परमानंदमई केवल ज्ञान स्वभाव हैं सोही परमात्मा व परमपद है व सोही हे जीव! तेरे आत्माका स्वभाव है।

चौपाई—यथा जीव कर्ता न कहावे, तथा भोगता नाम न पावे।
है भोगी मिथ्यामति मांहीं, गये मिथ्यात्व भोगता नांहीं ॥ ५ ॥

शार्दूलविक्रीडित छन्द—अज्ञानी प्रकृतिस्वभावनिरतो नित्यं भवेद्वेदको
ज्ञानी तु प्रकृतिस्वभावविरतो नो जातुचिद्वेदकः ।

इत्येवं नियमं निरूप्य निपुणैरज्ञानिता त्यज्यतां
शुद्धैकात्ममये महस्यचलितैरासेव्यतां ज्ञानिता ॥ ५ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—निपुणैः अज्ञानिता त्यज्यतां—निपुणैः कहतां सम्यग्दृष्टि जीवहको, अज्ञानिता कहतां परद्रव्य विषै आत्म बुद्धि इसी मिथ्यात्व परिणति त्यज्यतां ज्यों मिटै त्यों सर्वथा मेटिवो योग्य छे। किसा छे सम्यग्दृष्टि जीव, महसि अचलितैः—कहतां शुद्ध चिद्रूपको अनुभव विषै अखण्ड धारारूप मग्न छे, किसो छे महसि, शुद्धैकात्ममये—शुद्ध कहतां समस्त उपाधि तहि रहित इसो छे, एक आत्म कहतां एकलो जीव द्रव्य, मये कहतां तिहिको स्वरूप छे और कायो करवो छे। ज्ञानिता असेव्यतां—कहतां शुद्ध वस्तुको अनुभव रूप सम्यक्त परिणति रूप सर्व काल रहिवो उपादेय छे। कायो जनि इसो होइ, इति एवं नियमं निरूप्य—इति कहतां ज्यों कहिजै छे, एवं नियमं कहतां इसो वस्तु स्वरूप परिणमनको निहचौ, निरूप्य कहतां अवधारि करि, सो वस्तुको स्वरूप किसो, अज्ञानी नित्यं वेदकः भवेत्—अज्ञानी कहतां मिथ्यादृष्टी जीव, नित्यं कहतां सर्व काल विषै, वेदकः भवेत् कहतां द्रव्यकर्मको, भावकर्मको भोक्ता होइ। इसो निहचौ छे मिथ्यात्वको परिणन इसो ही छे। किसो छे अज्ञानी, प्रकृतिस्वभावनिरतः प्रकृति कहतां ज्ञानावरणादि अष्टकर्म तिहिको स्वभाव कहतां उदय होता नानाप्रकार चतुर्गति शरीर रागादि भाव सुख दुःख परिणति इत्यादि तिहि विषै, निरतः कहतां आपो जानि एकत्व बुद्धि रूप परिणयो छे। तु ज्ञानी जातु वेदकः नो भवेत्—तु कहतां मिथ्यात्वके मिटतां यो फुनि छे, ज्ञानी कहतां सम्यग्दृष्टी जीव, जातु कहतां कदाचित्, वेदकः नो भवेत् कहतां द्रव्यकर्मको, भावकर्मको भोक्ता न होइ इसो वस्तुको स्वरूप छे, किसो छे ज्ञानी। प्रकृतिस्वभावविरतः—प्रकृति कहतां कर्म तिहिको, स्वभाव कहतां उदयको कार्य तिहि विषै, विरतः कहतां हेय जानि करि छूट्यो छे स्वामित्व पनो जिहितै इसो छे। भावार्थ इसो—जो जीवको सम्यक्त होतां अशुद्धपनो मिटो छे तिहितै भोक्ता नहीं छे।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टी जीवोंने अज्ञान छोड़ दिया है इसलिये वे परद्रव्य व परभावका कर्त्ता अपनेको नहीं मानते हैं मात्र एक शुद्ध ज्ञान स्वभावकी ही उपासना करते हैं। वे कर्मोंके उदयको पर कृत उपाधि जान अत्यन्त वैरागी हैं। मिथ्यादृष्टी जीवको यह श्रद्धान नहीं होता है इससे वह कर्मोंके उदयमें मगन होता है, यही अनुभव किया करता है कि मैं पुरुष, मैं स्त्री, मैं सुन्दर, मैं बलवान, मैं धनी, मैं नृप, मैं सेवक, मैं पशु, मैं देव, मैं रागी, मैं द्वेषी, मैं सुखी, मैं दुखी, मैं मरा, मैं जिया, मैंने भला किया, मैंने बुरा किया—

इत्यादि। यह अज्ञान भाव सदा ही त्यागने योग्य है। मैं ज्ञाता दृष्टा आनंदमई हूं यह अनुभव सर्वथा ग्रहण करने योग्य है। परमात्मप्रकाशमें कहा है—

बुज्झंतह परमत्थु जिय, गुरु लहु अत्थि ण कोइ। जीवा सयलवि बंभु परु, जेण वियाणइ सोइ ॥२२१॥

भावार्थ—जो ज्ञानी परमार्थको पहचानते हैं वे यह समझते हैं कि न कोई जीव छोटा है न बड़ा है सर्व ही जीव निश्चयसे समान परब्रह्म स्वरूप हैं।

सवैया ३१ सा—जगवासी अज्ञानी त्रिकाल परजाय बुद्धि, सोतो विषै भोगनिसों भोगता कहावे है। समकिती जीव जोग भोगसों उदासी ताते, सहज अभोगताजु ग्रंथनिमें गायो है॥ याहि भांति वस्तुकी व्यवस्था अवधारे बुध, परभाव त्यागि अपनो स्वभाव आयो है। निरविकल्प निरुपाधि आतम आराधि, साधि जोग जुगति समाधिमें समायो है॥ ६॥

वसंततिलका—ज्ञानी करोति न न वेदयते च कर्म जानाति केवलमयं किल तत्स्वभावं।
जानन्परं करणवेदनयोरभावाच्छुद्धस्वभावनियतः स हि मुक्त एव॥ ६॥

खण्डान्वय सहित अर्थ-ज्ञानी कर्म न करोति च न वेदयते-ज्ञानी कहतां सम्यग्दृष्टि जीव, कर्म्म न करोति कहतां रागादि अशुद्ध परिणामको कर्ता नहीं छे, च कहतां और, न वेदयते कहतां सुख दुःख आदि देय अशुद्ध परिणामको भोक्ता नहीं छे। किसो छे सम्यग्दृष्टि जीव। किल अयं तत्स्वभावं इति केवलं जानाति—किल कहतां निहचासों, अयं कहतां इसो छे जे शरीर भोग, रागादि सुख दुःख इत्यादि समस्त, तत्स्वभावं कहतां कर्मको उदय छे, जीवको स्वरूप नहीं छे, इति केवलं जानाति कहतां सम्यग्दृष्टि जीव इसो जाने छे, परन्तु स्वामित्व रूप नहीं परिणवै छे। हि स मुक्त एव—हि कहतां तिहि कारण तहि, स कहतां सम्यग्दृष्टि जीव, मुक्त एव कहतां जिसो निर्विकार सिद्ध छै तिसो छै, किसो छै सम्यग्दृष्टि जीव। परं जानन्—कहतां जावंत छे परद्रव्यकी सामग्री ताकों ज्ञायक मात्र छै। मिथ्यादृष्टिकी नाईं स्वामी रूप नहीं छै और किसो छै। शुद्धस्वभावनियतः—शुद्ध स्वभाव कहतां शुद्ध चैतन्य वस्तु तिहि विषै, नियतः कहतां आस्वाद रूप मग्न छै। किसा थकी। करणवेदनयोः अभावात्—करण कहतां कर्मको करिवो, वेदन कहतां कर्मको भोग तिहिके, अभावात् सम्यग्दृष्टि जीवको इसा भाव मिथ्या छै तिहिथी। भावार्थ इसो जो मिथ्यात्व संसार छै मिथ्यात्वके मिटतां जीव सिद्ध सदृश छै।

भावार्थ—यहां यह फिर बताया है कि तत्वज्ञानी परभावोंके कर्ता व भोक्ता नहीं होते हैं, वे कर्मोंके उदयके स्वभावको मात्र जानते हैं, वे अपने शुद्ध आत्मस्वभावसे ऐसे मग्न होते हैं कि मानो मेरे साथ किसी द्रव्यकर्म, भावकर्म व नोकर्मका सम्बंध ही नहीं है इसलिये उनके स्वभावके अनुभवमें और सिद्ध भगवानके अनुभवमें कुछ भी अंतर नहीं रहता है इससे वे मुक्तरूप ही हैं। परमात्मप्रकाशमें कहते हैं—

अप्पुवि परुवि वियाणियइ जे अप्पे मुणिएण। सो णिय अप्पा जाणि तुहुं जोइय णाणवलेण॥१०४॥

भावार्थ-हे योगी! जिस आत्माके जाननेसे आप व पर सर्व जैसाका तैसा जाना जाता है उसही अपने शुद्ध आत्माको तू अपने ज्ञानके बलसे जान व अनुभव कर।

सवैया ३१ सा—चिनमुद्रा धारी ध्रुव धर्म अधिकारी गुण, रतन भंडारी आप हारी कर्म रोगको। प्यारो पंडितनको हुस्यारो मोक्ष मारगमें, न्यारो पुदगलसौं उजारो उपयोगको॥ जाने निज पर तत्त रहे जगमें विरत्त, गहे न ममत्त मन वच काय जोगको। ता कारण ज्ञानी ज्ञानावरणादि करमको, करता न होइ भोगता न होइ भोगको॥ ७॥

दोहा—निर्भिलाप करणी करे, भोग अरुचि घट मांहि। ताते साधक सिद्धसम, कर्ता भुक्ता नांहि॥८॥

श्लोक-ये तु कर्त्तारमात्मानं पश्यन्ति तमसा तताः।
सामान्यजनवत्तेषां न मोक्षोऽपि मुमुक्षताम्॥ ७॥

खण्डान्वय सहित अर्थ-तेषां मोक्षः न-तेषां कहतां इसा मिथ्यादृष्टी जीवहंको, न मोक्षः कहतां कर्मको विनाश, शुद्ध स्वरूपकी प्राप्ति नहीं छे, किसा छे ते जीव, मुमुक्षुतां अपि-कहतां जैन मताश्रित छे, घणो भण्या छै, द्रव्य क्रिया रूप चारित्रपाले छे, मोक्षका अभिलाषी छे तौ फुनि त्याहि मोक्ष न छे, कौनके नांई। सामान्यजनवत्-कहतां यथा तापसयोगी भरड़ा इत्यादि जीवहंको मोक्ष न छे। भावार्थ इसो-जो जीव जानिसे, जैन मत आश्रित छे। कांई विशेष होइ छे। सो विशेष तो कांई न छे, किसा छे ते जीव। तु ये आत्मानं कर्तारं पश्यन्ति-तु कहतां जिहिंते इसा छे, ये कहतां ये कई मिथ्यादृष्टी जीव, आत्मानं कहतां जीव द्रव्यको, कर्तारं पश्यंति कहतां ज्ञानावरणादि कर्मको, रागादि अशुद्ध परिणामको करै छे। इसो जीव द्रव्यको स्वभाव छै, इसो मानहि छे। प्रतीति करै छो छे, आस्वादहि छै, और किसा छै। तमसा तताः-कहतां मिथ्यात्व भाव इसा अन्धकार करि व्याप्या छे, आंधा हुआ छै। भावार्थ इसो-जो महामिथ्यादृष्टी छै। जे जीवको स्वभाव कर्ता रूप मानहि छे जिहिंते कर्तापनो जीवको स्वभाव नहीं छे, विभावरूप अशुद्ध परिणति छे सो फुनि पराए संयोग करि छे, विनाशीक छै।

भावार्थ-जो कोई आत्माका स्वभाव परभावका कर्ता है, रागादिरूप है ऐसा समझते रहेंगे वे महा अज्ञानी व मिथ्यादृष्टी हैं, उनका आत्मा परभावोंसे कभी भी छूटकर शुद्ध नहीं होसक्ता। जो अपने आत्माका स्वभाव सर्व पुद्गल कृत विकारोंसे रहित अनुभवेगा वही मोक्षका पात्र है अन्य नहीं। परमात्मप्रकाशमें कहते हैं-

जहि भावहि तहि जाहि जिय जं भावइ करि तं जि। केणइ मोक्खण अत्थिपर, चित्तहि सुद्धिणं जं जि॥१०५॥

भावार्थ-जहां चाहे जाओ व जो चाहे क्रिया करो परंतु जबतक जिसका चित्त शुद्ध न होगा, निर्विकारी न होगा तबतक वह मोक्ष नहीं पासक्ता।

कवित्त—जो हिय अंध विकल मिथ्यात धर, मृषा सकल विकलप उपजावत। गहि एकांत पक्ष आतमको, करता मानि अधोमुख धावत॥ त्यों जिनमती द्रव्य चारित्र कर, करनी करि करतार कहावत। वंछित मुक्ति तथापि मूढमति, विन समकित भव पार न पावत॥ ९॥

श्लोक- नास्ति सर्वोऽपि सम्बन्धः परद्रव्यात्मतत्त्वयोः।
कर्तृकर्मत्वसम्बन्धाभावे तत्कर्तृता कुतः॥ ८॥

खण्डान्वय सहित अर्थ- तत् परद्रव्यात्मतत्त्वयोः कर्तृता कुतः-तत् कहतां तिहि कारण तहि परद्रव्य कहतां ज्ञानावरणादि रूप पुद्गलको पिंड, आत्मतत्त्व कहतां शुद्ध जीव-द्रव्य त्याहको, कर्तृता कहतां जीवद्रव्य पुद्गल कर्मको कर्ता, पुद्गल द्रव्य जीव भावको कर्ता इसो संबन्ध कुतः कहतां क्यों होइ, अपि तु क्यों नहीं होइ। किसा छे। कर्तृकर्म सम्बन्धाभावे—कर्तृ कहतां जीव कर्ता, कर्म कहतां ज्ञानावरणादि कर्म इसो छे जो त्वसम्बन्ध कहतां दूवे द्रव्यको एक सम्बन्ध तिहिके अभावे कहतां द्रव्यको स्वभाव यों न छे, तिहिते सो फुनि किसा थकी। सर्वः अपि सम्बन्धः नास्ति—सर्वः कहतां जो क्यों वस्तु छे, अपि कहतां यद्यपि एक क्षेत्रावगाह रूप छे। तथापि सम्बंधः नास्ति कहतां आपणे आपणे स्वरूप छे कोई द्रव्यको, कोई द्रव्य सो तन्मयरूप नहीं मिले छे। इसो वस्तुको स्वरूप छे तिहिते जीव पुद्गल कर्मको कर्ता न छे।

भावार्थ—जब आत्मा और पुद्गल दो भिन्न २ द्रव्य हैं व दोनोंका स्वभाव भिन्न २ है तब दोनोंमें कर्ता कर्मपना बन ही नहीं सक्ता है। निश्चयसे जीव अपने जीव सम्बन्धी भावोंका व पुद्गल अपनी पर्यायोंका कर्ता है, परस्पर कर्ता कर्म मानना ही अज्ञान है। ज्ञानी परद्रव्यसे रञ्च मात्र राग नहीं रखते हैं। परमात्मप्रकाशमें कहते हैं—

जो अणुमित्तुवि राउ मणि, जाम ण मिल्लइ एत्थु। सो णवि मुचइ ताम जिय जाणन्तुवि परमत्थु॥२०८

भावार्थ—जिसके मनमें रञ्च मात्र भी रागभाव पर पदार्थोंसे है वह यदि परमार्थको जानता भी है तौभी कर्मोंसे नहीं छूट सक्ता है।

चौपाई—चेतन अंक जीव लखि लीना, पुद्गल कर्म अचेतन चीना।
वासी एक खेतके दोऊ, जदपि तथापि मिले न कोऊ॥ १०॥

दोहा—निज निज भाव क्रिया सहित, व्यापक व्याप्य न कोइ। कर्त्ता पुद्गल कर्मका, जीव कहांसे होइ॥११॥

वसंततिलका—एकस्य वस्तुन इहान्यतरेण सार्द्धं, सम्बन्ध एव सकलोऽपि यतो निषिद्धः।
तत्कर्तृकर्मघटनाऽस्ति न वस्तुभेदे, पश्यन्त्वकर्तृमुनयश्च जनाः स्वतत्त्वं॥९॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—तत् वस्तुभेदे कर्तृकर्मघटना न अस्ति—तत् कहतां तिहि-कारणतहि, वस्तुभेदे कहतां जीव द्रव्यचेतना स्वरूप, पुद्गलद्रव्य अचेतन स्वरूप इसो भेद

अनुभवते संते, कर्तृकर्मघटना कहतां जीवद्रव्यकर्ता पुद्गल पिंड कर्म इसो व्यवहार, न अस्ति कहतां सर्वथा नहीं छे, तो किसो छे। मुनयः जनाः तत्त्वं अकर्तृ पश्यंतु-मुनयः जनाः कहतां सम्यग्दृष्टि छे जे जीव, तत्त्वं कहतां जीव स्वरूपको, अकर्तृ पश्यंतु कहतां कर्ता नहीं छै, इसो अनुभवहु, आस्वादहु-किसा थकी। यतः एकस्य वस्तुनः अन्यतरेण सार्द्धं सकलोऽपि सम्बन्धः निषिद्धः एव-यतः कहतां जिहि कारण तहि, एकस्य वस्तुनः कहतां शुद्ध जीव द्रव्यको, अन्यतरेण सार्द्धं कहतां पुद्गल द्रव्य सेती, सकलो ऽपि सम्बंधः कहतां एकत्वपनो अतीत अनागत वर्तमान विषै, निषिद्ध एव कहतां वर्ज्यो छे। भावार्थ इसो जो-अनादि निधन जो द्रव्य ज्यों छे सो त्योंही छे, अन्य द्रव्य सो नहीं मिले छे। तिहितै जीवद्रव्य पुद्गल कर्मको अकर्ता छे।

भावार्थ-शुद्ध निश्चय नयसे जीवका स्वभाव पुद्गलसे बिलकुल भिन्न है, इससे जीव पुद्गलका कर्ता नहीं होसक्ता। परिणमन भावको ही कर्म, व परिणमन कर्ताको ही कर्ता कह सके हैं। जीवका परिणमन अपने स्वाभाविक ज्ञानानंद परिणतिमें पुद्गलका परिणमन अपनी जड़रूप परिणतिमें होता है, इसलिये प्रत्येक द्रव्य अपनी २ परिणतिका तो कर्ता है परंतु एक द्रव्य दूसरे द्रव्यकी परिणतिका कर्ता नहीं है। इसलिये भव्य जीवोंको उचित है कि ऐसा अनुभव करें कि मेरे आत्माका स्वभाव परके कर्तापनेसे रहित है।

परमात्मप्रकाशमें कहते हैं—

लोयागासु धरेवि जिय, कहियइं दव्वइं जाइं। एकहिं मिलियइं इत्थु जगि सगुणहिं णिवसहिं ताइं ॥१५१॥

भावार्थ-लोकाकाशमें जितने द्रव्य हैं वे सब एकमें मिल रहे हैं, तथापि अपने अपने गुणोंमें ही निवास करते हैं। एकका गुण दूसरेमें नहीं जाता है।

सवैया ३१ सा—जीव अरु पुद्गल करम रहे एक खेत, यद्यपि तथापि सत्ता न्यारी न्यारी कही है॥ लक्षण स्वरूप गुण परजै प्रकृति भेद, दुहूंमें अनादि हीकी दुविधा व्है रही है॥ एते पर भिन्नता न भासे जीव करमकी, जोलों मिथ्याभाव तोलों औंधी वायू वही है॥ ज्ञानके उद्योत होत ऐसी सूधी दृष्टि भई जीव कर्म पिण्डको अकरतार सही है॥ १२॥

दोहा-एक वस्तु जैसे जुहै, तासें मिले न आन। जीव अकर्ता कर्मको, यह अनुभौ परमान ॥१३॥

वसंततिलका छन्द-ये तु स्वभावनियमं कलयंति नेममज्ञानमग्नमहसो वत ते वराकाः।
कुर्वन्ति कर्म तत एव हि भावकर्मकर्त्ता स्वयं भवति चेतन एव नान्यः ॥१०॥

खण्डान्वय सहित अर्थ-वत ते वराकाः कर्म कुर्वंति-वत कहतां दुखाह कहिजे छे, ते वराकाः कहतां इसा जे मिथ्यादृष्टि जीव राशि, कर्म कुर्वंति कहतां मोह राग द्वेषरूप अशुद्ध परिणति करै छे, किसा छे, अज्ञानमग्नमहसः-अज्ञान कहतां मिथ्यात्वरूप भाव तिहिंकरि, मग्न कहतां आंछायो छे, महसः कहतां शुद्ध चैतन्य प्रकाश जिहिको इसा छे,

और किसा छे, तु ये इमं स्वभावनियमं न कलयंति—तु कहतां जिहि कारण तहि, इमं स्वभावनियमं कहतां जीवद्रव्य; ज्ञानावरणादि पुद्गल पिंडको कर्ता नहीं छे इसो वस्तु स्वभावको, न कलयंति कहतां स्वानुभव प्रत्यक्षपने नहीं अनुभवै छे। भावार्थ इसो—जो मिथ्यादृष्टि जीवराशि शुद्ध स्वरूपका अनुभव तहि भ्रष्ट छे। तिहितै पर्याय रत छे तिहितै मिथ्यात्व रागद्वेष अशुद्ध परिणाम रूप परिणवै छे। ततः भावकर्मकर्ता चेतन एव स्वयं भवति न अन्यः—ततः कहतां तिहि कारण तहि, भावकर्म कहतां मिथ्यात्व रागद्वेष अशुद्ध चेतना रूप परिणाम तिहिको, कर्ता कहतां व्याप्य व्यापकरूप परिणवै छे। इसो, चेतन एव स्वयं भवति कहतां जीव द्रव्य आप कर्ता होइ छे, न अन्य कहतां पुद्गल कर्म कर्ता न होइ छे। भावार्थ इसो—जो जीव मिथ्यादृष्टी होतो संतो जिसा अशुद्ध भाव रूप परिणवै छे तिसो भावहको कर्ता होइ छे, इसो सिद्धांत छे।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टी जीव जब शुद्ध निश्चयनयके बलसे अपने आत्माको रागादि भावोंका अकर्ता मानते हैं तब खेदकी बात है कि मिथ्यादृष्टी जीव उनही रागादि भावोंका आपको कर्ता मान रहे हैं। क्योंकि मिथ्यात्व कर्मके उदयसे उनकी बुद्धि विपरीत होरही है। इसलिये जब अशुद्ध परिणमनकी अपेक्षा देखा जावे तो मिथ्यादृष्टी रागद्वेष भावका कर्ता होरहा है। उन भावोंका कर्ता पुद्गल नहीं है। पुद्गल मात्र निमित्त कर्ता है।

चौपाई—जो दुरमती विकल अज्ञानी। जिन्ह स्वरीत पर रीत न जानी॥
माया मगन भरमके भरता। ते जिय भाव करमके करता॥ १४॥

दोहा—जे मिथ्यामति तिमिरसों, लखे न जीव अजीव। तेई भावित कर्मको, कर्ता होय सदीव॥१५॥
जे अशुभ परणति धरे, करे अहंपर मान। ते अशुद्ध परिणामके, कर्ता होय अजान॥१६॥

स्रग्धरा छंद—कार्यत्वादकृतं न कर्म न च तज्जीवप्रकृत्योर्द्वयो-
रज्ञायाः प्रकृतेः स्वकार्यफलभुग्भावानुषङ्गात्कृतिः।
नैकस्याः प्रकृतेरचित्त्वलसनाज्जीवोऽस्य कर्त्ता ततो
जीवस्यैव च कर्म तच्चिदनुगं ज्ञाता न यत्पुद्गलः॥ ११॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—ततः अस्य जीवः कर्ता च तत् चिदनुगं जीवस्य एव कर्म—ततः कहतां तिहि कारण तहि, अस्य कहतां रागादि अशुद्ध चेतना परिणामको, जीवः कर्ता कहतां जीवद्रव्य तिहिकाल व्याप्य व्यापक रूप परिणवै छे तिहितै कर्ता छे। च कहतां और, तत् कहतां रागादि अशुद्ध परिणमन, चिदनुगं कहतां अशुद्धरूप छे चेतनारूप छे, तिहितै जीवस्य एव कर्म कहतां तिहिकाल व्याप्य व्यापकरूप जीव द्रव्य आप परिणवै छे, तिहितै जीवको कियो छे। किसाथकी, यत् पुद्गलः ज्ञाता न—यत् कहतां जिहि कारण

तहि; पुद्गलः ज्ञाता न कहतां पुद्गल द्रव्य चेतनारूप नहीं छे। रागादि परिणाम चेतनारूप छे। तिहितै जीवका कीया छे, कह्यो छे भाव तीहे गाढ़ो करै छे। कर्म अकृतं न—कर्म कहतां रागादि अशुद्ध चेतनारूप परिणाम अकृतं न, अनादि निधन आकाश द्रव्यकी नाईं स्वयं सिद्ध छे। यों फुनि नहीं, कौनहू तहि कीया होहि छे। यो छे किंसाथकी कार्यत्वात्—कहतां घड़ाकी नाईं उपजहि छे विनश हि छे। तिहितै प्रतीति इसी जो करतुति रूप छे, च कहतां तथा, तत् जीवप्रकृत्योः द्वयोः कृतिः न—तत् कहतां रागादि अशुद्ध चेतन परिणमन, जीव कहतां चेतन द्रव्य, प्रकृत्योः कहतां पुद्गल द्रव्य इसा छे जे द्वयोः दोइ द्रव्यको, कृतिः न कहतां करतुति न छे। भावार्थ इसो—जो कोई इसो मानिसै जो जीवकर्म मिलतां रागादि अशुद्ध चेतन परिणाम होहि छे तिहितै दुवे द्रव्यकर्ता छे। समाधान इसो जो दुवे द्रव्यकर्ता नहीं छे जिहितै रागादि अशुद्ध परिणामहको बाह्य कारण निमित्तमात्र पुद्गल कर्मको उदय छे। अंतरंग कारण व्याप्य व्यापक रूप जीव द्रव्य विभावरूप परिणवै छे। तिहितै जीवको कर्तापनो घटै छे। पुद्गलकर्मको कर्तापनो नहीं घटै छे। जिहितै अज्ञायाः प्रकृतेः स्वकार्यफलभुग्भावानुषंगात्—अज्ञायाः कहतां अचेतन द्रव्यरूप छे, प्रकृतेः ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म तिहिको, स्वकार्य कहतां आपणी करतुति तिहिको फल कहतां सुख दुःख तिहिको भुग्भाव कहतां भोक्तापनो तिहिको' अनुषंगात कहतां इसो हुओ चाहिजै। भावार्थ इसो—जो द्रव्य जिहि भावको कर्ता होय सो तिहिं द्रव्यको भोक्ता फुनि होइ। इसो होतां रागादि अशुद्ध चेतन परिणाम जो जीवकर्म दूवे मिलि कीया होइ तौ दूवे भोक्ता होहि सो दूवे भोक्ता नहीं छे, जिहितै सुख दुःखको भोक्ता होइ इसो घटै, पुद्गल द्रव्य अचेतन होतो सुख दुःखको भोक्ता घटै नहीं। तिहितै रागादि अशुद्ध चेतन परिणमनको एकलो संसारी जीव कर्ता छे भोक्ता फुनि छे। और अर्थको गाढ़ो करै छे। एकस्याः प्रकृतेः कृतिः न—एकस्याः प्रकृतेः कहतां एकलो पुद्गल कर्म तिहिको, कृतिः न कहतां करतूति नहीं छे। भावार्थ इसो—जो कोई इसो मानिसै जो रागादि अशुद्ध चेतन परिणाम एकला पुद्गल कर्मको कीयो छे। उत्तर इसो जो यो फुनि नहीं छे। जिहितै, अचित्वलसनात्—कहतां अनुभव इसो आवै छे, जो पुद्गल कर्म अचेतन द्रव्य छे, रागादि परिणाम अशुद्ध चेतनारूप छे, तिहितै अचेतन द्रव्यको परिणाम अचेतन रूप होइ। तिहितै रागादि अशुद्ध परिणामको कर्ता संसारी जीव छे भोक्ता फुनि छे।

भावार्थ—यहां यह तर्क की है कि रागादि अशुद्ध परिणामका कौन करनेवाला है। ये रागद्वेष होते व मिटते हैं, इससे ये कार्य हैं। जो कार्य होता है वह किसीका किया हुआ होता है। इनको यदि कहा जाय कि जीव व पुद्गल दोनोंने मिलकर परस्पर साझीदार होकर

किये तौ दोनोंको उनका सुख दुःख फल भोगना पड़े सो यह बात पुद्गलके लिये असंभव है; क्योंकि वह जड़ है, तब यदि कहा जाय कि मात्र अकेली प्रकृति जड़ने किये तौभी नहीं बनता क्योंकि प्रकृति जड़ है, रागादि भाव चेतन हैं। इसलिये सिद्ध यही होता है कि ये अशुद्ध भाव संसारी जीवके ही हैं। उसीके विभाव परिणाम हैं जो मोहनीय कर्मके निमित्तसे हुए हैं। स्वाभाविक भाव जीवके नहीं हैं, मिटनेवाले हैं।

दोहा–शिष्य पूछे प्रभु तुम कह्यो, दुविध कर्मका रूप। द्रव्यकर्म पुद्गलमई, भावकर्म चिद्रूप ॥ १७ ॥
कर्ता द्रव्यजु कर्मको, जीव न होइ त्रिकाल। अब यह भावित कर्म तुम, कहो कोनकी चाल ॥१८॥
कर्ता याको कोन है, कौन करे फल भोग। के पुद्गलके आतमा, के दुहुको संयोग ॥१९॥
क्रिया एक कर्त्ता जुगल, यो न जिनागम मांहि। अथवा करणी औरकी, और करे यों नांहि ॥२०॥
करे और फल भोगवे, और बने नहिं एम। जो करता सो भोगता, यहै यथावत जेम ॥२१॥
भावकर्म कर्त्तव्यता, स्वयंसिद्ध नहिं होय। जो जगकी करणी करे जगवासी जिय सोय ॥२२॥
जिय कर्त्ता जिय भोगता, भावकर्म जियचाल। पुद्गल करे न भोगवे, दुविधा मिथ्याचाल ॥ २३ ॥
तातें भावित कर्मको, करे मिथ्याती जीव। सुख दुख आपद संपदा, भुंजे सहज सदीव ॥ २४ ॥

शार्दूलविक्रीडित छन्द–कर्मैव प्रवितर्क्यकर्तृहतकैः क्षिप्त्वात्मनः कर्तृतां
कर्त्तात्मैष कथंचिदित्यचलिता कैश्चित्श्रुतिः कोपिता।
तेषामुद्धतमोहमुद्रितधियां बोधस्य संशुद्धये
स्याद्वादप्रतिबन्धलब्धविजया वस्तुस्थितिः स्तूयते ॥ १२ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ–वस्तुस्थितिः स्तूयते–वस्तु कहतां जीव द्रव्य तिहिकी, स्थितिः कहतां स्वभावकी मर्यादा, स्तूयते कहतां ज्यों छे त्यों कहिजे छे, किसी छे, स्याद्वाद-प्रतिबंधलब्धविजया–स्याद्वाद कहतां जीवकर्ता छे अकर्ता फुनि छे, इसो अनेकांतपनो तिहिको, प्रतिबंध कहतां सावधानपने थापना तिहिकरि, लब्ध कहतां पायो छे, विजया कहतां जीतपनो जेने इसो छे। किसी निमित्त कहिजै छे। तेषां बोधस्य संशुद्धये–तेषां कहतां जीवको सर्वथा अकर्ता कहै छे इसा मिथ्यादृष्टी जीवहको, बोधस्य संशुद्धये कहतां विपरीत बुद्धिके छुड़ाइवाके निमित्त जीवको स्वरूप साधिजै छे। किसा छे मिथ्यादृष्टि जीव राशी। उद्धतमोहमुद्रितधियां–उद्धत कहतां तीव्र उदयरूप छे, इसो मोह कहतां मिथ्यात्व भाव तिहिकरि, मुद्रित कहतां आछादित छे, धी कहतां शुद्धस्वरूप अनुभव रूप सम्यक्त शक्ति ज्यांहकी इसा छे। और किसा छे एष आत्मा कथंचित कर्ता इति कैश्चित श्रुतिः कोपिता–एषः आत्मा कहतां चेतना स्वरूप मात्र छे जो जीवद्रव्य, कथंचित कर्त्ता कहतां कौनहू युक्ति अशुद्धभावको कर्ता फुनि छे, इति कहतां इसो, कैश्चित श्रुतिः कहतां केई मिथ्यादृष्टी इसा छे ज्याह इसो सुनतां मात्र, कोपिता कहतां अत्यंत क्रोध उपजै छे।

किसो क्रोध होइ छे अचलिता–कहतां अति ही गाढ़ो छे, अमिट छे। जिहिंतै इसो मानै छे आत्मनः कर्तृतां क्षिप्त्वा–आत्मनः कहतां जीवको, कर्तृतां कहतां आपणा रागादि अशुद्ध भावहको कर्तापनो, क्षिप्त्वा कहतां सर्वथा मेटिकरि, क्रोधकराहि छे, और क्यों मानै छे। कर्म्म एव कर्तृ इति प्रवितर्क्य–कर्म्म एव कहतां एकलो ज्ञानावरणादि कर्म पिंड, कर्तृ कहतां रागादि अशुद्ध परिणामहको आपनपै व्याप्य व्यापकरूप होइ कर्ता छे इति प्रवितर्क्य कहतां इसो गढ़ास करै छे, प्रतीति करै छे। हतकैः कहतां आपणा घातक छे जिहिंतै मिथ्यादृष्टि छे।

भावार्थ–आत्मा कर्ता है कि नहीं है इस प्रश्नका समाधान स्याद्वादसे ही करना ठीक है। जो मात्र सर्वथा जीवको अकर्ता ही मान लेते हैं व कर्म्मको ही कर्ता मानते हैं उनको आचार्य मिथ्यादृष्टी कहते हैं। क्योंकि उनके मतमें जीव अपरिणामी ही रहेगा तब वह रागादि भावोंका परिणमन करनेवाला न रहेगा, फिर बंधका भागी न होगा। इत्यादि दोष आवेगा सो आगे कहेंगे।

सवैया ३१ सा—कोइ मूढ़ विकल एकन्त पक्ष गहे कहे, आतमा अकरतार पूरण परम है॥ तिनसों जु कोउ कहे जीव करता है तासे, फेरि कहे करमकों करता करम है॥ ऐसे मिथ्या मगन मिथ्याती ब्रह्मघाती जीव, जिन्हके हिये अनादि मोहको भरम है॥ तिनके मिथ्यात्व दूर करवेकुं कहे गुरु, स्यादवाद परमाण आतम धरम है॥ २५॥

दोहा–चेतन करता भोगता, मिथ्या मगन अजान। नहिं करता नहिं भोगता, निश्चै सम्यकवान॥२६॥

शार्दूलविक्रीडित छन्द–मा कर्त्तारममी स्पृशन्तु पुरुषं सांख्या इवाप्यार्हताः
कर्त्तारं कलयन्तु तं किल सदा भेदावबोधादधः।
ऊर्द्धं तूद्धतबोधधामनियतं प्रत्यक्षमेनं स्वयं
पश्यन्तु च्युतकर्तृभावमचलं ज्ञातारमेकं परम्॥ १३॥

खण्डान्वय सहित अर्थ–इसो कह्यो थो स्याद्वाद स्वरूप करि जीवको स्वरूप कहिजै छे। तिहिको उत्तरु छे। अमी अर्हता अपि पुरुषं अकर्तारं मा स्पृशन्तु अमी कहतां छता छे जे, अर्हताः अपि कहतां जैनोक्त स्याद्वाद स्वरूपको अंगीकार करै छे। इसा जे सम्यग्दृष्टि जीवराशि ते फुनि, पुरुषं कहतां जीव द्रव्यको, अकर्तारं कहतां रागादि अशुद्ध परिणामहको सर्वथा कर्ता नहीं छे इसो, मा स्पृशन्तु कहतां मत अंगीकार करहु, कौनकी नाईं, सांख्या इव–कहतां यथा सांख्य मतका जीवको सर्वथा अकर्ता मानै छे तथा जैनका फुनि सर्वथा अकर्ता मत मानहु, ज्यों मानिवा योग्य छे त्यों कहिजै छे, सदा तं भेदावबोधाव् अधः कर्त्तारं किल कलयन्तु–तु ऊर्द्धं एवं च्युत कर्तृभावं पश्यंतु–सदा कहतां सर्वकाल द्रव्यको

स्वरूप इसो छे, तं कहतां जीवद्रव्यको भेदावबोधात् अधः कहतां शुद्ध स्वरूप परिणमन रूप सम्यक्त तहिं भ्रष्ट छे मिथ्यादृष्टि होतो संतो मोह रागद्वेष रूप परिणवै छे तावंत काल, कर्तारं किल कलयंतु कहतां मोह रागद्वेष रूप अशुद्ध चेतन परिणामको कर्ता जीव छे इसो अवश्य मानहु प्रतीति करहु। तु कहतां सोई जीव, ऊर्ध्वं कहतां यदाकाल मिथ्यात्व परिणाम छूटे, आपणे शुद्ध स्वरूप सम्यक्त भाव रूप परिणवै, तदा एनं च्युतकर्तृभावं कहतां छोड्यो छे रागादि अशुद्ध भावको कर्तापनो जिहि इसो, पश्यंतु कहतां श्रद्धा करहु, प्रतीति करहु, सो अनुभवहु। भावार्थ इसो–जो यथा जीवको ज्ञानगुण स्वभाव छे सो ज्ञानगुण संसार अवस्था अथवा मोक्ष अवस्था न छूटे तथा रागादिपनौ जीवको स्वभाव नहीं छे तथापि संसार अवस्था जावंत कर्मको संयोग छे तावंतकाल मोह रागद्वेष रूप अशुद्धपनै विभावरूप जीव परिणवै छे तावंत कर्ता छे, जीवको सम्यक्तगुण परिणया उपरांत इसो जानिज्यो उद्धतबोधधामनियतं–उद्धत कहतां सकल ज्ञेय पदार्थ जानिवाको उतावलो इसो, बोधधाम कहतां ज्ञानको प्रताप, तिहि करि, नियतं कहतां सर्वस्व जिहिको इसो छे, और किसो छे। स्वयं प्रत्यक्षं–कहतां आपको आपणपै प्रगट हुवो छे, और किसो छे, अचलं कहतां च्यारि गतिके भमिवाते रहित हुओ छे और किसो छे, ज्ञातारं कहतां ज्ञान मात्र स्वरूप छे, और किसो छे, परं एकं कहतां रागादि अशुद्ध परिणति तहि रहित शुद्ध वस्तु मात्र छे।

भावार्थ–मिथ्याती जीव रागद्वेष मोह भावका कर्ता जीव हीको मान रहे हैं उनके भीतर अहंबुद्धि व मम बुद्धि वर्त रही है। इससे वे संसारमें भ्रमण करानेवाले कर्मोंकी बांधकर चारों गतियोंमें भ्रमते हैं। जब सम्यक्त पैदा होता है तब यह बुद्धि पलटती है तब शुद्ध नयसे यह देखना होता है कि जीवका स्वभाव ज्ञान स्वरूप वीतराग रहनेका है तब वह जीवको रागादिका अकर्ता मानता है। व ऐसा ही अनुभव करता है। मिथ्यादृष्टी जीवके न ऐसी प्रतीति होती है और न वह ऐसा अनुभव करता है। यहांपर इतना और जानना कि जहांतक चारित्र मोह एका उदय सम्यग्दृष्टी जीवोंके होता है वहांतक उपयोगमें रागद्वेषकी कुछ कलुषता झलकती है। अर्थात् आत्माका उपयोग शुभ भाव या अशुभ भाव रूप परिणमता है, यह परिणमन अवश्य होता है। इसको भी सम्यग्दृष्टी जीव कर्म कृत विकार जानता है–औपाधिक भाव हुआ। इस रूप आत्माका उपयोग परिणम्या यह भी जानता है। विभाव परिणमन शक्ति आत्मामें है तब ही विभाव रूप भाव हुआ, तब भी वह सांख्यकी तरह आत्माको सर्वथा अकर्ता नहीं मानता है। परन्तु इस परिणतिको अपने आत्माका स्वभाव परिणमन नहीं जानता है। रागादि कर्मकी उपाधिके निमित्तसे हुई मानता है, प्रतीति व श्रद्धा व अनुभव यही रखता है कि आत्माका स्वाभाविक परिणमन यह नहीं

है, आत्मा स्वभावसे तो अपने ही त्रिकाल अबाधित शुद्ध भावोंका ही कर्ता व भोक्ता है।
परमात्मप्रकाशमें ज्ञानीका अनुभव बताया है—

अट्ठहं कम्मइं बाहिरउ, सयलइं दोसइं चत्तु दंसणणाणचरित्तमउ अप्पा भावि णिरुत्तु ॥ ६७ ॥

भावार्थ—आत्मा आठों कर्म व सर्व दोष रागादिसे रहित है व सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र मई है ऐसी भावना कर।

सवैया ३१ सा—जैसे सांख्यमति कहे अलख अकरता है, सर्वथा प्रकार करता न होई कबही ॥ तैसे जिनमति गुरुमुख एक पक्ष सूनि, यांहि भांति माने सो एकांत तजो अबही ॥ जोलो दुरमति तोलों करमको करता है, सुमती सदा अकरतार कह्यो सबही ॥ जाके घट ज्ञायक स्वभाव जग्यो जबहीसे, सो तो जगजालसे निरालो भयो तबही ॥ २७ ॥

मालिनी—क्षणिकमिदमिहैकः कल्पयित्वात्मतत्त्वं निजमनसि विधत्ते कर्तृभोक्त्रोर्विभेदम्।
अपहरति विमोहं तस्य नित्यामृतौघैः स्वयमयमभिषिञ्चंश्चिच्चमत्कार एव ॥१४॥

खण्डान्वय सहित अर्थ-बौद्धमती प्रतीबुद्ध कीजै छे, इह एकः निजमनसि कर्तृभोक्त्रोः विभेदं विधत्ते—इह कहतां सांप्रत विद्यमान छे इसो, एकः कहतां बौद्धमतको मानै छे। इसो कोई जीव, निजमनसि कहतां आपणा ज्ञान विषैं, कर्तृभोक्त्रोः कहतां कर्तापनो भोक्तापनाको, विभेदं विधत्ते कहतां विहरो करै छे। भावार्थ इसो-जो इसो कहै छे क्रियाको कर्ता कोई अन्य छे। भोक्ता कोई अन्य छे, इसो क्यों मानहि छे। इदं आत्मतत्त्वं क्षणिकं कल्पयित्वा-इदं आत्मतत्वं कहतां अनादि निधन छे जो चैतन्य स्वरूप जीव द्रव्य तिहिको, क्षणिकं कल्पयित्वा कहतां यथा आपणे नेत्र रोग करि कोई सेत संखको पीरो करि देखै छे तथा अनादि निधन छे जीव द्रव्य तिहिको मिथ्या भ्रांति करि इसो मानै छे जो, एक समय मात्र पूर्विलो जीव मूलताहि विनशि जाइ छे। अन्य नवो जीव मूलतहि उपजि आवै छे इसो मानतो होतो मानै छे कि क्रियाको कर्ता अन्य कोई जीव छे, भोक्ता अन्य कोई जीव छे। इसो अभिप्राय मिथ्यात्वको मूल छे। तिहितै इसो जीव समझाइजै छे। अयं चिच्चमत्कारः तस्य विमोहं अपहरति—अयं चिच्चमत्कारः कहतां कोई जीव बाल्यावस्थां विषैं कौन हूं, नगरको देख्यो थो कछू काल गयां और तरुणाईपै ते ही नगरको देखै छे, देखतां इसो ज्ञान उपजै छे सोई यह नगर छे जो नगर म्हां बालकपनै देख्यो थो। इसो छे जो अतीत अनागत वर्तमान शाश्वतो ज्ञान मात्र वस्तु, तस्य विमोहं अपहरति कहतां क्षणिकवादीका मिथ्यात्वको दूर करै छे। भावार्थ इसो—जो जीव तत्त्व क्षण विनश्वर होतो, पूर्व ज्ञान कहु लेइकरि होइ छे जो वर्तमान ज्ञान कौन कहु होइ तिहितै जीवद्रव्य सदा शाश्वतो छे। इसो कहतां क्षणिकवादी प्रतिबुद्ध होइ छे। किसो छे जीव वस्तु। नित्यामृतौघैः स्वयं अभिषिंचन्—नित्य कहतां सदाकाले अविनश्वरपनो, अमृत कहतां द्रव्यको जीवन

मूल तिहिको, ओघैः कहतां समूह तिहिकरि स्वयं अभिषिंचत् कहतां आपणी शक्तिकरि आप पुष्ट होतो संतो एव कहतां निहचासौं योही जानिज्यों अन्यथा नहीं।

भावार्थ—यहां उनके मिथ्यात्वको दूर किया है जो जीवको सर्वथा क्षणभंगुर मानते हैं। ऐसा यदि जीव होय तो पूर्वकी स्मृति व प्रत्यभिज्ञान न हो कि यह वही है जो पहले जाना था। इसलिये कर्ता कोई और भोक्ता कोई और, ऐसा एकांत मिथ्यात्व है। जीव-द्रव्य अविनाशी है, जो कर्ता है वही भोक्ता है। मात्र पर्यायकी अपेक्षा अंतर है। जो भाव परिणति कर्ताके समय थी वह परिणति भोक्ताके समय नहीं है। सर्वथा क्षणिक व अनित्य जीव नहीं है। द्रव्यापेक्षा नित्य है पर्याय अपेक्षा अनित्य है, इस सत्यको मानना ही सम्यक्त है।

दोहा—बौद्ध क्षणिकवादी कहे, क्षणभंगुर तनु मांहि। प्रथम समय जो जीव है, द्वितिय समयमें नांहि॥२८॥
तातें मेरे मतविषें, करे करम जो कोय। सो न भोगवे सर्वथा, और भोगता होय॥२९॥
यह एकंत मिथ्यात पख, दूर करनके काज। चिद्विलास अविचल कथा, भाषे श्रीजिनराज॥३०॥
बालकपने काहू पुरुष, देखे पुरकइ कोय। तरुण भये फिरके लखे, कहे नगर यह सोय॥३१॥
जो दुहु पनमें एक थो, तो तिहि सुमरण कीय। और पुरुषको अनुभव्यो, और न जाने जीय॥३२॥
जब यह वचन प्रगट सुन्यो, सुन्यो जैनमत शुद्ध। तब इकांतवादी पुरुष, जैन भयो प्रति बुद्ध॥३३॥

श्लोक—वृत्त्यंशभेदतोऽत्यन्तं वृत्तिमन्नाशकल्पनात्।
अन्यः करोति भुङ्क्तेऽन्य इत्येकान्तश्चकास्तु मा॥१५॥

खंडान्वय सहित अर्थ—क्षणिकवादी प्रतिबोधिजे छे। इति एकांतः मा चकास्तु—इति कहतां इसो, एकांत कहतां द्रव्यार्थिक पर्यायके भेद विना कीया सर्वथा योही छे इसो कहिवो, मा चकास्तु—कौन हूं जीवको सुपने मात्र फुनि इसो श्रद्धान मति होउ। इसो किसो, अन्यः करोति अन्यः भुंक्ते—अन्यः करोति कहतां अन्य प्रथम समयको उपज्यो कोई जीवकर्मको उपार्जै छे, अन्यः भुंक्ते कहतां अन्य दूसरा समयको उपज्यो जीव कर्मको भोगवै छे। इसो एकांतपनो मिथ्यात्व छे। भावार्थ इसो—जो जीव वस्तु द्रव्यरूप छे पर्यायरूप छे। तिहितै द्रव्यरूप विचारतां जो जीवकर्मको उपार्जै छे सोई जीव उदय आवतां भोगवै छे। पर्यायरूप विचारतां जिहि परिणाम अवस्था विषै ज्ञानावरणादि कर्म उपार्जै छे, उदय आवतां तांही परिणामहको अवस्थांतर होइ छे तिहितै अन्य पर्याय करै छे अन्य पर्याय भोगवै छे। इसो भाव स्याद्वाद साधि सकै। ज्यों बौद्धमतको जीव कहै छे सोतो महा विपरीत छे। सो कौन विपरीतपनो, असो। वृत्त्यंशभेदतः वृत्तिमन्नाशकल्पनात्—अत्यंत कहतां द्रव्यको इसो ही स्वरूप छे सारो कौनसो, वृत्ति कहतां अवस्था तिहिका, अंश कहतां एक द्रव्यकी अनंत अवस्था इसो भेद कहतां कोई अवस्था विनशै अन्य कोई अवस्था उपजै इसो अवस्था

भेद छतौ छै, इसो अवस्था भेदको छलपकरि कोई बौद्धमतको मिथ्यादृष्टि जीव वृत्तिमत्नाश-कल्पनात्-वृत्तिमान् कहतां जिहिको अवस्था भेद होइ छे इसो सत्तारूप शाश्वतो वस्तु तिहिको नाशकल्पनात् कहतां मूलतहि सत्ताका नाश माने छे तिहितै यों कहतां विपरीत पनों छे। भावार्थ इसो–जो पर्याय मात्रको वस्तु माने छे, पर्याय जिहिको छे इसो सत्ता मात्र वस्तुको नहीं माने छे तिहिते यो माने छे सो महा मिथ्यात्व छे।

भावार्थ–यहां यह बताया है कि स्याद्वाद नयसे मानना ही ठीक है। द्रव्य पर्यायकी दृष्टिसे क्षणिक हैं परन्तु द्रव्यकी दृष्टिसे नित्य है। अवस्था बदलते रहनेपर भी द्रव्यका मूलसे नाश मान लेना यह मिथ्यात्व है। सुवर्णके कुंडल तोड़कर कड़े बनाए, अवस्था बदली परन्तु सुवर्णका नाश नहीं हुआ। गेहूंकी रोटी बनाई, अवस्था बदली, परन्तु जो गेहूंके दानेमें वस्तु थी वही आटेमें है। जगतके सर्व द्रव्य नित्य अनित्य उभय स्वरूप हैं। यही मानना सम्यक्त्व है।

सवैया ३१ सा—एक परजाय एक समैमें विनसि जाय, दूजी परजाय दूजै समै उपजति है॥ ताको छल पकरिके बौध कहे समै समै, नवो जीव उपजे पुरातनकी क्षति है॥ तातें मानै करमको करता है और जीव भोगता है और वाके हिये ऐसी मति है। परजाय प्रमाणको सरवथा द्रव्य जाने, ऐसे दुरबुद्धिको अवश्य दुरगति है॥ ३४॥

शार्दूलविक्रीडित छन्द–आत्मानं परिशुद्धमीप्सुभिरतिव्याप्तिं प्रपद्यान्धकैः

कालोपाधिबलादशुद्धिमधिकां तत्रापि मत्वा परैः।

चैतन्यं क्षणिकं प्रकल्प्य पृथुकैः शुद्धर्जुसूत्रे रतै-

रात्मा व्युज्झित एष हारवदहो निःसूत्रमुक्तेक्षिभिः॥ १६॥

खण्डान्वय सहित अर्थ–एकांतानें जो मानिमें सो मिथ्यात्व छे। अहो पृथुकैः एषः आत्मा व्युज्झितः–अहो कहतां जो जीव पृथुकैः कहतां नानाप्रकार अभिप्राय छे इसा छे क्या-हका इसा छे जे मिथ्यादृष्टी जीव त्यांहको, एषः आत्मा कहतां छतो शुद्ध चैतन्य वस्तु व्यु-ज्झितः कहतां सध्यो नहीं। किसा छे एकांतवादी, शुद्धर्जुसूत्रे रतैः–शुद्ध कहतां पर्याया-र्थिक नय तहि रहित इसो जो ऋजुसूत्र कहतां वर्तमान पर्याय मात्र विषै वस्तुरूप अंगीकार इसा एकांतपनाविषै रतैः कहतां मग्न छे, इसा जीवहको, चैतन्यं क्षणिकं प्रकल्प्य–कहतां एक समय माहे एक जीव मूल तहि विनशै छे, अन्य जीव मूल तहि उपजै छे। इसो मानिकरि बौद्धमतकी जीवहको जीवस्वरूपकी प्राप्ति नहीं छे। तथा मतांतर कहिजै छे। अपरैः तत्रापि कालोपाधिबलात् अधिकां अशुद्धिं मत्वा–अपरैः कहतां कोई मिथ्यादृष्टी एकांतवादी इसा छे जो जीवको शुद्धपनो नहीं माने छे, सर्वथा अशुद्धपनो माने छे, त्याहे फुनि वस्तुकी प्राप्ति नहीं छे। इसो कहिजै छे, कालोपाधिबलात् कहतां अनंतकाल हुओ

मिल्यो चल्यो आयो भिन्न तो हूओ नहीं इसो मानि, तत्रापि कहतां तिहि जीव विषे, अधिकां अशुद्धि मत्वा, जीवद्रव्य अशुद्ध छे शुद्ध छे ही नहीं इसी प्रतीति करें छे जे जीव त्यांहे फुनि वस्तुकी प्राप्ति न छे। मतांतर कहिजै छे। अंधकैः अतिव्याप्तिं प्रपद्य-अन्धकैः-कहतां एकांत मिथ्यादृष्टी जीव केई इसा छे। अतिव्याप्ति प्रपद्य कहतां कर्मकी उपाधिको नहीं मानै छे। आत्मानं परिशुद्धिं ईप्सुभिः-कहतां जीव द्रव्यको सर्व काल सर्वथा शुद्ध मानहि छे त्याहे फुनि स्वरूपकी प्राप्ति न छे। किसो छे एकांतवादी-निःसूत्र मुक्तेक्षिभिः-निःसूत्र कहतां स्याद्वाद सूत्र विना, मुक्तेक्षिभिः कहतां सकल कर्मको क्षय लक्षण मोक्षको चाहे छे, त्याहे प्राप्ति न छे। तिहिको दृष्टांत, हारवत्-कहतां हारकी नाईं। भावार्थ इसो-जो यथा सूत विना मोती नहीं सधै छे, तथा स्याद्वाद सूत्रका ज्ञान पावे (विना) एकांतवादहं करि आत्माको स्वरूप नहीं सधै छे आत्मस्वरूपकी प्राप्ति नहीं होइ छे, तिहितै स्याद्वाद सूत्र करि ज्यों आत्माको स्वरूप साध्यो छे त्यों मानिज्यों जे कई आपको सुख चाहै छे।

भावार्थ-यहां यह बताया है कि वस्तुका स्वरूप अनेकांत या अनेक स्वभाववाला है, ऐसा ज्ञान स्याद्वाद नयके आश्रय विना हो नहीं सक्ता है। जो कोई मोतियोंका हार तो चाहे, परन्तु सूतको नहीं ले उसको कभी भी हार नहीं मिल सक्ता है। इसी तरह जो मुक्ति तो चाहे, परन्तु स्याद्वाद सूत्रका अभिप्राय नहीं समझे उसको वस्तुकी प्राप्तिरूप मोक्ष नहीं प्राप्त होसक्ती है। आत्मा नित्य व अनित्य दोनों स्वभाववाला है। द्रव्यार्थिक नयसे नित्य व पर्यायार्थिक नयसे अनित्य है। जो कोई बौद्धमती आत्माको सर्वथा अनित्य व क्षणिक मानते हैं उनको आत्माके यथार्थ स्वरूपकी प्राप्ति नहीं होसक्ती है। इसी तरह जो ऐसा मानते हैं कि आत्मा अशुद्ध ही है उनको कभी शुद्ध आत्माके स्वरूपका अनुभव नहीं होगा। व जो मानते हैं कि आत्मा सदा शुद्ध ही है ऐसा भी एकांत आत्माके यथार्थ स्वरूपको झलकानेवाला नहीं है। वास्तवमें यह आत्मा निश्चयनयकी अपेक्षा शुद्ध है। तथापि व्यवहारनय या कर्मकी उपाधिकी अपेक्षा अशुद्ध है। इस तरह जो स्याद्वादसे समझेंगे उनहीको आत्माकी प्राप्ति होगी।

दोहा-कहे अनातमकी कथा चहे न आतम शुद्धि। रहे अध्यातमसे विमुख, दुराराध्य दुर्बुद्धि ॥३५॥
,, दुर्बुद्धी मिथ्यामती, दुर्गति मिथ्याचाल। गहि एकांत दुर्बुद्धिसे, मुक्त न होई त्रिकाल ॥३६॥

सवैया ३१ सा—कायासे विचारे प्रीति मायाहीमें हारी जीति, लिये हठ रीति जैसे हारीलकी लकरी ॥ चूंगुलके जोर जैसे गोह गहि रहे भूमि, त्योंही पाय गाडे पैं न छोडे टेक पकरी ॥ मोहकी मरोरसों भरमको न ठोर पावे, धावे चहुं ओर ज्यों बढावे जाल मकरी ॥ ऐसे दुरबुद्धि भूलि झूठके झरोखे झूली, फूलि फिरे ममता जंजरनीसों जकरी ॥ ३७ ॥

सवैया ३१ सा—बात सुनि चौंकि ऊठे बातहीसों भौंकि उठे, बातसों नरम होइ बातहीसों अकरी ॥ निंदा करे साधुकी प्रशंसा करे हिंसककी, साता माने प्रभुता असाता माने फकरी ॥

मोक्ष न सुहाइ देख देखे तहां पैठि जाइ, कलसों डराइ ऐसे नाहरसों चकरी ॥ ऐसें दुरबुद्धि भूलि झूठसे झरोखे झूलि, फूली फिरे ममता जंजीरनिसो जकरी ॥ ३८ ॥

कवित्त—केई कहे जीव क्षणभंगुर, केई कहे करम करतार। केई कर्म रहित नित जंपहि, नय अनंत नाना दरकार। जे एकांत गहे ते मूरख, पंडित अनेकांत पख धार। जैसे भिन्न भिन्न मुकता गण, गुणसों गहत कहावे हार ॥ ३९ ॥

दोहा—यथा सूत संग्रह विना मुक्त माल नहिं होय। तथा स्याद्वादी विना, मोक्ष न साधे कोय ॥ ४० ॥

शार्दूलविक्रीडित छन्द—कर्तुर्वेदयितुश्च युक्तिवशतो भेदोऽस्त्वभेदोऽपि वा
कर्त्ता वेदयिता च मा भवतु वा वस्त्वेव सञ्चिन्त्यतां।
प्रोता सूत्र इवात्मनीह निपुणैर्भेत्तुं न शक्या क्वचि-
च्चिच्चिन्तामणिमालिकेयमभितोऽप्येका चकास्त्येव नः ॥ १७ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—निपुणैः वस्तु एव सञ्चिन्त्यतां—निपुणैः कहतां शुद्ध स्वरूप अनुभवको प्रवीण छे। इसा जे सम्यग्दृष्टी जीव त्यांहको, वस्तु एव कहतां समस्त विकल्प तहिं रहित निर्विकल्प सत्ता मात्र चैतन्य स्वरूप, संचिन्त्यतां कहतां स्वसंवेदन प्रत्यक्षपनै अनुभव करिवो योग्य छे। कर्तुः च वेदयितुः युक्तिवशतः भेदः अस्तु अथवा अभेदः अस्तु—कर्तुः कहतां कर्ताको, च कहतां और, वेदयितुः कहतां भोक्ताको, युक्तिवशतः कहतां द्रव्यार्थिक नय पर्यायार्थिक नय भेद करतां, भेदः अस्तु कहतां अन्य पर्याय करै छे, अन्य पर्याय भोगवै छे पर्यायार्थिक नय करि इसो भेद छे तौ इसो होउ, इसो साधतां साध्यसिद्धि तो कांइ न छे। अथवा अभेदः अस्तु, अथवा कहतां द्रव्यार्थिक नय करि, अभेदः कहतां जो द्रव्य ज्ञानावरणादि कर्मको करै छे सोई द्रव्य भोगवै छे। इसो, अस्तु कहतां जो फुनि छे त्यौं योंही होउ इह माहे फुनि साध्यसिद्धि तो कांई न छे। वा कर्त्ता च वेदयिता भवतु वा मा भवतु—वा कहतां कर्तृत्व नय करि, कर्ता कहतां जीव आपणा भावहको कर्ता छे, च कहतां तथा, भोक्तृत्व नय करि, वेदयिता कहतां जिहिरूप परिणवै छे त्याह परिणामहको भोक्ता छे, भवतु कहतां यों छे त्यौं ही होउ। इसो विचारतां शुद्ध स्वरूपको अनुभव नहीं छे। जिहिंते इसो विचारिवो अशुद्धरूप विकल्प छे, वा कहतां अथवा, अकर्तृत्व नय करि जीव अकर्ता छे, च कहतां तथा, अभोक्तृत्व नय करि जीव, मा कहतां भोक्ता नहीं छे तो भक्ति ही होहु। इसो विचारतां फुनि शुद्ध स्वरूपको अनुभव नहीं छे। जिहिंते प्रोता इह आत्मनि क्वचित् कर्तुं न शक्यः प्रोता कहतां कोई नय विकल्प तिहिको ब्यौरो—अन्य करै छे अन्य भोगवै छे इसो विकल्प, अथवा जीव कर्ता छे भोक्ता छे इसो विकल्प, अथवा जीव कर्ता न छे भोक्ता न छे इसो विकल्प, इहि आदि देइ अनंत विकल्प छे तौ

फुनि तिहि माहे कोई विकल्प, इहि आत्मनि कहतां शुद्ध वस्तु मात्र छे जीवद्रव्य तिहि विषै क्वचित कहतां कौनहूं काल विषैं कर्तुं न शक्यः कहतां शुद्ध स्वरूपको अनुभव रूप स्थापिवाको समर्थ न छे। भावार्थ इसो—जो कोई अज्ञानी इसो जानिसै जो इहिस्थल ग्रंथकर्ता आचार्य कर्तापनो अकर्तापनो भोक्तापनो अभोक्तापनो बहुत भांति करि कह्यो छे सो इहि माहे क्या अनुभवकी प्राप्ति घनी छे। समाधान इसो जो समस्त नय विकल्प करि शुद्ध स्वरूपको अनुभव सर्वथा नहीं छे। इसो ही जनाइवाके ताई शास्त्र विषैं बहुत नय युक्ति करि दिखायो तिहि कारण तहे—नः इयं एका अपि चिच्चिंतामणिमालिका अभितः चकास्तु एव—यः कहतां हम कहुं, इयं कहतां स्वसंवेदन प्रत्यक्ष छे, एका अपि कहतां समस्त विकल्प तहि रहित छे, चित कहतां शुद्ध चेतना इसी छे, चिंतामणि कहतां अनंत शक्ति गर्भित इसी छे, मालिका कहतां अनन्त शक्ति गर्भित चेतना मात्र वस्तु, अभितः चकास्तु एव कहतां सर्वथा प्रकार हम कहु इसा स्वरूपकी प्राप्ति होउ। भावार्थ इसो—जो निर्विकल्पको अनुभव उपादेय छे। अन्य विकल्प समस्त हेय छे। दृष्टांत इनो जो सूत्रे प्रोता इव कहतां यथा कोई पुरुष मोतीकी माला पोइ जानै छे माला गूंथतां अनेक विकल्प करै छे ते समस्त झूठा छे विकल्पह माहै शोभा करिवाकी शक्ति न छे। शोभा तो मोती मात्र वस्तु छे तिहि माहै छे, तिहितै पहिरणहारो पुरुष मोतीकी माला जानि पहरै छे गुथिवाकी घणा विकल्प जानि नहीं पहरे छे देखनहारो फुनि मोतीकी माला जानि शोभा देखै छे गूंथवाको विकल्पको नहीं देखै छे। तथा शुद्ध चेतना मात्र सत्ता अनुभव करिवा योग्य छे, तिहि विषै घटै छे तो अनेक विकल्प तेता सत्ता अनुभव करिवा योग्य नहीं छे।

भावार्थ—यहां बताया है कि यद्यपि आत्माका अनेकांत स्वभाव समझनेके लिये अनेक दृष्टिसे आत्माका स्वभाव समझा जाता है तथापि इन विकल्पोंमें आत्माका शुद्ध स्वरूप न अनुभवमें आता है न उसके भीतर भरे हुए आनन्दका लाभ मिलता है। जैसे मोतीकी मालाको जो गूंथता हुआ अनेक विकल्प करता है कि कहां कौनसा मोती प्रोऊं उसको मोतीकी मालाका आनन्द नहीं आता है। आनन्द तो उसको आता है जो मोतीकी मालाको एकाकार देखकर पहरता है व जो देखनेवाला उस मालाको एकाकार देखता है। आत्मा कर्ता है व भोक्ता है ऐसा व्यवहार नयसे विकल्प होता है। आत्मा न कर्ता है न भोक्ता है ऐसा निश्चय नयसे विकल्प होता है अथवा कर्ता कोई और है भोक्ता कोई और है यह पर्याय दृष्टिसे विचार होता है व जो कर्ता है वही भोक्ता है यह द्रव्य दृष्टिसे विकल्प होता है। भिन्न २ नयोंके द्वारा विचार करना वस्तुके परखनेके लिये उपयोगी है परन्तु वस्तुका स्वाद लेनेमें ये सब विकल्प बाधक हैं। इसलिये स्वानुभव करनेका जो उद्यमी हो उसको उचित

है कि इन सब विचारोंको गौण करके शुद्ध चेतना मात्र एक अखंड आत्माका ही स्वाद ले तब परमानंदका लाभ होगा व मोक्षमार्ग सिद्ध होगा। तत्व० में कहा है—

चिंता दुःखं सुखं शांतिस्तस्या एतत् प्रतीयते। तच्छांतिर्जायते शुद्धचिद्रूपे लयतोऽचला॥ १३।१८॥

भावार्थ-जिस शांतिके अनुभवसे यह झलकता है कि सर्व चिंता दुःख है व चिंता रहित शांत होना सुख है वह शांति तब ही प्राप्त होती है जब निश्चल रूपसे अपने शुद्ध चेतना स्वरूपमें लयता प्राप्त होती है।

दोहा-पद स्वभाव पूरव उदै, निश्चै उद्यम काल। पक्षपात मिथ्यात पथ, सर्वंगी शिव चाल ॥४१॥

सवैया ३१ सा—एक जीव वस्तुके अनेक गुण रूप नाम, निज योग शुद्ध पर योगसों अशुद्ध है ॥ वेदपाठी ब्रह्म कहे, मीमांसक कर्म कहे, शिवमति शिव कहे बौध कहे बुद्ध है ॥ जैनी कहे जिन न्यायवादी करतार कहे छहों दरशनमें वचनको विरुद्ध है ॥ वस्तुको स्वरूप पहिचाने सोई परवीण, वचनके भेद भेद माने सोई शुद्ध है ॥ ४२ ॥

३१ सा—वेदपाठी ब्रह्म माने निश्चय स्वरूप गहे, मीमांसक कर्म माने उदैमें रहत है ॥ बौधमती बुद्ध माने सूक्षम स्वभाव साधे, शिवमति शिवरूप कालको कहत है ॥ न्याय ग्रन्थके पढैया थापे करतार रूप, उद्यम उदीरि उर आनन्द लहत है ॥ पांचों दरसनि तेतो पोषे एक एक अंग, जैनी जिन पंथि सरवंगि मैं गहत है ॥ ४३ ॥

३१ सा—निहचै अभेद अंग उदै गुणकी तरंग, उद्यमकी रीति लिये उद्धता शकति है ॥ परयाय रूपको प्रमाण सूक्षम स्वभाव, कालकीसी ढाल परिणाम चक्र गति है ॥ याही भांति आतम दरबके अनेक अंग, एक माने एककों न माने सो कुमति है ॥ एक डारि एकमें अनेक खोजे सो सुबुद्धि, खोजि जीवे वांदि मरे सांची कहवति है ॥ ४४ ॥

३१ सा—एकमें अनेक है अनेकहीमें एक है सो, एक न अनेक कछु कह्यो न परत है ॥ करता अकरता है भोगता अभोगता है, उपजे न उपजत मरे न मरत है ॥ बोलत विचरत न बोले न विचरे कछु, भेखको न भाजन पै भेखसो धरत है ॥ ऐसो प्रभु चेतन अचेतनकी संगतीसों, उलट पलट नट बाजीसी करत है ॥ ४५ ॥

दोहा—नट बाजी विकलप दशा, नांही अनुभौ योग। केवल अनुभौ करनको, निर्विकल्प उपयोग ॥४६॥

सवैया ३१ सा—जैसे काहू चतुर सवांरी है मुकत माल, मालाकी क्रियामें नाना भांतिको विग्यान है। क्रियाको विकल्प न देखे पहिरन वारो, मोतीनकी शोभामें मगन सुखवान है ॥ तैसे न करे न भुंजे अथवा करेसो भुंजे, और करे और भुंजे सब नय प्रमान है ॥ यद्यपि तथापि विकलपविधि त्याग योग, नीरविकलप अनुभौ अमृतपान है ॥ ४७ ॥

उपजाति छन्द—व्यावहारिकदृशैव केवलं कर्तृकर्म च विभिन्नमिष्यते।
निश्चयेन यदि वस्तु चिन्त्यते कर्तृकर्म च सदैकमिष्यते ॥१८॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—इहां कोई प्रश्न करै छे जो ज्ञानावरणादि कर्मरूप पुद्गल पिंडको कर्ता जीव छे कै न छे। उत्तर इसो जो कहिवाको तो छे वस्तु स्वरूप विचारतां कर्ता

न छे। इसो कहिजे छे व्यवहारिकदृशा एव केवलं–कहतां झूठा व्यवहार दृष्टि करि ही, कर्तृ कहतां कर्ता, च कहतां तथा, कर्म्म कहतां कीयो कार्य, विभिन्नं इष्यते कहतां भिन्न २ छे जीव ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्मको कर्ता इसो कहिवाको छतो छे। जिहिंतै तकरीर इसी जो रागादि अशुद्ध परिणामहको जीव करै छे। रागादि अशुद्ध परिणामहको होतां ज्ञानावरणादि रूप पुद्गल द्रव्य परिणवै छे। तिहिंतै कहिवाको इसो छे जो ज्ञानावरणादि कर्म जीवै कीयो, स्वरूप विचारतां इसो कहिवो झूठा छे जिहिंतै, यदि निश्चयेन चिंत्यते–यदि कहतां जो, निश्चयेन कहतां सांची व्यवहारदृष्टि करि जो देखिजै, सो कांयो देखिजे, वस्तु कहतां स्वद्रव्य परिणाम, परद्रव्य परिणाम रूप वस्तुको स्वरूप। सदा एव कर्तृकर्म एकं इष्यते–सदा एव कहतां सर्व ही काल, कर्तृ कहतां परिणवै छे जो द्रव्य, कर्म कहतां द्रव्यको परिणाम एकं इष्यते कहतां जो कोई जीव अथवा पुद्गल द्रव्य आपणा परिणामहसो व्याप्य व्यापक रूप छे तिहिंतै कर्ता सोई, परिणाम तिहि द्रव्यसों कहतां व्याप्य व्यापकरूप छे तिहिंतै कर्म इसो, इष्यते कहतां विचारतां घटाइ छे अनुभव आवे छे। अन्य द्रव्यको अन्य द्रव्य कर्ता अन्य द्रव्यको परिणाम अन्य द्रव्यको कर्म इसो, तो अनुभव माहे घटाइ नहीं जिहिंतै दोइ द्रव्यहको व्याप्य व्यापकपनो नहीं छे।

भावार्थ–यहां यह बताया है कि हरएक द्रव्य अपने स्वभावमें ही परिणमन करता है, कोई द्रव्य अन्य द्रव्यरूप नहीं परिणन कर सक्ता है, जीव अचेतन रूप व अचेतन जीवरूप नहीं होता है। जब जो द्रव्य परिणमता है तब व्यवहार दृष्टिसे यह कहते हैं कि द्रव्य तो कर्ता है व उसका परिणाम उसका कर्म है, निश्चयसे दोनों एक ही हैं। यह कहना कि जीवने ज्ञानावरणादि कर्म किये। इसलिये जीव कर्ता है। अष्टकर्म जीवका कर्म है बिलकुल ही असत्य व्यवहार है। क्योंकि आठों कर्मरूप स्वयं पुद्गल द्रव्य पिंड होजाता है जब अशुद्ध रागादि भावोंका निमित्त होता है। स्वानुभवके समयमें कर्ता कर्मका विकल्प भी करना उचित नहीं है। एकाकार आत्माको ही अनुभवना योग्य है।

परमात्मप्रकाशमें कहते हैं—

मिल्लिवि सयल अवक्खडी जिय णिच्चितउ होइ। चित्तु णिवेसहि परमपइ, देउ णिरंजणु जोइ ॥११५॥

भावार्थ–हे आत्मन्! तू सर्व विकल्पोंको छोड़कर निश्चिन्त हो व अपने मनको परमपदमें प्रवेश कराकर एक निर्मल आत्माका अनुभव कर।

दोहा–द्रव्यकर्म कर्ता अलख, यह व्यवहार कहाव। निश्चै जो जैसा दरव, तैसो ताको भाव ॥ ४८ ॥

शिखरिणी छन्द–बहिर्लुठति यद्यपि स्फुटदनन्तशक्तिः स्वयं

तथाप्यपरवस्तुनो विशति नान्यवस्त्वन्तरं।

स्वभावनियतं यतः सकलमेव वस्त्विष्यते
स्वभावचलनाकुलः किमिह मोहितः क्लिश्यते ॥१९॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—भावार्थ इसो—जो जीवको स्वभाव इसो छे जो सकल ज्ञेयको जाने छे। इहां तहि लेइ करि इसो भाव कहिजे छे। कोई मिथ्यादृष्टी जीव इसो जानिसे जो ज्ञेय वस्तुको जानतां जीवको अशुद्धपनो घटे तिहिको समाधान। इह स्वभावचलनाकुलः मोहितः किं क्लिश्यते—इह कहतां जीव समस्त ज्ञेयको जाने छे। इसो देखि करि स्वभाव कहतां जीवको शुद्ध स्वरूप तिहितै, चलन कहतां स्खलितपनो इसो जानि, आकुलः कहतां खेद खिन्न होइ छे। इसो मिथ्यादृष्टी जीव, मोहितः कहतां मिथ्यात्त्व रूप अज्ञानपनाको लीयो, किं क्लिश्यते कहतां किसा है खेद खिन्न होइ छे। तिहितै, यतः स्वभावनियतं सकल एव वस्तु इष्यते—यतः कहतां जिहि कारण तहिं, स्वभावनियतं कहतां नियमसों आपणो स्वरूप छे इसो, सकलं एव वस्तु कहतां जो कोई जीव द्रव्य अथवा पुद्गल द्रव्य इत्यादि, इष्यते कहतां अनुभवगोचर आवै छे। इसो अर्थ प्रगट करि कहिजे छे। यद्यपि स्फुटदनन्तशक्तिः स्वयं बहिर्लुठति—यद्यपि प्रत्यक्षपनै यो छै। तथापि स्फुटत् कहतां सदा काल प्रगट छे, इसी अनन्तशक्तिः कहतां अविनश्वर चेतना शक्ति जिहिकी इसो छे। जो जीव द्रव्य, स्वयं बहिर्लुठति कहतां स्वयं समस्त ज्ञेयको जानिकर ज्ञेयाकार रूप परिणवे छे, इसो जीवको स्वभाव छे। तथापि अन्य वस्त्वन्तरं—तथापि कहतां तो फुनि एक कोऊ जीव द्रव्य अथवा पुद्गल द्रव्य, अपरवस्तुनः न विशति—कहतां कौनहू अन्य द्रव्य सम्बंध रूप नहीं प्रवेश करे छे, वस्तु स्वभाव इसो छे। भावार्थ इसो—जो जीव द्रव्य समस्त ज्ञेय वस्तुको जाने छे। इसो तो स्वभाव छे, परन्तु ज्ञान ज्ञेय रूप नहीं होइ छे, ज्ञेय फुनि ज्ञान द्रव्य रूप नहीं परिणवे छे, इसी वस्तुकी मर्याद छे।

भावार्थ—यहांपर यह है कि जीवका स्वभाव यद्यपि सर्व ज्ञेय पदार्थोंको एक कालमें जाननेका है व शुद्ध जीव ऐसा ही जानता है। तथापि जाननेवाले जीवकी सत्ता जानने योग्य पदार्थोंसे एकरूप नहीं है, ज्ञाताकी सत्ता भिन्न है, ज्ञेयोंकी सत्ता भिन्न है।

सवैया ३१ सा—ज्ञानको सहज ज्ञेयाकार रूप परिणमै, यद्यपि तथापि ज्ञान ज्ञानरूप कह्यो है ॥ ज्ञेय ज्ञेयरूपसों अनादिहीकी मरयाद, काहू वस्तु काहूको स्वभाव नहिं गह्यो है ॥ एतेपरि कोउ मिथ्यामति कहै ज्ञेयाकार, प्रतिभासनिसों ज्ञान अशुद्ध ह्वै रह्यो है ॥ याही दुरबुद्धिसों विकल भयो डोलत है, समुझे न धरम यों भर्म माहि वह्यो है ॥ ४९ ॥

रथोद्धता छन्द—वस्तु चैकमिह नान्यवस्तुनो येन तेन खलु वस्तु वस्तु तत्।
निश्चयोऽयमपरो परस्य कः किं करोति हि बहिर्लुठन्नपि ॥२०॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—अर्थ कह्यो थो सो गाढो कीजे छे। येन इह एकं वस्तु अन्य वस्तुनः न—येन कहतां जिहि कारण तहि, इह कहतां छः द्रव्य माहे कोई, एकं वस्तु कहतां जीव द्रव्य अथवा पुद्गल द्रव्य सत्तारूप छतो छे, अन्य वस्तुनः न कहतां अन्य द्रव्य सौ सर्वथा न मिले इसी द्रव्यहको स्वभावकी मर्याद छे। तेन खलु वस्तु तत् वस्तु तेन कहतां तिहि कारण तहि, खलु कहतां निहचासों, वस्तु कहतां जो कोई द्रव्य, तत् वस्तु कहतां आपणे स्वरूप छे ज्यों छे त्योंही छे। अयं निश्चयः—कहतां इसो तो निहचौ छे। परमेश्वर कह्यो छे, अनुभवगोचर फुनि आवे छे। कः अपरः बहिर्लुठन्नपि अपरस्य किं करोति—कः अपरः कहतां इसो कौन द्रव्य छे जो, बहिर्लुठन्नपि कहतां ज्ञेय वस्तुको जाने छे यद्यपि, अपरस्य किं करोति कहतां ज्ञेय वस्तु सो सम्बंध करि न सके। भावार्थ इसो—जो वस्तु स्वरूपकी मर्यादा तो इसी छे जो कोई द्रव्यसों एकरूप नहीं होइ छे। इसा उपरांत जीवको स्वभाव छे जो ज्ञेय वस्तुको जाने इसो छे तो होउ तो फुनि धोखो तो कांई न छे। जीव द्रव्य ज्ञेयको जानतो होतो आपणे स्वरूप छे।

भावार्थ—इस विश्वमें जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश व काल ऐसे छः मूलद्रव्य हैं। इनमें अगुरुलघु नामका एक साधारण गुण है जिसके द्वारा कोई द्रव्य अपनी मर्यादाको नहीं उल्लंघन कर सक्ता है, एक द्रव्य दूसरे द्रव्यरूप नहीं होसक्ता है। जब यह निश्चय है तब जीव द्रव्य यदि अपने ज्ञान स्वभावसे सर्व ज्ञेयोंको जानता है तोभी वह अपने स्वभावमें ही रहता है, जिनको जानता है उनरूप कदापि नहीं होता है।

चौपाई—सकल वस्तु जगमें असहाई। वस्तु वस्तुसों मिले न काई॥
जीव वस्तु जाने जग जेती। सोऊ भिन्न रहे सब सेती॥ ५०॥

रथोद्धता छन्द—यत्तु वस्तु कुरुतेऽन्यवस्तुनः किञ्चनापि परिणामिनः स्वयम्।
व्यावहारिकदृशैव तन्मतं नान्यदस्ति किमपीह निश्चयात् ॥२१॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—कोई आशंका करे छे जो जैन सिद्धांत विषै फुनि इसो कह्यो छे जो जीव ज्ञानावरणादि पुद्गल कर्मको करे छे भोगवे छे। तिहिको समाधान इसो जो झूठा व्यवहार करि कहिवाको छे, द्रव्यको स्वरूप विचारतां परद्रव्यको कर्ता जीव नहीं छे। तु यत् वस्तु स्वयं परिणामिनः अन्य वस्तुनः किंचनापि कुरुते—तु कहतां इसो फुनि कहनावति छे। यत् वस्तु कहतां जो कोई चेतना लक्षण जीव द्रव्य, स्वयं परिणामिनः अन्य वस्तुनः कहतां आपणे परिणाम शक्ति करि ज्ञानावरणादि रूप परिणवे छे। इसा पुद्गल द्रव्यको, किंचनापि कुरुते कहतां कांही एकको कर्ता छे इसो कहिवो तत् व्यवहारिक दृशा—तत् कहतां जो क्यों इसो अभिप्राय छे सो सर्व व्यवहारिक दृशा कहतां झूठा

व्यवहार दृष्टि करि छे, निश्चयात् किमपि नास्ति इह मतं—निश्चयात् कहतां वस्तुको स्वरूप
विचारतां, किमपि नास्ति कहतां इसो विचार इसो अभिप्राय क्यों नहीं छे। भावार्थ इसो—
जो काही बात नहीं–मूल तहिं झूठ छे, इह मतं कहतां इसो सिद्धांत सिद्ध हुओ।

भावार्थ—यहांपर यह बताया है कि हरएक द्रव्य अपने अपने स्वरूपमें परिणमन
करता है। जीव वास्तवमें न कर्मोंका कर्ता है, न भोक्ता है। तथापि व्यवहारमें जो कर्मोंका
कर्ता व भोक्ता कहा जाता है सो मात्र व्यवहार है। वास्तवमे यह कहना झूठ है। जैनोंके
भावोंका निमित्त पाकर पुद्गल स्वयं ज्ञानावरणादि कर्मरूप परिणमन कर जाता है। इन कर्मोंके
उदयसे जीव स्वयं विभाव रूप परिणमन कर जाता है। परिणमन सब द्रव्यमें है।

दोहा—कर्म करे फल भोगवे, जीव अज्ञानी कोइ। यह कथनी व्यवहारको, वस्तु स्वरूप न होइ ॥५१॥

शार्दूलविक्रीडित छन्द—शुद्धद्रव्यनिरूपणार्पितमतेस्तत्त्वं समुत्पश्यतो,
नैकद्रव्यगतं चकास्ति किमपि द्रव्यान्तरं जातुचित्।
ज्ञानं ज्ञेयमवैति यत्तु तदयं शुद्धस्वभावोदयः
किं द्रव्यान्तरचुम्बनाकुलधियस्तत्त्वाच्च्यवन्ते जनाः ॥२२॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—जनाः तत्त्वात् किं च्यवंते—जनाः कहतां समस्त संसारी
जीव राशि, तत्त्वात् कहतां जीव वस्तु सर्वकाल शुद्ध स्वरूप छे, समस्त ज्ञेयको जाने छे
इसा अनुभव तहिं, किं च्यवंते कहतां क्यों भ्रष्ट होई छे। भावार्थ इसो—जो वस्तुको स्वरूप
तो प्रगट छे, भ्रम क्यों करै छे। किसा छे जनाः। द्रव्यांतरचुम्बनाकुलधियः—द्रव्यांतर
कहतां समस्त ज्ञेय वस्तुको जानै छे जीव, तिहिकरि चुंबन कहतां अशुद्ध हुओ छे जीवद्रव्य
इसो जानिकरि आकुलधियः कहतां ज्ञेय वस्तुको जानपना क्यों छूटै जिहिको छूटतां जीव
द्रव्य शुद्ध होइ इसी हुइ छे बुद्धि ज्यांहकी इसा छे; तु कहतां त्यांहको समाधान इसो जो
यत् ज्ञानं ज्ञेयं अवैति तत् अयं शुद्धस्वभावोदयः—यत् कहतां जो यो छे कि ज्ञानं ज्ञेयं
अवैति कहतां ज्ञान ज्ञेयको जानै छे इसो छतो छे, तत् अयं कहतां सो इसो, शुद्धस्वभावो-
दयः कहतां शुद्ध जीव वस्तुको स्वरूप छे। भावार्थ इसो—जो यथा अग्निको दाहक स्वभाव
छे, समस्त दाह्य वस्तुको जारै छे जारतो होतो अग्नि आपणे शुद्ध स्वरूप छे, अग्निको इसो
ही स्वभाव छे। तथा जीव ज्ञान स्वरूप छे, समस्त ज्ञेयको जानै छे, जानतो होतो आपणो
स्वरूप छे। इसो वस्तुको स्वभाव छे ज्ञेयके जानपना करि जीवको अशुद्धपनो मानै छे सो
मत मानहु—जीव शुद्ध छे। और समाधान कीजै छे जिहितै। किमपि द्रव्यांतरं एकद्रव्यगतं
न चकास्ति—किमपि द्रव्यांतरं कहतां कोई ज्ञेय रूप पुद्गल द्रव्य अथवा धर्म अधर्म आकाश
काल द्रव्य, एकद्रव्यगतं एकद्रव्य कहतां शुद्ध जीव वस्तु तिहि विषै गतं कहतां एक द्रव्य

रूप परिणवो छे। इसो न चकास्ति कहतां नहीं शोभै छे। भावार्थ इसो—जो जीव समस्त ज्ञेयको जानै छे, ज्ञान ज्ञानरूप छे कोई द्रव्य आपणो द्रव्यत्व छोड़ि अन्य द्रव्य रूपतो नहीं हूओ। इसो अनुभव जिहिको छे सो कहिजै छे। शुद्धद्रव्यनिरूपणार्पितमतेः शुद्ध कहतां समस्त विकल्पतहिं रहित शुद्ध चेतना मात्र जीव वस्तु तिहि विषै, निरूपण कहतां प्रत्यक्षपनै अनुभव तिहि विषै अर्पितमतेः कहतां थाप्यो छे बुद्धिको सर्वस्व जिहि इसा जीवको, और किसो छे। तत्त्वं समुत्पश्यतः—कहतां सत्ता मात्र शुद्ध जीव वस्तुको प्रत्यक्षपनै आस्वादै छे इसो जीवको। भावार्थ इसो जीव समस्त ज्ञेयको जानै छे। समस्त ज्ञेय तहिं भिन्न छे। इसो स्वभाव सम्यग्दृष्टि जीव जानै छे।

भावार्थ—यहांपर यह स्पष्ट जैनसिद्धांत बताया है कि आत्मा अपने ज्ञान स्वभावको छोड़कर पररूप नहीं होता है, ज्ञानमें सर्व ज्ञेय स्वयं झलकते हैं, यह ज्ञानका स्वभाव दर्पणवत् प्रकाशमान है। दर्पणमें जैसे प्रकाश्य पदार्थ घुस नहीं जाते वैसे आत्मामें ज्ञेय पदार्थ प्रवेश नहीं कर जाते। न तो आत्मा विश्वरूप होकर अन्य द्रव्योंकी सत्ता मेटकर आप ही जड़चेतन रूप होता है और न ऐसा है कि आत्माका ज्ञान गुण ज्ञेयको प्रकाशनेसे शून्य होजाय। यह मानना भी मिथ्या है कि ज्ञानमें ज्ञेयोंका झलकना है सो ज्ञानमें अशुद्धता है। यदि ज्ञानमें ज्ञेय न झलकें तो ज्ञान ज्ञान ही न रहे जड़ होजावे सो कभी हो नहीं सक्ता। रागद्वेषादि विभाव भावोंको मेटना चाहिये। वीतरागतासे यदि कोई भी जीव कितने भी ज्ञेय पदार्थोंको जानता है इसमें आत्माकी व उसके ज्ञान गुणकी कुछ भी क्षति नहीं है। किन्तु ज्ञानकी शोभा ही इसीमें है जो ज्ञेयको जानै तथापि ज्ञेयरूप न होवे।

कवित्त—ज्ञेयाकार ज्ञानकी परणति, पै वह ज्ञान ज्ञेय नहीं होय ॥
ज्ञेयरूप षट् द्रव्य भिन्न पद, ज्ञानरूप आतम पद सोय ॥
जाने भेद भावसों विचक्षण, गुण लक्षण सम्यकदृग जोय ॥
मूरख कहे ज्ञान महि आकृति, प्रगट कलंक लखे नहि कोय ॥ ५२ ॥

चौपाई—निराकार जो ब्रह्म कहावे। सो साकार नाम क्यों पावे ॥
ज्ञेयाकार ज्ञान जब ताईं। पूरण ब्रह्म नाहि तब ताईं ॥ ५३ ॥
ज्ञेयाकार ब्रह्म मल माने। नाश करनेको उद्यम ठाने ॥
वस्तु स्वभाव मिटे नहि क्योंही। ताते खेद करे सठ योंही ॥ ५४ ॥

दोहा—मूढ मरम जाने नहीं, गहि एकांत कुपक्ष। स्याद्वाद सरवंग नै, माने दक्ष प्रत्यक्ष ॥५५॥
शुद्ध द्रव्य अनुभौ करे, शुद्ध दृष्टि घटमांहि। ताते सम्यक्वन्त नर, सहज उछेदक नांहि ॥५६॥

मंदाक्रांता छन्द—शुद्धद्रव्यस्वरसभवनात्किं स्वभावस्य शेष-
मन्यद्द्रव्यं भवति यदि वा तस्य किं स्यात्स्वभावः।

ज्योत्स्नारूपं स्नपयति भुवं नैव तस्यास्ति भूमि-
ज्ञानं ज्ञेयं कलयति सदा ज्ञेयमस्यास्ति नैव ॥ २१ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—सदा ज्ञानं ज्ञेयं कलयति अस्य ज्ञेयं न अस्ति एव—सदा कहतां सर्वकाल, ज्ञानं कहतां अर्थग्रहण शक्ति, ज्ञेयं कहतां स्वपर सम्बंधी जावंत ज्ञेय वस्तु, कलयति कहतां एक समय माहे द्रव्य गुण पर्याय भेदसेती ज्यों छे त्यों जाने छे, एक विशेष, अस्य कहतां ज्ञानके सम्बन्ध ज्ञेयं न अस्ति—कहतां ज्ञेय वस्तु ज्ञानसो सम्बन्धरूप नहीं छे, एव कहतां निहचासों योही छे, दृष्टांत कहै छे। ज्योत्स्नारूपं भुवं स्नपयति तस्यभूमिः न अस्ति एव—ज्योत्स्नारूपं कहतां जौन्ह (चन्द्र किरण) को पसरिवो, भुवं स्नपयति कहतां भूमि कहु सेत करै छे। एक विशेष, तस्य कहतां जोन्हका पसार सो संबन्ध, भूमिः न अस्ति कहतां भूमि जोन्हरूप न छे। भावार्थ इसो यथा जोन्ह पसरै छे समस्त भुइ सेत होइ छे तथा जोन्हको भुइको सम्बंध छे तथा ज्ञान ज्ञेयको जानै छे। तथापि ज्ञानको ज्ञेयको सम्बंध न छे इसो वस्तुको स्वभाव छे, इसो कोई न मानै तीहे प्रति युक्ति द्वार करि घटाइजे छे। शुद्धद्रव्यस्वरसभवनात्—कहतां शुद्ध द्रव्य अपने अपने स्वभाव माहे रहे छे। स्वभावस्य शेषं किं—स्वभावस्य कहतां सत्ता मात्र वस्तुको, शेषं किं कहतां उवर्‍यो सो कहा। भावार्थ इसो जो सत्ता मात्र वस्तु निर्विभाग एक रूप छे जिहिका दोइ भाग होहि नाहीं। यदि वा कहतां जो कबहूं अन्यद्रव्यं भवति—कहतां अनादि निधन सत्ता रूप वस्तु अन्य सत्ता रूप होइ, तस्य स्वभावः किं स्यात्—तस्य कहतां पहले साध्यो हुओ सत्ता रूप वस्तु तिहिको स्वभावः किं स्यात् कहतां जो पूर्वको सत्व अन्य सत्व रूप होइ तदा पूर्व सत्ता माहिको यो उवर्‍यो अपि तु पूर्वसत्ताको विनाश सधे छे। भावार्थ इसो—जो यथा जीव द्रव्य चेतना सत्तारूप छे निर्विभाग छे सो चेतना सत्ता जो कबहूं पुद्गल द्रव्य अचेतना रूप होइ तो चेतना सत्ताको विनाश होतो कौन मेटे सो वस्तुको स्वरूप तो यो न छे। तिहितें जो द्रव्य जिसो छे ज्यों छे त्यों छे, अन्यथा होइ नहीं। तिहितें जीवको ज्ञान जो समस्त ज्ञेयको जानै छे तो ज्ञानहु तथापि जीव आपणै स्वरूप छे।

भावार्थ—जैसे चंद्रमाकी चांदनी भूमिपर फैलती है, भूमिको श्वेत दिखाती है तौभी भूमि श्वेत नहीं होजाती। भूमि अपने स्वभावमें रहती, ज्योति अपने स्वभावमें रहती उसी तरह जीवका ज्ञान ज्ञेयोंको जानता हुआ, ज्ञान अपने स्वभावमें व ज्ञेय अपने स्वभावमें रहते हैं। कोई द्रव्य अपने अपने स्वभावको छोड़ता नहीं है। जीव सदा शुद्ध स्वभावको रखनेवाला है, यदि कभी भी जीव पुद्गलरूप होजाता हो तो जीवकी सत्ताका ही नाश हो जावे। किसीका स्वभाव कभी उससे छूट नहीं सक्ता। जीवका स्वभाव ज्ञाता दृष्टा है येह

अपनेको भी जानता है परको भी जानता है, ऐसा स्वभाव अन्य पांच द्रव्यमें नहीं है, इसीसे यह महान् है । तत्व०में कहा है—

ज्ञेयो दृश्योपि चिद्रूपो ज्ञाता दृष्टा स्वभावतः । न तथाऽन्यानि द्रव्याणि तस्मात् द्रव्योत्तमोस्ति सः ॥१६।१॥

भावार्थ—यद्यपि यह आत्मा जानने व देखने योग्य है तथापि स्वभावसे स्वयं ज्ञाता दृष्टा भी है और पांच द्रव्य ऐसे नहीं हैं । इसीसे सर्वमें उत्तम यह आत्मा द्रव्य है ।

सवैया ३१ सा—जैसे चंद किरण प्रगटि भूमि स्वेत करे, भूमिसी न होत सदा ज्योतिसी रहत है ॥ तैसे ज्ञान शकति प्रकाशे हेय उपादेय, ज्ञेयाकार दीसे पै न ज्ञेयको गहत है ॥ शुद्ध वस्तु शुद्ध पर्यायरूप परिणमे, सत्ता परमाण मांहि ढांहे न ढहत है ॥ सोतो औररूप कबहू न होय सरवथा, निश्चय अनादि जिनवाणि यों कहत है ॥ ५७ ॥

मंदाक्रांता छन्द—रागद्वेषद्वयमुदयते तावदेतन्न यावत्

ज्ञानं ज्ञानं भवति न पुनर्बोध्यतां याति बोध्यं ।

ज्ञानं ज्ञानं भवतु तदिदं न्यक्कृताज्ञानभावं

भावाभावौ भवति तिरयन्येन पूर्णस्वभावः ॥ २४ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—एतत् रागद्वेषद्वयं तावत् उदयते—एतत् कहता विद्यमान छे, राग कहता इष्ट विषे अभिलाष, द्वेष कहता अनिष्ट विषे उद्वेग इसो छे, यो द्रव्य कहता दोई भांति अशुद्ध परिणाम, तावत् उदयते कहता तौलहु होइ छे । यावत् ज्ञानं ज्ञानं न भवति—यावत् कहता जौलहु, ज्ञानं कहता जीवद्रव्य, ज्ञानं न भवति कहता आपणा शुद्ध स्वरूपको अनुभव रूप नहीं परणवे छे । भावार्थ इसो—जो जावंतकाल जीव मिथ्यादृष्टि छे तेतकाल रागद्वेष रूप अशुद्ध परिणमन मिटै नहीं, तथा बोध्यं बोध्यतां यावत् न याति—बोध्यं कहता ज्ञानावरणादि कर्म अथवा रागादि अशुद्ध परिणाम, बोध्यतां यावत् नयति कहता ज्ञेयमात्र बुद्धिको नहीं पावै छे । भावार्थ इसो—जो ज्ञानावरणादि कर्म सम्यग्दृष्टि जीवको जानिबाको छे, कांई आपणो कर्मको उदय कार्य जिसो तिसो करिवाको समर्थ नहीं छे । तत् ज्ञानं ज्ञानं भवतु—तत् कहता तिहि कारण तहि, ज्ञानं कहता जीव वस्तु, ज्ञानं भवतु कहता शुद्ध परिणतिरूप होइ करि शुद्ध स्वरूपको अनुभवन समर्थ होओ । किसो छे ज्ञान, न्यक्कृताज्ञानभावं—न्यक्कृता कहता दूरि कीयो छे, अज्ञानभावं कहता मिथ्यात्वरूप परिणति जिहि इसो होइ छे । इमो होता कार्यकी प्राप्ति कहिजे छे, येन पूर्णस्वभावः भवति—येन कहता जिहि शुद्धज्ञान करि, पूर्ण स्वभावः भवति कहता जिसो द्रव्यको अनंत चतुष्टय स्वरूप छे तिसो प्रगट होइ छे । भावार्थ इसो—जो मुक्ति पदकी प्राप्ति होइ छे । किसो छे पूर्ण स्वभाव, भावाभावौ तिरयन्—कहता चतुर्गति सम्बंधी उत्पाद व्यय तिहिको सर्वथा दूरि करितो होतो जीवको स्वरूप प्रगट होइ छे ।

भावार्थ-जबतक मिथ्यात्व व अनन्तानुबंधी कषायका उदय है तबतक ही परवस्तु-जो ज्ञानावरणादि कर्म, व शरीरादि नोकर्म व अशुद्ध रागादि औपाधिक भाव इनमें आत्मबुद्धि रहती है। तब इष्टसे राग व अनिष्टसे द्वेष हुआ करता है। परन्तु जब सम्यग्दर्शन प्रकाशमान होता है तब अज्ञानभाव सब मिट जाता है। भेद ज्ञानका उदय हो जाता है जिसके प्रतापसे अपना शुद्ध आत्मा भिन्न झलकता है और सम्पूर्ण परभाव भिन्न झलकते हैं तब आप ज्ञाता मात्र मालूम होता है और ये ज्ञानावरणादि सब ज्ञेय मात्र जानने योग्य होजाते हैं तब यह आत्मानुभवका अभ्यास करके केवलज्ञानी अर्हंत व सिद्ध परमात्मा हो जाता है। परमात्मप्रकाशमें कहा है—

मोहु विलिज्जइ मणु मरइ, तुट्टइ सासुणिसासु। केवलणाणुवि परिणवइ, अंवरि जाहं णिवासु ॥२९४॥

भावार्थ-जो आकाशके समान निर्मल आत्मामें तिष्ठता है उसका मोह विलय हो जाता है। मन मर जाता है, नाकसे श्वासोच्छ्वास रुक जाता है, अन्तमें केवलज्ञानका प्रकाश हो जाता है।

सवैया २३ सा—राग विरोध उदै जबलौं तबलौं यह जीव मृषा मग धावे ॥ ज्ञान जग्यो जब चेतनको तब, कर्म दशा पर रूप कहावे ॥ कर्म विलेछ करे अनुभौ तहां, मोह मिथ्यात्व प्रवेश न पावे ॥ मोह गये उपजे सुख केवल, सिद्ध भयो जगमांहि न आवे ॥ ४८ ॥

मंदाक्रांता छन्द—रागद्वेषाविह हि भवति ज्ञानमज्ञानभावात्
तौ वस्तुत्वप्रणिहितदृशा दृश्यमानौ न किंचित्।
सम्यग्दृष्टिः क्षपयतु ततस्तत्वदृष्ट्या स्फुटन्तौ
ज्ञानज्योतिर्ज्वलति सहजं येन पूर्णाचलार्चिः॥ २६ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ-ततः सम्यग्दृष्टिः स्फुटं तत्वदृष्ट्या तौ क्षपयतु-ततः कहतां तिहि कारण तहि, सम्यग्दृष्टिः कहतां शुद्ध चैतन्य अनुभवशीली जो जीव। स्फुटं तत्वदृष्ट्या कहतां प्रत्यक्ष रूप छे शुद्ध जीव स्वरूपको अनुभव तिहिकरि, तौ कहतां राग-द्वेष दोई, क्षपयतु कहतां मूल तहि मेटि दूरि करहु, येन ज्ञानज्योतिः सहजं ज्वलति-येन कहतां जिहि रागद्वेषके मिटवै करि, ज्ञानज्योतिः सहजं ज्वलति कहतां शुद्ध जीवको स्वरूप जिसो छे तिसो प्रगट सहज होइ छे। किसो छे ज्ञानज्योतिः पूर्णाचलार्चिः-पूर्ण कहतां जिसो स्वभाव छे, अचल कहतां सर्वकाल आपणे स्वरूप छे। इसो अर्चिः कहतां प्रकाश जिहिको इसो छे। रागद्वेषको स्वरूप कहिजै छे, हि ज्ञानं अज्ञानं भावात् इह रागद्वेषौ भवति-हि कहतां जिहि कारण, ज्ञानं कहतां जीवद्रव्य, अज्ञानभावात् कहतां अनादि कर्म संयोगथकी परिणयो छे विभाव परिणति मिथ्यात्वरूप तिहितहि, इह कहतां वर्तमान संसार अवस्था विषै रागद्वेषौ भवति-कहतां रागद्वेषरूप आप परिणवै छे, तिहिते

तौ कहतां रागद्वेष दोइ जाति अशुद्ध परिणाम वस्तुत्वप्रणिहितदृशा दृश्यमानौ कहतां सत्ता स्वरूप दृष्टि विचारयां होतां, न किंचित् कहतां कछू वस्तु नाहीं। भावार्थ इसो–जो यथा सत्ता स्वरूप एक जीव द्रव्य छतो छे तथा रागद्वेष कोऊ द्रव्य नाहीं। जीवकी विभाव परिणति छे, सोई जीव जो आपणा स्वभाव परिणवै, तौ. रागद्वेष सर्वथा मिटै। इसो सुगम छे। किछू मुसकिल नाहीं–अशुद्ध परिणति मिटै छे, शुद्ध परिणति होइ छे।

भावार्थ–यह है कि मिथ्यात्वके उदयसे यही ज्ञान रागद्वेष रूप विभाव परिणामको परिणमन कर जाता है। यदि निश्चय दृष्टिसे विचारा जावे तो रागद्वेष भाव किसी एक द्रव्यका निज स्वभाव नहीं है। अनादिसे अनंतकाल तक गुण गुणीके समान सत्ता रूप रहनेवाली वस्तु नहीं है। मोह कर्मके निमित्तसे आत्माके ज्ञानभावमें झलकते हैं। यदि आत्मा अपने ज्ञानभावमें ही परिणवै रागद्वेष न होवै तो इनका कहीं पता भी न चले। ये तो न आत्माके स्वभाव हैं न पुद्गलके ही स्वभाव हैं। निमित्त नैमित्तिक नाशवन्त क्षणिक औपाधिक भाव हैं। ये हमारा स्वरूप नहीं, ऐसा जानकर सम्यग्दृष्टी जीव अपने स्वरूप रूप रहकर स्वानुभव करता रहता है, तबसे रागद्वेष मिटते हैं और वह वीतरागी होता हुआ पूर्ण ज्ञानी होजाता है। परमात्मप्रकाशमें कहते हैं—

अप्पहं णाणु परिच्चयवि, अण्णु ण अत्थि सहाउ। इउ जाणेविणु जोइयहु परहं म बंधउ राउ॥२८६॥

भावार्थ–आत्मा ज्ञान स्वभाव है इसके सिवाय और कोई स्वभाव इसका नहीं है ऐसा जानकर हे योगी तू पर पदार्थमें राग मत बांध।

छप्पै—जीव कर्म संयोग, सहज मिथ्यात्व धर। राग परणति प्रभाव, जाने न आप पर। तम मिथ्यात्व मिटि गये, भये समकित उद्योत शशि। राग द्वेष कछु वस्तु नाहि, छिन मांहि गये नशि। अनुभव अभ्यास सुख राशि रमि, भयो निपुण तारण तरण। पूरण प्रकाश निहचल निरखी, बनारसी वंदत चरण॥ ५९॥

उपजाति छन्द–रागद्वेषोत्पादकं तत्त्वदृष्ट्या नान्यद्द्रव्यं वीक्ष्यते किंचनापि।
सर्वद्रव्योत्पत्तिरन्तश्चकास्ति व्यक्ताऽत्यन्तं स्वस्वभावेन यस्मात्॥ २६॥

खण्डान्वय सहित अर्थ–भावार्थ इसो–जो कोई इसो मानै छे जो जीवको स्वभाव रागद्वेष रूप परिणमिवाको न छे पर द्रव्य ज्ञानावरणादि कर्म तथा शरीर संसार भोग सामग्री बलात्कारपनै जीवको रागद्वेष रूप परिणवावै छे सो योतो नहीं, जीवकी विभाव परिणाम शक्ति जीव मांहै छे, तिहितै मिथ्यात्वके रूप परिणवतो हो तो रागद्वेष भ्रमरूप जीवद्रव्य आप परिणवै छे। पर द्रव्यको कांई सारो नहीं छे। इसो कहिजै छे। किंचनापि अन्य-द्रव्यं तत्त्वदृष्ट्या रागद्वेषोत्पादकं न वीक्ष्यते–किंचनापि अन्यद्रव्यं कहतां आठ कर्मरूप अथवा शरीर मनोवचन नोकर्मरूप अथवा बाह्य भोग सामग्री इत्यादि रूप छे जावंत परद्रव्य,

तत्वदृष्ट्या कहतां द्रव्यको स्वरूप देखतां सांची दृष्टिकरि। रागद्वेषोत्पादकं कहतां अशुद्ध चेतनारूप छे जे रागद्वेष परिणाम त्याहको उपजाइवा समर्थ, न वीक्ष्यते कहतां नहीं देखिजे छे। कह्यो अर्थ गाढ़ो कीजै छे। यस्मात् सर्वद्रव्योत्पत्तिस्वस्वभावेन अंतश्चकास्ति-यस्मात् कहतां जिहि कारण तिहि, सर्वद्रव्य कहतां जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, काल, आकाश तिहिकी उत्पत्ति कहतां अखंड धारा रूप परिणाम, स्वस्वभावेन कहतां आपणा २ स्वरूप सौं छे, अंतश्चकास्ति कहतां योही अनुभव ठहराई अर योही वस्तु सधै अन्यथा विपरीत छे। किसी छे परिणति अत्यंत व्यक्ता-कहतां अति ही प्रगट छे।

भावार्थ-यहां यह स्पष्ट किया है कि रागद्वेष परिणाम जीवका ही विभाव भाव है क्योंकि जीवमें एक तरहकी वैभाविक शक्ति है जिससे मोह कर्मके उदयके निमित्तसे जीवका ज्ञानभाव स्वयं विभाव रूप होजाता है। कोई दूसरा द्रव्य बलात्कार रागद्वेष नहीं उत्पन्न कर देता है। जैसे पानीमें उष्णरूप परिणमनेकी शक्ति है तब अग्निके संयोग होनेसे उष्ण होजाता है। यदि जीवमें विभाव परिणमन शक्ति न होती तो रागद्वेषका झलकाव कभी होही नहीं सक्ता था।

सवैया ३१ सा—कोउ शिष्य कहे स्वामी राग द्वेष परिणाम, ताको मूल प्रेरक कहहु तुम कौन है॥ पुद्गल करम जोग किधो इंद्रीनिके भोग, कींधो धन कींधो परिजन कींधो भौन है॥ गुरु कहे छहों द्रव्य अपने अपने रूप, सबनिको सदा असहाई परिणौन है॥ कोउ द्रव्य काहूको न प्रेरक कदाचि ताते, राग द्वेष मोह मृषा मदिरा अचौन है॥ ६०॥

काव्य-यदिह भवति रागद्वेषदोषप्रसूतिः कतरदपि परेषां दूषणं नास्ति तत्र।
स्वयमयमपराधी तत्र सर्पत्यबोधो भवतु विदितमस्तं यात्वबोधोऽस्मि बोधः॥ २०॥

खण्डान्वय सहित अर्थ-इसो जो जीव द्रव्य संसार अवस्था विषैं रागद्वेष मोह अशुद्ध चेतनारूप परिणवै छे। सो वस्तुको स्वरूप विचारतां जीवको दोष छे। पुद्गल द्रव्यको दोष काइ न छे। जिहितैं जीवद्रव्य आपणो विभाव मिथ्यात्व परिणवतो होतो आपणा अज्ञानपणाको लीयो रागद्वेष मोहरूप आप परिणवै छे जो कबहूं शुद्ध परिणति रूप होइ करि शुद्ध स्वरूपको अनुभव रूप परिणवै रागद्वेष मोह रूप न परिणवै तो पुद्गल द्रव्यको कांयो सारो छे। इह यत् रागद्वेषप्रसूतिः भवति तत्र कतरत् परेषां दूषणं नास्ति-इह कहतां अशुद्ध अवस्था विषै, यत् कहतां जो कछु रागद्वेष प्रसूतिः भवति कहतां रागादि अशुद्ध परिणति होइ छे, तत्र कहतां अशुद्ध परिणतिके होतां, कतरत् अपि कहतां अति ही थोरो फुनि, परेषां दूषणं नास्ति कहतां जावंत ज्ञानावरणादि कर्मको उदय अथवा शरीर मनो वचन अथवा पंचइंद्रिय भोग सामग्री इत्यादि घणी सामग्री छे। त्याह माहैं कोईको दूषण तो नहीं छे। तो क्यों छे। अयं स्वयं अपराधी, तत्र अबोधः

सम्पंति-अयं कहतां संसारी जीव, स्वयं अपराधी कहतां आपै मिथ्यात्व रूप परिणवतो होतो शुद्ध स्वरूपका अनुभव तहि भ्रष्ट छे कर्मको उदय थकी हुआ छे, अशुद्ध भाव तिहिको आपो करि जानै छे, तत्र कहतां अज्ञानको अधिकार होतां, अबोधः सर्पंति कहतां रागद्वेष मोहरूप अशुद्ध परिणति होइ छे। भावार्थ इसो जो जीव आप मिथ्यादृष्टी होतो परद्रव्य आपो जानि अनुभवै तहां रागद्वेष मोह अशुद्ध परिणति होतां कौन रोकै। तिहिकै पुद्गल कर्मको कौन दोष ? विदितं भवतु-कहतां योंही होउ। रागादि अशुद्ध परिणतिरूप जीव परिणवै छे सो जीवको दोष छे, पुद्गल द्रव्यको दोष नहीं। सांप्रत आगलो विचार क्यों छे कौन छे। उत्तर इसो जो आगिलो यह विचार जो, अबोधः अस्तं यातु-अबोधः कहतां मोह रागद्वेष रूप छे अशुद्ध परिणति तिहिको विनाश होउ, तिहिको विनाश हुवा थकी बोधः अस्मि-कहतां हौं शुचि रूप अविनश्वर अनादि निधन जिसो छौं तिसो छतो ही छौं। भावार्थ इसो-जो जीव द्रव्य शुद्ध स्वरूप छे तिहिको अन्तर मोह रागद्वेषरूप अशुद्ध परिणति तिहि अशुद्ध परिणतिको मेटिवाका उपाय जो सहज ही द्रव्य शुद्धस्वरूप परिणवै अशुद्ध परिणति मिटै। और तो कोई करतूति उपाय नहीं छे, तिहि अशुद्ध परिणतिके मिटतां जीव वस्तु जिसो छे तिसो छे कांई घाट वाढ़ि तो नहीं।

भावार्थ-यहां पर यह दिखलाया है कि रागद्वेष भावोंके होनेमें पुद्गलादि दूसरे द्रव्योंका कोई दोष नहीं है। इस जीवमें विभाव परिणमनकी शक्ति है व इसके साथ अनादि प्रवाह रूपसे मिथ्यात्व कर्मका बंध व उदय चला आया है उसके निमित्तसे वह स्वयं अज्ञानी होता हुआ रागद्वेष मोह करता है। यदि यह अपने शुद्ध स्वरूपको ग्रहण करले तो सहज ही अज्ञान मिट जावे और सम्यग्ज्ञान प्रगट होजावे।

उपजाति छन्द-रागजन्मनि निमित्ततां परद्रव्यमेव कलयन्ति ये तु ते।
उत्तरन्ति न हि मोहवाहिनीं शुद्धबोधविधुरान्धबुद्धयः ॥ २८ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ-कह्यो अर्थ गाढो कीजै छे, ते मोहवाहिनीं न हि उत्तरंति-ते कहतां मिथ्यादृष्टी जीवराशि, मोहवाहिनीं कहतां मोह रागद्वेष अशुद्ध परिणति इसी जो शत्रुकी सेना तिहिको, न हि उत्तरंति कहतां नहीं मेटि सकै छे, किसा छे, शुद्धबोधविधुरांधबुद्धयः-शुद्ध कहतां सकल उपाधि तहि रहित जीव वस्तु तिहिको बोध कहतां प्रत्यक्षपनै अनुभव तिहितै विधुर कहतां रहितपनै करि, अंध कहतां सम्यक तहि शून्य इसो छे, बुद्धि कहतां ज्ञानको सर्वस्व जिहको इसा छे त्याहको अपराध कौन, उत्तर इसो अपराध छे। सोई कहिजै छे, ये रागजन्मनि परद्रव्यं निमित्ततां एव कलयन्ति-ये कहतां जे कई मिथ्यादृष्टी जीव इसा छे, रागजन्मनि कहतां रागद्वेष मोह अशुद्ध

परिणति रूप परिणवै छै। जीव द्रव्य तिहि विषै, परद्रव्य कहतां आठ कर्म शरीर आदि नोकर्म तथा बाह्य सामग्री, निमित्ततां कलयंति कहतां पुद्गल द्रव्यको निमित्त पायो जीव रागादि अशुद्ध परिणवै छे। इसो श्रद्धा करै छे जे कोई जीव ताहिते मिथ्यादृष्टी छे। अनन्त संसारी छे। तिहितै इसो विचार छे जो संसारी जीवको रागादि अशुद्ध परिणमन शक्ति नहीं छे पुद्गल कर्म बलात्कार ही परिणवावै छे जो यों छे तो पुद्गल कर्म तो सर्व काल छतो ही छे। जीवको शुद्ध परिणामको अवसर कौन? अपि तु कोई औसर नहीं।

भावार्थ- यहां यह बताया है कि जो कोई आत्माको सदा ही शुद्ध रहनेवाला कूटस्थ नित्य मान लेते हैं उसमें वैभाविक शक्तिका परिणमन नहीं मानते हैं वे कभी भी अपने शुद्ध ज्ञानको न पाकर व कभी भी अपने अज्ञानको न मेट करि रागद्वेष मोहकी सेनाको संहार नहीं कर सके हैं। क्योंकि उनको रागद्वेष परिणतिके मेटनेका उद्यम ही नहीं हो सकेगा। कूटस्थ नित्य जीवको माना तब जीव न संसारी होगा न उसके मुक्ति होगी। ऐसा वस्तुका स्वभाव नहीं है। श्री सर्वज्ञ वीतराग भगवानका यह उपदेश है कि जीवमें स्वयं विभाव रूप होनेकी शक्ति है, इससे वह विभाव रूप परिणमता है। पुद्गल कर्म बलात्कारसे जीवको रागी द्वेषी नहीं बनाता है। जब वह पुरुषार्थ करके ज्ञानबलसे अपने मूल शुद्ध स्वभावको समझ ले व रागद्वेषको अपना निज स्वभाव न जाने व उनसे वैराग्य भावै व वीतरागताका अनुभव करे तब ही वे रागद्वेष मिटे। यथार्थ ज्ञान श्रद्धान हुए बिना स्वहित होना अशक्य है।

दोहा—कोउ मूरख यों कहे, राग द्वेष परिणाम। पुद्गलकी जोरावरी, बरतै आतम राम ॥ ६१ ॥

ज्यों ज्यों पुद्गल बल करै, धरिधरि कर्मजु भेव। रागद्वेषको परिणमन, त्यों त्यों होय विशेष ॥ ६२ ॥

यह विधि जो विपरीत पक्ष, गहै सद्दहे कोय। सो नर राग विरोधसों, कबहूं भिन्न न होय ॥ ६३ ॥

सुगुरु कहे जगमें रहे, पुद्गल संग सदीव। सहज शुद्ध परिणामको, औसर लहै न जीव ॥ ६४ ॥

ताते चिद्भावन विषै, समरथ चेतन राव। राग विरोध मिथ्यातमें, सम्यक्में शिवभाव ॥ ६५ ॥

शार्दूलविक्रीडित छन्द—पूर्णैकाच्युतशुद्धबोधमहिमा बोधा न बोध्यादयं

यायात्कामपि विक्रियां तत इतो दीपः प्रकाश्यादिव।

तद्वस्तुस्थितिबोधवन्ध्यधिषणा एते किमज्ञानिनो

रागद्वेषमयीभवन्ति सहजां मुञ्चन्त्युदासीनताम् ॥ २९ ॥

खंडान्वय सहित अर्थ—भावार्थ इसो-कोई मिथ्यादृष्टी जीव इसी आशंका करिसी जो जीवद्रव्य ज्ञायक छे, समस्त ज्ञेयको जानै छे। तिहिंतै परद्रव्य जानतां कांई थोरो घनो रागादि अशुद्ध परिणतिको विकार होतो होसी। उत्तर इसो जो परद्रव्य जानतां तो एक

निरंश मात्र आपणी फुनि न छे, आपणी विभाव परिणति करतां विकार छे। आपणी शुद्ध परिणति होतां निर्विकार छे, इसो कहिजै छे। एते अज्ञानिनः किं रागद्वेषमयी भवंति सहजां उदासीनतां किं मुंचंति—एते अज्ञानिनः कहतां छता छे जे मिथ्यादृष्टी जीवराशी, किं रागद्वेषमयी भवंति कहतां रागद्वेष मोह अशुद्ध परिणतिसो मग्न इसा क्यों होहि छे, तथा सहजां उदासीनतां किं मुंचंति कहतां सहज ही छे जो सकल परद्रव्य तहि भिन्नपनो इसी प्रतीतिको क्यों छोडै छे। भावार्थ इसो—जो वस्तुको स्वरूप प्रगट छे। विचल हि छे सो पूरो अचंभो छे। किसा छे अज्ञानी जीव तत् वस्तुस्थितिबोधवंध्यधिषणा-तत् वस्तु कहतां शुद्ध जीवद्रव्य तिहिकी, स्थिति कहतां स्वभावकी मर्यादा तिहिको, बोध कहतां अनुभव तिहितै, वंध्य कहतां शून्य छे। इसी धिषणा कहतां बुद्धि ज्यांहकी इसा छे। जिहि कारण तहि अयं बोधा कहतां छतो छे जे चेतनामात्र जीवद्रव्य, बोध्यात् कहतां समस्त ज्ञेयको जानै छे तिहिथकी, । कामपि विक्रियां न यायात् कहतां रागद्वेष मोहरूप कौनहू विक्रियाको नहीं परिणवे छे। किसो छे जीवद्रव्य, पूर्णैकाच्युतशुद्धबोधमहिमा-पूर्ण कहतां नहीं छे खंड जिहिको इसो छे, एक कहतां समस्त विकल्प तहि रहित इसो छे, अच्युत कहतां अनंत काल पर्यंत स्वरूप तहि नहीं चलै छे इसो छे, शुद्ध कहतां द्रव्यकर्म भावकर्म नोकर्म तहि रहित छे इसो छे, बोध कहतां ज्ञानगुण सोई छे, महिमा कहतां सर्वस्व जिहिको इसो छे। दृष्टांत कहिजै छे। ततः इतः प्रकाश्यात् दीपः इव—ततः इतः कहतां बांए दाहने ऊपर तले आगे पीछे, प्रकाश्यात् कहतां दीवाका उजाला करि देखिजै छे घड़ो कपड़ो इत्यादि तिहिथकी, दीप इव कहतां ज्यों दीवाको क्यों विकार नही उपजै छे। भावार्थ इसो जो यथा दीपक प्रकाश स्वरूप छे घट पटादि अनेक वस्तुको प्रकाशै छे, प्रकाशतो होतो जो आपणे प्रकाश मात्र स्वरूप थो त्योंही छे। विकार तो कोई देख्यो नहीं। तथा जीवद्रव्य ज्ञान स्वरूप छे, समस्त ज्ञेयको जानै छे, जानतो होतो जो आपणो ज्ञान मात्र स्वरूप थो त्योंही छे। ज्ञेयकै जानतौ विकार कांई न छे इसो वस्तुको स्वरूप ज्यांहे न छे ते जीव मिथ्यादृष्टी छे।

भावार्थ—यहां यह है कि आत्माका स्वभाव स्वपरज्ञायक दीपकके समान है। जैसे दीपकका प्रकाश पदार्थोंको प्रकाशता मात्र है, किसी भी पदार्थसे आप अपनेमें कोई विकार नहीं पैदा करता है ऐसे ही आत्माका शुद्ध ज्ञान सर्व ज्ञेयको जानता है परंतु रागद्वेषमयी विकारको प्राप्त नहीं होता है। ऐसा वस्तुका स्वरूप है। तथापि अज्ञानी मोही जीव इस रहस्यको न समझकर वृथा क्यों रागद्वेष पूर्वक जानते हैं। अपने आत्माकी स्वाभाविक उदासीनताको क्यों छोड़कर आकुलित होते हैं।

दोहा—ज्यों दीपक रजनी समें, चहुं दिशि करे उदोत। प्रगटे घटघट रूपमें, घटघट रूप न होत ॥६६॥
ज्यों सुज्ञान जाने सकल, ज्ञेय वस्तुको मर्म। ज्ञेयाकृति परिणमे पैं, तजे न आतम धर्म ॥६७॥
ज्ञानधर्म अविचल सदा, गहे विकार न कोय। राग विरोध विमोहं मय, कबहूं भूलि न होय ॥६८॥
ऐसी महिमा ज्ञानकी, निश्चय है घटमांहि। मूरख मिथ्यादृष्टिसों, सहज विलोके नांहि ॥६९॥
पर स्वभावमें मगन रहे, ठाने राग विरोध। धरे परिग्रह धारना, करे न आतम शोध ॥७०॥

चौपाई—मूरखके घट दुरमति भासी। पंडित हिये सुमति परकासी॥
दुरमति कुबजा करम कमावे। सुमति राधिका राम रमावे ॥ ७१ ॥

दोहा—कुब्जा कारी कुबरी, करे जगतमें खेद। अलख अराधे राधिका, जाने निज पर भेद ॥७२॥

सवैया ३१ सा—कुटिला कुरूप अंग लगी है पराये संग, अपनो प्रमाण करि आपहि विकाई है ॥ गहे गति अन्धकीसी, सकति कमन्धकीसी बन्धको बढाव करे धन्धहीमें धाई है ॥ रांडकीसी रीत लिये मांडकीसी मतवारि, सांड ज्यों स्वछन्द डोले भांडकीधि जाई है ॥ घरको न जाने भेद करे पराधीन खेद, याते दुरबुद्धी दासी कुबजा कहाई है ॥ ७३ ॥

३१ सा—रूपकी रसीली भ्रम कुलपकी कीलि शील, सुधाके समुद्र झीलि सीलि सुखदाई है ॥ प्राची ज्ञानभानकी अजाची है निदानकि, सुराचि निरवाची ठौर साची ठकुराई है ॥ धामकी खबरदार रामकी रमन हार, राधा रस पंथनिके ग्रंथनिमें गाई हैं ॥ संतनकी मानी निरवानी नूरकी निसाणि, याते सद्‌बुद्धि राणी राधिका कहाई है ॥ ७४ ॥

दोहा—वह कुब्जा वह राधिका, दोऊ गति मति मान। वह अधिकारी कर्मकी, वह विवेककी खान ॥७५॥
कर्मचक्र पुद्गल दशा, भावकर्म मतिवक्र। जो सुज्ञानको परिणमन, सो विवेक गुणचक्र ॥७६॥

कवित्त—जैसे नर खिलार चोपरिको, लाभ विचारि करे चितचाव ॥ धेरे सवारि सारि बुधि बलसों, पासा जो कुछ परेसु दाव ॥ तैसे जगत जीव स्वारथको, करि उद्यम चिंतवे उपाव ॥ लिख्यो ललाट होइ सोई फल, कर्म चक्रको येही स्वभाव ॥ ७७ ॥

कवित्त—जैसे नर खिलार सतरंजको, समुझे सब सतरंजकी घात ॥ चले चाल निरखे दोऊ दल, महुरा गिणे विचारे मात ॥ तैसे साधु निपुण शिव पथमें, लक्षण लखे तजे उतपात ॥ साधे गुण चिंतवे अभयपद, यह सुविवेक चक्रकी वात ॥ ७८ ॥

दोहा—सतरंज खेले राधिका, कुब्जा खेले सारि। याके निशिदिन जीतवो, वाके निशिदिन हारि ॥७९॥
जाके उर कुब्जा बसे, सोई अलख अजान। जाके हिरदे राधिका, सो बुध सम्यकवान ॥ ८० ॥

शार्दूलविक्रीडित छन्द—रागद्वेषविभावमुक्तमहसो नित्यं स्वभावस्पृशः

पूर्वागामिसमस्तकर्मविकला भिन्नास्तदात्वोदयात्।
दूरारूढचरित्रवैभवबलाच्चञ्चच्चिदर्चिर्मयीं
विन्दन्ति स्वरसाभिषिक्तभुवनां ज्ञानस्य संचेतनां ॥ ३० ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—नित्यं स्वभावस्पृशः ज्ञानस्य संचेतनां विंदंति—नित्यं स्वभावस्पृशः कहतां निरंतरपने शुद्ध रूपको अनुभव छे ज्यांहै इसा छे जे सम्यग्दृष्टि जीव राशि, ज्ञानसंचेतनां कहतां रागद्वेष तहि रहित शुद्ध ज्ञान मात्र वस्तुको, विंदंति कहतां पावे छे, आस्वादे छे, किसी छे ज्ञान चेतना। स्वरसाभिषिक्तभुवनां—कहतां अपने आपमांक

इसो जगतको मानो सिंचन करै छे और किसो छे चचच्चिदर्चिष्मयी चचत् कहतां सकल ज्ञेयको जानिवा समर्थ इसो छे, चिदर्चिः कहतां चेतन्य प्रकाश तिहि, मयी कहतां इसो छे सर्वस्व जिहिको इसो छे। इसी चेतनाको कारण छे त्यो कहिजै छे। दूरारूढचरित्रवैभव-बलाव-दूर कहतां अति गाढ़ो इसो आरूढ़ कहतां प्रगट हुओ छे, चरित्र कहतां रागद्वेष अशुद्ध परिणति तहि रहित जीवको चारित्र गुण तिहिको, वैभव कहतां प्रताप तिहिको बलात् कहतां सामर्थ्यपना थकी। भावार्थ इसो जो-शुद्ध चारित्र तथा शुद्ध ज्ञान चेतनाको एक वस्तुपनो छे। किसा छे सम्यग्दृष्टि जीव। रागद्वेषविभावमुक्तमहसः-रागद्वेष कहतां जावंत अशुद्ध परिणति इसो जो, विभाव कहतां जीवको विकार भाव तिहितै, मुक्त कहतां रहित हुओ छे। इसो महसः कहतां शुद्ध ज्ञान ज्याहको इसा छे। और किसा छे, पूर्वागामि-समस्तकर्मविकला:-पूर्वा कहतां जावंत अतीतकाल, आगामि कहतां जावंत अनागतकाल तिहि सम्बंधी छे, समस्त कहतां नानाप्रकार असंख्यात लोक मात्र कर्म कहतां रागादिरूप अथवा सुख दुःखरूप अशुद्ध चेतना विकल्प तिहितै, विकलाः कहतां सर्वथा रहित छे। और किसा छे, तदात्वोदयाव भिन्नाः-तदात्वोदयात् कहतां वर्तमानकाल आया छे जे उदय तिह थकी हुई छे जो शरीर सुख दुःख विषयभोग सामग्री इत्यादि तहि, भिन्नाः कहतां परम उदासीन छे। भावार्थ इसो-जो केई सम्यग्दृष्टी जीव राशि त्रिकाल सम्बन्धी कर्मकी उदय सामग्री तहि विरक्त होतां शुद्ध चेतनाको पावै छे आस्वादै छे।

भावार्थ-जो ज्ञानी सम्यग्दृष्टी जीव अपने आत्माको त्रिकाल कर्मकी उपाधिसे भिन्न व सर्व परपदार्थोंसे भिन्न अनुभव करते हैं वे ही शुद्ध ज्ञान चेतनाका स्वाद पाते हैं उनके ज्ञानसे रागद्वेषका विकार दूर चला गया है वे स्वरूपाचरण चारित्रपर आरूढ़ हैं।

परमात्मप्रकाशमें कहा है—

जो भत्तउ रयणत्तयहं, तसु मुणि लक्खणु एउ। अप्पा मिल्लिवि गुणणिलउ, तासुवि अण्णु ण झेउ ॥१५७॥

भावार्थ-जो निश्चय रत्नत्रयका भक्त है उसका यह लक्षण है कि वह गुण निधान अपने शुद्ध आत्माको छोड़कर और किसीका ध्यान नहीं करता है।

सवैया ३१ सा-जहां शुद्ध ज्ञानकी कला उद्योग दीसे तहां, शुद्धता प्रमाण शुद्ध चारित्रको अंश है ॥ ता कारण ज्ञानी सब जाने ज्ञेय वस्तु मर्म, वैराग्य विलास धर्म, वाको सरवंश है ॥ रागद्वेष मोहकी दशासों भिन्न रहे याते, सर्वथा त्रिकाल कर्म जालसों विध्वंस है ॥ निरुपाधि आतम समाधिमें विराजे ताते, कहिये प्रगट पूरण परम हंस है ॥ ८१ ॥

उपजाति छंद-ज्ञानस्य संचेतनयैव नित्यं प्रकाशते ज्ञानमतीव शुद्धं।
अज्ञानसंचेतनया तु धावन् बोधस्य शुद्धिं निरुणद्धि बंधः ॥ ३१ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ-ज्ञान चेतनाको फल अज्ञान चेतनाको फल कहिजै छे। नित्यं कहतां निरंतरपनै; ज्ञानस्य संचेतनया-रागद्वेष मोहरूप अशुद्ध परिणति बिना शुद्ध जीव स्वरूपको अनुभवरूप इसी जो ज्ञानकी परिणति तिहि करि, अतीव शुद्धं ज्ञानं प्रकाशते एव-अतीव शुद्धं ज्ञानं कहतां सर्वथा निरावरण छे इसो जो केवलज्ञान, प्रकाशते कहतां प्रगट होइ। भावार्थ इसो-जो कारण सदृश कार्य होई तिहितै शुद्ध ज्ञानको अनुभवतां शुद्ध ज्ञानकी प्राप्ति होइ यों घटै छे। एव कहतां योंही छे निहचासों, तु कहतां तथा, अज्ञानसंचेतनया बंधः धावन् बोधस्य शुद्धिं निरुणद्धि-अज्ञानसंचेतनया कहतां रागद्वेष मोह रूप तथा सुख दुःखादि रूप जीवकी अशुद्ध परिणति तिहि करि, बंधः धावन् कहतां ज्ञानावरणादि कर्मबंध अवश्य होतो संतो, बोधस्य शुद्धिं निरुणद्धि कहतां केवलज्ञानकी शुद्धताको रोकै छे। भावार्थ इसो-जो ज्ञान चेतना मोक्षको मार्ग; अज्ञान चेतना संसारको मार्ग॥

भावार्थ-यह है कि शुद्ध ज्ञान स्वभावका अनुभव करना ही मोक्षमार्ग है। इसके विरुद्ध रागद्वेष रूप अशुद्ध भावका अनुभवना बंधका मार्ग है। स्वानुभव ही केवल ज्ञानको प्रकाश करनेवाला है। तत्व० में कहा है-

मुंच सर्वाणि कार्याणि संगं चान्यैश्च संगतिं। भो भव्य शुद्धचिद्रूपलब्धये वांछास्ति ते यदि॥ १४॥

भावार्थ-यदि तू मोक्षको चाहता है तो सर्व कार्योंको व सर्व ममत्वको व सर्व अन्यकी संगतिको छोड़कर एक शुद्ध चैतन्य स्वरूपमें लय हो।

दोहा-ज्ञायक भाव जहां तहां, शुद्ध चरणकी चाल। ताते ज्ञान विराग मिलि, शिव साधे समकाल॥८२॥
यथा अंधके कंध परि, चढे पंगु नर कोय। याके दृग याके चरण, होय पथिक मिलि दोय॥८३॥
जहां ज्ञान क्रिया मिले, तहां मोक्ष मग सोय। वह जाने पदको मरम, वह पदमें थिर होय॥८४॥
ज्ञान जीवकी सजगता, कर्म जीवकूं भूल। ज्ञान मोक्ष अंकूर है, कर्म जगतको मूल।८५॥
ज्ञान चेतनाके जगे, प्रगटे केवल राम। कर्म चेतनामें बसे, कर्म बंध परिणाम॥ ८६॥

आर्या छन्द-कृतकारितानुमननैस्त्रिकालविषयं मनोवचनकायैः।
परिहृत्य कर्म सर्वं परमं नैष्कर्म्यमवलम्बे॥ ३२॥

खण्डान्वय सहित अर्थ-कर्म चेतना रूप कर्म फल चेतनारूप छे जो अशुद्ध परिणति तिहिकै मिटाइवाको अभ्यास करै छे, परमं नैष्कर्म्यं अवलम्बे-कहतां हौं शुद्ध चैतन्य रूप जीव सकल कर्मकी उपाधि तहि रहित इसो म्हारो स्वरूप मूहें स्वानुभव प्रत्यक्षपने आस्वाद आवै छे, कांयो विचार करि, सर्वं कर्म परिहृत्य-कहतां जावंत द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म समस्तको स्वामित्व छोड़ि करि, अशुद्ध परिणतिको व्यौरो, त्रिकालविषयं कहतां एक अशुद्ध परिणति अतीत कालके विकल्प रूप छे जो म्हा इसो कीयो, इसो भोगियो इत्यादि रूप छे, एक अशुद्ध परिणति आगामी कालके विषयरूप छे जो इसो करिस्यो

इसो करतां इसो होइ छे इत्यादि रूप छे, एक अशुद्ध परिणति वर्तमान विषय रूप छे जो हौं देव, हौं राजा, म्हारे इसी सामग्री, म्हाको इसो सुख अथवा दुःख इत्यादि छे। एक इसा फुनि विकल्प छे, जो कृतकारिता अनुमननैः—कृत कहतां जो क्यों आप कीनी होइ हिंसादि क्रिया, कारित कहतां जो अन्य जीवको उपदेश देइ करवाई होई। अनुमननैः कहतां सहज ही कि नहीं कीनी होइ कीया थकी सुख मानिजे तथा एक इसा फुनि विकल्प छे जो मन करि चिंतिजे, वचन करि बोलिजे, कायापने प्रत्यक्षपने कीजे। इसा विकल्पहंको मांहो मांहें फैलावतां गुणचास भेद होहिं छे ते समस्त जीवको स्वरूप नहीं छे। पुद्गल कर्मको उदय थकी छे।

भावार्थ—यहांपर यह है कि ज्ञानी मन, वचन, काय, कृत, कारित, अनुमोदनासे जो कुछ कर्म किया था व कर रहा है व करेगा उस सबसे वैराग्यभाव लाकर एक शुद्धभावका ही ग्रहण करता है। इन विकल्पोंके ४९ भेद इस तरह होंगे १—मनसे किया हो, २—मनसे कराया हो, ३—मनसे अनुमोदना की हो, ४—मनसे किया व कराया हो, ५—मनसे किया व अनुमोदना की हो, ६—मनसे कराया व अनुमोदना की हो, व ७—मनसे किया कराया व अनुमोदना की हो। इस तरह मात्र मन, वचन, कायके भिन्न२ करके २१ भेद होंगे। ऐसे ही मन वचनके द्वारा ७, वचन कायके द्वारा ७, मन व कायके द्वारा ७ ऐसे २१ होंगे फिर मन वचन कायके द्वारा ७ होंगे इस तरह ४९ भंग होंगे, तीन काल सम्बन्धी १४७ भंग होंगे।

चौपाई—जबलग ज्ञान चेतना भारी। तबलग जीव विकल संसारी॥
जब घट ज्ञान चेतना जागी। तब समकिती सहज वैरागी॥ ८७॥
सिद्ध समान रूप निज जाने। पर संयोग भाव परमाने॥
शुद्धातम अनुभौ अभ्यासे। त्रिविध कर्मकी ममता नासे॥ ८८॥

सूतका विचार इस तरह करे छे।

यदहमकार्षं यदहमचीकरं यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासं मनसा च वाचा च कायेन तन्मिथ्या मे दुःकृतमिति।

खण्डान्वय सहित अर्थ—तत् दुःकृतं मे मिथ्या भवतु—तत् दुःकृतं कहतां रागद्वेष मोहरूप अशुद्ध परिणति अथवा ज्ञानावरणादि कर्म पिंड, मे मिथ्या भवतु कहतां स्वरूप ते भ्रष्ट होतें सतै मैं आपो करि अनुभवो सो अज्ञानपनो हुवा सांप्रत इसो अज्ञानपनो जाओ, हौं शुद्ध स्वरूप इसो अनुभव होउ। पापका घना भेद छै त्यों कहिजे छै, यत् अहं अकार्षं—यत् कहतां जो पाप, अहं अकार्षं कहतां आपकीओ होइ, यत् अहं अचीकरं—कहतां जो पाप अन्यको उपदेश देइ कराया होइ, तथा, अन्यं कुर्वंतं समन्वज्ञासं—कहतां सहज

ही कीयो छे अन्य कौनहूं मैं सुख मान्यो होइ, मनसा कहतां मन करि, वाचा कहतां वचन करि, कायेन–कहतां शरीर करि इसो समस्त जीवको स्वरूप न छे तिहितैं हूं तो स्वामी न छूं, इहिको स्वामी तो पुद्गल कर्म छे। इसो सम्यग्दृष्टी जीव अनुभवै छे।

दोहा–ज्ञानवंत अपनी कथा, कहे आपसों आप। मैं मिथ्यात दशा विषैं, कीनैं बहुविध पाप ॥८९॥

सवैया ३१ सा—हिरदे हमारे महा मोहकी विकलताई, ताते हम करुणा न कीनी जीव घातकी ॥ आप पाप कीने औरनिकों उपदेश दीने, हुति अनुमोदना हमारे याही बातकी ॥ मन वच कायामें मगन व्है कमायो कर्म, धाये भ्रम जालमें कहाये हम पातकी ॥ ज्ञानके उदयते हमारी दशा ऐसी भई, जैसे भानु भासत अवस्था होत प्रातकी ॥ ९०॥

उपजाति छन्द–मोहाद्यदहमकार्षं समस्तमपि कर्म तत्प्रतिक्रम्य।

आत्मनि चैतन्यात्मनि निःकर्मणि नित्यमात्मना वर्त्ते ॥ ३३॥

खण्डान्वय सहित अर्थ–अहं आत्मना आत्मनि वर्त्ते–अहं कहतां चेतना मात्र स्वरूप छे जो हूं वस्तु, आत्मना कहतां आपपनै, आत्मनि वर्तें कहतां रागादि अशुद्ध परिणति त्याग करि अपना शुद्ध स्वरूप विषैं अनुभवरूप प्रवर्तूं छूं, किसो छे आत्मा, नित्यं चैतन्यात्मनि–नित्यं कहतां सर्व काल, चैतन्यात्मनि कहतां ज्ञान मात्र स्वरूप छे। और किसो छे, निःकर्मणि–कहतां समस्त कर्मकी उपाधि तहिं रहित छे। कायो करतां इसो छे, तत्समस्तं कर्म प्रतिक्रम्य–कहतां जो आप कीयो होइ कर्म तिहिको प्रतिक्रमण करिके किसा थकी, मोहात् कहतां शुद्ध स्वरूप तहिं भ्रष्ट होइ। यत् अहं अकार्षं–कहतां कर्मके उदय आत्मबुद्धि होते संते।

भावार्थ–पिछले किये हुए कर्मोंका प्रतिक्रमण करके मैं एक अपने शुद्ध स्वरूपमें ही विश्राम करता हूं।

सवैया ३१ सा—ज्ञान भान भासत प्रमाण ज्ञानवन्त कहे, करुणा निधान अमलान मेरा रूप है। कालसौं अतीत कर्म चालसों अभीत जोग, जालसों अजीत जाकी महिमा अनूप है। मोहको विलास यह जगतको वास मैं तो, जगतको शून्य पाप पुण्य अन्ध कूप है ॥ पाप किने किये कोन करे करि है सो कोन, क्रियाको विचार सुपनेकी दोर धूप है ॥ ९१ ॥

वर्तमानकी आलोचना इस तरह करे—

न करोमि न कारयामि न कुर्वंतमन्यं समनुज्ञानामि मनसा वाचा कायेन चेति ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ–न करोमि–कहतां वर्तमानकाल होहि छे जो रागद्वेषरूप अशुद्ध परिणति अथवा ज्ञानावरणादि पुद्गल कर्मबंध तिहिको हौं नहीं करूं छूं। भावार्थ इसो–जो म्हारा स्वामित्वपनो न छे, इसो अनुभवे छे सम्यग्दृष्टी जीव, न कारयामि कहतां अन्यको उपदेश देइ नहीं करायो छूं, अन्यं कुर्वंतं अपि न समनुज्ञानामि–कहतां आपणो

सहज अशुद्धपना रूप परिणमै छे, जो कोई जीव तिहिको हौं सुख नहीं मानौं छौं, मनसा कहतां मन करि, वाचा कहतां वचन करि, कायेन कहतां शरीर करि। सर्वथा वर्तमान कर्मको म्हारे त्याग छै।

दोहा—मैं यों कीनो यों करौं, अब यह मेरो काम। मनवचकायामें बसे, ये मिथ्यात परिणाम ॥९२॥
मनवचकाया कर्मफल, कर्मदशा जडअंग। दर्वित पुद्गल पिंडमें, भावित कर्म तरंग ॥९३॥
ताते आतम धर्मसों, कर्म स्वभाव अपूठ। कौन करावे को करे, कौसर लहै सब झूट ॥९४॥

उपजाति छंद—मोहविलासविजृम्भितमिदमुदयत्कर्म सकलमालोच्य।
आत्मनि चैतन्यात्मनि निःकर्मणि नित्यमात्मना वर्ते ॥ ३४ ॥

खंडान्वय सहित अर्थ—अहं आत्मना आत्मनि नित्यं वर्ते—अहं कहतां हौं, आत्मना कहतां परद्रव्यके विन सहाय आपणे सहाय, आत्मनि कहतां आपणे विषै, वर्ते कहतां सर्वथा उपयोग बुद्धि करि प्रवर्तें छौं; कायोंकरि इदं सकलं कर्म उदयत् आलोच्य—इदं कहतां छतो छे, सकलं कर्म कहतां जावंत अशुद्धपनो अथवा ज्ञानावरणादि कर्म पिंड पुद्गल, उदयत् कहतां वर्तमानकाल आयो छे जो उदय तिहिको, आलोच्य कहतां शुद्ध जीवको स्वरूप नहीं छे इसो विचार करतां तिहिविषै स्वामित्वपनो छोडिकरि। किसो छे कर्म। मोहविलासविजृंभितं—मोह कहतां मिथ्यात्व, तिहिको विलास कहतां प्रभुत्वपनो तिहिंकरि, विजृंभितं कहतां पसर्यो छे किसो छू हूं आत्मा। चैतन्यात्मनि कहतां शुद्ध चेतना मात्र स्वरूप छूं और किसो छूं निःकर्मणि कहतां समस्त कर्मकी उपाधि तहिं रहित छूं।

भावार्थ—वर्तमान कर्म व भावकी आलोचना करके मैं शुद्ध चेतनामय स्वरूपमें विश्राम करता हूं ऐसी भावना ज्ञानी करता है।

दोहा—करणी हित हरणी सदा, मुक्ति वितरणी नांहि। गणी बंध पद्धति विषे, सनी महा दुखमांहि ॥ ९५ ॥

भविष्यकर्मका प्रत्याख्यान करते हैं—

न करिष्यामि न कारयिष्यामि न कुर्वंतमन्यं समनुज्ञास्यामि मनसा वाचा कायेन चेति—

खण्डान्वय सहित अर्थ—न करिष्यामि कहतां आगामी काल विषैं रागादि अशुद्ध परिणामको न करिस्यों, न कारयिष्यामि कहतां न कराइस्यों, अन्यं कुर्वंतं समनुज्ञास्यामि - अन्यं कुर्वंतं कहतां सहज ही अशुद्ध परिणतिको करै छे जो कोई जीव तिहिको, न समनुज्ञास्यामि कहतां अनुमोदन नहीं करूं छू. मनसा कहतां मनकरि, वाचा कहतां वचनकरि, कायेन कहतां शरीर करि।

सवैया ३१ सा—करणीके धरणीमें महा मोह राजा वसे, करणी अज्ञान भाव राक्षसकी पुरी है॥ करणी करम काया पुद्गलकी प्रति छाया, करणी प्रगट माया मिसरीकी छुरी है॥ करणीके

जालमें उरझि रह्यो चिदानंद, करणीकी उंट ज्ञानभान दुति दुरी है ॥ आचारज कहे करणीसों व्यवहारी जीव, करणी सदैव निहचै स्वरूप बुरी है ॥ ९६ ॥

उपजाति छंद—प्रत्याख्याय भविष्यत्कर्म समस्तं निरस्तसम्मोहः।
आत्मनि चैतन्यात्मनि निःकर्मणि नित्यमात्मना वर्त्ते ॥ १८ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—निरस्तसंमोहः आत्मना आत्मनि वर्त्ते—निरस्त कहतां गयो छे, संमोहः कहतां मिथ्यात्वरूप अशुद्ध परिणति, जिहकी इसो छे। जो हौं आत्मा कहतां आपणो ज्ञानके बल करि, आत्मनि कहतां आपणा स्वरूप विषै, नित्यं वर्ते कहतां निरन्तरपने अनुभवरूप प्रवर्तौं छौं। किसा छे आत्मा चैतन्यात्मनि कहतां शुद्ध चेतना मात्र छे, और किसो छे, निःकर्मणि—कहतां समस्त कर्मकी उपाधि तहिं रहित छे। कांयो करि आत्मा विषै प्रवर्तै छे, भविष्यत् समस्तं कर्म प्रत्याख्याय—भविष्यत् कहतां आगामि काल सम्बन्धी, समस्तं कर्म कहतां जावंत रागादि अशुद्ध विकल्प, प्रत्याख्याय कहतां शुद्ध स्वरूप तहिं अन्य छे। इसो जानि अंगीकार रूप स्वामित्वको छोड़ करि।

भावार्थ यहां यह है कि भविष्यमें होनेवाले अशुद्ध भावोंका प्रत्याख्यान करके मैं शुद्ध आत्मस्वरूपमें विश्राम करता हूं।

चौपाई—मूवा मोहकी परणति फैली। ताते करम चेतना मैली॥
ज्ञान होत हम समझे येती। जीव सदीव भिन्न परसेती॥ ९७॥

उपजाति छन्द—समस्तमित्येवमपास्य कर्म त्रैकालिकं शुद्धनयावलम्बी।
विलीनमोहो रहितं विकारैश्चिन्मात्रमात्मानमथाऽवलम्बे ॥ १९ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—अथ विलीनमोहः चिन्मात्रं आत्मानं अवलम्बे—अथ कहतां अशुद्ध परिणतिके मिटे उपरांत, विलीनमोहः कहतां मूल तहिं मिट्यो छे मिथ्यात्व परिणाम जिहिको इसो हौं, चिन्मात्रं आत्मानं अवलम्बे कहतां ज्ञान स्वरूप जीव वस्तुको निरंतरपने आस्वादौं छौं। किसो आस्वादौं छौं, विकारैः रहितं—कहतां रागद्वेष मोह रूप अशुद्ध परिणति तिहिते रहित छे, किसो छौं हौं, शुद्धनयावलम्बी—शुद्ध नय कहतां शुद्ध जीव वस्तु तिहिको, अवलम्बी आलम्ब्यो छौं, इसो छे। कांयो करता इसौ छे, इत्येवं समस्तं कर्म अपास्य—इत्येवं कहतां पूर्वोक्त प्रकार समस्तं कर्म कहतां जावंत छे ज्ञानावरणादि द्रव्य कर्म रागादि भावकर्म, तिहि तहिं जीव तहिं भिन्न जानि करि, स्वीकारको त्याग करि, किसो छे रागादि कर्म त्रैकालिकं कहतां अतीत अनागत वर्तमानकाल सम्बन्धी छे।

भावार्थ—ज्ञानी यही अनुभव करता है, मैं तीन कालकी सर्व रागादि उपाधिसे भिन्न हूं, मैं तो मात्र अपने निर्विकार शुद्ध स्वरूपका ही अनुभव करता हूं।

दोहा—जीव अनादि स्वरूप मम, कर्म रहित निरुपाधि। अविनाशी अशरण सदा, सुखमय सिद्ध समाधि ॥९८

चौपाई—मैं त्रिकाल करणीसों न्यारा । चिदविलास पद जगत उज्यारा ॥
राग विरोध मोह मम नांही । मेरो अवलम्बन मुझमांही ॥ ९९ ॥

छन्द—विगलन्तु कर्मविषतरुफलानि मम भुक्तिमन्तरेणैव ।
संचेतयेऽहमचलं चैतन्यात्मानमात्मानं ॥ ३७ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—अहं आत्मानं संचेतये—कहतां हौं शुद्ध स्वरूप कहुं आप कहुं आस्वादौ छौं। किसो छै आत्मा, चैतन्यात्मानं कहतां ज्ञान स्वरूप मात्र छै और किसो छै, अचलं कहतां आपणे स्वरूप तहि स्खलित नहीं छै, अनुभवको फल कहिजै छै। कर्मविषतरुफलानि मम भुक्तिं अंतरेण एव विगलंतु—कर्म कहतां ज्ञानावरणादि पुद्गल पिंड इसो छे, विषतरु कहतां विषको वृक्ष निहितै चैतन्य प्राणको घातक छे। तिहिका फलानि कहतां उदयकी सामग्री, मम भुक्तिं अन्तरेण एव कहतां म्हारा भोगइवा विना ही, विगलंतु कहतां मूल तहि सत्ताको नाश होउ। भावार्थ इसो—जो कर्मको उदय छे सुख अथवा दुःख तिहिको नाम छे कर्मफल चेतना तिहितै भिन्न स्वरूप आत्मा इसो जानि सम्यग्दृष्टी जीव अनुभव करै छे।

भावार्थ—ज्ञानी अपने आत्माको कर्मफलोंसे भिन्न अनुभव करता है।

२३ सा—सम्यकवन्त कहे अपने गुण, मैं नित राग विरोधसों रीतो ॥ मैं करतूति करूं निरवंछक, मो ये विषै रस लागत तीतो ॥ शुद्ध स्वचेतनको अनुभौ करि, मैं जग मोह महा भट जीतो ॥ मोक्ष समीप भयो अब सो कहु, काल अनन्त इही विधि बीतो ॥ १०० ॥

वसंततिलका छन्द—निःशेषकर्म्मफलसंन्यसनात्मनैवं सर्वक्रियान्तरविहारनिवृत्तवृत्तेः ।
चैतन्यलक्ष्म भजतो भृशमात्मतत्त्वं कालावलीयमचलस्य वहत्वनन्ता ॥३८॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—मम एवं अनंता कालावली वहतु—मम कहतां मोकहुं, एवं कहतां कर्म चेतना, कर्मफल चेतना तहि रहितपने शुद्ध ज्ञान चेतना विराजमान पनै, अनंता कालावली वहतु कहतां अनंतकाल योंही पूरो होउ। भावार्थ इसो—जो कर्मचेतना कर्मफल चेतना हेय, ज्ञान चेतना उपादेय। किसो छौ हौं। सर्वक्रियान्तरविहारनिवृत्त-वृत्तेः—सर्व कहतां अनंत इसी छे, क्रियांतर कहतां शुद्ध चेतना तहि अन्य कर्मके उदय अशुद्ध परिणति तिहि विषै, विहार कहतां विभावरूप परिणवै छे जीव तिहितहि निवृत्त कहतां रहितपनो इसो छे वृत्तेः कहतां ज्ञानचेतना मात्र प्रवृत्ति जिहिकी इसो छे। किसा-थकी इसो छौ। निःशेषकर्मफलसंन्यसनात्—निःशेष कहतां समस्त, कर्म कहतां ज्ञाना-वरणादि त्यांहको, फल कहतां संसारको सुख दुःख तिहिको, संन्यसनात् कहतां स्वामित्वप-नाको त्याग थकी। और किसो छौं। भृशं आत्मतत्त्वं भजतः—भृशं कहतां निरन्तरपने, आत्मतत्त्वं कहतां शुद्ध चैतन्य वस्तु, भजतः कहतां अनुभव छे जिहिको इसो छौं। किसो छे

आत्मतत्वं चैतन्यलक्ष्य–कहतां शुद्ध ज्ञानस्वरूप छे, और किसो छे, अचलस्य कहतां आगामि अनंतकाल स्वरूप तहि अमिट छे।

भावार्थ–ज्ञानी ऐसी भावना करता है कि मैं सर्व सांसारिक फलोंके स्वामित्वसे रहित होकर एक शुद्ध आत्मीक तत्वके अनुभवमें ही लीन रहते हुए अनन्त काल विताऊं।

योगसारमें सन्यासको कहते हैं—

जो परियाणइ अप्प परु सो परिचयहि णिभन्तु। सो सण्णास मुणेहि तुहुं केवलणाणि वुत्तु ॥८१॥

भावार्थ–जो निश्चयरूप होकर भ्रांति छोड़कर परको छोड़ करि एक अपने आत्माको ही अनुभव करता है सो ही सन्यास जानो ऐसा केवलज्ञानीने कहा है।

दोहा–कहै विचक्षण मैं रहूं, सदा ज्ञान रस राचि। शुद्धातम अनुभूतिसौं, खलित न होहु कदाचि ॥१०१॥

पूर्वकर्मविष तरु भये, उदै भोग फलफूल। मैं इनको नहिं भोगता, सहज होहु निर्मूल ॥१०२॥

वसंततिलका–यः पूर्वभावकृतकर्मविषद्रुमाणां भुंक्ते फलानि न खलु स्वत एव तृप्तः।

आपातकालरमणीयमुदर्करम्यं निःकर्मशर्ममयमेति दशान्तरं सः ॥३९॥

खण्डान्वय सहित अर्थ–यः खलु पूर्वभावकृतकर्मविषद्रुमाणां फलानि न भुंक्ते–यः कहतां जो कोई सम्यग्दृष्टी जीव, खलु कहतां सम्यक्त उपजतां विना मिथ्या भाव त्यांह करि, कृत कहतां उपार्ज्या छे, कर्म कहतां ज्ञानावरणादि पुद्गलको पिंड इसो विषद्रुम कहतां चैतन्य प्राणघातक विषको वृक्ष त्यांहका, फलानि कहतां संसार सम्बन्धी सुख दुःख त्यांहको न भुंक्ते कहतां नहीं भोगवै छे। भावार्थ इसो–जो सुख दुःखको ज्ञायक मात्र छे, परन्तु परद्रव्यरूप जानि करि रंजक नहीं छे। किसो छे सम्यग्दृष्टि जीव, स्वतः एव तृप्तः–कहतां शुद्ध स्वरूपके अनुभवतां होइ छे अतींद्रिय सुख तिहिकरि, तृप्तः कहतां समाधान रूप छे, सः दशांतरं एति–सः कहतां सो सम्यग्दृष्टि जीव, दशांतरं कहतां निःकर्म अवस्था निर्वाणपद तिहिको, एति कहतां पावै छे किसो छे दशांतर। आपातकालरमणीयं कहतां वर्तमान काल अनंत सुख विराजमान छे। उदर्करम्यं कहतां आगामि अनंतकाल सुखरूप छे। और किसो छे अवस्थांतर, निःकर्मशर्ममयं कहतां सकल कर्मको विनाश होतां प्रगट होइ छे द्रव्यको सहज भूत अतीन्द्रिय अनंत सुख तिहिमय छे तिहिसो एक सत्तारूप छे।

भावार्थ–जो कोई ज्ञानी कर्मोंके फलोंको विषका वृक्ष समझकर उनमें रंजायमान नहीं होता है किन्तु मात्र एक अपने ही शुद्ध स्वभावके अनुभवमें संतोषित रहता है वह शीघ्र अनंतसुखमें सदा रहनेवाली मुक्तिको पालेता है। योगसारमें कहा है–

सव्व अचेयण जाणि जिय एक सचेयण सारु। जो जाणेविण परममुणि लहु पावइ भवपारु ॥३६॥

भावार्थ–सर्वको अचेतन जानकर मात्र एक जीवको ही शुद्ध चेतनामय सार पदार्थ जानकर जो परम मुनि अनुभव करते हैं वे ही शीघ्र संसारसे पार होजाते हैं।

दोहा—जो पूरवकृत कर्मफल, रुचिसे भुंजे नांहि। मगन रहे आठो प्रहर, शुद्धातम पद मांहि ॥१०३॥
सो बुध कर्मदशा रहित, पावै मोक्ष तुरंत। भुंजे परम समाधि सुख, आगम काल अनंत ॥१०४॥

स्रग्धरा छन्द—अत्यन्तं भावयित्वा विरतमविरतं कर्मणस्तत्फलाच्च
प्रस्पष्टं नाटयित्वा प्रलयनमखिलाज्ञानसंचेतनायाः।
पूर्णं कृत्वा स्वभावं स्वरसपरिगतं ज्ञानसंचेतनां स्वां
सानन्दं नाटयन्तः प्रशमरसमितः सर्वकालं पिबन्तु ॥ ४० ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—इतः प्रशमरसं सर्वकालं पिबंतु—इतः कहतां इहांतहि लेइकरि, सर्वकालं कहतां आगामि अनंतकाल पर्यन्त, प्रशमरसं पिबंतु—अतीन्द्रिय सुखको आस्वादहु। ते कौन। स्वां ज्ञानसंचेतनां सानंदं नाटयन्तः—स्वां कहतां आप सम्बन्धी छे जो इसी, ज्ञानसंचेतनां कहतां शुद्ध ज्ञानमात्र परिणति तिहिको, सानंदं नाटयन्तः कहतां अतींद्रिय सुख सहित ज्ञान चेतना रूप परिणवै छें इसा छे जो जीव कायोकरि, स्वभावं पूर्णं कृत्वा—स्वभावं कहतां केवलज्ञान तिहिकरि, पूर्णं कृत्वा कहतां आवर्ण सेती थो सो निरावरण कीयो। किसो छे स्वभाव, स्वरसपरिगतं कहतां चेतना रसको निधान छे। और कायों करि, कर्मणः तत्फलात् अत्यंतं विरतिं भावयित्वा—कर्मणः कहतां ज्ञानावरणादि कर्म थकी, च कहतां और, तत्फलम् कहतां कर्मको फल सुख दुःख तिहि थकी, अत्यन्तं कहतां अत्यर्थपनै, विरतिं कहतां शुद्ध स्वरूप तहि भिन्न छे। इसो अनुभव होतां, स्वामित्वपनाको त्याग, भावयित्वा कहतां इसो सर्वथा निहचौ करि, अविरतं कहतां यथा एक समय मात्र खण्ड न होइ। तथा सर्वकाल और कायो करि, अखिलं अज्ञानसंचेतनायाः प्रलयनं प्रस्पष्टं नाटयित्वा—कहतां सर्व मोह रागद्वेष अशुद्ध परिणति तिहिको भलेप्रकार विनाश करि। भावार्थ इसो—जो मोह रागद्वेष परिणति विनसै छे, शुद्ध ज्ञानचेतना प्रगट होइ छे। अतीन्द्रिय सुखरूप जीव परिणवै छे। एतो कार्य जब होइ छे तब एक ही बार होइ छे।

भावार्थ—जो ज्ञानी कर्मचेतना व कर्मफल चेतना दोनों दूरकर मात्र अपनी शुद्ध ज्ञान चेतनामें रमण करता है वह अपना पूर्ण केवलज्ञान स्वभाव पाकर फिर सदाके लिये आनंदामृतका पान किया करता है। योगसारमें कहते हैं—

वज्जिय सयलवियप्पयइं परमसमाहि लहंति। जं वेददि साणंद फुडु सो सिवसुक्ख भणंति ॥९६॥

भावार्थ—जो सर्व विकल्पोंको त्यागकर परम समाधिमें लय होजाते हैं वे उस समय जिस आनंदको भोगते हैं वही मोक्षका सुख है।

छप्पै—जो पूरव कृतकर्म, विरख विष फल नहि भुंजे। जोग जुगति कारिज करंत, ममता न प्रयुंजे। राग विरोध निरोधि, संग विकलप सब छंडे। शुद्धातम अनुभौ अभ्यास, शिव नाटक मण्डे। जो ज्ञानवन्त इह मग चलत, पूरण ह्वै केवल लहे। सो परम अतीन्द्रिय सुखविषें, मगन रूप संतत रहे ॥१०५॥

उपजाति छन्द—इतः पदार्थप्रथनावगुण्ठनाद्विना कृतेरेकमनाकुलं ज्वलत्।
समस्तवस्तुव्यतिरेकनिश्चयाद्विवेचितं ज्ञानमिहावतिष्ठते ॥ ४१ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—इतः इह ज्ञानं अवतिष्ठते—इतः कहतां अज्ञान चेतनाके विनाश होतां उपरांत, इह कहतां आगामि सर्वकाल, ज्ञानं कहतां शुद्ध ज्ञान मात्र जीव वस्तु, अवतिष्ठते कहतां विराजमान प्रवर्ते छे। किसो छे ज्ञान, विवेचितं कहतां सर्वकाल समस्त परद्रव्यते भिन्न छे, किना थकी इसो जान्यो। समस्तवस्तुव्यतिरेकनिश्चयात्—समस्त वस्तु कहतां जावंत परद्रव्यकी उपाधि तिहितहि, व्यतिरेक कहतां सर्वथा भिन्नपनो इसो छे, निश्चयात् कहतां अवश्य द्रव्यकी शक्ति तिहथकी, किसो छे ज्ञान। एकं कहतां समस्त भेद विकल्प तहि रहित छे। और किसो छे, अनाकुलं कहतां अनाकुलत्व लक्षण छे अतीन्द्रिय सुख तिहिकरि विराजमान छे। और किसो छे। ज्वलत् कहतां सर्वकाल प्रकाशमान छे,-इसो क्यों छे। पदार्थप्रथनावगुंठनात् विना—पदार्थ कहतां जावंत विषय त्याहंथकी प्रथना कहतां विस्तरताको व्योरो। पंच वर्ण, पंच रस, दो गंध, अष्ट स्पर्श, शरीर, मन, वचन, सुख दुःख इत्यादि तिहिको, अवगुंठनात् कहतां मालारूप गूंथिवी तिहि विना कहतां सर्व माला तहि भिन्न छे जीव वस्तु। किसी छे विषय माला, कृतेः कहतां पुद्गल द्रव्यको पर्यायरूप छे।

भावार्थ—जब ज्ञानी स्वस्वरूपमें ही ठहर जाता है तब अनेक प्रकारके विकल्पोंकी माला नहीं रहती है क्योंकि ये सब भाव क्षणिक हैं व कर्मोदय जन्य है उस समय सर्वसे भिन्न निज आत्माका आनंद लेता हुआ रहता है अर्थात् सच्ची सामायिकमें पहुंच जाता है। योगसारमें कहते हैं—

रायरोस बे परिहरिवि जो समभाव मुणेइ। सो सामइउ जाणि फुडु केवलि एम भणेइ ॥ ९९ ॥

भावार्थ—जो रागद्वेषको त्यागकर मात्र एक समभावमें अनुभवशील होजाते हैं उसीको केवलज्ञानियोंने सामायिक कहा है।

सवैया ३१ सा—निरभै निराकुल निगम वेद निरभेद, जाके परकाशमें जगत माइयतु है ॥ रूप रस गन्ध फास पुदगलको विलास, तासों उदवस जाको जस गाइयतु है ॥ विग्रहसों विरत परिग्रहसों न्यारो सदा, जामें जोग निग्रहको चिन्ह पाइयतु है ॥ सो है ज्ञान परमाण चेतन निधान ताहि, अविनाशी ईश मानी सीस नाइयतु है ॥ १०६ ॥

शार्दूलविक्रीडित छन्द—अन्येभ्यो व्यतिरिक्तमात्मनियतं बिभ्रत्पृथग्वस्तुता-
मादानोज्झनशून्यमेतदमलं ज्ञानं तथावस्थितम्।
मध्याद्यन्तविभागमुक्तसहजस्फारप्रभाभासुरः
शुद्धज्ञानघनो यथास्य महिमा नित्योदितस्तिष्ठति ॥ ४२ ॥

खण्डान्वयसहित अर्थ—एतत् ज्ञानं तथा अवस्थितं यथा अस्य महिमा नित्योदितः तिष्ठति—एतत् ज्ञानं कहतां शुद्ध ज्ञान, तथा अवस्थितं कहतां तिसो प्रगट हूओ, यथा अस्य महिमा कहतां ज्यों शुद्ध ज्ञानको प्रकाश, नित्योदितः तिष्ठति कहतां आगामि अनन्तकाल पर्यंत अविनश्वर ज्यों छे त्यों ही रहिस्यै, किसो छे ज्ञान, अमलं कहतां ज्ञानावरण कर्ममल थकी रहित छे। और किसो छे ज्ञान, आदानोज्झनशून्यं—आदान कहतां परद्रव्यको ग्रहण, उज्झन कहतां परद्रव्यको त्याग तिहि तहि, शून्यं कहतां रहित और किसो छे। ज्ञान, पृथक् वस्तुतां बिभ्रत्—कहतां सकल परद्रव्य तहि भिन्न सत्तारूप छे। और किसो छे, अन्येभ्यः व्यतिरिक्तं-कहतां कर्मके उदय थकी छे, जावंत भाव तिह तहि भिन्न छे। आत्मनियतं कहतां आपने स्वरूप तहि अमिट छे। किसी छे ज्ञानकी महिमा, मध्याद्यंत-विभागमुक्तसहजस्फारप्रभाभासुरः—मध्य कहतां वर्तमानकाल, आदि कहतां पहिला, अन्त कहतां आगामि इसो, विभाग कहतां भेद तिहितै, मुक्ति कहतां रहित छे, इसो सहज स्वभाव छे। स्फारप्रभा कहतां अनन्तज्ञान शक्ति तिहि करि, भासुरः कहतां साक्षात् प्रकाशमान छे। और किसा छे, शुद्धज्ञानघनः—कहतां चेतनाको समूह छे।

भावार्थ—ज्ञानी जब अपने आत्मस्वभावमें तन्मय होजाता है तब वहां ग्रहण व त्यागके विकल्प नहीं रहते हैं, रागद्वेष मोहका कहीं पता नहीं चलता है, अविनाशी महिमाको लिये हुए शुद्ध ज्ञान झलक जाता है। फिर वह शुद्ध आत्मा अनंतकाल ऐसा ही बना रहता है।

योगसारमें कहते हैं—

इच्छारहिउ तवं करहि अप्पा अप्प मुणेहि। तउ लहु पावइ परमगई पुण संसार ण एहि ॥२३॥

भावार्थ—जो ज्ञानी सर्व इच्छाको त्याग कर तप करते हैं तथा आत्माके द्वारा आत्माका अनुभव करते हैं, वे शीघ्र ही परमगतिको पालेते हैं। फिर उनका भ्रमण संसारमें नहीं रहता है।

३१ सा—जैसे निरभेदरूप निहचै अतीत हुतो, तैसे निरभेद अब भेद कोन कहेगो॥ दीसे कर्म रहित सहित सुख समाधान, पायो निज थान फिर बाहिर न वहेगो ॥ कबहूं कदापि अपनो स्वभाव त्यागि करि, राग रस राचिके न पर वस्तु गहेगो ॥ अमलान ज्ञान विद्यमान परगट भयो, या ही भांति आगामि अनन्तकाल रहेगो॥ १०७ ॥

छंद—उन्मुक्तमुन्मोच्यमशेषतस्तत्तथात्तमादेयमशेषतस्तत्।
यदात्मनः संहृतसर्वशक्तेः पूर्णस्य सन्धारणमात्मनीह ॥ ४३ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—यत् आत्मनः इह आत्मनि संधारणं—यत् कहतां जो, आत्मनः कहतां आपणा स्वरूप विषै, संधारणं कहतां स्थिर हूओ, तत् कहतां एतावन्मात्र, समस्तं उन्मोच्यं उन्मुक्तं—कहतां जावंत हेय थकी छोड़वै थे सो छूटी, अशेषतः कहतां

किछू छोडिवा माहै बाकी नहीं रह्यो–तथा तत् आदेयं अशेषतः आत्तं–तथा तेही प्रकार, तत् आदेयं कहतां जो कछु ग्रहिवे होतो, अशेषतः आत्तं कहतां सो समस्त ग्रह्यो। भावार्थ इसो–जो शुद्ध स्वरूपको अनुभव सर्व कार्य सिद्धि, किसो छे आत्मा, संहृतसर्वशक्तेः संहृत कहतां विभाव रूप परिणवे थी सोई हुई छे, स्वभावरूप इसो छे, सर्वशक्ति कहतां अनंतगुण जिहिका इसो छे। और किसो छे। पूर्णस्य कहतां जिसो थो तिसो प्रगट हूओ।

भावार्थ–जिसने अपना उपयोग अपने अनंतगुण समूह रूप आत्माके स्वरूपमें जोड़ दिया, जहां आत्माके सिवाय अन्य कोई ध्येय नहीं रहा, उसकी अपेक्षा जो कुछ छूटने योग्य था सो सब छूटा और जो कुछ ग्रहण योग्य था सो सब ग्रहणमें आगया। अब न कुछ लेना है न कुछ छोड़ना है। परमात्मप्रकाशमें कहा है–

जे रयणत्तउ णिम्मलउ, णाणिय अप्पु भणंति, ते आराहय सिवपयहं, णियअप्पा झायंति ॥ १५८ ॥

भावार्थ–जो कोई रत्नत्रयमई, निर्मल, ज्ञानस्वरूप आत्माका ही आराधन करता है वही मोक्षका आराधक है।

३१ स०–जबहीते चेतन विभावसों उलटी आप, समे पाय अपनो स्वभाव गहि लीनो है।
तबहीते जो जो लेने योग्य सो सो सब लीनो, जो जो त्याग योग्य सो सो सब छांडि दीनो
है॥ लेवेको न रही ठोर त्यागवेको नाहि और, वाकी कहां उबर्योजु कारज नवीनो है॥ संग-
त्यागि, अंगत्यागि, वचन तरंग त्यागि, मन त्यागि बुद्धि त्यागि आपा शुद्ध कीनो है ॥ १०८॥

छन्द–एवं ज्ञानस्य शुद्धस्य देह एव न विद्यते।
ततो देहमयं ज्ञातुर्न लिङ्गं मोक्षकारणम् ॥ ४३ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ–ततः देहमयं लिंगं ज्ञातुः मोक्षकारणं न ततः कहतां तिहि कारण तहि, देहमयं लिंग कहतां द्रव्य क्रिया रूप जतिपनो अथवा गृहस्थपनो, ज्ञातुः कहतां जीवको, मोक्षकारणं न–कहतां सकल कर्मक्षय लक्षण मोक्षको कारण तो न छे, किसा थकी, जिहिते, एवं शुद्धस्य ज्ञानस्य कहतां पूर्वोक्त प्रकार साध्यो छे जो शुद्ध स्वरूप जीव, तिहिको, देह एव न विद्यते–कहतां शरीर छै सो फुनि जीवको स्वरूप नहीं छे। भावार्थ इसो–जो कोई मिथ्यादृष्टी जीव द्रव्य क्रियाको मोक्षको कारण मानै छे ते समझाया।

भावार्थ–यहां यह बताया है कि मोक्षमार्ग निश्चयसे आत्माश्रित है। केवल देहका भेष मोक्षका कारण नहीं है। शुद्धात्मामें रमण करना ही मोक्षका साधन है। भावलिंग मोक्षमार्ग है द्रव्यलिंग नहीं। आत्मा देहसे भिन्न है, तब आत्माके लिये देहका भेष कुछ मर्यो-जनीय नहीं है। बाहरी भेष आदि क्रिया निमित्त कारण मात्र है। मूल कारण तो भावोंकी शुद्धि है।

दोहा-शुद्ध ज्ञानके देह नहिं, मुद्रा भेष न कोय। ताते कारण मोक्षको, द्रव्यलिंग नहिं होय ॥११०॥
द्रव्यलिंग न्यारो प्रगट, कला वचन विज्ञान। अष्ट रिद्धि अष्ट सिद्धि, एहू होइ न ज्ञान ॥११०॥

सवैया ३१ सा—भेषमें न ज्ञान नहिं ज्ञान गुरु वर्तनमें, मंत्र जंत्र तंत्रमें न ज्ञानकी कहानी है ॥ ग्रन्थमें न ज्ञान नहीं ज्ञान कवि चातुरीमें, बातनिमें ज्ञान नहीं ज्ञान कहा बानी है ॥ ताते भेष गुरुता कवित ग्रन्थ मंत्र बात, इनीते अतीव ज्ञान चेतना निशानी है ॥ ज्ञानहीमें ज्ञान नहीं ज्ञान और ठौर कहु जाके घट ज्ञान सोही ज्ञानकी निदानी है ॥ १११ ॥

३१ सा—भेष धरि लोकनिको वंचे सो धरम ठग, गुरु सो कहावें गुरुवाई जाके चहिये ॥ मंत्र तंत्र साधक कहावे गुणी जादुगीर, पंडित कहावे पंडिताई जामें लहिये ॥ कवित्तकी कलामें प्रवीण सो कहावे कवि, बात कहि जाने सो पवारगीर कहिये ॥ एते सब विषेके भिकारी माया- धारी जीव, इनको विलोकिके दयालरूप रहिये ॥ ११२ ॥

छन्द—दर्शनज्ञानचारित्रत्रयात्मा तत्त्वमात्मनः।
एक एव सदा सेव्यो मोक्षमार्गो मुमुक्षुणा ॥ ४५ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—मुमुक्षुणा एक एव मोक्षमार्गः सदा सेव्यः—मुमुक्षुणा कहतां मोक्षको उपादेय अनुभवै छे इसा जो पुरुष तेने, एक एव कहतां शुद्ध स्वरूपको अनुभव, मोक्षमार्ग कहतां सकल कर्मको विनाशको कारण छे इसो जानि, सदा सेव्यः कहतां निरंतरपने अनुभव करिवो योग्य छे। सो मोक्षमार्ग कौन, आत्मनः तत्वं कहतां शुद्ध जीवको स्वरूप छे, और किसो छे आत्मतत्व, दर्शनज्ञानचारित्रत्रयात्मा—कहतां सम्य- ग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यग्चारित्र सोई छे तीन स्वरूपको एक सत्ता आत्मा जिहिको इसो छे।

भावार्थ—मोक्षका मार्ग अभेद रत्नत्रयमई एक निज आत्मा है। मोक्षको जो चाहते हैं उनको सर्व विकल्प व राग व अहंकार व भेषका गर्व छोड़करि व निश्चित होकर एक शुद्ध आत्माका ही अनुभव करना योग्य है। योगसारमें कहते हैं—

वयतवसंजममूलगुण मूढह मोक्ख णिवुत्तु। जाम ण जाणइ इक्क परु सुद्धउभावपवित्तु ॥ २९ ॥

भावार्थ—मूढ़ लोग व्यवहार व्रत, तथा संयम, व मूलगुणको ही मोक्षमार्ग कहते हैं परंतु ये सब कुछ मोक्षमार्ग नहीं होसक्ते, जबतक एक शुद्ध पवित्र व उत्कृष्ट आत्माको अनुभव न किया जावे।

दोहा—जो दयालता भाव सो, प्रगट ज्ञानको अंग। पै तथापि अनुभौ दशा, वरते विगत तरंग ॥११३॥
दर्शन ज्ञान चरण दशा, करे एक जो कोई। स्थिर व्है साधे मोक्षमग, सुधी अनुभवी सोई ॥११४॥

शार्दूलविक्रीडित छन्द—एको मोक्षपथो य एष नियतो दृग्ज्ञप्तिवृत्त्यात्मक-
स्तत्रैव स्थितिमेति यस्तमनिशं ध्यायेच्च तं चेतति।
तस्मिन्नेव निरन्तरं विहरति द्रव्यान्तराण्यस्पृशन्
सोऽवश्यं समयस्य सारमचिरान्नित्योदयं विन्दति ॥ ४६ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—स नित्योदयं समयस्य सारं अचिरात् अवश्यं विंदति—स कहतां इसो छे जो सम्यग्दृष्टि जीव। नित्योदयं कहतां नित्य उदयरूप, समयस्य सारं कहतां सकल कर्मको विनाश करि प्रगट हूओ छे जो शुद्ध चैतन्य मात्र तिहिको, अचिरात् कहतां अति ही थोरा काल मांहे, अवश्यं विंदति कहतां सर्वथा आस्वाद करै छे। भावार्थ इसो जो निर्वाण पदको प्राप्त होई। किसो छे। यः तत्र एव स्थितिं एति—यः कहतां जो सम्यग्दृष्टि जीव, तत्र कहतां शुद्ध चैतन्य मात्र वस्तु विषै, एव कहतां एकाग्र होइ करि, स्थितिं एति कहतां स्थिरताको करै छे। च तं अनिशं ध्यायेत् च कहतां तथा, तं कहतां शुद्ध स्वरूपको अनिशं ध्यायेत् कहतां निरंतरपनै अनुभवै छे, च तं चेतति—कहतां बारंवार तिहि शुद्ध स्वरूपको स्मरण करै छे, च कहतां और, तस्मिन् एव निरंतरं विहरति—तस्मिन् कहतां शुद्ध चिद्रूप विषै, एव कहतां एकाग्र होई करि, निरंतरं विहरति कहतां अखंडधारा प्रवाह रूप प्रवर्तै छे। किसो होतो संतो, द्रव्यांतराणि अस्पृशन्—कहतां जावंत कर्मके उदय तहि नानाप्रकार अशुद्ध परिणतिको सर्वथा छोड़ते होतो। सो चिद्रूप कौन छे। यः एष दृग्ज्ञप्तिवृत्तात्मकः—यः एषः जो यह ज्ञानको प्रत्यक्ष छे। दृग् कहतां दर्शन, ज्ञप्ति कहतां ज्ञान, वृत्त कहतां चारित्र सोई छे: आत्मा कहतां सर्वस्व जिहिको इसो छे, और किसो छे। मोक्षपथः—कहतां जिहिके शुद्ध स्वरूप परिणवतां सकल कर्म क्षय होहि छे। और किसो छे। एकः कहतां समस्त विकल्प तहि रहित छे, और किसो छे, नियतं—कहतां द्रव्यार्थिक दृष्टि देखतां जिसो छे तिसो छे तिहितै हीन रूप नहीं छे, अधिक नहीं छै।

भावार्थ—जो एक अपने ही शुद्ध आत्माको ध्याता है, स्मरण करता है, अनुभव करता है वही शीघ्र नित्य उदयरूप परमात्मपदको पाता है। शुद्ध आत्माका ध्यान ही निश्चय रत्नत्रयमई मोक्षमार्ग है। इसके सिवाय और कोई मार्ग हो नहीं सक्ता। यही सर्व विकल्प रहित मात्र स्वानुभवगम्य है। तत्व०में कहा है—

शुद्धे स्वे चित्स्वरूपे या स्थितिरत्यन्तनिर्मला। तच्चारित्रं परं विद्धि निश्चयात् कर्मनाशकृत् ॥१८।१८॥

भावार्थ—जो शुद्ध निज आत्माके स्वरूपमें निर्मलताके साथ स्थिर होना है वही निश्चयसे सम्यग्चारित्र है, वही कर्मोंका नाश करनेवाला है।

सवैया ३१ सा—कोई दृग ज्ञान चरणातममें बैठि ठौर, भयो निरदोष पर वस्तुको न परसे ॥ शुद्धता विचारे ध्यावे शुद्धतासे केलि करे, शुद्धतामें थिर व्है अमृत धारा बरसे ॥ त्यागि तन कष्ट व्है सपष्ट अष्ट करमको, करि थान भ्रष्ट नष्ट करे और करसे ॥ सोई विकलप विजय अलप काल मांहि, त्यागि भौ विधान निरवाण पद दरसे ॥ ११५ ॥

दोहा—गुण पर्यायमें दृष्टि न दीजे। निर्विकल्प अनुभव रस पीजे ॥
आप समाइ आपमें लीजे। तनुपा मेटि अपनपो कीजे ॥ ११६ ॥

दोहा—तज विभाव हूजे मगन, शुद्धातम पद मांहि । एक मोक्षमारग यहै, और दूसरो नांहि ॥११७॥

शार्दूलविक्रीडित छन्द—ये त्वेनं परिहृत्य संवृतिपथप्रस्थापितेनात्मना
लिङ्गे द्रव्यमये वहन्ति ममतां तत्त्वावबोधच्युताः ।
नित्योद्योतमखण्डमेकमतुलालोकं स्वभावप्रभा-
प्राग्भारं समयस्य सारममलं नाद्यापि पश्यन्ति ते ॥ ४७ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—ते समयस्य सारं अद्यापि न पश्यंति-ते कहतां इसा छे मिथ्यादृष्टि जीव राशि, समयस्य सारं कहतां सकल कर्म तहि विमुक्त छे जो परमात्मा तिहिको, अद्यापि कहतां द्रव्य व्रत धरचा छे शास्त्र पढ्या छे तौ फुनि, न पश्यंति कहतां नहीं पावै छे । भावार्थ इसो—जो निर्वाणपदको नहीं पावै छे । किसो छे समयसार, नित्योद्योतं कहतां सर्वकाल प्रकाशमान छे, औ किसो छे, अखंडं कहतां जिसो थो तिसो छे, एकं कहतां निर्विकल्प सत्तारूप छे और किसो छे, अतुलालोकं—कहतां जिहिकी उपमाके दृष्टांतको त्रैलोक्य माहे कोई नहीं छे । और किसो छे । स्वभावप्रभाप्राग्भारं—स्वभाव कहतां चेतना स्वरूप तिहिकी प्रभा कहतां प्रकाश, तिहिको प्राग्भारं कहतां एक पुंज छे । और किसो छे, अमलं कहतां कर्ममल तहि रहित छे, किसा छे ते मिथ्यादृष्टि जीव राशि, ये लिंगे ममतां वहंति-ये कहतां जे कोई मिथ्यादृष्टी जीव राशि, लिंगे कहतां द्रव्य क्रिया मात्र छे जो जतिपनो तिहविषै, ममतां वहंति कहतां हौं जाति, हमारी क्रिया मोक्षमार्ग छे इसी प्रतीतिको करै छे, किसो छे लिंग द्रव्यमये कहतां शरीर सम्बन्धी छे, बाह्य क्रिया मात्र अवलम्ब करै छे, किसा छे ते जीव, तत्त्वावबोधच्युताः—तत्व कहतां जीवको शुद्ध स्वरूप तिहिको, अवबोध कहतां प्रत्यक्षपनै अनुभव तिहितै, च्युताः कहतां अनादिकाल तहि भृष्ट छे । द्रव्य क्रिया करतां आप कहु किसो करि मानहि छे, संवृतिपथप्रस्थापितेन आत्मना—संवृतिपथं कहतां मोक्षमार्ग तिहि विषै, प्रस्थापितेन आत्मना कहतां आपने जानतां मोक्षको मांहि बैठ्या छे । इसो मनि छे । इसो अभिप्राय करि क्रिया करै छे । कायों करि, एनं परिहृत्य—कहतां शुद्ध चैतन्य स्वरूपको अनुभव छोडि करि । भावार्थ इसो—जो शुद्ध स्वरूप अनुभव मोक्षमार्ग इसी प्रतीतिको नहीं करै छे ।

भावार्थ—यह है कि जो कोई आत्मज्ञान रहित मिथ्यादृष्टि जीव हैं वे बाहरी मुनि भेष धारण करके भी व बाहरी चारित्र पाल करके भी शुद्ध आत्माको नहीं पाते हैं वे बाहरी शरीरके भेषको ही मोक्षमार्ग जान उसीमें रंगायमान हो रहे हैं । परन्तु सर्व पुद्गलके विकारोंसे रहित शुद्ध आत्माका अनुभव क्या है, इसको नहीं समझते हैं, वे कभी भी मोक्षके मार्गी नहीं हैं । वे सम्यग्दृष्टी ही नहीं हैं । जो द्रव्यलिंग व व्यवहार चारित्रको मात्र व्यवहार

मात्र निमित्त कारण मानते हैं और शुद्धात्मानुभवको ही मोक्षका उपाय जानते हैं वे ही मोक्षमार्गी हैं। परमात्मप्रकाशमें कहा है—

चिल्लाचिल्लीपुत्थियहिं, तूसइ मूढु णिभंतु, एयहिं लज्जइ णाणियउ बंधहं हेउ मुणंतु ॥ २१५ ॥

भावार्थ—शिष्यादि करनेमें व शास्त्रोंके पठन पाठनमें मूढ़ लोग निःसंदेह हर्ष मानते हैं। परन्तु जो आत्मज्ञानी हैं वे इस रागको बंधका कारण जानते हुए इन कार्योंको करते हुए अपनेको छोटा मानते हैं व लज्जाका पात्र समझते हैं। ये सब क्रिया प्रमत्त गुणस्थानमें होती है। अप्रमत्त गुणस्थानमें एकाग्रपने शुद्धात्माका ध्यान है इसीको सार कार्य समझते हैं।

सवैया ३१ सा—केई मिथ्यादृष्टी जीव धरे जिन मुद्रा भेष, क्रियामें मगन रहें कहे हम यती है ॥ अतुल अखण्ड मल रहित सदा उद्योत, ऐसे ज्ञान भावसों विमुख मूढमती है ॥ आगम सम्भाले दोष टालें, व्यवहार भाले, पाले व्रत यद्यपि तथापि अविरती है। आपको कहावे मोक्ष मारगके अधिकारी, मोक्षसे सदैव रुष्ट दुष्ट दुरगती है ॥ ११८ ॥

आर्या छन्द—व्यवहारविमूढदृष्टयः परमार्थं कलयन्ति नो जनाः।
तुषबोधविमुग्धबुद्धयः कलयन्तीह तुषं न तन्दुलम् ॥ ४८ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—जनाः कहतां कोई इसा छे मिथ्यादृष्टी जीव। परमार्थं कहतां शुद्ध ज्ञान मोक्षमार्ग छे, इसी प्रतीतिको नो कलयंति—कहतां नहीं अनुभव करै छे, किसा छे, व्यवहारविमूढदृष्टयः—व्यवहार कहतां द्रव्य क्रिया मात्र तिहि विषै, विमूढः कहतां क्रिया मोक्षको मार्ग इसो मूर्खपनो, इसी झूठी छे दृष्टि कहतां प्रतीति जांहकी इसा छे। दृष्टांत कहिजै छे-यथा लोके, वर्तमान कर्मभूमि विषै। तुषबोधविमुग्धबुद्धयः जनाः तुष कहतां धानके ऊपरको तुस मात्र ताको, बोध कहतां इसो ही मिथ्याज्ञान तिहि करि, विमुग्ध कहतां विकल हुई छे बुद्धि कहतां मति जांहकी इसा छे, जनाः कहतां केई मूर्ख लोग, इह कहतां वस्तु ज्यों छे त्योंही छे तथापि अज्ञानपने थकी, तुषं कलयंति कहतां तुसको अंगीकार करै छे, तंदुल न कलयंति कहतां चावलको मरम नहीं पावै छे। तथा जे केई क्रिया मात्रको मोक्षमार्ग जानै छे, आत्माको अनुभव तहि शून्य छे, ते फुनि इसा जानिवा।

भावार्थ—जैसे कोई तुष मात्रको ही चावल जाने परंतु उसके भीतर जो सफेद चावल है उसको चावल न माने तो ऐसे मूर्खको तुष ही मिलेगा, चावलका लाभ कभी नहीं होगा। इस तरह जो मात्र बाहरी क्रियाकांडको ही मोक्षमार्ग मानते हैं, परन्तु स्वानुभव रूप अंतरंग मोक्षमार्गको नहीं पहचानते हैं उनको बाहरी चारित्रसे पुण्य बंध तो हो जायगा परन्तु मोक्षमार्ग या मोक्षका लाभ नहीं होगा। मोक्षमार्ग जीवका निज भाव है।

परमात्मप्रकाशमें कहा है—

घोरु करन्तुवि तवचरणु सयलवि सत्थ मुणन्तु परमसमाहिविवज्जियउ णवि देक्खइ सिउ संतु ॥ १२२ ॥

भावार्थ—घोर तपश्चरण करते हुए भी व सर्व शास्त्रका व्याख्यान करते हुए भी जिनको आत्मानुभूतिरूप परम समाधिका लाभ नहीं है वे कभी भी मोक्षको नहीं देख सके हैं।

चौपाई—जैसे मुग्ध धान पहिचाने। तुष तन्दुलको भेद न जाने॥
तैसे मूढमती व्यवहारी। लखे न बन्ध मोक्ष विधि न्यारी॥ ११९॥

दोहा—जे व्यवहारी मूढ नर, पर्यय बुद्धी जीव। तिनके बाह्य क्रियाहीको, है अवलम्ब सदीव॥१२०॥
कुमति बाहिज दृष्टिसों, बाहिज क्रिया करंत। माने मोक्ष परंपरा, मनमें हरष धरन्त॥१२१॥
शुद्धातम अनुभौ कथा, कहे समकिती कोय। सो सुनिके तासों कहे, यह शिवपंथ न होय॥१२२॥

श्लोक—द्रव्यलिंगममकारमीलितैर्दृश्यते समयसार एव न।
द्रव्यलिंगमिह यत्किलान्यतो ज्ञानमेकमिदमेव हि स्वतः॥ ४९॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—द्रव्यलिंगममकारमीलितैः समयसार न दृश्यते एव—द्रव्यलिंग कहतां क्रियारूप जतिपनो, ममकार कहतां हौं जति, म्हारो जतिपनो मोक्षको मार्ग इसो छै अभिप्राय तिह करि, मीलितैः कहतां परमार्थ दृष्टि करि अन्धा हुवा छै। इसा छै जे त्यांहको, समयसार कहतां शुद्ध जीव वस्तु, न दृश्यते कहतां प्राप्तिगोचर नहीं छै। भावार्थ इसो—जो मोक्षकी प्राप्ति त्यांहै दुर्लभ छै। किसा थकी, यत् द्रव्यलिङ्गं इह अन्यतः हि इदं एकं ज्ञानं स्वतः—यत् कहतां जिहि कारण तहि, द्रव्यलिंग कहतां क्रियारूप जतिपनो। इह कहतां शुद्ध ज्ञान विचारतां, अन्यतः कहतां जीव तहि भिन्न छै, पुद्गल कर्म सम्बन्धी छै, तिहितै द्रव्यलिंग हेय छै, और हि कहतां शुद्ध ज्ञान मात्र वस्तु, स्वतः कहतां एकलो जीवको सर्वस्व छै तिहितै उपादेय छै। मोक्षको मार्ग छै। भावार्थ इसो—जो शुद्ध जीवको स्वरूपको अनुभव अवश्य करिवो छै।

कवित्त—जिन्हके देह बुद्धि घट अन्तर, मुनि मुद्रा धरि क्रिया प्रमाणहि॥ ते हिय अन्ध बंधके करता, परम तत्वको भेद न जानहि॥ जिन्हके हिये सुमतिकी कणिका, बाहिज क्रिया भेष परमाणहि॥ ते समकिती मोक्ष मारग मुख, करि प्रस्थान भवस्थिति भानहि॥ १२३॥

शालिनी छन्द—अलमलमतिजल्पैर्दुर्विकल्पैरनल्पैरयमिह परमार्थश्चिन्त्यतां नित्यमेकः।
स्वरसविसरपूर्णज्ञानविस्फूर्तिमात्रान्न खलु समयसारादुत्तरं किंचिदस्ति॥५०॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—इह अयं एकः परमार्थः नित्यं चेततां—इह कहतां सर्व तात्पर्य इसो, अयं एकः परमार्थः कहतां बहुत प्रकार कह्यो छे जे नानाप्रकारके अभिप्राय ते समस्त मेटिकरि तथा कहिंगो शुद्ध जीवको अनुभव इसो एकलो मोक्षको कारण, नित्यं चेततां कहता नित्य अनुभव सो कौन परमार्थ, खलु समयसारात उत्तरं किंचित् न अस्ति खलु कहतां निहचासों, समयसारात उत्तरं कहतां शुद्ध जीवके स्वरूपको अनुभवकी नाईं, उत्तरं कहतां द्रव्य क्रिया अथवा सिद्धांतको पढ़िवो लिखवो इत्यादि, किंचित् न अस्ति

कहतां, शुद्ध जीव स्वरूप अनुभव मोक्षमार्ग सर्वथा छे, अन्य समस्त मोक्षमार्ग सर्वथा न छे। किसो छे समयसार, स्वरसविसरपूर्णज्ञानविस्फूर्तिमात्रात्—स्वरस कहतां चेतना तिहिको विसर कहतां प्रवाह तिहिकरि, पूर्ण कहतां संपूर्ण छे इसी छे, ज्ञान विस्फूर्ति कहतां केवल ज्ञानको प्रगटपनो, मात्र कहतां इतनो छे स्वरूप जिहिको तिहिथकी, आगे इसो मार्ग छे। इहिते अधिक कोई मोक्षमार्ग कहै छे ते बहिरात्मा छे, वर्जित छे, अतिजल्पैः अलं अलं—अतिजल्पैः कहतां बहुत बोलवे करि, अलं अलं दोई बारके कहतां अत्यन्त वर्जिते छे चुप चुप करो, चुप करो, किसा छे अतिजल्प, दुर्विकल्पैः—कहतां झूठा तहिं झूठा उठावे छें चित्त कल्लोल माला जहां इसा छे, और किसा छे, अनल्पैः कहतां शक्ति भेद करि अनन्त छे।

भावार्थ—यहांपर यह है कि और अधिक विचारोंके करनेसे कोई लाभ नहीं है। तत्वकी बात इतनी ही है कि स्वानुभव मात्र ही एक मोक्षमार्ग है। इसीका सदा अनुभव करना योग्य है। परमात्मप्रकाशमें कहते हैं—

सयलवियप्पहं तुट्टाहं सिवपयमग्गि वसन्तु। कम्मचउक्कइ विलउ गइ अप्पा हुइ अरहन्तु॥३२६॥

भावार्थ—सर्व संकल्प विकल्पोंको दूर करके जो एक स्वानुभवरूप मोक्षमार्गमें ठहरते हैं वे ही चार घातिया कर्मोंको नाशकर अरहंत परमात्मा होजाते हैं।

सवैया ३१ सा—आचारज कहे जिन वचनको विसतार, अगम अपार है कहेंगे हम कितनो॥ बहुत बोलवेसों न मकसूद चुप्प भलो, बोलियेसों वचन प्रयोजन है जितनो॥ नानारूप जल्पनसों नाना विकलप उठे, तातें जेतो कारिज कथन भलो तितनो॥ शुद्ध परमातमाको अनुभौ अभ्यास कीजे, येही मोक्ष पंथ परमारथ है इतनो॥ १२४॥

दोहा—शुद्धातम अनुभौ क्रिया, शुद्ध ज्ञान दृग दोर। मुक्ति पंथ साधन वहै, वागजाल सब और॥१२५॥

छन्द—इदमेकं जगच्चक्षुरक्षयं याति पूर्णताम्।
विज्ञानघनमानन्दमयमध्यक्षतां नयत्॥ ५१॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—इदं पूर्णतां याति—कहतां शुद्ध ज्ञान प्रकाश पूरो होई छे, भावार्थ इसो जो सर्व विशुद्ध ज्ञान अधिकार आरम्भ्यो थो सो पूरो हुओ। किसो छे शुद्ध ज्ञान, एकं कहतां निर्विकल्प छे, और किसो छे, जगच्चक्षुः—कहतां जावंत ज्ञेय वस्तुको ज्ञाता छे, और किसो छे, अक्षयं कहतां शाश्वतो छे, और किसो छे, विज्ञानघनं अध्यक्षतां नयत्—विज्ञान कहतां ज्ञानमात्र तिहिको घन कहतां समूह इसो आत्मद्रव्यको, अध्यक्षतां नयत् कहतां प्रत्यक्षपने अनुभवतो होतो।

भावार्थ—अविनाशी ज्ञान प्रकाशमान होता हुआ अनुभवमें आने लगा ऐसा यह सर्व विशुद्ध ज्ञानका प्रकरण है।

दोहा—जगत चक्षु आनंदमय, ज्ञान चेतना भास। निर्विकल्प शाश्वत सुथिर, कीजे अनुभौ तास॥१२६॥

छंद-इतीदमात्मनस्तत्त्वं ज्ञानमात्रमवस्थितं। अखण्डमेकमचलं स्वसंवेद्यमबाधितम् ॥९२॥

खण्डान्वय सहित अर्थ-इदं आत्मनस्तत्त्वं ज्ञानमात्रं अवस्थितं इति-इदं कहतां प्रत्यक्ष छे, आत्मनस्तत्त्वं कहतां शुद्ध जीवको स्वरूप ज्ञान मात्र, अवस्थितं कहतां शुद्ध चेतना मात्र छे इसो, अवस्थितं इति कहतां पूर्ण नाटक समयसार शास्त्र कहतां इतना सिद्धांत सिद्ध हूओ। भावार्थ इसो जो शुद्ध ज्ञान मात्र जीव द्रव्य इसो कहतां ग्रंथ संपूर्ण हुओ। किसो छे, आत्मतत्व, अखण्ड कहतां अबाधित छे, किसो छे, एकं कहतां निर्विकल्प छे, और किसो छे, अचलं कहतां आपणा स्वरूप तहि अमिट छे, और किसो छे, स्वसंवेद्यं-कहतां ज्ञानगुण करि स्वानुभवगोचर होइ छे अन्यथा कोटि जतन करतां ग्राह्य नहीं छे। और किसो छे अबाधितं-कहतां सकल कर्म तहि भिन्न होतां कोई बाधा करिबाको समर्थ नहीं छे जिहितै।

भावार्थ-इस समयसार ग्रंथके कहनेका जो अभिप्राय था कि ग्रन्थके पढ़नेवाले सुननेवालेको शुद्ध आत्माका अनुभव होजावे सो कार्य भलेप्रकार किया गया।

दोहा-अचल अखंडित ज्ञानमय, पूरण वीत ममत्व। ज्ञानगम्य बाधा रहित, सो है आतम तत्व ॥१२७॥

सर्व विशुद्धी द्वार यह, कह्यो प्रगट शिवपंथ। कुंदकुंद मुनिराजकृत, पूरण भयो जु ग्रंथ ॥१२८॥

चौपाई-कुंदकुंद मुनिराज प्रवीणा। तिन यह ग्रंथ इहालो कीना ॥
गाथा बद्धसों प्राकृत वाणी। गुरु परंपरा रीत बखाणी ॥ १२९ ॥
भयो ग्रंथ जगमें विख्याता। सुनत महा सुख पावहि ज्ञाता ॥
जे नव रस जगमांहि बखाने। ते सब समयसार रस माने ॥ १३० ॥

दोहा-प्रगटरूप संसारमें, नव रस नाटक होय। नव रस गर्भित ज्ञानमें, विरला जाने कोय ॥१३१॥

कवित्त-प्रथम शृंगार वीर दूजो रस, तीजो रस करुणा सुख दायक ॥ हास्य चतुर्थ रुद्र रस पंचम, छट्ठम रस बीभत्स विभायक ॥ सप्तम भय अट्ठम रस अद्भुत, नवमो शांत रसनिको नायक ॥ ये नव रस येई नव नाटक, जो जहां मगन सोही तिहि लायक ॥ १३२ ॥

सवैया ३१ सा-शोभामें शृंगार वसे वीर पुरुषारथमें, कोमल हियेमें करुणा रस बखानिये ॥ आनंदमें हास्य रुंड मुंडमें विराजे रुद्र, बीभत्स तहां जहां गिलानि मन आनिये ॥ चिंतामें भयानक अथाहतमें अद्भुत, मायाकी अरुचि तामें शांत रस मानिये ॥ येई नव रस भवरूप येई भावरूप, इनिको विलक्षण सुदृष्टि जगे जानिये ॥ १३३ ॥

छप्पै-गुण विचार शृंगार, वीर उद्यम उदार रुख। करुणा रस सम रीति, हास्य हिरदे उच्छाह सुख। अष्ट करम दल मलन, रुद्र वर्त्तै तिहि थानक। तन विलक्ष बीभत्स, द्वंद दुख दशा भयानक। अद्भुत अनंत बल चिंतवन, शांत सहज वैराग्य ध्रुव। नव रस विलास प्रकाश तब, जब सुबोध घट प्रगट हुव ॥ १३४ ॥

चौपाई-जब सुबोध घटमें प्रकाशे। तब रस विरस विषमता नासे।
नव रस लखे एक रस मांही ताते विरस भाव मिटि जांही ॥ १३५ ॥

दोहा-नव रस गर्भित मूल रस, नाटक नाम गरंथ। जाके सुनत प्रमाण जिय, समुझे पंथ कुपंथ ॥१३६॥

चौपाई—परते ग्रन्थ जगत हित काजा। प्रगटे अमृतचन्द्र मुनिराजा।
तब तिन ग्रन्थ जानि अति नीका। रची बनाई संस्कृत टीका ॥ १३७ ॥
दोहा-सर्व विशुद्धि द्वारलों, आये करत बखान। तब आचारज भक्तिसों, करे ग्रंथ गुण गान ॥ १३८॥
इति नाटक समयसारको सर्व विशुद्धि द्वार पूरो भयो। अथ प्रविशति स्याद्वादः।

ग्यारहवां स्याद्वाद अधिकार।

श्लोक—अत्र स्याद्वादशुद्ध्यर्थं वस्तुतत्त्वव्यवस्थितिः।
उपायोपेयभावश्च मनाग्भूयोऽपि चिन्त्यते ॥ १ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—भूयः अपि मनाक् चिन्त्यते—भूयः अपि कहतां ज्ञान मात्र जीव द्रव्य इसो कहतो होतो समयसार नाम शास्त्र समाप्त हूओ। तिहि ऊपरि करि, मनाक् चिन्त्यते कहतां कांई थोरो सो अर्थ दूजो कहिजे छे। भावार्थ इसो—जो गाथा सूत्रका कर्ता छे कुन्दकुन्दाचार्य, त्यांहको कथिता गाथा सूत्रको अर्थ सम्पूर्ण हूओ। सांप्रत टीका कर्ता छे अमृतचंद्रसूरि त्यांह टीका फुनि कह्यो तिहि उपरांत करि अमृतचंद्रसूरि कछू कहे छे। कांयो कहै छे, वस्तुतत्त्वव्यवस्थितिः—वस्तु कहतां जीव द्रव्य तिहिंको, तत्त्वं कहतां ज्ञान मात्र स्वरूप तिहकी व्यवस्थितिः कहतां ज्यों छे त्यों कहिजे छे, च कहतां और कांयो कहिजे छे। उपायोपेयभावः-उपाय कहतां मोक्षको कारण ज्यों छे त्यों, उपेय कहतां सकल कर्मको विनाश होतां जो वस्तु निष्पन्न होइ छे त्यों कहिजे छे। कहिवे गरज कांयों इसो कहिजे छे। अत्र स्याद्वादशुद्ध्यर्थं—अत्र कहतां ज्ञान मात्र जीव द्रव्य तिहि विषै, स्याद्वादशुद्ध्यर्थं, स्याद्वाद कहतां एक सत्ता विषै अस्तिनास्ति, एक अनेक, नित्य अनित्य, इत्यादि अनेकांतपनो तिहिकी शुद्धि कहतां, ज्ञानमात्र जीवपना विषै ज्यों घटे त्यों तिहिको, अर्थ कहतां इतनो छे अभिप्राय जहां इसे प्रयोजन स्वरूप कहिजे छे। भावार्थ इसो—जो कोई आशंका करे छे जो जैनमत स्याद्वाद मूल छे, इहां तो ज्ञानमात्र जीवद्रव्य इसो कह्यो सो कहतां एकांतपनो हूओ। स्याद्वाद तो प्रगट हूओ छे नहीं, उत्तर इसो जो ज्ञान मात्र जीवद्रव्य इसो कहतां अनेकांतपनो घटे छे। ज्यों घटे छे त्यों यहां तहिं लेइ कहिजे छे सावधान पने सुनहु।

भावार्थ—आगे अमृतचन्द्र आचार्य यह बतावेंगे कि स्याद्वाद नयके द्वारा जीव द्रव्यका अनेकांत स्वरूप समझे विना जीव तत्त्वका सच्चा ज्ञान हो नहीं सक्ता, यद्यपि जीव स्वानुभवके समय एकाकार निर्विकल्प है तथापि उसका स्वरूप जब विचार किया जाता है तो एकांत नहीं है, किन्तु अनेक स्वभावोंके रखनेके कारण अनेकांत है। यही जीव द्रव्य

अस्तिरूप भी है नास्तिरूप भी है। एकरूप भी है अनेक रूप भी है। नित्यरूप भी है अनित्यरूप भी है, इत्यादि। सो इस प्रकरणको कहेंगे। दूसरे यह भी बतावेंगे कि मोक्षका उपाय क्या है व मोक्ष क्या पदार्थ है।

चौपाई—अद्भुत ग्रन्थ अध्यातम वाणी। समुझे कोई विरला प्राणी॥
यामें स्यादवाद अधिकारा। ताको जो कीजे विस्तारा॥ १॥
तोजु ग्रन्थ अति शोभा पावे। वह मंदिर यह कलश कहावे॥
तब चित अमृत वचन गढ़ खोले। अमृतचन्द्र आचारज बोले॥

दोहा—कुन्दकुन्द नाटक विषें, कह्यो द्रव्य अधिकार। स्याद्वाद नें साधि मैं, कहू अवस्था द्वार॥ ३॥
कहूं मुक्ति पदकी कथा, कहूं मुक्तिको पंथ। जैसे घृत कारिज जहां, तहां कारण दधि-मन्थ॥ ४॥

चौपाई—अमृतचन्द्र बोले मृदुवाणी। स्यादवादकी सुनो कहानी॥
कोऊ कहे जीव जग मांही। कोऊ कहे जीव है नाहीं॥ ५॥

दोहा—एकरूप कोऊ कहे, कोऊ अगणित अंग। क्षणभंगुर कोऊ कहे, कोऊ कहे अभंग॥ ६॥
नय अनन्त इहविधी है, मिले न काहू कोय। जो सब नय साधन करे, स्याद्वाद है सोय॥७॥
स्याद्वाद अधिकार अब, कहूं जैनका मूल। जाके जाने जगत जन, लहे जगत जलकूल॥८॥

शार्दूलविक्रीडित छन्द—बाह्यार्थैः परिपीतमुज्झितनिजप्रव्यक्तिरिक्तीभव-
द्विश्रान्तं पररूप एव परितो ज्ञानं पशोः सीदति।
यत्तत्तत्दिह स्वरूपत इति स्याद्वादिनस्तत्पुन-
र्दूरोन्मग्नघनस्वभावभरतः पूर्णं समुन्मज्जति॥ २॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—इसो जो ज्ञानमात्र जीवको स्वरूप तिहिं विषैं फुनि प्रश्न चारि करवाको छे ते कौन। एक तो प्रश्न इसो जो ज्ञान ज्ञेयको सारको छे के आपणा सारको छे। दूजो प्रश्न इसो जो ज्ञान एक छे के अनेक छे, तीजो प्रश्न इसो जो ज्ञान अस्ति है के नास्ति है, चौथा प्रश्न इसो जो ज्ञान नित्य छे के अनित्य छे। त्यांहको उत्तर इसो जो जावंत वस्तु छे तावंत द्रव्यरूप छे, पर्यायरूप छे, तिहिंको ब्यौरो-द्रव्यरूप कहतां निर्विकल्प ज्ञानमात्र वस्तु, पर्याय रूप कहतां स्वज्ञेय अथवा परज्ञेयको जानता ज्ञेयकी आकृति प्रतिबिंबरूप परिणवै छे ज्ञान, भावार्थ इसो—जो ज्ञेयको जाननेरूप परिणति ज्ञानको पर्याय, तिहितै ज्ञानको पर्याय रूपकै कहतां ज्ञान ज्ञेयको सारको छे वस्तु मात्रकै कहतां आपणा सारको छे। एक प्रश्नको समाधान इसो। दूजो प्रश्नको समाधान इसो जो ज्ञानको पर्याय मात्रकै कहतां ज्ञान अनेक छे, वस्तु मात्रके कहतां एक छे। तीजो प्रश्नको उत्तरु इसो जो ज्ञानको पर्याय रूपकै कहतां ज्ञान नास्ति छे। ज्ञानको वस्तु रूप विचारतां ज्ञान अस्ति छे। चौथो प्रश्नको उत्तरु इसो जो ज्ञानको पर्याय मात्रकै कहतां ज्ञान अनित्य छे, वस्तु मात्रकै कहतां ज्ञान नित्य छे। इसो प्रश्न करतां इसो समाधान

करतां स्याद्वाद इहिको नाम छे। वस्तुको स्वरूप यों ही छे तथा यौंकै साधतां वस्तु-मात्र सधै छे। जे केई मिथ्यादृष्टी जीव वस्तुको वस्तुरूप छे तथा सोई वस्तु पर्यायरूप छे इसो नहीं मानहि छे। सर्वथा वस्तुरूप मानहि छे अथवा सर्वथा पर्याय मात्र मानहि छे जीवराशि एकांतवादी मिथ्यादृष्टि कहिजै। तिहितै वस्तु मात्र विना मानतां पर्याय मात्र मानतां पर्याय मात्र फुनि नहीं सधै छे तहां अनेक प्रकार साधन बाधन छे, अवसर पाए कहैगा। अथवा पर्यायरूप विन मानता वस्तुमात्र मानतां वस्तु फुनि नहीं सधै छे तहां फुनि अनेक युक्ति छे अवसर पाए कहिस्यां। एतइं माहे केई मिथ्यादृष्टि जीव ज्ञानको पर्यायरूप मानहि छे वस्तुरूप नहीं मानहि छे इसो मानतां ज्ञानको ज्ञेयको साराको मानहि छे त्याहको समाधान इसो जो योतो एकांतपनै ज्ञान सधै नहीं। तिहितै ज्ञान आपणा साराको छे इसो कहिजै छे। पशोः ज्ञानं सीदति-पशोः कहतां एकांतवादी मिथ्यादृष्टिको ज्यों मानै छे जो ज्ञान पर ज्ञेयको साराको छे त्यों मानतां, ज्ञानं कहतां शुद्ध जीवकी सत्ता, सीदति कहतां अस्तित्वपनो वस्तुपनाको नहीं पावै छे। भावार्थ इसो-जो एकांतवादीकै कहतां वस्तुको अभाव सधै छे। वस्तुपनो नहीं सधै छे तिहितै किसो माने छे मिथ्यादृष्टि जीव; इसो मानैं छे किसो छे ज्ञान, बाह्यार्थैः परिपीतम्-बाह्यार्थैः कहतां ज्ञेय वस्तु त्याह-करि, परिपीतं कहतां सर्व प्रकार निगल्यो छे। भावार्थ इसो जो मिथ्यादृष्टि जीव इसो मानै छे जो ज्ञान वस्तु नहीं छे ज्ञेय करि छे सो फुनि तेही क्षण उपजै छे तेही क्षण विनसै छे। यथा घट ज्ञान घट छतां छे, प्रतीति इसी जो जो घट छे तो घटज्ञान छे। यदा घट नहीं थो तदा घटज्ञान नहीं थो, यदा घट न होइसी तदा घटज्ञान न होइसी। केई मिथ्यादृष्टी जीव ज्ञान वस्तुको विन मानतां ज्ञानको पर्याय मात्र मानतां इसो मानहि छे। और किसो मान हि छे। किसो छे ज्ञान। उज्झितनिजप्रव्यक्तिरिक्तीभवत्-उज्झित कहतां मूल तहिं विनशी छे इसी निज प्रव्यक्ति कहतां ज्ञेयके जानपने मात्र ज्ञान इसो पायो छे नाम मात्र तिहिकरि, रिक्तीभवत् कहतां ज्ञान इसो नाम तहि फुनि विनश्यो छे इसो मानहि मिथ्यादृष्टी एकांतवादी जीव। और किसो मानहि छे। किसो छे ज्ञान। परितः पररूप एव विश्रांतं-परितः कहतां मूल तहिं लेइ करि, पररूप कहतां ज्ञेय वस्तु निमित्त, एव कहतां एकांतपनो, विश्रांतं कहतां ज्ञेय करि हुओ ज्ञेय करि विनश्यो। भावार्थ इसो-जो यथा भीति विषै चित्रो यदा भीति न थी तदा न थो, यदा भीति छे तदा छे, यदा भीति न होइसी तदा न होइसी, इहितै प्रतीति इसी उपजै छे चित्रको सर्वस्व भीति करतां छे। तथा यदा घट छे तदा घटज्ञान छे, यदा घट न थो तदा घटज्ञान न थो, यदा घट न होइसी तदा घट ज्ञान न होइसी, तिहितै इसी प्रतीति उपजै छे जो ज्ञानको सर्वस्व ज्ञेय

करतां छे, केई अज्ञानी एकांतवादी इसो मानहि छे तिहितै इमा अज्ञानीके मत विषै ज्ञान वस्तु इसो नहीं पाइजै छे। स्याद्वादीके मत विषै ज्ञान वस्तु इसो पाइजे छे। पुनः स्याद्वादिनः तत् पूर्णं समुन्मज्जति-पुनः कहतां एकांतवादी कहै छे त्यो न छे, स्याद्वादी कहै छे त्यो छे। स्याद्वादिनः कहतां एक सत्ताको द्रव्यरूप तथा पर्यायरूप मानहि छे इसा जे सम्यग्दृष्टि जीव त्यांहके मत विषै, तत् कहतां ज्ञान वस्तु, पूर्णं कहतां ज्यों छे त्योंही छे। ज्ञेयतै भिन्न स्वयं सिद्ध आप करि छे, समुन्मज्जति कहतां एकांतवादीके मत मूलतहि मिटयो थो सोई ज्ञान स्याद्वादीके मत ज्ञान वस्तु प्रगट हूओ। क्रियाथकी प्रगट हूओ। दूरोन्मग्नघनस्वभावभरतः-दूरं कहतां अनादि तहि लेइ करि, उन्मग्न कहतां स्वयं सिद्ध वस्तुरूप प्रगट छे इसो, घन कहतां अमिट, स्वभव कहतां ज्ञान वस्तुको सहज तिहिको, भरतः कहतां न्याय करतां अनुभव करतां यों छे इसा सत्वपना थकी। किसो न्याव किसो अनुभव इसा दूवे ज्यों होहि छे त्यों कहिजै छे। यत् तत् स्वरूपतः तत् इति-यत् कहतां जो वस्तु, तत् कहतां सो वस्तु, स्वरूपतः तत् कहतां आपणा स्वभाव थकी वस्तु छे, इति कहतां इसो अनुभतां अनुभव फुनि उपजै छे। मुक्ति फुनि प्रगट होइ छे। अनुभव निर्विकल्प छे मुक्ति इसी जो ज्ञान वस्तु द्रव्यरूप विचारतां आपणे स्वरूप छे, पर्यायरूप विचारतां ज्ञेय करि छे। यथा ज्ञान वस्तु द्रव्यरूप ज्ञानमात्र छे पर्यायरूप घट ज्ञान मात्र छे तिहितै पर्यायरूप देखतां घटज्ञान ज्यों कह्यो छे घटके छतां छे घटकै विन छतां नहीं छे त्योंही छे। द्रव्यरूप अनुभवतां घट ज्ञान इसो न देखिजै, ज्ञान इसो देखिजै तो घट तहि भिन्न आपणे स्वरूप मात्र स्वयं सिद्ध वस्तु छे। इसे प्रकार अनेकांतके साधतां वस्तु स्वरूप सधै छे। एकांतपनै जो घट करतां घट ज्ञान छे ज्ञान वस्तु नहीं छे तो इसो चाहिजै। जो यथा घटके पासि बैठ्या पुरुषको घट ज्ञान होइ छे तथा जो कोई वस्तु घटके पासि धरिजै तीहै घट ज्ञान होजै इसा होता थांभाके पास घटको होता थांभाके घट ज्ञान चाहिजै सो योतो नहीं देखिजै छे। तिहितै इसो भाव प्रतीति आवै छे। जिहि माहे ज्ञान शक्ति छती छे, तिहिको घटके पासि बैठ्या घटको देखतां विचारतां घट ज्ञानरूप यह ज्ञानको पर्याय परिणवै छे। तिहितै स्याद्वाद वस्तुको साधक छे, एकांतपनो वस्तुको नाश कर्ता छे।

भावार्थ-यहां यह बताया है कि ज्ञान और ज्ञेय दो वस्तु स्वयं सिद्ध हैं। ज्ञान आत्माका गुण है वह अपने स्वभावसे ही ज्ञेयोंको जानता है यह वस्तु स्वभाव है, जैसे दर्पण अपनी कांतिके द्वारा ही झलकता है। ज्ञेय जो पर पदार्थ ज्ञानमें झलकते हैं वे भिन्न सत्ताको रखते हैं। ज्ञानकी सत्ता आत्मामें है, घट ज्ञेयकी सत्ता घटमें है। परस्पर ज्ञेय

ज्ञापक सम्बन्ध है। जिस समय ज्ञाताका ज्ञान घटके ज्ञानरूप परिणमा उस समय घट ज्ञान ऐसी ज्ञानकी पर्याय हुई ज्ञान नष्ट नहीं हुआ। दर्पणमें मोर झलका तब दर्पण मोररूप नहीं होगया। उसकी कांतिका परिणमन मोररूप हुआ तथापि दर्पण अपने स्वभावसे ही है। तत्वज्ञानी स्याद्वादी ऐसा मानता है उसके मतमें ज्ञान नित्य एक आत्माका गुण है ऐसा ज्ञानगुण परपदार्थोंको जानते हुए बना रहता है। परंतु जो कोई ऐसा न मानकर ऐसा मानते हैं कि ज्ञान ज्ञेयोंके द्वारा ही होता है अर्थात् ज्ञान ज्ञेय रूप ही है। ज्ञानकी भिन्न सत्ता नहीं है। घट है तब तक घट ज्ञान है घट नहीं तो घट ज्ञान नहीं, वे लोग एकांती मिथ्यादृष्टी हैं। यदि घटके पास बैठनेसे घट ज्ञान होजावे तो घटके पास खड़े हुए खंभेको भी घट ज्ञान होजावे। सो ऐसा कभी नहीं होता। जिस पुरुषकी आत्मामें ज्ञान शक्ति है वही घटको देखकर जान सक्ता है कि घट है, इसलिये ज्ञानकी सत्ता ज्ञेयसे भिन्न मानना ही यथार्थ मत है।

सवैया ३१ सा—शिष्य कहे स्वामी जीव स्वाधीनकी पराधीन, जीव एक है कीधों अनेक मानि लीजिये॥ जीव है सदीवकी नांही है जगत मांहि, जीव अविनश्वरकी विनश्वर कहीजिये॥ सद्गुरु कहे जीव है सदैव निजाधीन, एक अविनश्वर दरब दृष्टि दीजिये॥ जीव पराधीन क्षण-भंगुर अनेक रूप, नांहि जहां तहां पर्याय प्रमाण कीजिये॥ ९॥

सवैया ३१ सा—द्रव्य क्षेत्र काल भाव चारों भेद वस्तुहीमें, अपने चतुष्क वस्तु अस्तिरूप मानिये॥ परके चतुष्क वस्तु न अस्ति नियत अंग, ताको भेद द्रव्य परमारथ मध्य जानिये॥ दरब जो वस्तु क्षेत्र सत्ता भूमि काल चाल, स्वभाव सहज मूल सकति बखानिये॥ याही भांति पर विकलप बुद्धि कलपना, व्यवहार दृष्टि अंश भेद परमानिये॥ १०॥

दोहा—है नांहि नांहिसु है, है है नांही नांहि। ये सर्वंगी नय धनी, सब माने सब मांहि॥ ११॥

सवैया ३१ सा—ज्ञानको कारण ज्ञेय आतमा त्रिलोक मय, ज्ञेयसों अनेक ज्ञान मेल ज्ञेय छांही है॥ जोलों ज्ञेय तोलों ज्ञान सर्व द्रव्यमें विज्ञान, ज्ञेय क्षेत्र मान ज्ञान जीव वस्तु नांही है॥ देह नसे जीव नसे देह उपजत लसे, आतमा अचेतन है सत्ता अंश मांही है॥ जीव क्षण भंगुर अज्ञेयक स्वरूपी ज्ञान, ऐसी ऐसी एकांत अवस्था मूढ पांही है॥ १२॥

सवैया ३१ सा—कोउ मूढ कहे जैसे प्रथम सवारि भीति, पीछे ताके उपरि सुचित्र आछ्यो लेखिये॥ तैसे मूल कारण प्रगट घट पट जैसो, तैसो तहां ज्ञानरूप कारिज विसेखिये॥ ज्ञानी कहे जैसी वस्तु तैसाही स्वभाव ताको, ताते ज्ञान ज्ञेय भिन्न भिन्न पद पेखिये॥ कारण कारिज दोउ एकहीमें निश्चय पै, तेरो मत सांचो व्यवहार दृष्टि देखिये॥ १३॥

शार्दूलविक्रीडित छन्द—विश्वं ज्ञानमिति प्रतर्क्य सकलं दृष्ट्वा स्वतत्त्वाशया
भूत्वा विश्वमयः पशुः पशुरिव स्वच्छन्दमाचेष्टते।
यत्तत्तत्पररूपतो न तदिति स्याद्वाददर्शी पुन-
र्विश्वाद्भिन्नमविश्वविश्वघटितं तस्य स्वतत्त्वं स्पृशेत्॥ ३॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—भावार्थ इसो जो कोई मिथ्यादृष्टी इसो छे जो ज्ञानको द्रव्यरूप मानै छे, पर्यायरूप नहीं मानै छे । तिहितै यथा जीव द्रव्यको ज्ञानवस्तु करि मानै छे तथा ज्ञेय जे पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल द्रव्य त्यांहको फुनि ज्ञेय वस्तु नहीं मानै छे, ज्ञान वस्तु मानै छे, तहे प्रति समाधान इसो जो ज्ञान ज्ञेयको जानै छे इसो ज्ञानको स्वभाव छे तथापि ज्ञेय वस्तु ज्ञेयरूप छे, ज्ञानरूप नहीं छे । पशुः स्वच्छंदं आचेष्टते—पशुः कहतां एकांतवादी मिथ्यादृष्टी जीव, स्वच्छंद कहतां स्वेच्छाचार तिहिको व्योरो जो किछू हेयरूप वस्तु उपादेय रूप इसो भेद नहीं करै छे । समस्त त्रैलोक्य उपादेय इसी बुद्धि करै छे । आचेष्टते कहतां इसी प्रतीति करितो निःशंकपनै प्रवर्तै छे । पशुः इव कहतां यथा तिर्यंच किसो होइ प्रवर्तै छे । विश्वमयः भूत्वा—कहतां अहं विश्वं इसो जानि आप विश्वरूप होई प्रवर्तै छे, इसो क्यों छे जिहितै, सकलं स्वतत्त्वाशया दृष्ट्वा—सकलं कहतां जावंत ज्ञेय वस्तुको, स्वतत्वाशया कहतां ज्ञानवस्तु बुद्धिकरि, दृष्ट्वा कहतां इसी गाढ़ी प्रतीतिको करि, इसी गाढ़ी प्रतीति क्यों होइ छे जिहितै, विश्वं ज्ञानं इति प्रतर्क्य—कहतां त्रैलोक्यरूप जो कोई छे सो ज्ञान वस्तु रूप छे इसो जानिकरि । भावार्थ इसो—जो ज्ञानवस्तु पर्यायरूप ज्ञेयाकार होइ छे सो मिथ्यादृष्टी पर्यायको भेद नहिं मानै छे । समस्त ज्ञेयको ज्ञानवस्तु करि मानै छे । तीहे प्रति उत्तर इसो जो ज्ञेय वस्तु ज्ञेयरूप छे ज्ञानरूप नहीं छे । इसो कहिजै छे । पुनः स्याद्वाददर्शी स्वतत्वं स्पृशेत—पुनः कहतां एकांतवादी ज्यों कहै छे त्यों ज्ञानको वस्तुपनो नहीं सिद्ध होइ छे । स्याद्वादी ज्यों कहै छे त्यों वस्तुपनो ज्ञानको सधै थे । जिहितै एकांतवादी इसो मानै छे जो समस्त ज्ञानवस्तु छे सो योंकै मानतां लक्ष्य लक्षणको अभाव होइ छे । तिहितै लक्ष्य लक्षणको अभाव होतां वस्तुकी सत्ता नहीं सधै छे । स्याद्वादी इसो मानै छे । ज्ञान वस्तु छे तिहिको लक्षण छे जो समस्त ज्ञेयको ज्ञानपनो तिहितै योंकै कहतां स्वभाव सधै छे । स्वस्वभावके सधतां वस्तु सधै छे । तिहितै इसो कह्यो जो स्याद्वाददर्शी, स्वतत्वं स्पृशेत् कहतां वस्तुको द्रव्य पर्यायरूप मानै छे इसो अनेकांतवादी जीव ज्ञान वस्तु इसो साधवाको समर्थ होइ । स्याद्वादी ज्ञान वस्तुको मानै छे, विश्वात् भिन्न—विश्वात् कहतां समस्त ज्ञेय थकी, भिन्न कहतां निरालो छे, और किसो मानहि छे, अविश्वविश्वघटितं—अविश्व कहतां समस्त ज्ञेय तहि भिन्नपनै करि, इसो छे विश्व कहतां द्रव्य गुण पर्याय तिहिकरि, घटितं कहतां जिसो छे तिसो अनादि तहि स्वयं सिद्ध निःपन्न छे । इसो छे ज्ञान वस्तु, इसो क्यों मानै छे, यत् तत्—कहतां जो जो वस्तु, तत् पररूपतः न तत्—कहतां सो वस्तु पर वस्तु थकी वस्तु रूप नहीं छे । भावार्थ इसो—जो यथा ज्ञान वस्तु ज्ञेयरूप थकी न छे ज्ञानरूप थकी छे । तथा ज्ञेय वस्तु फुनि ज्ञान

वस्तु थकी न छे ज्ञेय वस्तुरूप छे, तिहितै इसो अर्थ उपज्यो जो पर्याय द्वार करि ज्ञान विधिरूप छै द्रव्य द्वार करि आपरूप छे। इसो भेद स्याद्वादी अनुभवै छे तिहितै स्याद्वाद वस्तु स्वरूपको साधक छे; एकांतपनो वस्तुको घातक छे।

भावार्थ—यहांपर उन एकांतवादियोंका निराकरण किया है जो सर्व जगतको एक ज्ञानरूप ही मानते हैं। जो ज्ञान और ज्ञेयको भेद नहीं करते हैं। जिनके मतमें ज्ञेय वस्तु भ्रमरूप है। जैसे दर्पणमें पदार्थ झलकते हैं। पदार्थ अलग हैं, दर्पण अलग है। इसी तरह ज्ञेय अलग हैं, ज्ञान अलग है। ज्ञान सर्व ज्ञेयको जानते हुए अनेक प्रकार पर्याय दृष्टिसे देखनेमें आता है तौभी वह ज्ञान आत्माका गुण है आत्मासे छूटकर कहीं जाता नहीं है। आत्मा वस्तु अलग है, जिनको आत्मा जानता है वे ज्ञेय वस्तु अलग हैं। ऐसा भेद अनेकांत मत बताता है सो ही यथार्थ है।

सवैया ३१ सा—कोउ मिथ्यामति लोकालोक व्यापि ज्ञान मानि, समझे त्रिलोक पिंड आतम दरव है॥ याहीते स्वछन्द भयो डोले मुखहू न बोले, कहै या जगतमें हमारोही परव है॥ तासों ज्ञाता कहै जीव जगतसों भिन्न है पै, जगसों विकाशी तोहि याहीते गरव है॥ जो वस्तु सो वस्तु पर रूपसों निराली सदा, निहचै प्रमाण स्यादवादमें सरव है॥ १४॥

शार्दूलविक्रीडित छन्द—बाह्यार्थग्रहणस्वभावभरतो विष्वग्विचित्रोल्लसद्
ज्ञेयाकारविशीर्णशक्तिरभितस्त्रुट्यन्पशुर्नश्यति।
एकद्रव्यतया सदाप्युदितया भेदभ्रमं ध्वंसयन्
एकं ज्ञानमबाधितानुभवनं पश्यत्यनेकान्तवित्॥ ८॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—भावार्थ इसो जो कोई एकांतवादी मिथ्यादृष्टि जीव पर्याय मात्रको वस्तु मानै छे वस्तुको नहीं मानै छे तिहितैं ज्ञान वस्तु अनेक ज्ञेयको जानै छे तिहिको जानतो होतो ज्ञेयाकार परिणवै छे इसो जानिकरि ज्ञानको अनेक मानै छे एक नहीं मानै छे तिहि प्रति उत्तर इसो जो एक ज्ञानविन मानतां अनेक ज्ञान मानतां अनेक ज्ञान इसो नहीं सधै छे। तिहितै ज्ञान एक मानिकरि अनेक मानिवो वस्तुको साधक छे। इसो कहिजे छे। पशुः नश्यति कहतां एकांतवादी वस्तुको नहीं साधि सकै छे, किसो छे, अभितः त्रुट्यन् कहतां ज्यों मानै छे त्यों झुठो होई छे। और किसो छे। विष्वग्विचित्रोल्लसत् ज्ञेयाकारविशीर्णशक्तिः—विष्वक् कहतां अनंत छे, विचित्र कहतां अनंत प्रकार छै इसो छे, उल्लसत् कहतां प्रगटपनै छतो छे, इसो ज्ञेय कहतां छः द्रव्यको समूह तिहिकी आकार कहतां प्रतिबिम्ब रूप परिणयो छै इसो ज्ञानको पर्याय, तिहि करि, विशीर्णशक्तिः कहतां एतावन्मात्र ज्ञान इसो श्रद्धा करतां गई छे वस्तु साधिवाकी समर्थता जिहिकी इसो छे मिथ्यादृष्टि जीव, इसो क्यों छे, बाह्यार्थग्रहणस्वभावभरतः—बाह्यार्थ कहतां नाना

ज्ञेय वस्तु तिहिकी आकृति ज्ञानको परिणाम इसो छे, स्वभाव कहतां वस्तुको सहज तिहिको, सरल कहतां कोनहूंके वहे वरज्यो न जाइ इसो अमिटपनो तिहि थकी। भावार्थ इसो— जो ज्ञानको स्वभाव छे जो समस्त ज्ञेयको जान तो होतो ज्ञेयकी आकृति परिणवे। कोई एकांतवादी एतावन्मात्र वस्तुको जानतो होतो ज्ञानको अनेक माने छे। तिहे प्रति स्याद्वादी ज्ञानको एकपनो साधे छे, अनेकांतवित् ज्ञानं एकं पश्यति-अनेकांतवित् कहतां एक सत्ताको द्रव्य पर्यायरूप माने छे। इसो सम्यग्दृष्टि जीव, ज्ञानं एकं पश्यति कहतां ज्ञान वस्तु यद्यपि पर्याय करि अनेक छे तथापि द्रव्यरूप करि एक करि अनुभवे छे। किसो छे स्याद्वादी, भेदभ्रमं ध्वंसयन्—ज्ञान अनेक इसा एकांत पक्षको नहीं माने छे। किसा थकी, एकद्रव्यतया—कहतां ज्ञान एक वस्तु छे। इसा अभिप्राय करि। किसा छे अभिप्राय, सदा व्युदितया कहतां सर्व काल उदय मान छे, किसा छे ज्ञान अबाधितानुभवनं—कहतां अखण्डित छे। अनुभव गोचर जिहि विषें ज्ञान वस्तु इसो छे।

भावार्थ—एकांती ज्ञानको अनेक ज्ञेयोंके आकार ही मानता है ज्ञानकी भिन्न सत्ता नहीं मानता है उसका यहां निराकरण है कि ज्ञान स्वभावसे एकरूप आत्माका गुण है। उसमें अनेक ज्ञेय झलकते हैं। इससे उसको अनेक रूप कह सक्ते हैं, परन्तु द्रव्य करके ज्ञान अपने एक ज्ञानरूप हीमें है। ऐसा मानना अनेकांत है व सम्यक्त्वका विषय है।

सवैया ३१ सा—कोउ पशु ज्ञानकी अनंत विचित्रता देखि, ज्ञेयको आकार नानारूप विसतर्यो है॥ ताहिको विचारी कहे ज्ञानकी अनेक सत्ता, गहिके एकांत पक्ष लोकनिसो लर्यो है॥ ताको भ्रम भंजिवेको ज्ञानवंत कहे ज्ञान, अगम अगाध निराबाध रस भर्यो है॥ ज्ञायक स्वभाव परयायसों अनेक भयो, यद्यपि तथापि एकतासों नहिं टर्यो है॥ १५॥

शार्दूलविक्रीडित छन्द— ज्ञेयाकारकलङ्कमेचकचिति प्रक्षालनं कल्पय-
न्नेकाकारचिकीर्षया स्फुटमपि ज्ञानं पशुर्नेच्छति।
वैचित्र्येऽप्यविचित्रतामुपगतं ज्ञानं स्वतः क्षालितं
पर्य्यायैस्तदनेकतां परिमृशन्पश्यत्यनेकान्तवित्॥ ९॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—भावार्थ इसो—जो कोई मिथ्यादृष्टी एकांतवादी इसो छे। जो वस्तुको द्रव्य रूप मात्र माने छे, पर्यायरूप नहीं माने छे, तिहितें ज्ञानको निर्विकल्प वस्तु मात्र छे ज्ञेयाकार परिणतिरूप ज्ञानको पर्याय नहीं माने छे। तिहितै ज्ञेय वस्तुको जानतां ज्ञानको अशुद्धपनो माने छे तिहे प्रति स्याद्वादी ज्ञानको द्रव्यरूप एक पर्यायरूप अनेक इसो स्वभाव साधे छे। इसो कहिजे छे, पशुः ज्ञानं न इच्छति—कहतां एकांतवादी मिथ्यादृष्टी जीव, ज्ञानं कहतां ज्ञान मात्र जीव वस्तुको, न इच्छति कहतां न साधिसके न अनुभव गोचर करि सके। किसो छे ज्ञान, स्फुटं अपि—कहतां प्रकाश रूप करि प्रगट छे

यद्यपि किसो छे एकांतवादी। प्रक्षालनं कल्पयन्-कलंक प्रक्षालिवाको अभिप्राय करै छे, कौन विषै। ज्ञेयाकारकलंकमेचकचिति-ज्ञेय कहतां जावंत ज्ञेय ज्ञान विषै वस्तु तिहिके, आकार कहतां ज्ञेयके जानतां होई छे तिहिकी आकृति ज्ञान इसो जो कलंक तिहिकरि मेचक कहतां अशुद्ध हूओ छे इसो छे चिति कहतां जीव वस्तु तिहि विषै। भावार्थ इसो-जो ज्ञेयको जानै छे ज्ञान तिहिको स्वभाव नहीं मानै छे अशुद्धपनो करि मानै छे, एकांतवादी मिथ्यादृष्टी जीव। एकांतवादीका अभिप्राय क्यूं छे, एकाकारचिकीर्षया-एकाकार कहतां समस्त ज्ञेयकै जानपनै करि रहित होत संते निर्विकल्परूप ज्ञानको परिणाम, चिकीर्षया कहतां यदा इसो होय तदा ज्ञान शुद्ध छे इसो छे अभिप्राय एकांतवादीको। तिहे प्रति एक अनेक ज्ञानको स्वभाव साधै स्याद्वादी सम्यग्दृष्टी जीव अनेकांतवित् ज्ञानं पश्यति-अनेकांत कहतां स्याद्वादी जीव ज्ञानं कहतां ज्ञानमात्र जीव वस्तुको पश्यति कहतां साधि सकै अनुभव करि सकै। किसो छे ज्ञान स्वतः क्षालितं कहतां सहज ही शुद्ध स्वरूप छे, स्याद्वादी ज्ञानको किसो जानि अनुभवै छे। तत् वैचित्र्ये अपि अविचित्रतां पर्यायैः अनेकतां परिगतं परिमृशन्-तत् कहतां ज्ञान मात्र जीव वस्तु, वैचित्र्ये अपि अविचित्रतां कहतां अनेक ज्ञेयाकार करि पर्यायरूप अनेक छे तथापि द्रव्यरूप एक छे। पर्यायैः अनेकतां परिगतं कहतां यद्यपि द्रव्यरूप एक छे तथापि अनेक ज्ञेयाकाररूप पर्याय करि अनेकपनाको पावै छे। इसो स्वरूपको अनेकांतवादी साधि सकै छे, अनुभव गोचर करि सकै छे। परिमृशन् कहतां इसो द्रव्यरूप पर्यायरूप वस्तुको अनुभवतो होतो स्याद्वादी इसो नाम पावै छे।

भावार्थ-यहां उस एकांतवादीको खंडन किया है जो ज्ञानको मात्र एकाकार द्रव्यरूप ही मानता है, उसमें जो ज्ञेयके निमित्तसे अनेक आकार झलकते हैं उन पर्यायोंका होना ज्ञानका स्वभाव नहीं मानता है। स्याद्वादी समझता है कि ज्ञान एकरूप भी है अनेकरूप भी है। द्रव्य अपेक्षा एक है क्योंकि आतमाका एक गुण है तथापि ज्ञेयाकार परिणमनेकी अपेक्षा अनेकरूप भी है। एकांतवादि जानता है कि ज्ञानमें अनेक ज्ञेयाकारका होना ज्ञानका स्वभाव नहीं किन्तु ज्ञानमें विकार है, अशुद्धता है, स्याद्वादी जानता है कि ज्ञानका स्वभाव ही अनेकरूप है। इसतरह अनेकांती वस्तुको जैसा है वैसा साधता है तथा अनुभवता है। एकांतमती एक अंशको ही मानकर वस्तु स्वरूपसे दूर होजाता है।

सवैया ३१ सा-कोउ कुधी कहे ज्ञानमांहि ज्ञेयको आकार, प्रति भासि रह्यो है कलंक ताहि धोईये ॥ जब ध्यान जलसों पखारिके धवल कीजे, तब निराकार शुद्ध ज्ञानमई होईये ॥ तासों स्यादवादी कहे ज्ञानको स्वभाव यहै, ज्ञेयको आकार वस्तु मांहि कहां खोईये ॥ जैसें नाना रूप प्रतिबिंबकी झलक दीखे, यद्यपि तथापि आरसी विमल जोईये ॥ १६ ॥

शार्दूलविक्रीडित छन्द–प्रत्यक्षालिखितस्फुटस्थिरपरद्रव्यास्तितावञ्चितः
स्वद्रव्यानवलोकनेन परितः शून्यः पशुर्नश्यति।
स्वद्रव्यास्तितया निरूप्य निपुणं सद्यः समुन्मज्जता
स्याद्वादी तु विशुद्धबोधमहसा पूर्णो भवन् जीवति ॥ ९ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ–भावार्थ इसो–जो कोई एकांतवादी मिथ्यादृष्टि इसो छे जो पर्याय मात्रको वस्तुकरि माने छे तिहितै ज्ञेयके जानतां ज्ञेयाकार परिणयो छे जो ज्ञानको पर्याय तिहिको, ज्ञेयके अस्तित्वपने करि ज्ञानको अस्तित्वपनो माने छे। ज्ञेय तहि भिन्न निर्विकल्प ज्ञान मात्र वस्तुको नहीं माने छे, तिहितै इसो भाव पाइजै छे जो परद्रव्यके अस्तित्वपने ज्ञानको अस्तित्वपनो छे, ज्ञानके अस्तित्वपने करि ज्ञानको अस्तित्वपनो न छे तिहि प्रति उत्तर इसो जो ज्ञान वस्तु आपणे अस्तित्वपने करि अस्तित्वपनो छे तिहिका भेद चारि छे। ज्ञानमात्र जीववस्तु स्वद्रव्यपने अस्ति, स्वक्षेत्रपने अस्ति, स्वकालपने अस्ति, स्वभाव पने अस्ति, परद्रव्यपने नास्ति, परक्षेत्रपने नास्ति, परकालपने नास्ति, परभावपने नास्ति तिहिको लक्षण, स्वद्रव्य कहतां निर्विकल्प मात्र वस्तु, स्वक्षेत्र कहतां आधार मात्र वस्तुका प्रदेश, स्वकाल कहतां वस्तु मात्रकी मूल अवस्था, स्वभाव कहतां वस्तुकी मूलकी सहज शक्ति, परद्रव्य कहतां सविकल्प भेद कल्पना, परक्षेत्र कहतां जो वस्तुका आधारभूत प्रदेश निर्विकल्प वस्तुमात्र करि कह्या था तेई प्रदेश सविकल्प भेदकल्पना करि परप्रदेश बुद्धिगोचर करि कहिजे छे। परकाल कहतां द्रव्यकी मूलकी निर्विकल्प अवस्था सोई अवस्थांतर भेद रूप कल्पना करि, परभाव कहतां द्रव्यकी सहज शक्तिको पर्यायरूप अनेक अंशकरि भेद कल्पना इसो कहिजे छे। पशुः नश्यति कहतां एकांतवादी मिथ्यादृष्टी जीव जीव स्वरूपको नहीं साधि सकै छे। किसो छे। परितः शून्यः कहतां सर्व प्रकार तत्वज्ञान करि शून्य छे। किसा थकी। स्वद्रव्यानवलोकनेन–स्वद्रव्य कहतां निर्विकल्प वस्तु मात्र तिहिको अनवलोकनेन कहतां नहीं प्रतीति करे छे, और किसो छे। प्रत्यक्षालिखितस्फुट स्थिरपरद्रव्यास्तिता वंचितः–प्रत्यक्ष कहतां असहायपने, अलिखित कहतां लिख्या होहि जिसा इसा छे, स्फुट कहतां जिसा छे तिसा, स्थिर कहतां अमिट छे, परद्रव्य कहतां ज्ञेयाकार ज्ञानको परिणाम तिहिकरि मान्यो छे, अस्तिता कहतां अस्तित्वपनो तिहिकरि वंचितः कहतां ठग्यो छे इसो छे एकांतवादी मिथ्यादृष्टीजीव, तु स्याद्वादी पूर्णो भवन् जीवति–तु कहतां एकांतवादी कहै छे त्यों नहीं छे। स्याद्वादी सम्यग्दृष्टि जीव, पूर्णो भवन् कहतां पूरो होतो, जीवति कहतां ज्ञान मात्र जीव वस्तु इसो साधिसकै अनुभव करि सकै, किसैकरि। स्वद्रव्यास्तितया–स्वद्रव्य कहतां निर्विकल्प ज्ञानशक्ति मात्र वस्तु तिहिको अस्तितया कहतां

अस्तित्वस्नै करि। कांयोकरि। निपुणं निरूप्य कहतां ज्ञानमात्र जीव वस्तुको छे अनुभव इसो होइकरि, किसै करि। विशुद्धबोधमहसा–विशुद्ध कहतां निर्मल इसो बोध कहतां भेदज्ञान। तिहको महसा कहतां प्रताप करि। किसो छे। सद्यः समुन्मज्जता कहतां तेही काल प्रगट होइ छे।

भावार्थ–हरएक द्रव्य स्वद्रव्य क्षेत्र काल भावकी अपेक्षा अस्तिरूप है। परद्रव्य क्षेत्र काल भावकी अपेक्षा नास्तिरूप है। स्याद्वादी वस्तुको उभयरूप मानता है। एकांती एकरूप मानकर वस्तुका यथार्थ स्वरूप अनुभव नहीं कर पाता है। यहां इस बातको साधा है कि ज्ञान वस्तु पर ज्ञेयोंको जानते हुए भी पर्यायरूप होते हुए भी आप अपने स्वरूप अवश्य अस्तिरूप है–अपना स्वरूप खो नहीं बैठती है। जैसे दर्पणमें अनेक पदार्थ झलकते हैं तो झलको, उनके झलकनेसे दर्पणकी कांतिकी भिन्न सत्ताका अभाव नहीं होसक्ता। दर्पण अपनी कांतिकी ही अस्तिरूप है, उस कांतिका यह स्वभाव है कि उसमें अनेक पदार्थ झलकैं ऐसा ही ज्ञानका स्वभाव है। ज्ञान अपने आप करि अस्तिरूप है। उसमें अनेक पदार्थ झलकैं यह भी ज्ञानका स्वभाव है, उनके झलकनेसे ज्ञान अपने अस्तित्वको खो नहीं बैठता है।

सवैया ३१ सा–कोउ अज्ञ कहे ज्ञेयाकार ज्ञान परिणाम, जौलौं विद्यमान तौलौं ज्ञान परगट है॥ ज्ञेयके विनाश होत ज्ञानको विनाश होय, ऐसी वाके हिरदे मिथ्यातकी अटल है॥ तासूं समकितवन्त कहे अनुभौ कहानि, पर्याय प्रमाण ज्ञान नानाकार नट है॥ निरविकलप अविनश्वर दरवरूप, ज्ञान ज्ञेय वस्तुसों अव्यापक अघट है॥ १७॥

शार्दूलविक्रीडित छन्द–सर्वद्रव्यमयं प्रपद्य पुरुषं दुर्वासनावासितः

स्वद्रव्यभ्रमतः पशुः किल परद्रव्येषु विश्राम्यति।

स्याद्वादी तु समस्तवस्तुषु परद्रव्यात्मना नास्तितां

जानन्निर्मलशुद्धबोधमहिमा स्वद्रव्यमेवाश्रयेत्॥ ७॥

खण्डान्वय सहित अर्थ–भावार्थ इसो–जो कोई मिथ्यादृष्टी जीव इसो छे जो वस्तुको द्रव्यरूप मानै छे पर्यायरूप नहीं मानै छे तिहितै समस्त ज्ञेय वस्तु ज्ञान विषै गर्भित मानै छे, इसो कहै छे। उष्णको जानतां ज्ञान उष्ण छे, शीतलको जानता ज्ञान शीतल छे। तिहिप्रति उत्तर इसो जो ज्ञान ज्ञेयको ज्ञायक मात्र तो छे परन्तु ज्ञेयका गुण ज्ञेय विषै छे ज्ञान विषै ज्ञेयका गुण नहीं छे। किल पशुः विश्राम्यति–किल कहतां अवश्य करि, पशुः कहतां एकांतवादी मिथ्यादृष्टी जीव, विश्राम्यति कहतां वस्तु स्वरूपको साधिवाको असमर्थ होतो अत्यन्त खेदखिन्न होइ छे। किसा थकी, परद्रव्येषु स्वद्रव्यभ्रमतः–परद्रव्येषु कहतां ज्ञेयको जानतां ज्ञेयकी आकृति परिणवै छे ज्ञान इसो छे ज्ञानको पर्याय तिहि विषै, स्वद्रव्यभ्रमतः स्वद्रव्य कहतां निर्विकल्प सत्ता मात्र ज्ञान वस्तु तिहिरूप, भ्रमतः कहतां होइ

छे भ्रांति। भावार्थ इसो—जो यथा उष्णको जानतां उष्णकी आकृति ज्ञान परिणवै छे इसो देखि करि ज्ञानको उष्ण स्वभाव मानै छे मिथ्यादृष्टी जीव, दुर्वासनावासितः—दुर्वासना कहतां अनादिको मिथ्यात्व संस्कार तिहि करि वासितः कहतां हुओ छे, स्वभाव तहि भ्रष्ट इसो क्यों छे, सर्वद्रव्यमयं पुरुषं प्रपद्य—सर्व द्रव्य कहतां जावंत समस्त द्रव्य त्यांहको छे द्रव्यपनो तिहि, मय कहतां तेता समस्त स्वभाव जीव विषैं छे। इसो पुरुषं कहतां जीव वस्तुको, प्रपद्य कहतां प्रतीति रूप इसो मानि करि। इसो मानै छे मिथ्यादृष्टी जीव। तु स्याद्वादी स्वद्रव्यं आश्रयेत् एव—तु कहतां एकांतवादी मानै छे त्यों न छे। स्याद्वादी मानै छे त्यों छे। स्याद्वादी कहतां अनेकांतवादी, स्वद्रव्यं आश्रयेत् कहतां ज्ञान मात्र जीव वस्तु इसो साधि सकै अनुभव करि सकै। सम्यग्दृष्टि जीव एव कहतां योही छे। किसो छे स्याद्वादी, समस्तवस्तुषु परद्रव्यात्मना नास्तितां जानन्—समस्त वस्तुषु कहतां ज्ञान विषै प्रतिबिंब्या छे समस्त ज्ञेयको स्वरूप तिहविषैं, परद्रव्यात्मना कहतां अनुमयो छे ज्ञान वस्तु तहि भिन्नपनो तिहि करि, नास्तितां विदन् कहतां नास्तिपनो अनुभवतो होतो। भावार्थ इसो—जो समस्त ज्ञेय ज्ञान विषैं उदीपै छे। परन्तु ज्ञेय रूप छे, ज्ञान रूप नहीं हूओ छे। किसो छे स्याद्वादी। निर्मलशुद्धबोधमहिमा—निर्मल कहतां मिथ्यादोष तहि रहित इसो, शुद्ध कहतां रागादि अशुद्ध परिणति तहि रहित इसो छे बोध कहतां अनुभव ज्ञान तिहि करि महिमा कहतां प्रताप जिहिको इसो छे।

भावार्थ—यहांपर यह बताया है कि परद्रव्य अपेक्षा आत्मामें नास्तिता है। आत्माका ज्ञान अपने स्वरूपकरि अस्तिरूप है परन्तु जिन ज्ञेय पदार्थोंको जानता है उनकी अपेक्षा नास्तिरूप है। स्याद्वादी इस भेदको जानता है, एकांतवादी ज्ञानके भिन्न अस्तित्वको भूलकर ज्ञेयरूप ही मान लेता है। ज्ञानके उष्णता व शीतलता झलकती है तब एकांती ज्ञान ही उष्ण है व शीतल है ऐसा भ्रमसे मान लेता है। इसलिये वह एकांती अपने शुद्ध ज्ञान स्वभावका जैसा उसका स्वरूप है वैसा अनुभव नहीं कर पाता है। सर्व द्रव्यमय आपको मान लेता है अपनी सत्ता नाश कर लेता है।

सवैया ३१ सा—कोउ मन्द कहै धर्म अधर्म आकाश काल, पुद्गल जीव सब मेरो रूप जगमें॥ जाने न मरम निज माने आपा पर वस्तु, बांधे दृढ करम धरम खोवे डगमें॥ समकिती जीव शुद्ध अनुभौ अभ्यासे ताते, परको ममत्व त्यागि करे पगपगमें॥ अपने स्वभावमें मगन रहे आठो जाम, धारावाही पंथिक कहावे मोक्ष मगमें॥ १८॥

शार्दूलविक्रीडित छन्द—भिन्नक्षेत्रनिषण्णबोध्यनियतव्यापारनिष्ठः सदा,
सीदत्येव बहिः पतन्तमभितः पश्यन्पुमांसं पशुः।

स्वक्षेत्रास्तितया निरुद्धरभसः स्याद्वादवेदी पुन-
स्तिष्ठत्यात्मनिखातबोध्यनियतव्यापारशक्तिर्भवन् ॥ ८ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—भावार्थ इसो-जो कोई मिथ्यादृष्टी जीव इसो छे वस्तुको पर्यायरूप मानै छे, द्रव्यरूप नहीं मानै छे। तिहितै जावंत समस्त वस्तुका छे आधारभूत प्रदेश पुंज त्योहको जानै छे ज्ञान, जानतो होतो तिहिकी आकृति परिणवै छे ज्ञान इहिको नाम परक्षेत्र छै तिहि क्षेत्रको ज्ञानको क्षेत्र मानै छे। एकांतवादी मिथ्यादृष्टी जीव तिहि क्षेत्र तहिं सर्वथा भिन्न छे, चैतन्य प्रदेश मात्र ज्ञानको क्षेत्र तिहे नहीं मानै छे। तिहे प्रति समाधान इसो जो, ज्ञान वस्तु परक्षेत्रको जानै छे। परन्तु आपणे क्षेत्र छे। परको क्षेत्र ज्ञानको क्षेत्र नहीं छे, पशुः सीदति एव—पशुः कहतां एकांतवादी मिथ्यादृष्टी जीव, सीदति कहतां ओराकी नाई गलै छे, ज्ञान मात्र जीव वस्तु इसो नहीं साधि सकै छे। एव कहतां निश्चासों योही छे। किसो छे एकांतवादी, भिन्नक्षेत्रनिषण्णबोध्यनियतव्यापारनिष्ठः—भिन्नक्षेत्र कहतां आपणा चैतन्य प्रदेश तहि अन्य छे जे समस्त द्रव्यहंका प्रदेश पुंज तिहिविषै, निषन्न कहतां तिहिकी आकृति रूप परिणवो छै, इसो छै, बोध्यनियतव्यापार कहतां ज्ञेय ज्ञायकको अवश्य संबंध तिहिविषै, निष्ठः कहतां एतावन्मात्रको जानै छे ज्ञानको क्षेत्र इसो छै एकांतवादी मिथ्याष्टीजीव। सदा कहतां अनादिकाल तहिं इसो ही छे और किसो छे मिथ्यादृष्टी जीव। अभितः वहिः पतंतं पुमांसं पश्यन्—अभितः कहतां मूल तहि लेइ करि, वहिः पतंतं कहतां परक्षेत्र रूप परिणयो छे इसो पुमांसं कहतां जीववस्तुको, पश्यन् कहतां इसो मानै छे अनुभवै छे इसो छे मिथ्यादृष्टी जीव। पुनः स्याद्वादवेदी तिष्ठति—पुनः कहतां एकांतवादी ज्यों कहै छे त्यों नहीं छे। स्याद्वादवेदी कहतां अनेकांतवादी, तिष्ठति कहतां ज्यों मानै छे त्यों थल होई। भावार्थ इसो जो वस्तुको साधिसकै। किसो छे स्याद्वादी, स्वक्षेत्रास्तितयानिरुद्धरभसः—स्वक्षेत्र कहतां समस्त परद्रव्य तहि भिन्न आपणे स्वरूप चैतन्य प्रदेश तिहिकी, अस्तितया कहतां सत्तापनो तिहिकरि निरुद्ध-रभसः कहतां परिणयो छे ज्ञानको सर्वस्व जिहिको इसो छे स्याद्वादी और किसो छे। आत्मनिखातबोध्यनियतव्यापारशक्तिर्भवन्—आत्म कहतां ज्ञान वस्तु तिहिं विषै, निखात कहतां प्रतिबिंबरूप छे। इसो छे, बोध्यनियतव्यापार कहतां ज्ञेय ज्ञायकरूप अवश्य सम्बन्ध इसो छे, शक्तिः कहतां जान्यो छे ज्ञान वस्तुको सहज जिहि इसो छे, भवन् कहतां होतो संतो। भावार्थ इसो—जो ज्ञान मात्र जीव वस्तु परक्षेत्रको जानै इसो सहज छे, परन्तु आपणा प्रदेशह विषै छे पराया प्रदेशहं विषै नहीं छे। इसो मानै छे स्याद्वादी जीव तिहितै वस्तुको साधि सकै, अनुभव करि सकै।

भावार्थ—यहांपर यह सिद्ध किया है कि जीवका ज्ञान स्वक्षेत्रसे अस्तिरूप है। एकांतवादी ऐसा मान लेता है कि ज्ञानमें जो ज्ञेयोंके आकार झलकते हैं उन्हींके आकार ज्ञान है। ज्ञान अपना कोई भिन्न प्रदेश नहीं रखता है। यह ज्ञान ठीक नहीं है। जीवके प्रदेशोंमें ज्ञान गुण व्यापक है। इसलिये जीवके असंख्यात प्रदेश ही ज्ञानको अपना क्षेत्र है। भले ही उस ज्ञानमें परक्षेत्र झलकें। अर्थात् दूसरे द्रव्योंके प्रदेश क्षेत्र प्रगट हों तथापि ज्ञानका क्षेत्र भिन्न है, ज्ञेयोंका क्षेत्र भिन्न है। ऐसा सम्यग्दृष्टि जीव जानता है। एकांतवादी जगतके पदार्थोंके क्षेत्रको ही अपना क्षेत्र मान लेता है।

सवैया ३१ सा—कोऊ सठ कहे जेतो ज्ञेयका परमाण, तेतो ज्ञान ताते कछु अधिक न और है॥ तिहुं काल परक्षेत्र व्यापि परणम्यो माने, आपा न पिछने ऐसी मिथ्यादृग दोर है॥ जैनमती कहे जीव सत्ता परमाण ज्ञान, ज्ञेयसों अव्यापक जगत सिरमोर है॥ ज्ञानके प्रभामें प्रतिबिंबित अनेक ज्ञेय, यद्यपि तथापि थिति न्यारी न्यारी ठोर है॥ १९॥

शार्दूलविक्रीडित छन्द—स्वक्षेत्रस्थितये पृथग्विधपरक्षेत्रस्थितार्थोज्झनं

तुच्छीभूय पशुः प्रणश्यति चिदाकारात्सहार्थैर्वमन्।

स्याद्वादी तु वसन् स्वधामनि परक्षेत्रे विदन्नास्तितां

त्यक्तार्थोऽपि न तुच्छतामनुभवत्याकारकर्षी परान्॥ ९॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—भावार्थ इसो जो कोइ मिथ्यादृष्टी एकांतवादी जीव इसो छे जो वस्तुको द्रव्यरूप मानै छे पर्यायरूप नहीं मानै छे तिहितै ज्ञेय वस्तुका प्रदेशहको जानतो ज्ञानको अशुद्धपनो मानै छे ज्ञानको इसो ही स्वभाव छे। सो ज्ञानको पर्याय छे इसो नहीं मानै छे। तीहेप्रति उत्तर इसो जो ज्ञान वस्तु आपणा प्रदेशह छे, ज्ञेयका प्रदेश जानै छे इसो स्वभाव छे। अशुद्धपनो नहीं छे इसो मानै छे स्याद्वादी, इसो कहिजै छे। पशुः प्रणश्यति—पशुः कहतां एकांतवादी मिथ्यादृष्टी जीव, प्रणश्यति कहतां वस्तु मात्र साधिवा तहि भ्रष्ट छे, अनुभव करिवाको भ्रष्ट छे, किसो होइ करि भ्रष्ट छे, तुच्छीभूय कहतां तत्वज्ञान तहि शून्य होइ करि, और किसी छे, अर्थैः सह चिदाकारान् वमन्—अर्थैः सह कहतां ज्ञानगोचर छे जे ज्ञेयका प्रदेश त्यांहसेती, चिदाकारान् कहतां ज्ञानकी शक्तिको अथवा ज्ञानका प्रदेशहको, वमन् कहतां मूल तहि नास्तिपनो जान्यो छे जिहि इसो छे, और किसो छे। पृथग्विधिः परक्षेत्रे स्थितार्थोज्झनन्—पृथग्विधि कहतां पर्यायरूप छे, परक्षेत्रे कहतां ज्ञेय वस्तुका प्रदेशहको जानतो होतो होइ छे, तिहिकी आकृति ज्ञानकी परिणति तिहि रूप, स्थित कहतां परिणवै छे, अर्थ कहतां ज्ञान वस्तु तिहिको, उज्झनन् कहतां इसो ज्ञान शुद्ध छे इसी बुद्धि करि त्याग करतो होतो इसो

एकांतवादी । किसके निमित्त ज्ञेय परिणति ज्ञानको हेय करे छे, स्वक्षेत्रस्थितये-स्वक्षेत्र कहतां ज्ञानका चैतन्य प्रदेश तिहिकी; स्थितये कहतां थिर लोक निमित्त। भावार्थ इसो-जो ज्ञान वस्तु ज्ञेयका प्रदेशहका जानपना तिहि रहित होइ तो शुद्ध होइ इसो माने छे। एकांतवादी मिथ्यादृष्टी जीव। तिहे प्रति स्याद्वादी कहै छे, तु स्याद्वादी तुच्छतां न अनुभवति-तु कहतां एकांतवादी माने छे त्यों नहीं छे, स्याद्वादी माने छे त्यों छे। स्याद्वादी कहतां अनेकांत दृष्टि जीव; तुच्छतां कहतां ज्ञान वस्तु ज्ञेयके क्षेत्रको जानें छे आपणा प्रदेशहथे सर्वथा शून्य छे इसो, न अनुभवति कहतां नहीं माने छे, ज्ञान वस्तु ज्ञेयका क्षेत्रको जानें छे ज्ञेय क्षेत्ररूप नहीं छे इसो माने छे। किसो छे स्याद्वादी, त्यक्तार्थः अपि-कहतां ज्ञेय क्षेत्रकी आकृति परिणवै छे ज्ञान इसो माने छे तो फुनि ज्ञान आपने क्षेत्र छे इसो माने छे, और किसो छे स्याद्वादी, स्वधामनि वसन्-कहतां ज्ञान वस्तु आपणा प्रदेशह विषै छे इसो अनुभवै छे, और किसो छे, परक्षेत्रे नास्तितां विदन्-परक्षेत्रे कहतां ज्ञेय प्रदेशकी आकृति परिणयो छे ज्ञान तिहिविषै, नास्तितां विदन् कहतां जानै छे तो ज्ञानहु तथापि एतावन्मात्र ज्ञानको क्षेत्र नहीं छे इसो माने छे स्याद्वादी, और किसो छे। परात् आकारकर्षी कहतां परक्षेत्रकी आकृति परिणयो छे ज्ञानको पर्याय तिहथकी भिन्नपने ज्ञानवस्तुका प्रदेशहको अनुभव करिवाको समर्थ छे तिहितहि स्याद्वाद वस्तु स्वरूपको साधक, एकांतपनो वस्तुस्वरूपको घातक। तिहितै स्याद्वाद उपादेय छे।

भावार्थ-यहां इस एकांतवादको हटाया है जो ज्ञानको मात्र द्रव्यरूप मानता है उसमें ज्ञेयोंके आकार जाननेकी शक्ति है इस बातको नहीं मानता है। जब ज्ञान ज्ञेयोंको जानता है तब ज्ञानको अशुद्ध मानता है। शुद्धता तब ही मानता है जब ज्ञान ज्ञेयोंके आकारोंको न जाने। स्याद्वादी कहता है कि ऐसा माननेसे ज्ञान वस्तुका ही नाश हो जायगा। ज्ञान यद्यपि अपने आत्माके प्रदेशोंको छोड़कर कहीं नहीं जाता है तथापि वह समस्त ज्ञेयोंको जाननेको समर्थ है। यह ज्ञानका स्वभाव है जो उसमें ज्ञेयोंके आकार झलकें। परक्षेत्रोंका झलकना कोई अशुद्धपना नहीं है। वह ज्ञानी जानता है कि मेरा क्षेत्र मेरे पास है, ज्ञेयोंका क्षेत्र ज्ञेयोंके पास है, ज्ञेयोंका क्षेत्र मेरे क्षेत्रमें नहीं है, मेरा क्षेत्र ज्ञेयोंमें नहीं है; इस तरह अपनेमें परक्षेत्र अपेक्षा नास्तिताको अनुभवता हुआ यथार्थ वस्तुको पाता है तब एकांती तो ज्ञानके स्वभावको बिगाड़ डालता है।

सवैया ३१ सा—कोउ शुन्यवादी कहे ज्ञेयके विनाश होत, ज्ञानको विनाश होय कहो कैसे जीजिये ॥ ताते जीवितव्य ताकी थिरता निमित्त सब, ज्ञेयाकार परिणामनिको नाश कीजिये ॥ सत्यवादी कहे भैया हूजे नांहि खेद खिन्न, ज्ञेयसो विरचि ज्ञान भिन्न मानि लीजिये ॥ ज्ञानकी शकति साधि अनुभौ दशा अराधि, करमकों त्यागिके परम रस पीजिये ॥ २० ॥

शार्दूलविक्रीडित छन्द–पूर्वालम्बितबोध्यनाशसमये ज्ञानस्य नाशं विदन्
सीदत्येव न किञ्चनापि कलयन्नत्यन्ततुच्छः पशुः।
अस्तित्वं निजकालतोऽस्य कलयन् स्याद्वादवेदी पुनः
पूर्णस्तिष्ठति बाह्यवस्तुषु मुहुर्भूत्वा विनश्यत्स्वपि ॥ १० ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ–भावार्थ इसो जो–कोई मिथ्यादृष्टी जीव इसो मानै छे जो वस्तुको पर्याय मात्र मानै छे द्रव्य रूप नहीं मानै छे, तिहितै ज्ञेय वस्तुको अतीत अनागत वर्तमान सम्बन्धी अनेक अवस्था भेद छे त्याहको जानतो होतो ज्ञानको पर्याय रूप अनेक अवस्था भेद होहि छे त्यांहमांहे ज्ञेय सम्बन्धी पहलो अवस्था भेद विनशै छे, तिहिकै विनशतां तिहिकी आकृति परिणयो छे। ज्ञान पर्यायको अवस्था भेद फुनि विनशै छे। तिहिके अवस्था भेदके विनशतां एकांतवादी मूल तहि ज्ञान वस्तुको विनाश मानै छे तिहे प्रति समाधान इसो जो ज्ञान वस्तु अवस्था भेद करि विनशै छे, द्रव्य रूप विचारतां अपनी जानपनो अवस्था करि शाश्वतो छे, न उपजै छे न विनशै छे इसो समाधान स्याद्वादी कहै छे। इसो कहिजै छे, पशुः सीदति एव–पशुः कहतां एकांतवादी, सीदति कहतां वस्तुको स्वरूपको साधिवाको भ्रष्ट छे, एव कहतां अवश्य यों छे। किसो छे एकांतवादी अत्यन्ततुच्छः–कहतां वस्तुको अस्तित्वपनो जानिवा तहि अति ही शून्य छे। और किसो छे, न किंचन् अपि कलयत्–न किंचन् कहतां ज्ञेय अवस्थाको जानपनो मात्र ज्ञान छे। तिहितै भिन्न किछु वस्तु सत्वरूप ज्ञान वस्तु न छे, अपि कहतां अंश मात्र फुनि न छे। कलयन् कहतां इसो अनुभव रूप प्रतीति करै छे, और किसो छे, पूर्वालंबितबोध्यनाश-समये ज्ञानस्य नाशं विदन्–पूर्व कहतां कोई पहलो अवसर तिहि विषै, आलंबित कहतां जानि करि तिहिकी आकृति हुओ छे, बोध्य कहतां ज्ञेयाकार ज्ञानको पर्याय तिहितै, नाश समये कहतां कोई अन्य अवसर विनाश सम्बन्धी तिहि विषै, ज्ञानस्य कहतां ज्ञान मात्र जीव वस्तुको, नाशं विदन् कहतां नाशको मानै छे। इसो छे एकांतवादी मिथ्यादृष्टी जीव, तीहे प्रति स्याद्वादी संबोधै छे। पुनः स्याद्वादवेदी पूर्णः तिष्ठति–पुनः कहतां एकांत दृष्टि ज्यों कहे छे त्यों न छे, स्याद्वादी ज्यों मानै छे त्यों छे। स्याद्वादवेदी अनेकांत अनु-भव शील जीव पूर्णः तिष्ठति कहतां त्रिकाल गोचर ज्ञान मात्र जीव वस्तु इसो अनुभव करता गाढ़ो छे। किसो गाढ़ो छे, बाह्यवस्तुषु मुहुः भूत्वा विनश्यत्सु अपि–बाह्यवस्तुषु कहतां समस्त ज्ञेय अथवा ज्ञेयाकार परिणवा छे ज्ञानको पर्यायको अनेक भेद तिहिको, मुहुः भूत्वा कहतां अनेक पर्यायरूप हो हि छे, विनश्यत्सु अपि अनेकवार विनशै छे और किसो छे। अस्यनिजकालतः अस्तित्वं कलयन्–अस्य कहतां ज्ञानमात्र जीव वस्तुको, निजकालतः

कहतां त्रिकाल शाश्वती ज्ञान मात्र अवस्था तिहि थकी, अस्तित्वं कलयन् कहतां वस्तुपनो अथवा अस्तित्वपनो अनुभवै छै स्याद्वादी जीव।

भावार्थ-यहां यह बताया है कि ज्ञानी ज्ञानको द्रव्य पर्यायरूप मानता है तब एकांती मात्र पर्यायरूप मानके ज्ञानके स्वभावका ही नाश कर डालता है। अज्ञानी परवस्तुकी अवस्थाका ज्ञानमें झलकना सो ही ज्ञानका अस्तित्व मानता है। परवस्तुकी अवस्थाका बिनशना सो ही ज्ञानका विनशना मानता है। वह यह नहीं समझता है कि ज्ञान ज्ञेयोंसे बिलकुल भिन्न गुण है वह द्रव्यरूपसे नित्य रहनेवाला है, ज्ञानके भीतर ज्ञेय पर्याय पलटता है तौभी ज्ञानका नाश नहीं है। स्याद्वादी भलेप्रकार जानता है कि ज्ञान अपने काल अपेक्षा अस्तिरूप है। अर्थात् ज्ञान नित्य अविनाशी है। ज्ञेयाकारोंके नाश होनेसे ज्ञानका नाश नहीं है।

सवैया ३१ सा—कोऊ क्रूर कहे काया जीव दोउ एक पिंड, जब देह नसेगी तब ही जीव मरेगो॥ छाया कोसो छल कीधो माया कोसो परपंच, कायामें समाइ फिरि कायाकों न धरेगो॥ सुधी कहे देहसों अव्यापक सदैव जीव, समै पाय परको ममत्व परिहरेगो॥ अपने स्वभाव आइ धारणा धरामें धाइ, आपमें मगन ह्वैके आप शुद्ध करेगो॥ ३१॥

दोहा-ज्यों तन कंचुकि त्यागसे, विनसे नांहि भुजंग। त्यों शरीरके नाशते, अलख अखण्डित अंग॥२२॥

स्रग्धरा छंद-अर्थालम्बनकाल एव कलयन् ज्ञानस्य सत्त्वं बहि-
ज्ञेयालम्बनलालसेन मनसा भ्राम्यन्पशुर्नश्यति।
नास्तित्वं परकालतोऽस्य कलयन् स्याद्वादवेदी पुन-
स्तिष्ठत्यात्मनि खातनित्यसहजज्ञानैकपुंजीभवन्॥ ११॥

खण्डान्वय सहित अर्थ-भावार्थ इसो-जो कोई मिथ्यादृष्टी एकांतवादी इसो छै जो वस्तुको द्रव्य मात्र मानै छे, पर्यायरूप नहीं मानै छे तिहितै ज्ञेयकी अनेक अवस्थाको मानै छे ज्ञान तिहिको जानतो होतो तिहि आकृति परिणवै छे ज्ञान एता समस्त छे, ज्ञानको पर्याय स्यांह पर्यायको ज्ञानको अस्तित्वपनो मानै छे, मिथ्यादृष्टी जीव तिहि प्रति समाधान इसो जो ज्ञेयकी आकृति परिणवतां जेता छे ज्ञानका पर्याय स्यांह करि ज्ञानको अस्तित्वपनो न छे इसो कहिजे छे, पशुः नश्यति-पशुः कहतां एकांतवादी, नश्यति कहतां वस्तुस्वरूप साधिवा तहि भ्रष्ट होइ छे। किसो छे एकांतवादी, ज्ञेयालम्बनलालसेन मनसा बहिः भ्राम्यन्-ज्ञेय कहतां समस्त द्रव्य तिहिको, आलम्बन कहतां ज्ञेयके अवसर ज्ञानकी सत्ता इसो निहचौ इसोरूप छे, लालसेन कहतां इसो छे अभिप्राय जिहिको इसो छे, मनसा कहतां मन तिहि करि, बहिः भ्राम्यन् कहतां स्वरूप तहि बाहर, उपज्यो भ्रम जिहिको इसो छे। और किसो छे, अर्थालम्बनकाले ज्ञानस्य सत्त्वं कलयन् एव-अर्थ कहतां जीवादि समस्त ज्ञेय वस्तु तिहिको, आलम्बन कहतां जानपनो इसो, काले कहतां तेही समय, ज्ञानस्य कहतां

ज्ञान मात्र वस्तुको, सत्वं कहतां सत्तापनो, कलयन् कहतां इसो अनुभव करै छे। एव कहतां इसो ही छे। तिहे प्रति स्याद्वादी साधै छे, पुनः स्याद्वादवेदी तिष्ठति-पुनः कहतां एकांतवादी ज्यों मानै छे त्यों न छे, स्याद्वादी ज्यों मानै छे त्यों छे। स्याद्वाद वेदी कहतां अनेकांतवादी, तिष्ठति कहतां स्वरूप साधिवाको समर्थ होइ। किसो छे स्याद्वादी, अस्य परकालतः नास्तित्वं कलयन्-अस्य कहतां ज्ञान मात्र जीव वस्तुको, पर कालतः कहतां ज्ञेयावस्थाके जानपना थकी, नास्तित्वं कहतां नास्तिपनो, कलयन् कहतां इसी प्रतीति करै छे स्याद्वादी। और किसो छे। आत्मनि खातनित्यसहजज्ञानैकपुंजीभवन्-आत्मनि कहतां ज्ञानमात्र जीव वस्तु तिहि विषै, खात कहतां अनादि तहि एक वस्तुरूप छे इसो, नित्य कहतां अविनश्वर, सहज कहतां उपाइ बिना द्रव्यको स्वभाव छे इसो, ज्ञान कहतां जानपना रूप शक्ति तिहिको, एकपुंजीभवन् कहतां हौं जीव वस्तु छौं। अविनश्वर रूप छौं। इसो अनुभव करतो होतो इसो छे स्याद्वादी।

भावार्थ-एकांती ज्ञानको द्रव्यरूप एकांतसे मानकर पदार्थोंको जानते हुए ही ज्ञानका अस्तित्व मानता है। ज्ञेयाकारोंके सिवाय भी ज्ञान कोई अविनाशी आत्माका एक गुण है ऐसा नहीं जानता है। स्याद्वादी इस तत्वको समझता है कि ज्ञान नित्य गुण आत्मद्रव्यका है उसमें ज्ञेयोंका जानपना होता है-ज्ञानकी पर्यायें होती हैं तथापि जिनको जानता है उनसे व ज्ञानकी पर्यायोंसे भिन्न कोई ज्ञानगुण है इस बातको नहीं भूलता है। परकाल अपेक्षा अपना नास्तित्व जानता है व स्वकाल अपेक्षा अपना अस्तित्व जानता है।

सवैया ३१ सा—कोउ दुरबुद्धि कहे पहिले न हूतो जीव, देह उपजत उपज्यो है जब आइके॥ जोलौं देह तोलौं देह धारी फिर देह नसे, रहेगो अलख ज्योति ज्योतिमें समाइके॥ सदबुद्धी कहे जीव अनादिको देहधारि, जब ज्ञानी होयगो कवही काल पाइके॥ तवहीसों पर तजि अपनो स्वरूप भजि, पावेगो परम पद करम नसाइके॥ २३॥

स्रग्धरा छन्द-विश्रान्तः परभावभावकलनान्नित्यं बहिर्वस्तुषु
नश्यत्येव पशुः स्वभावमहिमन्येकान्तनिश्चेतनः।
सर्वस्मान्नियतस्वभावभवनज्ञानाद्विभक्तो भवन्
स्याद्वादी तु न नाशमेति सहजस्पष्टीकृतप्रत्ययः॥ १२॥

खण्डान्वय सहित अर्थ-भावार्थ इसो जो कोई एकांतवादी मिथ्यादृष्टी जीव इसो छे जो वस्तुको पर्याय मात्र मानै छे, द्रव्यरूप नहीं मानै छे, तिहितै जावंत समस्त ज्ञेय वस्तुको जावंत छे शक्तिरूप स्वभाव त्यांहको जानै छे ज्ञान, जानतो होतो तिहिकी आकृति परिणवै छे। तिहितै ज्ञेयकी शक्तिकी आकृति छे ज्ञानको पर्याय तिहिकरि ज्ञान वस्तुकी

सत्ताको मानै छे। तिहितहिं भिन्न छे आपणी शक्तिकी सत्ता मात्र तीहे नहीं मानै छे, इसो छे एकांतवादी। तीहे प्रति स्याद्वादी समाधान करे छे जो ज्ञान मात्र जीव वस्तु समस्त ज्ञेय शक्तिको जानै छे इसो सहज छे। परन्तु आपणी ज्ञान शक्ति करि अस्तिरूप छे इसो कहिजै छे, पशुः नश्यति एव–पशुः कहतां एकांतवादी, नश्यति कहतां वस्तुकी सत्ता साधिवातै भ्रष्ट होइ छे, एव कहतां निहचासौं, किसो छे एकांतवादी, बहिर्वस्तुषु नित्यं विश्रान्तः–बहिर्वस्तुषु कहतां ज्ञेय वस्तुकी अनेक शक्तिकी आकृति परिणयो छे ज्ञानका पर्याय त्यांह विषै, नित्यं विश्रांतः कहतां पर्याय मात्रको मानै छे ज्ञान वस्तु, इसो छे निहचौ जिहिको, इसो छे। किसा थकी इसो छे, परभावभावकलनात्–परभाव कहतां ज्ञेयकी शक्ति आकृति छे ज्ञानके पर्याय तिहि विषै, भाव कलनात् कहतां अवधार्यो छे ज्ञान वस्तुको अस्तित्वपनो इसा झूठा अभिप्राय थकी। और किसो छे एकांतवादी, स्वभावमहिमनि एकांतनिश्चेतनः–स्वभाव कहतां जीवकी ज्ञान मात्र निज शक्ति, तिहिकी, महिमनि कहतां अनादि निधन शाश्वतो प्रताप तिहि विषै, एकांत निश्चेतनः कहतां सर्वथा शून्य छे। भावार्थ इसो–जो स्वरूप सत्ताको नहीं मानै छे, इसो छे एकांतवादी। तिहे प्रति स्याद्वादी समाधान करे छे, तु स्याद्वादी नाशं न एति–तु कहतां एकांतवादी मानै छे त्यों न छे। स्याद्वादी कहतां अनेकान्तवादी, नाशं कहतां विनाशको, न एति कहतां नहीं पावै छे। भावार्थ इसो–जो ज्ञान मात्र वस्तुको सत्तापनो साधि सकै छे। किसो छे अनेकांतवादी जीव, सहजस्पष्टीकृतप्रत्ययः–सहज कहतां स्वभाव शक्ति मात्र इसो अस्तित्वपनो तिहि सम्बंधी, स्पष्टीकृत कहतां दृढ़ कीयो छे, प्रत्यय कहतां अनुभव जिहिको इसो छे और किसो छे। सर्वस्मात् नियतस्वभावभवनज्ञानात् विभक्तो भवन्–सर्वस्मात् कहतां जावंत छे, नियतस्वभाव कहतां आपणी आपणी शक्ति विराजमान इसा जे ज्ञेय रूप जीवादि पदार्थ त्यांहको, भवन कहतां सत्तापनो तिहिकी आकृति परिणयो छे इसो, ज्ञानात् कहतां जीवको ज्ञानगुणको पर्याय तिहि थकी, विभक्तो भवन् कहतां भिन्न छे ज्ञान मात्र सत्तापनो इसो अनुभव करतो होतो।

भावार्थ–एकांतवादी ज्ञानको अपनी शक्तिसे नित्य रहनेवाला आत्माका गुण है ऐसा न मानकर जो ज्ञानके द्वारा ज्ञेय पदार्थोंकी शक्तियें झलकती हैं उन ही रूप ज्ञानको मान लेता है। स्याद्वादी समझता है कि ज्ञान आत्माका एक भिन्न गुण है उसका यह स्वभाव है कि उसमें ज्ञेयोंके भाव झलकें। जैसे दर्पणकी कांतिसे दर्पणमें झलकनेवाले पदार्थ भिन्न हैं वैसे ज्ञानकी शक्तिसे भिन्न ज्ञेयोंकी शक्तियां हैं जो ज्ञानमें झलकती हैं। इस तरह स्वभाव अपेक्षा अपना अस्तिपना स्थिर रखता है—

सवैया ३१ सा—कोउ पक्षपाती जीव कहे ज्ञेयके आकार, परिणयो ज्ञान ताते चेतना असत है ॥ ज्ञेयके नसत चेतनाको नाश ता कारण, आतमा अचेतन त्रिकाल मेरे मत है ॥ पंडित कहत ज्ञान सहज अखंडित है, ज्ञेयको आकार धरे ज्ञेयसों विरत है ॥ चेतनाके नाश होत सत्ताको विनाश होय, याते ज्ञान चेतना प्रमाण जीव सत है ॥ २४ ॥

शार्दूलविक्रीडित छन्द—अध्यास्यात्मनि सर्वभावभवनं शुद्धस्वभावच्युतः
सर्वत्राप्यनिवारितो गतभयः स्वैरं पशुः क्रीडति ।
स्याद्वादी तु विशुद्ध एव लसति स्वस्य स्वभावं भरा-
दारूढः परभावभावविरहव्यालोकनिष्कम्पितः ॥ १३ ॥

खण्डान्वयसहित अर्थ—भावार्थ इसो—जो कोई एकांतवादी मिथ्यादृष्टी जीव इसो छे जो वस्तुको द्रव्य मात्र मानै छे। पर्यायरूप नहीं मानै छे। तिहितै जावंत छे ज्ञेय वस्तु त्यांहकी अनंत छे शक्ति त्यांहको जानै छे ज्ञान जानतो होतो ज्ञेयकी शक्तिकी आकृति परिणवै छे। इसो देखि करि जावंत ज्ञेयकी शक्ति तेती ज्ञान वस्तु इसो मानै छे, मिथ्यादृष्टि एकांतवादी। तिहे प्रति इसो समाधान करै छे स्याद्वादी, जो ज्ञान मात्र जीव वस्तुको इसो स्वभाव छे जो समस्त ज्ञेयकी शक्तिको जानै, जानतो होतो तिहिकी आकृति परिणवै छे। परन्तु ज्ञेयकी शक्ति ज्ञेय विषै छे, ज्ञान वस्तु विषै नहीं छे। ज्ञानको जानिवाको छे सो ज्ञानको पर्याय छे तिहितै ज्ञान वस्तुकी सत्तापनो भिन्न छे। इसो कहिजै छे, पशुः स्वैरं क्रीडति—पशुः कहतां मिथ्यादृष्टी एकांतवादी, स्वैरं क्रीडति कहतां हेय उपादेय ज्ञान तहि रहित होइ करि स्वेच्छाचार रूप प्रवर्तै छे। भावार्थ इसो—जो ज्ञेयकी शक्तिको ज्ञान तहि भिन्न नहीं मानै छे, जावंत ज्ञेयकी शक्ति जावंत ज्ञान विषै मानि करि नाना शक्तिरूप ज्ञान छे, ज्ञेय छे ही नहीं। इसी बुद्धिरूप प्रवर्तै छे। किसो छे एकांतवादी, शुद्धस्वभावच्युतः—शुद्ध स्वभाव कहतां ज्ञानमात्र जीव वस्तु तिहितै, च्युतः कहतां विपरीतपनै अनुभवै छे। विपरीतपनो क्यों छे, सर्वभावभवनं आत्मनि अध्यास्य—सर्व कहतां जावंत जीवादि पदार्थ रूप ज्ञेय वस्तु त्याहका भाव कहतां शक्ति रूप गुणपर्याय अंश भेद त्यांहको, भवनं कहतां सत्तापनो तिहिको, आत्मनि कहतां ज्ञानमात्र जीव वस्तु विषै, अध्यास्य कहतां प्रतीति करि। भावार्थ इसो—जो ज्ञानको गोचर छे समस्त द्रव्यकी शक्ति तिहिकी आकृति परिणयो छे ज्ञान तिहितै सर्व शक्ति ज्ञानकी करि मानै छे, ज्ञेयको ज्ञानको भिन्न सत्तापनो नहीं मानै छे। और किसो छे, सर्वत्र अपि अनिवारितः गतभयः—सर्वत्र कहतां स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, शब्द इसा इंद्रिय विषय तथा मनो वचन काय तथा नानाप्रकार ज्ञेयकी शक्ति त्याह विषै, अपि कहतां अवश्य करि, अनिवारितः कहतां हौं शरीर, हौं मन, हौं वचन, हौं काय, हौं स्पर्श रस गंध वर्ण शब्द इत्यादि परभाव विषै आपणा जानिकरि

प्रवर्ते छे, गतभयः कहतां मिथ्यादृष्टिके कोऊ परभाव नाहीं छे जा तहि डर होइ, इसा छे एकांतवादी, तीहे प्रति समाधान करै छे स्याद्वादी। तु स्याद्वादी विशुद्ध एव लसति–तु कहतां ज्यों मिथ्यादृष्टि एकांतवादी मांनै छे त्यों न छे। ज्यों स्याद्वादी मांनै छे त्यों छे। स्याद्वादी कहतां अनेकांतवादी जीव, विशुद्ध एव लसति कहतां मिथ्यात्व तहि रहित होइ प्रवर्तै छे। किसो छे स्याद्वादी, स्वस्य स्वभावं भरात् आरूढः–स्वस्य स्वभावं कहतां ज्ञान वस्तुको जानपनो मात्र शक्ति तिहिको, भरात् आरूढः कहतां अति ही गाढ़ा स्वरूप प्रतीति करै छे। और किसो छे, परभावभावविरहव्यालोकनिःकम्पितः–परभाव कहतां समस्त ज्ञेयकी अनेक शक्तिकी आकृति परिणयौ छे ज्ञान इसे रूप भाव कहतां मानहि छे जे ज्ञान वस्तुको अस्तित्वपनो तिहिको विरह कहतां इसी विपरीत बुद्धिको त्याग। तिहिके हूओ छे आलोक कहतां साची दृष्टि तिहिकरि हूओ छे, निःकम्पितः कहतां साक्षात अमिट अनुभव जिहिको इसो छे स्याद्वादी।

भावार्थ–एकांती मात्र ज्ञानको ही ज्ञेयकी शक्तिरूप मानता है ज्ञेयको ज्ञानसे भिन्न नही मानता है। सर्वत्र ज्ञान ही ज्ञान है, ज्ञेय है ही नहीं ऐसी कल्पना करता है तब स्याद्वादी यथार्थ वस्तुका ऐसा स्वरूप जानता है कि ज्ञेय भी है और ज्ञान भी है, दोनोंकी सत्ता भिन्न २ हैं। ज्ञेयमें ज्ञान नहीं, ज्ञानमें ज्ञेय नहीं। ज्ञानका स्वभाव ज्ञेयोंको दर्पणवत् जाननेका है तथापि जो कुछ ज्ञेयका प्रतिभास है उससे नित्य ज्ञान गुण जो आत्माका स्वभाव है सो भिन्न है।

सवैया ३१ सा–कोउ महा मूरख कहत एक पिंड मांहि, जहांलौं अचित चित्त अंग लह लहे है॥ जोगरूप भोगरूप नानाकार ज्ञेयरूप, जेते भेद करमके तेते जीव कहे है॥ मतिमान कहे एक पिंड मांहि एक जीव, ताहीके अनंत भाव अंश फैलि रहे है॥ पुद्गलसों भिन्न कर्म जोगसों अखिन्न सदा, उपजे विनसे थिरता स्वभाव गहे हैं॥ २५॥

शार्दूलविक्रीडित छन्द–प्रादुर्भावविरामपुद्रितवहद्ज्ञानांशनानात्मना

निर्ज्ञानात् क्षणभङ्गसङ्गपतितः प्रायः पशुर्नश्यति।

स्याद्वादी तु चिदात्मना परिमृशंश्चिद्वस्तु नित्योदितं

टङ्कोत्कीर्णघनस्वभावमहिमज्ञानं भवन् जीवति॥ १४॥

खण्डान्वय सहित अर्थ–भावार्थ इसो जो कोई एकांतवादी मिथ्यादृष्टी इसो छे जो वस्तुको पर्याय मात्र मानै छे, द्रव्यरूप नहीं मांनै छे तिहितै अखंडधाराप्रवाहरूप परिणवै छे ज्ञान तिहिको होइ छे प्रति समय उत्पादव्यय तिहितै पर्यायके विनशतां जीवद्रव्यको विनाश मानै छे तीहै प्रति स्याद्वादी इसो समाधान करै छे जो पर्याय रूप देखतां जीव वस्तु उपजै छे विनशै छे, द्रव्यरूप देखतां जीव सदा शाश्वतो छे। इसो कहिजे छे। पशुः नश्यति–पशुः

कहतां एकांतवादी जीव, नश्यति कहतां शुद्ध जीव वस्तुको साधिवातहि भ्रष्ट होइ छे। किसो छे एकांतवादी प्रायः क्षणभंगसंगपतितः–प्रायः कहतां एकांतपनै, क्षणभंग कहतां प्रति समय होइ छे पर्यायको विनाश, तिहिंके संगपतितः कहतां पर्याय साथे वस्तुको विनाश मानै छे। किसा थकी, प्रादुर्भावविरामसुद्रितवहत् ज्ञानांशनानात्मना निर्ज्ञानात्–प्रादुर्भाव कहतां उत्पाद, विराम कहतां विनाश, तिहिकरि, मुदित कहतां संयुक्त छे इसो वहत् कहतां प्रवाहरूप छे, ज्ञानांश कहतां ज्ञान गुणके अविभागप्रतिच्छेद तिहि करि नानात्मना कहतां हुई छे अनेक अवस्था भेद, निर्ज्ञानात् कहतां इसो जानपनो तिहि थकी इसो छे एकांतवादी, तिहे प्रति स्याद्वादी प्रतिबोधे छे, तु स्याद्वादी जीवति–तु कहतां ज्यों एकांतवादी कहै छे त्यों एकांतपनो नहीं छे। स्याद्वादी कहतां अनेकांतवादी, जीवति कहतां वस्तुको साधिवाको समर्थ छे। किसो छे स्याद्वादी, चिद्वस्तुनित्योदितं परिमृशन्–चिद्वस्तु कहतां ज्ञान मात्र जीव वस्तुको, नित्योदितं कहतां सर्व काल शाश्वतो, परिमृशन् कहतां प्रत्यक्षपनै आस्वाद रूप अनुभवतो होतो, किसे करि, चिदात्मना–कहतां ज्ञान स्वरूप छे जीव वस्तु तिहि करि। किसो छे स्याद्वादी, टंकोत्कीर्णघनस्वभावमहिमज्ञानं भवन् टंकोत्कीर्ण कहतां सर्व काल एकरूप इसो छे घनस्वभाव कहतां अमिट लक्षण तिहि करि महिमा कहतां छे अमिट लक्षण तिहि करि महिमा कहतां छे प्रसिद्धपनो जिहको इसो, ज्ञानं कहतां जीव वस्तु इसो, भवन् कहतां आप अनुभवतो होतो।

भावार्थ–एकांतवादी जीवको व उसके ज्ञानगुणको सर्वथा अनित्य मान लेता है, नित्य आत्मा व उसके गुण हैं ऐसा नहीं मानता है। ज्ञेय वस्तुके पर्याय उपजते विनशते हैं, ऐसे ही ज्ञानमें झलके हैं उनके विनाशसे ज्ञानका विनाश व उनके उपजनेसे ज्ञानका उपजना मानता है सो ऐसा वस्तुका स्वभाव नहीं है। ज्ञानगुण नित्य है तौभी पर्यायोंके पलटनेकी अपेक्षा अनित्य है, ऐसा स्याद्वादी मानता है सो ही ठीक है। ज्ञानी इसलिये अपने ज्ञानको शुद्ध एक नित्य अनुभव करता रहता है। द्रव्य दृष्टिसे ज्ञान नित्य है पर्यायसे अनित्य है, ऐसा जानता है।

सवैया ३१ सा–कोउ एक क्षणवादी कहे एक पिंड मांहि, एक जीव उपजत एक विनसत है॥ जाही समै अंतर नवीन उतपति होय, ताही समै प्रथम पुरातन वसत है॥ सरवांगवादी कहे जैसे जल वस्तु एक, सोही जल विविध तरंगण लसत है॥ तैसे एक आतम दरव गुण पर्यायसे, अनेक भयो पै एक रूप दरसत है॥ २६॥

शार्दूलविक्रीडित छन्द–टङ्कोत्कीर्णविशुद्धबोधविसराकारात्मतत्त्वाशया
वाञ्छत्युच्छलदच्छचित्परिणतेर्भिन्नं पशुः किञ्चन।

ज्ञानं नियमनित्यतापरिगमेऽप्यासादयत्युज्ज्वलं
स्याद्वादी तदनित्यतां परिमृशंश्चिद्वस्तु वृत्तिक्रमात् ॥ १५ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ-भावार्थ इसो–जो कोई मिथ्यादृष्टी एकांतवादी इसो छे, जो वस्तुको द्रव्यरूप मानै छे पर्यायरूप नहीं मानै छे तिहिंतै समस्त ज्ञेयको जानतो होतो ज्ञेयाकार परिणवै छे ज्ञान तिहको अशुद्धपनो मानै छे एकांतवादी, ज्ञानको पर्यायपनो नहीं मानै छे तिहिको समाधान स्याद्वादी करै छे जो ज्ञान वस्तु द्रव्यरूप देखतां नित्य छे, पर्यायरूप देखतां अनित्य छे तिहिंतै समस्त ज्ञेयको जानै छे ज्ञान, जानतो होतो ज्ञेयकी आकृति ज्ञानको पर्याय परिणवै छे इसो ज्ञानको स्वभाव छे, अशुद्धपनो नहीं छे इसो कहिजे छे। पशुः उच्छलदच्छचित्परिणतेः भिन्नं किंचन वांछति–पशुः कहतां एकांतवादी, उच्छलत् कहतां ज्ञेयको ज्ञाता होइ करि पर्यायरूप होइ परिणवै छे उत्पादरूप तथा व्यय रूप इसो छे, अच्छ कहतां अशुद्धपना तइ रहित इसो छे चित्परिणति कहतां ज्ञान गुणको पर्याय तिहितहि भिन्न कहतां ज्ञेयके जानपने रूप बिना वस्तु मात्र कूटस्थ होइ रहै। किंचन वांछति कहतां इसो किछु विपरीतपनो मानै छे एकांतवादी, ज्ञानको इसो कीयो चाहे छे। टंकोत्कीर्णविशुद्धबोधविसराकारात्मतत्वाशया–टंकोत्कीर्ण कहतां सर्व काल एक सो इसो छे, विशुद्ध कहतां समस्त विकल्प तहिं रहित इसो छे, बोध कहतां ज्ञानवस्तु तिहिको, विसराकार कहतां प्रवाह रूप इसो छे, आत्मतत्व कहतां जीव वस्तु तिहिकी। आशया कहतां इसा करिवाको अभिलाष करै छे तिहिको समाधान करै छे स्याद्वादी। स्याद्वादी ज्ञानं उज्वलं आसादयति–स्याद्वादी कहतां अनेकांतवादी, ज्ञानं कहतां ज्ञान मात्र जीव वस्तुको, नित्यं कहतां सर्व काल एकसो, उज्वलं कहतां समस्त विकल्प रहित, आसादयति कहतां स्वाद रूप इसो अनुभवै छे, अनित्यता परिगमे अपि–कहतां यद्यपि पर्याय द्वारा अनित्यपनो घटे छे। किसो छे स्याद्वादी, तत् चिद्वस्तु अनित्यतां परिमृशन्–तत् कहतां पूर्वोक्त, चिद्वस्तु कहतां ज्ञान मात्र जीव द्रव्य, तिहिको, अनित्यतां परिमृशन् कहतां विनश्वररूप अनुभवतो होतो। किसा थकी, वृत्तिक्रमात्–वृत्ति कहतां पर्याय तिहिको, क्रमात् कहतां कोई पर्याय होइ कोई पर्याय विनशै इसा भाव थकी। भावार्थ इसो–जो पर्याय द्वारा जीव वस्तु अनित्य छे इसो अनुभवै छे स्याद्वादी।

भावार्थ–यहां यह बताया है कि जो कोई ज्ञानको सर्वथा कूटस्थ नित्य मानता है। ज्ञेयोंके द्वारा ज्ञानमें ज्ञेयाकारोंका उत्पाद व्ययरूप परिणमन जो वस्तु स्वभावसे होता रहता है उसको न मानकर ज्ञानका स्वभाव ठहराना चाहता है वह एकांतवादी ज्ञानके स्वभावहीका नाश करता है। स्याद्वादी तत्वज्ञानी जानता है कि ज्ञान यद्यपि द्रव्य दृष्टीसे एकरूप रहता

है तथापि यह भी इसका स्वभाव है कि इसमें ज्ञेयोंके परिणमन द्वारा ज्ञेयाकारोंका परिणमन हुआ करे अर्थात् यह ज्ञान नित्य होते हुए भी पर्यायोंके होने व विघटनेकी अपेक्षा अनित्य भी है, ऐसा मानता है।

सवैया ३१ सा—कोउ बालबुद्धि कहे ज्ञायक शकति जोलों, तोलों ज्ञान अशुद्ध जगत मध्ये ज्ञानिये ॥ ज्ञायक शकति काल पाय मिटिजाय जब, तब अविरोध बोध विमल बखानिये ॥ परम प्रवीण कहे ऐसी तो न बने बात, असे विन परकाश सूरज न मानिये ॥ तैसे विन ज्ञायक शकति न कहावे ज्ञान, यह तो न पक्ष परतक्ष परमानिये ॥ २७ ॥

श्लोक—इत्यज्ञानविमूढानां ज्ञानमात्रं प्रसादयन्।
आत्मतत्त्वमनेकान्तः स्वयमेवानुभूयते ॥ १६ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ इति अनेकांतः स्वयं अनुभूयते एव—इति कहतां पूर्वोक्त प्रकार अनेकांत कहतां स्याद्वाद स्वयं आपणे प्रताप करि बलात्कार ही, अनुभूयते कहतां अंगीकार रूप होइ छे, एव कहतां अवश्यकरि कौनको अंगीकार होइ छे। अज्ञानविमूढानां—अज्ञान कहतां पूर्वोक्त एकांतवाद तिहकरि, विमूढानां कहतां मग्न हूवा छे इसा जे मिथ्यादृष्टि जीवराशि, भावार्थ इसो जो स्याद्वाद इसो प्रमाण छे जो सुनतां मात्र एकांतवादी फुनि अंगीकार करै छे, किसा छे स्याद्वादी। आत्मतत्वं ज्ञानमात्रं प्रसाधयन्—आत्मतत्वं कहतां जीव द्रव्यको, ज्ञानमात्रं कहतां चेतना सर्वस्व, प्रसाधयन् कहतां इसो प्रमाण करतो होतो। भावार्थ इसो जो ज्ञान मात्र जीव वस्तु इसो स्याद्वाद साधि सकै छे।

भावार्थ—यहां यह भलेप्रकार बता दिया है कि स्याद्वादके द्वारा ही अनेक धर्म या स्वभावरूप वस्तुकी सिद्धि होसक्ती है। वस्तु एक धर्म रूप नहीं है—उसको एक रूप ही मानना यथार्थ नहीं है अज्ञान है। वस्तु किसी नयसे अस्तिरूप है, किसी नयसे नास्ति रूप है, किसी नयसे नित्य है, किसी नयसे अनित्य है, किसी नयसे एकरूप है, किसी नयसे अनेकरूप है। वस्तु अनेकांत स्वरूप है ऐसा वर्णन। श्री समंतभद्राचार्यने आप्तमीमांसामें भलेप्रकार किया है। स्वामी कहते हैं—

सदेव सर्वं को नेच्छेत् स्वरूपादिचतुष्टयात्। असदेव विपर्यासान्न चेन्न व्यवतिष्ठते ॥ १५ ॥

भावार्थ—सर्व वस्तु सतरूप है अपने ही स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, स्वभावकी अपेक्षासे। अर्थात् वस्तुमें वस्तुपना है इसलिये वह सतरूप है भावरूप है उसी समय वह परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल, परभावकी अपेक्षासे असत भी है। अर्थात् वस्तुमें अन्य वस्तुओंका अभावपना है। कोई पदार्थ उसी समय अस्तिरूप ठहराया जासक्ता है जब उसमें अपना तो भाव हो उसी समय परका अभाव हो। जीव द्रव्य है क्योंकि जीवपना तो उसमें है उसी समय अजीवपना उसमें नहीं है। ज्ञान है क्योंकि ज्ञानपना तो उसमें है उसी समय

जडपना उसमें नहीं है। ज्ञेयमें ज्ञान नहीं ज्ञानमें ज्ञेय नहीं तब ही ज्ञेय ज्ञानकी व्यवस्था बन सकी है।

सत्सामान्यात्तु सर्वैक्यं पृथक् द्रव्यादिभेदतः। भेदाभेदविवक्षायामसाधारणहेतुवत् ॥ ३४ ॥

भावार्थ—सत्तासामान्यकी अपेक्षासे सर्व पदार्थ एकरूप हैं परन्तु भिन्न २ द्रव्यकी अपेक्षासे अनेक रूप अलग अलग हैं। जैसे अग्निका असाधारण हेतु उष्णपना है सो अग्निसे अभेद है परन्तु जलसे भेदरूप है।

नित्यं तत् प्रत्यभिज्ञानान्नाकस्मात्तदविच्छिदा। क्षणिकं कालभेदात्ते बुद्ध्यसंचरदोषतः ॥ ५६ ॥

भावार्थ—वस्तु नित्य है क्योंकि प्रत्यभिज्ञानका विषय है अर्थात् आगे पीछे यह ज्ञान होता है कि वही है—यह ज्ञान बराबर होता रहता है इसीसे वस्तु नित्य है। अवस्थाकी दृष्टिसे देखते हैं तो भिन्न भिन्न कालमें भिन्न २ अवस्था है इससे वस्तु अनित्य भी है। जो स्याद्वादी है उनके द्वारा नित्य व अनित्यपना दोनों सिद्ध है। एकांत पक्ष वालोंकी बुद्धि इस तत्वपर नहीं पहुंचती है।

इस तरह जो आत्मतत्वकी प्राप्ति करना चाहते हैं उनको उचित है कि वे अनेकांतको समझकर वस्तुका स्वरूप जैसा है वैसा ही मानै तब ही यथार्थ वस्तुका लाभ हो सकेगा।

दोहा—इहि विधि आतम ज्ञान हित, स्यादवाद परमाण। जाके वचन विचारसों, मूरख होय सुजान ॥२८॥

श्लोक—एवं तत्त्वव्यवस्थित्या स्वं व्यवस्थापयन्स्वयम्।
अलङ्घ्यं शासनं जैनमनेकान्तो व्यवस्थितः ॥ १७ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—एवं अनेकान्तः व्यवस्थितः—एवं कहतां इतनो कहिवे करि, अनेकांतः कहतां स्याद्वाद, अवस्थितः कहतां कहिवाको आरंभ्यो थो सो पूरो हूओ। किसा छे अनेकांत। स्वं स्वयं व्यवस्थापयन्—स्वं कहतां अनेकांतपनाको, स्वयं कहतां अनेकांतपना करि, व्यवस्थापयन् कहतां वरजोरपनै प्रमाण करतो होतो, किसे करि, तत्व-व्यवस्थित्या कहतां जीवको स्वरूप साधिवै सहित किसो छे, अनेकांतः जैनं कहतां सर्वज्ञ वीतराग प्रणीत छे, और किसो छे अलंघ्यं शासनं कहतां अमिट छे उपदेश जिहिको इसो छे।

दोहा—स्यादवाद आतम दशा, ता कारण बलवान। शिव साधक बाधा रहित, अखै अखंडित आन ॥२९॥
स्याद्वाद अधिकार यह, कह्यो अलप विस्तार। अमृतचंद्र मुनिवर कहे, साधक साध्य दुवार ॥ ३० ॥
इति श्री समयसार नाटकको ग्यारहमो स्याद्वाद नयद्वार समाप्त भयो ॥ ११ ॥
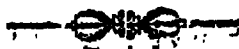
बारहवां साध्य साधक अधिकार ।

श्लोक—इत्याद्यनेकनिजशक्तिसुनिर्भरोऽपि यो ज्ञानमात्रमयतां न जहाति भावः ।
एवं क्रमाक्रमविवर्तिविवर्तचित्रं तद्द्रव्यपर्ययमयं चिदिहास्ति वस्तु ॥ १ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—इह तत् चित् वस्तु द्रव्यपर्ययमयं अस्ति-इह कहतां विद्यमान, तत् कहतां पूर्वोक्त, चित् वस्तु कहतां ज्ञानमात्र जीव द्रव्य, द्रव्यपर्यायमय कहतां द्रव्य गुण पर्यायरूप छे । भावार्थ इसो जो जीव द्रव्यपनो कह्यो किसो छे जीव द्रव्य, एवं क्रमाक्रमविवर्तिविवर्तचित्रं—एवं कहतां पूर्वोक्त प्रकार, क्रम कहतां पहलो विनशै तो आगिलो उपजै, अक्रम कहतां विशेषण रूप छे परन्तु न उपजै न विनशै इसे रूप छे, विवर्ति कहतां अंशरूप भेद पद्धति, तिहिकरि विवर्ते कहतां अवर्त्यो छे, चित्रं कहतां परम अचंभो जिहिविषै इसो छे । भावार्थ इसौ छे, क्रमवर्ती पर्याय, अक्रमवर्ती गुण तिहि गुण पर्यायमय जीव वस्तु और किसो छे—यः भावः इत्याद्यनेकनिजशक्तिसुनिर्भरः अपि ज्ञानमात्रमयतां न जहाति—यः भावः कहतां ज्ञानमात्र जीव वस्तु, इत्यादि कहतां द्रव्य गुण पर्याय इहि आदि देइ करि, अनेक निजशक्ति कहतां अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व, सूक्ष्मत्व, कर्तृत्व, भोक्तृत्व, सप्रदेशत्व, अमूर्तत्व इसी छे अनंत गणना रूप द्रव्यकी सामर्थ्यपनो त्यांहकरि, सुनिर्भरः कहतां सर्वकाल भरि तपस्थ छे, अपि कहतां इसो छे तथापि ज्ञानमात्र मयतां जहाति कहतां ज्ञानमात्र भावको नहीं त्यागै छे । भावार्थ इसो—जो गुण छे अथवा पर्याय छे सो सर्व चेतना रूप छे तिहितै चेतना मात्र जीव वस्तु छे प्रमाण छे । भावार्थ इसो—जो ऊपर हुंडी घाली थी जो उपेय तथा उपाय कहि सौं । उपाय कहतां जीव वस्तुको प्राप्तिको साधन, उपेय कहतां साध्य वस्तु । तिहि माहे प्रथम ही साध्यरूप वस्तुको स्वरूप कह्यो, साधन कहिजै छे ।

सवैया ३१ सा—जोइ जीव वस्तु अस्ति प्रमेय अगुरु लघु, अभोगी अमूरतीक परदेशवंत है ॥ उतपत्तिरूप नाशरूप अविचल रूप, रतनत्रयादिगुण भेदसों अनंत है ॥ सोई जीव दरव प्रमाण सदा एक रूप, ऐसे शुद्ध निश्चय स्वभाव विरतंत है ॥ स्यादवाद मांहि साध्यपद अधिकार कह्यो, अब आगे कहिवेको साधक सिद्धंत है ॥ १ ॥

दोहा—साध्य शुद्ध केवल दशा, अथवा सिद्ध महंत । साधक अविरत आदि बुध, क्षीण मोह परयंत ॥२॥

वसंततिलका—नैकान्तसङ्गतदृशा स्वयमेव वस्तुतत्त्वव्यवस्थितिमिति प्रविलोकयन्तः ।
स्याद्वादशुद्धिमधिकामधिगम्य सन्तो ज्ञानीभवन्ति जिननीतिमलंघयन्तः ॥२॥

खण्डान्वय सहित अर्थ-संतः इति ज्ञानीभवंति—संतः कहतां सम्यग्दृष्टी जीव-राशि, इति कहतां एनै प्रकार, ज्ञानीभवंति कहतां अनादिकाल तहि, कर्मबंध संयुक्त था

संपत सकल कर्मको विनाश करि मोक्षपदको प्राप्त होहि छे, किसा छे संत। जिननीतिं-मलंघयन्तः जिन कहतां केवली तिहिकी नीति कहतां तिहिको कह्यो मार्ग, अलंघयंतः कहतां तेही मार्ग चालहि छे तिहि मार्ग कहुं उल्लंघ्य करि अन्य मार्ग नहीं चालहि छे किसेकरि। अधिकां स्याद्वादशुद्धि अधिगम्य-अधिकां कहतां प्रमाण छे इसो जो, स्याद्वादशुद्धि कहतां अनेकांत रूप वस्तुको उपदेश तिहितें हुओ छे ज्ञानको निर्मलपनो तिहिको, अधिगम्य कहतां इसो सहायपायकरि, किसा छे संत। वस्तुतत्वव्यवस्थितं स्वयं एव प्रविलोकयन्तः-वस्तु कहतां जीव द्रव्य तिहिको, तत्व कहतां जिसो छे स्वरूप तिहिको, व्यवस्थितिं कहतां द्रव्यरूप तथा पर्यायरूप तिहिको, स्वयं एव प्रविलोकयंतः कहतां साक्षात् प्रत्यक्षपनें देखहि छे किसे नेत्रकरि देखहि छे। नैकांतसंगतदृशा-नैकांत कहतां स्याद्वाद तिहिसो, संगत कहतां मिल्यो छे, इसो दृशा कहतां लोचनकरि।

भावार्थ-यहांपर यह बताया है कि जो संतपुरुष स्याद्वाद नयके द्वारा वस्तुतत्वको जाननेवाले हैं वे इसीके मननसे अपने ज्ञानको निर्मल करते हुए श्री जिनेन्द्रके मतपर चलते हैं और शीघ्र ही केवलज्ञानी होजाते हैं। जिनेन्द्रका मार्ग साक्षात् मोक्षका सरल, अकाट्य व श्रेष्ठ उपाय है। तत्वार्थसारमें श्री अमृतचंद्रजी महाराज कहते हैं-

> तत्वार्थसारमिति यः समधिर्विदित्वा। निर्वाणमार्गमधितिष्ठति निःप्रकम्पः॥
> संसारबन्धमवधूय स धूतमोहश्चैतन्यरूपमचलं शिवतत्वमेति॥ २२॥

भावार्थ-जो भलेप्रकार तत्वोंके सारको जानकर व निश्चल होकर इस मोक्षमार्ग पर चलेगा वह मोहको धोनेवाला संसारके विघ्नका नाश कर एक निश्चल चैतन्यरूप मोक्षतत्वको प्राप्त कर लेगा।

सवैया ३१ सा—जाको आवो अपूरव अनिवृत्ति करणको, भयो लाभ हुई गुरु वचनकी वोहनी॥ जाको अनंतानुबंधी क्रोध मान माया लोभ, अनादि मिथ्यात्व मिश्र समकित मोहनी॥ सातों परकति क्षपि किंवा उपशमी जाके, जगि उर मांहि समकित कला सोहनी॥ सोई मोक्षसाधक कहायो ताके सरवंग, प्रगटी शकति गुण स्थानक आरोहनी॥ ३॥

सोरठा-जाके मुक्ति समीप, भई भवस्थिति घट गई। ताकी मनसा सीप, सुगुरु मेघ मुक्ता वचन॥४॥

दोहा-ज्यों वर्षे वर्षा समें, मेघ अखंडित धार। त्यों सदगुरु वाणी खिरे, जगत जीव हितकार॥ ५॥

सवैया २३ सा—चेतनजी तुम जागि विलोकहु, लागि रहे कहां मायाके तांई॥ आये कहींसो कहीं तुम जाहुगे, माया रहेगी जहांके तहांई॥ माया तुमारी जाति न पांति न, वंशकी वेलि न अंशकि झांई॥ दासि किये विन लातनि मारत, ऐसी अनीति न कीजे गुसांई॥ ६॥

दोहा-माया छाया एक है, घटे बढे छिन मांहि। इनके संगति जे लगे, तिन्हे कहूं सुख नांहि॥ ७॥

सवैया २३ सा—लोकनिसों कछु नांतो न तेरो न, तोसों कछू इह लोकको नांतो। ये तो रहे रमि स्वारथके रस, तूं परमारथके रस मांतो॥ ये तनसों तनमें तनसे जड़, चेतन तूं तनसों निति हांतो॥ होहु सुखी अपनो बल फेरिके, तोरिके राग विरोधको तांतो॥ ८॥

सोरठा—जे दुर्बुद्धी जीव, ते उत्तंग पदवी चहे। जे सम रसी सदीव, तिनकों कछू न चाहिये ॥९॥

सवैया ३१ सा—हांसीमें विषाद वसे विद्यामें विवाद वसे, कायामें मरण गुरु वर्तनमें हीनता ॥ शुचिमें गिलानि वसे प्रापतीमें हानि वसे, जैमें हारि सुंदर दशामें छबि छीनता ॥ रोग वसे भोगमें संयोगमें वियोग वसे, गुणमें गरव वसे सेवा मांहि दीनता ॥ और जग रीत जेती गर्भित असाता तेति, साताकी सहेली है अकेली उदासीनता ॥ १० ॥

दोहा—जो उत्तंग चढि फिर पतन, नहि उत्तंग वह कूर। जो सुख अंतर भय वसे, सो सुख है दुखरूप ॥११॥
जो विलसे सुख संपदा, गये तहां दुख होय। जो धरती बहु तृणवती, जरे अग्निसे सोय ॥१२॥
शब्दमांहि सदगुरु कहे, प्रगटरूप निजधर्म। सुनत विचक्षण श्रद्दहे, मूढ न जाने मर्म ॥१३॥

३१ सा—जैसे काहू नगरके वासी द्वे पुरुष भूले, तामें एक नर सुष्ट एक दुष्ट उरको। दोउ फिरे पुरके समीप परे कुवटमें, काहू और पंथिककों पूछे पंथ पूरको ॥ सो तो कहे तुमारो नगर ये तुमारे ढिग, मारग दिखावे समझावे खोज पुरको। एते पर सुष्ट पहचाने पै न माने दुष्ट, हिरदे प्रमाण तैसे उपदेश गुरुको ॥ १४ ॥

३१ सा—जैसे काहू जंगलमें पावसकि समें पाई, अपने सुभाय महा मेघ बरखत है। आमल कषाय कटु तीक्षण मधुर क्षार, तैसा रस वाढे जहां जैसा दरखत है ॥ तैसे ज्ञानवंत नर ज्ञानको बखान करे, रस कोउ माही है न कोउ परखत है। वोही धुनि सूनि कोउ गहे कोउ रहे सोद, काहूको विषाद होइ कोउ हरखत है ॥ १५ ॥

दोहा—गुरु उपदेश कहा करे, दुराराध्य संसार। वसे सदा जाके उदर, जीव पंच परकार ॥१६॥
डुंघा प्रभु चूंघा चतुर, सूंघा रूचक शुद्ध। ऊंघा दुर्बुद्धी विकल, धूंघा घोर अबुद्ध ॥ १७ ॥
जाके परम दशा विषे, कर्म कलंक न होय। डुंघा अगम अगाधपद, वचन अगोचर सोय ॥१८॥
जो उदास व्है जगतसों, गहे परम रस प्रेम। सो चूंघा गुरुके वचन, चूंघे बालक जेम ॥१९॥
जो सुवचन रुचिसों सुने, हिये दुष्टता नांहि। परमारथ समुझे नहीं, सो सूंघा जगमांहि ॥२०॥
जाको विकथा हित लगे, आगम अंग अनिष्ट। सो विषयी दुखसे विकल, दुष्ट रुष्ट पापिष्ट ॥२१॥
जाके वचन श्रवण नहीं, नहिं मन सुरति विराम। जडवासो जडवत भयो, धुंघा ताको नाम ॥२२॥

चौपाई—डुंघा सिद्ध कहे सब कोऊ। सूंघा ऊंघा मूरख दोऊ ॥
धुंघा घोर विकल संसारी। चूंघा जीव मोक्ष अधिकारी ॥ २३ ॥

दोहा—चूंघा साधक मोक्षको, करे दोष दुख नाश। लहे पोष संतोषसों, बरनों लक्षण तास ॥ २४ ॥
कृपा प्रशम संवेग दम, अस्ति भाव वैराग। ये लक्षण जाके हिये, सप्त व्यसनको त्याग ॥२५॥

चौपाई—जूवा अमिष मदिरा दारी। आखेटक चोरी परनारी ॥
येई सप्त व्यसन दुखदाई। दुरित मूल दुर्गतिके भाई ॥ २६ ॥

दोहा—दर्वित ये सातों व्यसन, दुराचार दुख धाम। भावित अन्तर कल्पना, मृषा मोह परिणाम ॥२७॥

३१ सा—अशुभमें हारि शुभ जीति यहै द्युत कर्म, देहकी मगन ताई यहै मांस भखिवो ॥ मोहकी गहलसों अजान यहै सुरापान, कुमतीकी रीत गणिकाको रस चखिवो ॥ निर्दय व्है प्राण घात करवो यहै सिकार, परनारी संग पर बुद्धिको परखिवो ॥ प्यारसों पराई सोंज गहिवेकी चाह चोरी, एई सातों व्यसन विडारें ब्रह्म लखिवो ॥ २८ ॥

दोहा—व्यसन भाव जामें नहीं, पौरुष अगम अपार। किये प्रगट घट सिंधुमें, चौदह रत्न उदार ॥२९॥

३१ सा—लछमी सुबुद्धि अनुभुति कउस्तुभ मणि, वैराग्य कलप वृक्ष शंख सु वचन है ॥ ऐरावति उद्यम प्रतीति रंभा उदै विष; कामधेनु निर्जरा सुधा प्रमोद घन है ॥ ध्यान चाप प्रेम रीत मदिरा विवेक वैद्य, शुद्ध भाव चन्द्रमा तुरंगरूप मन है ॥ चोदह रतन ये प्रगट होय जहां तहां, ज्ञानके उद्योत घट सिंधुको मथन है ॥ ३० ॥

दोहा-किये अवस्थामे प्रगट, चौदह रत्न रसाल। कछु त्यागे कछु संग्रहे, विधि निषेधकी चाल ॥३१॥

रमा शंक विष धनु सुरा, वैद्य धेनु हय हेय। मणि शंक गज कलपतरु, सुधा सोम आदेय ॥३२॥

इह विधि जो परभाव विष, वमे रमे निजरूप। सो साधक शिव पंथको, चिद्विवेक चिद्रूप ॥३३॥

कवित्त—ज्ञानदृष्टि जिन्हके घट अंतर, निरखे द्रव्य सुगुण परजाय ॥ जिन्हके सहज रूप दिन दिन प्रति, स्याद्वाद साधन अधिकाय ॥ जे केवली प्रणित मारग मुख, चित्त चरण राखे ठहराय ॥ ते प्रवीण करि क्षीण मोह मळ, अविचल होहिं परम पद पाय ॥ ३४ ॥

वसंततिलका छन्द—ये ज्ञानमात्रनिजभावमयीमकम्पां भूमिं श्रयन्ति कथमप्यपनीतमोहाः।
ते साधकत्वमधिगम्य भवन्ति सिद्धाः मूढास्त्वमूमनुपलभ्य परिभ्रमन्ति ॥ २ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—ते सिद्धाः भवंति—ते कहतां इसा छे जो जीवराशि, सिद्धाः भवन्ति कहतां सकल कर्म कलंक तहि रहित मोक्षपदको पावे छे। किसा होइ करि। साधकत्वं अधिगम्य—कहतां शुद्ध जीवको अनुभव गर्भित छे सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र रूप कारण रत्नत्रय तिहिरूप परिणयो छे आत्मा इसो होइ करि, और किसा छे ते। ये ज्ञानमात्रनिजभावमयीं भूमिं श्रयंति—ये कहतां जे केई ज्ञान मात्र चेतना छे सर्वस्व जिहिंको इसो निजभाव कहतां जीवद्रव्यको अनुभव, तिहिमयीं कहतां कोई विकल्प नहीं छे जिहि विषें इसी, भूमिं कहतां मोक्षको कारणभूत अवस्थाको श्रयंति कहतां एकाग्रपने इसै रूप परिणवै छे। किसी छे भूमि, अकम्पां कहतां निर्द्वन्द्व रूप सुख गर्भित छे, किसा छें जे जीवराशि। कथमपि अपनीतमोहाः—कथमपि कहतां अनंतकाल भ्रमतां काललब्धि पाइ करि, अपनीत कहतां मिटचो छे, मोहाः कहतां मिथ्यात्वरूप विभाव परिणाम ज्यांहको इसा छे। भावार्थ इसो—इसा जीव मोक्षका साधक होहि। तु मूढाः अमूं अनुपलभ्य परिभ्रमंति—तु कहतां कह्यो अर्थ गाढ़ो कीजै छे। मूढा कहतां नहीं छें जीव वस्तुको अनुभव त्यांहको इसा जे केई मिथ्यादृष्टि जीव राशि। अमूं कहतां शुद्ध जीव स्वरूपको अनुभव इसी अवस्था कहु अनुपलभ्य कहतां विनपाइकरि, परिभ्रमंति कहतां चतुर्गति संसार माहें रुले छे। भावार्थ इसो—शुद्ध जीव स्वरूपको अनुभव मोक्षको मार्ग छे दूसरो मार्ग नहीं।

भावार्थ—यहां स्पष्ट बता दिया है कि जो कोई परम पुरुषार्थ करके जिस तरह बने उस तरह मिथ्यात्व भावको दूर कर रत्नत्रय गर्भित निज ज्ञान चेतनामय एक शुद्ध भावका अनुभव करते हैं वेही परमपदको पाते हैं। मिथ्यादृष्टी जीव शुद्ध आत्मानुभवमई मोक्षमार्गको न पाकर चारों गतिमें भ्रमण किया करते हैं। योगसारमें कहा है—

जइ बंधउ मुक्कउ मुणहि तो बंधियहि णिभंतु । सहजसरूवि जइ रमइ तो पावइ सिव संतु ॥८६॥

भावार्थ—जो यह विकल्प किया करेगा कि मैं बंधा हूं मुक्त कैसे हूंगा या मैं व्यवहार नयसे बंधरूप हूं निश्चय नयसे मुक्त हूं वह अवश्य बंधको प्राप्त होगा। जो कोई अपने सहज स्वभावमें रमण करेगा वही परम शांतमय मोक्षपदको पासकेगा।

सवैया ३१ सा—चाकसो फिरत जाको संसार निकट आयो, पायो जिन्हे सम्यक् मिथ्यात्व नाश करिके ॥ निरद्वंद मनसा सुभूमि साधि लीनी जिन्हे किती मोक्ष कारण अवस्था ध्यान धरिके ॥ सोही शुद्ध अनुभौ अभ्यासी अविनासी भयो, गयो ताको करम भरम रोग गरिके ॥ मिथ्यामति अपनो स्वरूप न पिछाने ताते, डोले जग जालमें अनंत काल भरिके ॥ ३५ ॥

वसंततिलका—स्याद्वादकौशलसुनिश्चलसंयमाभ्यां यो भावयत्यहरहः स्वमिहोपयुक्तः ।
ज्ञानक्रियानयपरस्परतीव्रमैत्रीपात्रीकृतः श्रयति भूमिमिमां स एकः ॥ ४ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—भावार्थ इसो जो अनुभव भूमिकाको किसो जीव योग्य छे इसो कहिये छे । स एकः इमां भूमिं श्रयति—स कहतां इसो जीव, एकः कहतां यही एक जाति जीव, इमां भूमिं कहतां प्रत्यक्ष छे शुद्ध स्वरूपको अनुभव रूप इसी अवस्थाको, श्रयति कहतां आलंबनको योग्य छे । किसो छे जो जीव यः स्वं अहरहः भावयति—यः कहतां जो कोई सम्यग्दृष्टि जीव, स्वं कहतां जीवको शुद्ध स्वरूपको, अहरहः भावयति कहतां निरन्तरपने अखंड धाराप्रवाह रूप अनुभवै छे । किसे करि अनुभवै छे । स्याद्वादकौशलसुनिश्चलसंयमाभ्यां—स्याद्वाद कहतां द्रव्यरूप तथा पर्यायरूप वस्तुको अनुभव, तिहिको, कौशल कहतां विपरीतपना ताहि रहित वस्तुको ज्यों छे त्यों अंगीकार तथा, सुनिश्चलसंयमाभ्यां कहतां समस्त रागादि अशुद्ध परिणतिको त्याग त्यांह दुवे सहायकरि, और किसो छे इह उपयुक्तः—इहि कहतां आपणा शुद्ध स्वरूपको अनुभव विषै, उपयुक्तः कहतां सर्व काल एकाग्रपने तल्लीन छे । और किसो छे । ज्ञानक्रियानयपरस्परतीव्रमैत्रीपात्रीकृतः—ज्ञान नय कहतां शुद्ध जीवको स्वरूपको अनुभव मोक्षमार्ग छे शुद्ध स्वरूपको अनुभव बिना जो कोई क्रिया छे सो सर्व मोक्षमार्ग तहि शून्य छे। क्रियानय कहतां रागादि अशुद्ध परिणामका त्याग पाए बिना जो कोई शुद्ध स्वरूपको अनुभव कहै छे सो समस्त झूठो छे अनुभव नहीं छे । कांई इसो ही अनुभवको भरम छे । जिहिते शुद्ध स्वरूपको अनुभव अशुद्ध रागादि परिणामको मेटि करि छे । इसी छे जो ज्ञाननय तथा क्रियानय त्यांहको छे जो, परस्पर मैत्री कहतां मांहोमांहे छे अत्यंत मित्रपनो तिहिको व्यौरो। शुद्ध स्वरूपको अनुभव छे सो रागादि अशुद्ध परिणतिको मेटिकरि छे, रागादि अशुद्ध परिणतिको विनाश शुद्ध स्वरूपको अनुभवको लीयो छे तिहिकरि, पात्रीकृतः कहतां ज्ञाननय क्रिया नयको एक स्थानक छे । भावार्थ इसो जो दुवे नयको अर्थकरि विराजमान छे ।

भावार्थ-यहां यह बताया है कि शुद्ध स्वरूपका अनुभव वही कर सक्ता है जो स्याद्वाद नयसे अनेकांत स्वरूप आत्माको भलेप्रकार समझता हो और जो संयमी हो अर्थात् रागादि अशुद्ध परिणामको मेटकर शुद्ध भावोंमें सन्मुख हो। जिसका मन इंद्रिय विषयोंमें व अनेक मानसिक संकल्प विकल्पोंमें उलझ रहा होगा वह शुद्ध आत्माका अनुभव न कर सकेगा, इसलिये अनुभवकर्ताको संयमी होना योग्य है। फिर वह निरन्तर सर्व कार्योंसे ममता हटाकर आत्माका चिन्तवन करता हो तथा एकांत नयके मर्मसे रहित हो अर्थात् मात्र शुद्ध स्वरूपके ज्ञानसे ही मोक्ष होजायगा या मात्र बाहरी श्रावक या मुनिकी क्रिया पालनेसे ही मोक्ष होजायगा, इस एकांतको छोड़कर जो ज्ञान और क्रियाको दोनोंको परस्पर एक दूसरेको सहायक समझता है कि शुद्ध स्वरूपको ज्ञान चारित्र पालनेमें सहायक है विना स्वात्मानुभवके चारित्र कुचारित्र है। तथा चारित्र पालना अशुद्ध परिणाम मेटनेमें कारण है। इसतरह ज्ञान और चारित्र सहित वर्तन करता हुआ ही मोक्षके साधनभूत स्वानुभवमई एक शुद्ध भावको आश्रय करता है। तत्व०में कहा है:-

यदि चिद्रूपे शुद्धे स्थितिर्निजे भवति दृष्टिबोधबलात्। परद्रव्यस्यास्मरणं शुद्धनयादंगिनो वृत्तं ॥१९-१२॥

भावार्थ-जब शुद्ध चैतन्यरूप आत्मामें स्थिरता सम्यक्त व ज्ञानके बलसे होती है और परद्रव्यका स्मरण नहीं होता है वही शुद्ध नयसे ज्ञानी जीवके चारित्र है। अर्थात् रत्नत्रयकी एकता ही स्वानुभवरूप मोक्षका साधन है।

सवैया ३१ सा—जे जीव दरवरूप तथा परयायरूप, दोउ नै प्रमाण वस्तु शुद्धता गहत हैं ॥ जे अशुद्ध भावनिके त्यागी भये सरवथा, विषैसों विमुख व्है विरागता वहत हैं ॥ जे जे ग्राह्य भाव त्याज्य भाव दोउ भावनिकों, अनुभौ अभ्यास विषें एकता करत हैं ॥ तेई ज्ञान क्रियाके आराधक सहज मोक्ष, मारगके साधक अबाधक महत हैं ॥ ३६ ॥

वसंततिलका-चित्पिण्डचण्डिमविलासिविकासहासः शुद्धः प्रकाशभरनिर्भरसुप्रभातः।
आनन्दसुस्थितसदास्खलितैकरूपस्तस्यैव चायमुदयत्यचलार्चिरात्मा ॥८॥

खण्डान्वय सहित अर्थ-तस्य एव आत्मा उदयति-तस्य कहतां पूर्वोक्त जीवको, एव कहतां अवश्यकरि, आत्मा कहतां जीव वस्तु, उदयति कहतां सकल कर्मको विनाश करि प्रगट होइ छे। अनंतचतुष्टयरूप होइ छे। और किसो प्रगट होइ छे। अचलार्चिः कहतां सर्वकाल एकरूप छे केवलज्ञान केवलदर्शन तेजपुंज जिहिको इसो छे। और किसो छे। चित्पिंडचंडिमविलासविकाशहासः-चित्पिंड कहतां ज्ञानपुंज तिहिको, चंडिम कहतां प्रताप, तिहिको विलासि कहतां एकरूप परिणति इसो, विकाश कहतां प्रकाश स्वरूप तिहिको हासः कहतां निधान छे। और किसो छे। शुद्धः प्रकाशभरनिर्भरसुप्रभातः-शुद्ध प्रकाश कहतां रागादि अशुद्ध परिणति मेटिकरि हुओ छे, शुद्ध तत्वरूप परिणाम

तिहिको भर कहतां वारंवार शुद्ध स्वरूप परिणति तिहिकरि निर्भर कहतां हूओ छे सुप्रभातः कहतां साक्षात् उद्योत जहां इसो छे। भावार्थ इसो—जो यथा रात्रि सम्बंधी अंधेरो मिटतां दिवस उद्योत स्वरूप प्रगट होइ छे तथा मिथ्यात्व रागद्वेष अशुद्ध परिणति मेटि करि शुद्धत्व परिणाम विराजमान जीव द्रव्य प्रगट होइ छे। और किसो छे, आनन्दसुस्थिरसदास्खलितैकरूपः—आनंद कहतां द्रव्यको परिणामरूप अतींद्रिय सुख तिहिकरि सुस्थित कहतां आकुलतातहि रहितपनो तिहि करि सदा कहतां सर्वकाल अस्खलित कहतां अमिट छे एकरूप कहतां तिहिरूप सर्वस्व जिहेको इसो छै।

भावार्थ—यह है कि शुद्ध आत्मानुभवके वारवार अभ्यासके बलकर ज्ञानावरणादि चार घातिया कर्मोंका नाश होजाता है और केवलज्ञानरूप सूर्यका उदय होजाता है तब अरहंत अवस्थामें यह जीव परम वीतराग निराकुल भावमें तिष्ठा हुआ शुद्ध आत्मीक आनन्दका विलास करता रहता है। परमात्मप्रकाशमें कहा है—

जीवा जिणवर जो मुणइ जिणवर जीव मुणेइ, सो समभाव परिट्ठियउ लहु णिव्वाण लहेइ ॥३२६॥

भावार्थ—जो शुद्ध नयसे जीवोंको जिनेन्द्ररूप व जिनेन्द्रको जीवरूप अनुभव करता है वही समताभावमें विराजमान होकर शीघ्र निर्वाणको पाता है।

दोहा—जिनसि अनादि अशुद्धता, होइ शुद्धता पोख। ता परणतिको बुध कहे, ज्ञानक्रियासों मोख ॥३७॥
जगी शुद्ध सम्यक कला, बगी मोक्ष मग जोय। वहे कर्म चूरण करे, क्रम क्रम पूरण होय ॥३८॥
जाके घट ऐसी दशा, साधक ताको नाम। जैसे जो दीपक धरे, सो उजियारो धाम ॥३९॥

सवैया ३१ सा—जाके घट अन्तर मिथ्यात अन्धकार गयो, भयो परकाश शुद्ध समकित भानको॥ जाकी मोह निद्रा घटि ममता पलक फटि, जाणे निज मरम अवाची भगवानको॥ जाको ज्ञान तेज बग्यो उद्दिम उदार जग्यो, लग्यो सुख पोप समरस सुधा पानको॥ ताही सुविचक्षणको संसार निकट आयो, पायो तिन मारग सुगम निरवाणको ॥ ४० ॥

वसंततिलका—स्याद्वाददीपितलसन्महसि प्रकाशे शुद्धस्वभावमहिमन्युदिते मयीति।
किं बन्धमोक्षपथपातिभिरन्यभावैर्नित्योदयः परमयं स्फुरतु स्वभावः ॥ ६ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—अयं स्वभावः परं स्फुरतु—अयं स्वभावः कहतां छतो छे जीव वस्तु, परं स्फुरतु कहतां यही एक अनुभव रूप प्रगट हुओ। किसो छे, नित्योदयः कहतां सर्वकाल एकरूप प्रगट छे, और किसो छे। इति मयि उदिते अन्यभावैः किम्—इति कहतां पूर्वोक्त विधि मयि उदिते कहतां हौ शुद्ध जीवसरूप इसो अनुभव रूप प्रत्यक्ष होते संते। अन्यभावैः कहतां अनेक छे जे विकल्प त्यांहकरि, किं कहतां कौन प्रयोजन छे। किसा छे, अन्यभावैः—बंधमोक्षपथपातिभिः—बंध पथ कहतां मोह रागद्वेष बंधको कारण छे; मोक्षपथ कहतां सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र मोक्षमार्ग छे इसो जो पक्षपात कहतां

आपनो आपनो पक्षको वदै छे। इसा छे अनेक विकल्प रूप। भावार्थ इसो—जो इसा विकल्प जेतो काल विषे छे तेतै शुद्ध स्वरूप अनुभव नहीं होइ छे। शुद्ध स्वरूपको अनुभव होतां इसा विकल्प छता ही नहीं छे। विचार कौनको कीजै। किसो छे, मयो। स्याद्वाददीपितलसन्महसि—स्याद्वाद कहतां द्रव्य रूप तथा पर्याय रूप तिहि करि दीपित कहतां प्रगट हूओ छे, लसत् कहतां प्रत्यक्षरूप इसो छे, महसि कहतां ज्ञान मात्र स्वरूप जिहिको, और किसो छे। प्रकाशे कहतां सर्वकाल उद्योत स्वरूप छे, और किसो छे। शुद्धस्वभावः महिमनि—शुद्ध स्वभाव कहतां शुद्धपनो तिहि करि महिमनि कहतां प्रगटपनो छे जिहिको।

भावार्थ—जब स्याद्वादके द्वारा शुद्ध आत्माका अनुभव प्रकाशमान होजाता है तब सर्व विचार बंद होजाते हैं। बंध मार्ग व मोक्षमार्ग क्या है यह भी विचार नहीं रहते हैं। अखंड ज्योतिरूप ज्ञान चेतनाका भाव जगा करता है। योगसारमें कहा है—

इंदियरहिउ मणवयकायविसुद्धि। अप्पा अप्प मुणई तुहुं लहु पावहु सिवसिद्धि॥ ८५॥

भावार्थ—मन वचन कायको शुद्ध करके व इंद्रिय विजयी होकरके तू एक अकेले अपने आत्माका ही अनुभव कर इसीसे शीघ्र ही मोक्षकी सिद्धिको प्राप्त करेगा।

सवैया ३१ सा—जाके हिरदेमें स्यादवाद साधना करत, शुद्ध आतमको अनुभौ प्रगट भयो है॥ जाके संकलप विकलपके विचार मिटि, सदाकाल एक भाव रस परिणयो है॥ जाते बंध विधि परिहार मोक्ष अंगीकार, ऐसो सुविचार पक्ष सोउ छांडि दियो है॥ जाको ज्ञान महिमा उद्योत दिन दिन प्रति, सोही भवसागर उलंघि पार गयो है॥ ४१॥

वसंततिलका—चित्रात्मशक्तिसमुदायमयोऽयमात्मा सद्यः प्रणश्यति नयेक्षणखण्ड्यमानः।
तस्मादखण्डमनिराकृतखण्डमेकमेकान्तशान्तमचलं चिदहं महोऽस्मि॥ ७॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—तस्मात् अहं चित् महः अस्मि—तस्मात् कहतां तिहि कारण तहि, अहं कहतां हौं, चित् महः अस्मि कहतां ज्ञान मात्र इसो प्रकाश पुंज छूं। और किसो छूं। अखंडं कहतां अखंडित प्रदेश छूं। और किसो छूं। अनिराकृतखंडं कहतां किसाथकी अखंड नहीं हूओ छूं सहज ही अखंडरूप छूं। और किसो छूं। एकं कहतां समस्त विकल्प तहि रहित छूं। और किसो छूं, एकांतशांतं—एकांत कहतां सर्वथा प्रकार, शांतं कहतां समस्त परद्रव्य तहि रहित छूं और किसो छूं, अचलं कहतां आपणा स्वरूप तहि सर्व काल विषै अन्यथा नहीं छूं। इसो चैतन्य स्वरूप हौं छूं। जिहि कारण तहि, अयं आत्मा नयेक्षणखण्ड्यमानः सद्यः प्रणश्यति—अयं आत्मा कहतां यही जीव वस्तु, नय कहतां द्रव्यार्थिक तथा पर्यायार्थिक इसा छे अनेक विकल्प तेई हूवा, ईक्षण कहतां अनेक लोचन त्यांह करि, खण्ड्यमानः कहतां अनेकरूप देख्यो होतो, सद्यः प्रणश्यति कहतां खण्ड

खण्डरूप होइ करि मूल तहि खोज मिटै छे, इतना नय एक विषै क्यों घटै छे। उत्तर इसो जो जिहितै इसो छे जीव द्रव्य, चित्रात्मशक्तिसमुदायमयः—चित्र कहतां अनेक प्रकार, तिहिको व्यौरो—अस्तिपनो, नास्तिपनो, एकपनो, अनेकपनो, ध्रुवपनो, अध्रुवपनो, इत्यादि अनेक छे इसी जे आत्मशक्ति कहतां जीव द्रव्यका गुण त्यांहको जो समुदाय कहतां द्रव्यको अभिन्नपनो, तिहिमयः कहतां इसो छे जीव द्रव्य तिहितै एक शक्ति एक शक्तिको कहै छे, एक नय, एक एक नय यों कहतां अनन्त शक्ति छे तिहितै अनन्तनय होहि छे, यों कहता घणा विकल्प उपजै छे, जीवको अनुभव खोयी जाय छे। तिहितै निर्विकल्प ज्ञान वस्तु मात्र अनुभव करिवा योग्य छे।

भावार्थ—यद्यपि यह आत्मा अनन्त शक्तियोंका भण्डार है—तथापि उसको एक अखण्ड रूप ही अनुभव करना श्रेष्ठ है। क्योंकि एक एक स्वभावका भिन्न२ विचार करनेसे अनेक विकल्प उठेंगे तब स्वरूपमें थिरता न होगी। वास्तवमें जब किसीको समझना हो तब उसमें अनेक तरहसे विचार करना योग्य है। जब उसको समझ लिया गया तब तो उसका जब स्वाद लेना हो तब तो उपयोगको थिर ही करना उचित है। विना थिरताके कभी स्वाद नहीं आता है। इसीलिये मैं अपने शुद्ध वीतराग ज्ञानमय स्वभावमें स्थिर होगया हूं। यह स्वरूपमें मगनता ही मोक्षकी साधक है। परमात्मप्रकाशमें कहा है—

सत्थु पढंतुवि होइ जडु, जो ण हणेइ वियप्पु। देहि वसंतुवि णिम्मलउ, णवि मण्णइ परमप्पु ॥२१०॥

भावार्थ—जो शास्त्रोंको पढ़ते हुए भी संकल्प विकल्प नहीं दूर करता है वह मूर्ख है, वह अपनी देहमें वसते हुये भी निर्मल परमात्माका अनुभव नहीं करपाता है।

सवैया ३१ सा—अस्तिरूप नासति अनेक एक थिररूप, अथिर इत्यादि नानारूप जीव कहिये॥ दीसे एक नयकी प्रति पक्षी अपर दूजी, नैको न दिखाय वाद विवादमें रहिये॥ थिरता न होय विकलपकी तरंगनीमें, चंचलता वढे अनुभौ दशा न लहियें॥ ताते जीव अचल अबाधित अखण्ड एक, ऐसो पद साधिके समाधि सुख गहिये॥ ४२॥

आर्या छन्द—न द्रव्येण खंडयामि न क्षेत्रेण खंडयामि न कालेन खंडयामि।
न भावेन खंडयामि सुविशुद्ध एको ज्ञानमात्रो भावोऽस्मि॥ ८॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—भावः अस्मि—कहतां हौं वस्तुस्वरूप छूं और किसो छूं। ज्ञानमात्रः कहतां चेतनामात्र छे सर्वस्व जिहिको इसो छूं, एकः कहतां समस्त भेद विकल्प तहि रहित छूं, और किसो छूं, सुविशुद्धः कहतां द्रव्यकर्म भावकर्म नोकर्म उपाधितै रहित छूं और किसो छूं। द्रव्येण न खंडयामि—कहतां जीव स्वद्रव्य रूप छे इसो अनुभवतां फुनि हौं अखंडित छूं, क्षेत्रेण न खंडयामि—जीव स्वक्षेत्र रूप छे इसो अनुभवतां फुनि अखंडित छूं। कालेन न खंडयामि—कहतां जीव स्वकालरूप छे इसो अनुभवतां फुनि हौं अखंडित

छूं। भावेन न खंडयामि–कहतां जीव स्वभावरूप छे इसो अनुभवतां फुनि हौं अखंडित छूं। भावार्थ इसो जो एक जीव वस्तु स्वद्रव्य स्वक्षेत्र स्व काल स्व भावरूप चारि प्रकार भेदकरि कहिजै छे तथापि चारि सत्ता नहीं छे एक सत्ता छे। तिहिको दृष्टांत–चारि सत्ता यौंतो नहीं छे। यथा एक आम्रफल चारि प्रकार छे। तिहिको ब्यौरो–कोई अंश रस छे, कोई अंश छीलक छे, कोई अंश गुठली छे, कोई अंश मीठा छे तथा एक जीव वस्तु कोई अंश जीवद्रव्य छे, कोई अंश जीव क्षेत्र छे, कोई अंश जीव काल छे, कोई अंश जीव भाव छे। यौंतो नहीं छे। यौंकै मानतां सर्व विपरीत छे। तिहिंतै यौं छे। यथा एक आम्रफल स्पर्श रस गंध वर्ण विराजमान पुद्गलको पिंड छे तिहिंतै स्पर्शमात्रकै विचारतां स्पर्शमात्र छे, रसमात्रकै विचारतां रसमात्र छे, गंधमात्रकै विचारतां गंधमात्र छे, वर्ण मात्रकै विचारतां वर्णमात्र छे तथा एक जीव वस्तु स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, स्वभाव विराजमान छै तिहिंतै स्वद्रव्यरूप विचारतां स्वद्रव्य मात्र छै, स्वक्षेत्ररूप विचारतां स्वक्षेत्र मात्र छे, स्वकालरूप विचारतां सकाल मात्र छे, स्वभावरूप विचारतां स्वभाव मात्र छे, तिहिंतै इसो कह्यो जो वस्तु सो अखंडित छे। अखण्डित शब्दको इसो अर्थ छे।

भावार्थ–ज्ञानी ऐसा अनुभव करता है कि मैं एक अखण्डित चैतन्यमात्र वस्तु हूं। स्व द्रव्य क्षेत्र काल भावसे अस्ति रूप होता हुआ भी मैं अखण्डित हूं, ऐसा नहीं कि मेरा द्रव्य कोई और हो, क्षेत्र कोई और हो, काल कोई और हो, भाव कोई और हो। एक ही अखंड असंख्यात प्रदेशमय मैं स्वद्रव्य रूप हूं अर्थात गुणपर्याय समुदाय रूप हूं। मैं उतने ही प्रदेशवाला होकर स्वक्षेत्र रूप हूं। मैं सर्वांग पर्यायोंमें सर्व काल परिणमन रूप हूं इससे स्वकाल रूप हूं। मैं सर्वस्व गुणोंका व गुणांशोंका समूह रूप हूं इससे स्व-भाव रूप हूं। एक ही वस्तु हूं चारि दृष्टि करि चार रूप दिखता हूं। सत्ता चार नहीं है सत्ता एक ही है। जैसे आम्रके पुद्गलमें सर्वांग स्पर्श रस गंध वर्ण व्यापक है तैसे मेरे आत्मामें सर्वांग मेरा द्रव्य क्षेत्र काल भाव व्यापक है। भेदरूप विचारते हुए जैसे आम कभी चिकना कभी मीठा कभी गंधमय कभी पीला दिखता है वैसे भेदरूप विचारते हुए जीव द्रव्य चार रूप दिखता है। अभेदमें जैसे आम एक अखंड है वैसे मैं आत्मा एक अखंड सत्तारूप वस्तु हूं। पंचाध्यायीमें यही बात बताई है—

स्पर्शरसगन्धवर्णालक्षणभिन्ना यथा रसालफले। कथमपि हि पृथक्कर्तुं न तथा शक्यास्त्वखण्डदेशत्वात् ॥८३॥
अतएव यथावाच्या देशगुणांशाविशेषरूपत्वात्। वक्तव्यं च तथा स्यादेकं द्रव्यं त एव या मान्यात् ॥८४॥

भावार्थ–जैसे आमके फलमें स्पर्श, रस, गंध, वर्ण अपने २ लक्षणसे भिन्न २ होने-पर भी अलग अलग नहीं किये जासके हैं क्योंकि उन सबके रहनेका स्थान एक ही

अखंड है इसी तरह एक पदार्थमें भेदकी दृष्टिसे अनेक गुणोंका कथन किया जाता है परंतु यदि सामान्यसे व द्रव्य रूपसे देखा जावे तो वे सब एक द्रव्यरूप ही हैं। अखंड द्रव्यमें सर्व व्यापक है।

सवैया ३१ सा—जैसे एक पाको अम्र फल ताके चार अंश, रस जाली गुठली छीलक जब मानिये ॥ ये तो न बने पै ऐसे बने जैसे वह फल, रूप रस गन्ध फास अखण्ड प्रमानिये ॥ तैसे एक जीवको दरव क्षेत्र काल भाव, अंश भेद करि भिन्न भिन्न न बखानिये ॥ द्रव्यरूप क्षेत्र रूप कालरूप भावरूप, चारों रूप अलख अखण्ड सत्ता मानिये ॥ ४२ ॥

शालिनी छन्द—योऽयं भावो ज्ञानमात्रोऽहमस्मि ज्ञेयो ज्ञेयज्ञानमात्रः स नैव।
ज्ञेयो ज्ञेयज्ञानकल्लोलवल्गद् ज्ञानज्ञेयज्ञातृवद्वस्तुमात्रः ॥ ९ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—भावार्थ इसो—जो ज्ञेय ज्ञायक सम्बन्ध ऊपर बहुत भ्रांति चाली छे सो कोई इसो समझिसे जो जीव वस्तु ज्ञायक पुद्गल आदि देइ भिन्न रूप छः द्रव्य ज्ञेय छे। सो योंतो नहीं छे। ज्यों सांपत कहिजै छे त्यों छे। अहं अयं यः ज्ञानमात्रः भावः अस्मि—अहं कहतां हौं, यः कहतां जो कोई, ज्ञानमात्रः भावः अस्मि कहतां चेतना सर्वस्व इसो वस्तु स्वरूप छूं, स ज्ञेय न एव कहतां सो हौं ज्ञेयरूप छौं परंतु इसो ज्ञेयरूप न छौं। किसे ज्ञेयरूप न छौं। ज्ञेयज्ञानमात्रः—ज्ञेय कहतां आपणा जीव तहि भिन्न छ द्रव्यको समूह तिहिको, ज्ञानमात्रः कहतां जानपनो मात्र, भावार्थ इसो—जो हौं ज्ञायक, छ द्रव्य म्हारा ज्ञेय योंतो न छे। तो क्यों छे। उत्तर इसो जो ज्ञानज्ञेयज्ञातृमद्वस्तुमात्रज्ञेयः—ज्ञान कहतां जानपना रूप शक्ति, ज्ञेय कहतां जानवा योग्य शक्ति, ज्ञातृ कहतां अनेक शक्ति विराजमान वस्तु मात्र इसा तीनि भेद, मद्वस्तुमात्रः कहतां मेरो स्वरूप मात्र छे, ज्ञेयः इसो ज्ञेयरूप छौं। भावार्थ इसो—जो हौं आपणा स्वरूपको—वेद्यवेदक रूप जानौं छौं तिहितै म्हारो नाम ज्ञान, जिहितै आपकरि जानिवा योग्य छे, तिहितै म्हारो नाम ज्ञेय, जिहितैं इसी दोइ शक्ति आदि देइ अनंत शक्तिरूप छौं तिहितै म्हारो नाम ज्ञाता। इसा नाम भेद छे, वस्तु भेद नहीं छे। किसो छौं, ज्ञानज्ञेयकल्लोलवल्गन्—ज्ञान कहतां जीव ज्ञायक छे, ज्ञेय कहतां जीव ज्ञेयरूप छे इसो कल्लोल कहतां वचनको भेद तिहिकरि, वल्गन् कहतां भेदको पावे छे। भावार्थ इसो—जो वचनको भेद छे, वस्तुको भेद नहीं छे। ज्ञेयः—इसा स्वरूप जानवा योग्य छे।

भावार्थ—आत्मानुभव करनेवाला ऐसा अनुभव करता है कि मैं ही ज्ञान ज्ञेय व ज्ञाता हूं। मैं आप ही अनुभव करने वाला हूं, आपहीको अनुभव करता हूं, अनुभव करना भी मेरा स्वभाव है। मैं एकरूप तीनों भावोंसे तन्मय हूं। मेरे ज्ञानमें परद्रव्य स्वयं झलको तो झलको, मुझे कोई प्रयोजन नहीं है। मैं तो निश्चयसे आप आपको जानने देखने वाला

हूं। वास्तवमें यह कहना कि भगवान परमात्मा परवस्तुको जानते हैं मात्र व्यवहार है। निश्चयसे वे स्वयं आप अपनेको जानते हैं। स्वात्मानुभव बिलकुल एकाग्र आत्मपरिणतिको ही कहते हैं। परमात्मप्रकाशमें कहा है:—

सयलवियप्पहं जो विलउ, परमसमाहि भणंति। तेण सुहासुहभावडा, मुणि सयलवि मिल्लंते ॥३२१॥

भावार्थ—सर्व विकल्पों या भेदोंसे रहित होनेको परम समाधि कहते हैं इसलिये मुनि सर्व शुभ अशुभ परभावोंका त्याग कर देते हैं।

सवैया ३१ सा—कोउ ज्ञानवान कहे ज्ञान तो हमारो रूप, ज्ञेय षट्द्रव्य सो हमारो रूप नांही है ॥ एक न प्रमाण ऐसे दूजी अब कहूं जैसे, सरस्वती अरथ अरव एक ठांही है ॥ तैसे ज्ञाता मेरो नाम ज्ञान चेतना विराम, ज्ञेयरूप शकति अनंत मुझ मांही है ॥ तो कारण वचनके भेद भेद कहे कोउ, ज्ञाता ज्ञान ज्ञेयको विलास सत्ता मांही है ॥ ४४ ॥

चौपाई—स्वपर प्रकाशक शकति हमारी। ताते वचन भेद भ्रम भारी ॥
ज्ञेय दशा द्विविधा परकाशी। निजरूपा पररूपा भासी ॥ ४५ ॥

दोहा-निजस्वरूप आतम शकति, पर रूप पर वस्त।
जिन्ह लखिलीनी पेच यह, तिन्ह लखि लियो समस्त ॥ ४६ ॥

वसंततिलका छन्द—क्वचिल्लसति मेचकं क्वचिदमेचकामेचकं
क्वचित्पुनरमेचकं सहजमेव तत्त्वं मम।
तथापि न विमोहयत्यमलमेधसां तन्मनः
परस्परसुसंहृतप्रकटशक्तिचक्रं स्फुरत् ॥ १० ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—भावार्थ इसो—इहि शास्त्रको नाम नाटक समयसार छे। तिहितै यथा नाटक विषै एक भाव अनेकरूप करि दिखाइजै छे तथा एक जीवद्रव्य अनेक भावकरि साधिजै छे। मम तत्त्वं सहजं कहतां म्हारो ज्ञानमात्र जीव वस्तु सहज ही इसो छे किसो छे। क्वचित्मेचकं लसति—कहतां कर्म संयोग थकी रागादि भावरूप परिणतिकै देखतां अशुद्ध इसो आस्वाद आवै छे। पुनः कहतां एकांतपनैं इसो ही छे यों नहीं छे। इसो फुनि छे। क्वचित् अमेचकं-कहतां एक वस्तुमात्र रूप देखतां शुद्ध छे एकांतपनै इसो फुनि न छे तो किसो छे। क्वचित्मेचकामेचकं—कहतां अशुद्ध परिणति रूप, वस्तु मात्ररूप एक ही वारकै देखतां अशुद्ध फुनि छे शुद्ध फुनि। इसो दोऊ विकल्प घटै छे इसो क्यों छे। तथापि कहतां तो फुनि, अमलमेधसां तत् मनः न विमोहयति—अमलमेधसां कहतां सम्यग्दृष्टि जीवहको, तत् मनः कहतां तत्वज्ञानरूप छै जो बुद्धि, न विमोहयति कहतां संशयरूप नहीं भमै छे। भावार्थ इसो—जो जीव स्वरूप शुद्ध फुनि छे, अशुद्ध फुनि छे शुद्ध अशुद्ध फुनि छे। इसो कहतां अवधारिवाको भ्रमको ठौर छे, तथापि जे स्याद्वाद रूप वस्तु अवधारहिं छे त्यांहको सुगम छे, भ्रम नहीं उपजै छे। किसो छे वस्तु—

परस्परसुसंहृत प्रगटशक्तिचक्रं-परस्पर कहतां मांहोमाही एक सत्तारूप, सुसंहृत कहतां मिली छे इसी छे, प्रगट शक्ति कहतां स्वानुभवगोचर जो जीवकी अनेक शक्ति त्याहको, चक्रं कहतां समूह छे जीव वस्तु। और किसो छे, स्फुरत् कहतां सर्वकाल उद्योतमान छे।

भावार्थ-यह है कि जीवका स्वभाव अनेक रूप है। इसको स्याद्वाद विना किसी विरोधको सिद्ध करता है। जब वैभाविक शक्तिकी अपेक्षा देखा जावे तो जीव अशुद्ध भी होसक्ता है। यह भी शक्ति है। जब वस्तुमात्र एकरूप देखा जावे तब यह शुद्ध ही झलकता है। दोनों स्वभावोंको एक ही वार देखों तो दोनो रूप माल्म पड़ता है। जैसे ज्ञानी जलके स्वभावको जानता है कि यह निर्मल व शीतल है, अग्निके संयोगसे उष्णरूप भी होसक्ता है तथापि वह ज्ञानी निर्मल जलको ही पीता है उसी तरह सम्यग्दृष्टी निर्मल आत्मस्वभावका ही स्वाद लेता है। तथापि भिन्न २ नयोंसे वस्तु स्वभावको जानता है।

जैसा तत्त्व०में कहा है—

द्वाभ्यां दृग्भ्यां विना नस्यात् सम्यग्द्रव्यावलोकनं। यथा तथा नयाभ्यां चेत्युक्तं स्याद्वादवादिभिः ॥२०॥

भावार्थ-जैसे दो नेत्रोंके विना भलेप्रकार पदार्थोंका अवलोकन नहीं होता है उसीतरह निश्चय व्यवहार नयोंके विना जीव वस्तुका यथार्थ ज्ञान नहीं होता है ऐसा स्याद्वादके ज्ञाताओंने कहा है-

सवैया ३१ सा—करम अवस्थामें अशुद्ध सों विलोकियत, करम कलंकसों रहित शुद्ध अंग है॥ उभै नय प्रमाण समकाल शुद्धा शुद्धरूप, ऐसो परयाय धारी जीव नाना रंग है॥ एक ही समैमें त्रिधारूप पै तथापि याकि, अखण्डित चेतना शकति सरबंग है॥ यहै स्यादवाद याको भेद स्यादवादी जाने, मूरख न माने जाको हियो दग भंग है॥ ४७॥

कलश-इतो गतमनेकतां दधदितः सदाप्येकता-
मितः क्षणविभङ्गुरं ध्रुवमितः सदैवोदयात्।
इतः परमविस्तृतं धृतमितः प्रदेशैर्निजै-
रहो सहजमात्मनस्तदिदमद्भुतं वैभवम्॥ ११॥

खण्डान्वय सहित अर्थ-अहो आत्मनः तत् इदं सहजं वैभवं अद्भुतं-अहो कहतां संबोधन वचन। आत्मनः तत्वं कहतां जीव वस्तुको, तत् इदं सहजं कहतां अनेकांत स्वरूप इसो, वैभवं कहतां आत्माके गुणरूप लक्ष्मी, अद्भुतं कहतां आचंभो प्रवर्ते छे। किहिते इसो छे। इतः अनेकतां गतं-इतः कहतां पर्यायरूप दृष्टि देखतां, अनेकतां कहतां अनेक छे, इस भावको, गतं कहतां प्राप्त हूओ। इतः सदापि एकतां दधत्-इतः कहतां सोई वस्तु द्रव्यरूपके देखतां, सदापि एकतां दधत् कहता सदा ही एक छे इसी प्रतितिको

उपजावै छे। और किसो छे। इतः क्षणविभंगुरं–इतः कहतां सर्व समय प्रति अखंड धारा प्रवाहरूप परिणवै इसी दृष्टि देखतां, क्षणविभंगुरं कहतां विनशै छे उपजै छे। इतः सदा एव उदयात् ध्रुवं–इतः कहतां सर्वकाल एकरूप छे इसी दृष्टिके देखतां, सदा एव उदयात् कहतां सर्वकाल अविनश्वर छे, इसो विचारतां, ध्रुवं कहतां शाश्वतो छे। इतः कहतां वस्तुको प्रमाणदृष्टि देखतां, परमविस्तृतं कहतां प्रदेशह करि लोक प्रमाण छे। ज्ञानकरि ज्ञेय प्रमाण छे। इतः निजैः प्रदेशैः धृतः–कहतां निज प्रमाणकी दृष्टि देखतां, निजैः प्रदेशैः कहतां आपणा प्रदेश मात्र, धृतं कहतां प्रमाण छे।

भावार्थ–यह जीव वस्तु अनेकांतसे अनेक रूप झलकती है, पर्यायोंकी अपेक्षा अनेक रूप व क्षणभंगुर। द्रव्य स्वभावकी अपेक्षा एकरूप व अविनाशी। प्रदेशोंके विस्तारकी अपेक्षा असंख्यात प्रदेशी लोक प्रमाण। ज्ञानकी अपेक्षा सर्वव्यापी। वर्तमान प्रदेशोंकी अपेक्षा शरीर प्रमाण इत्यादि अनेक रूपसे वस्तुको जानकर सम्यग्दृष्टी आत्माके स्वभावमें ही भोक्ता होते हैं। योगसारमें कहा है–

अप्पा अप्पइ जो मुणइ जो परभाव चएइ। सो पावइ सिवपुरगमणु जिणवर एउ भणेइ ॥३४॥

भावार्थ–जो ज्ञानी परभावोंको व सर्व विकल्पोंको छोड़कर एक आत्माको ही आत्माके द्वारा अनुभव करते हैं वे ही मोक्षनगरमें जाते हैं ऐसा जिनेन्द्रोंने कहा है।

सवैया ३१ सा—निहचे दरव दृष्टि दीजे तव एक रूप, गुण परयाय भेद भावसों बहुत है॥ असंख्य प्रदेश संयुगत सत्ता परमाण, ज्ञानकी प्रभासों लोकाऽलोकमान जुत है॥ परजे तरंगनीके अंग छिन भंगुर है, चेतना शकति सों अखण्डित अचुत है॥ सो है जीव जगत विनायक जगत सार, जाकी मौज महिमा अपार अद्भुत है॥ ४८॥

कलश–कषायकलिरेकतः स्खलति शान्तिरस्त्येकतो
भावोपहतिरेकतः स्पृशति मुक्तिरप्येकतः।
जगत्त्रितयमेकतः स्फुरति चिच्चकास्त्येकतः
स्वभावमहिताऽऽत्मनो विजयतेऽद्भुतादद्भुतः ॥१२॥

खण्डान्वय सहित अर्थ–आत्मनः स्वभावमहिमा विजयते–आत्मनः कहतां जीव द्रव्यको, स्वभावमहिमा कहतां स्वरूपकी बड़ाई। विजयते कहतां सर्व तहि उत्कृष्ट छे, किसो छे महिमा। अद्भुतात् अद्भुतः–कहतां आश्चर्य तहि आश्चर्य छे। सो किसो आश्चर्य, एकतः कषायकलिः स्खलति–एकतः कहतां विभाव परिणाम शक्तिरूप विचारतां, कषाय कहतां मोह रागद्वेष त्याहकी, कलिः कहतां उपद्रव इसो होइकरि, स्खलति कहतां स्वरूपतहि भ्रष्ट होइ परिणवै छे। इसो छतो ही छे, एकतः शांतिः अस्ति, एकतः कहतां जीवको शुद्ध स्वरूप विचारतां। शांतिः अस्ति कहतां चेतना मात्र स्वरूप छे, रागादि

अशुद्धपनो छतो ही नहीं। और किसो छे। एकतः भावोपहतिः अस्ति–एकतः कहतां अनादि कर्म संयोग रूप परिणयो छे तिहितै, भव कहतां संसार चतुर्गति, तिहि विषै, उपहतिः कहतां अनेकवार भ्रमण, अस्ति कहतां छे। एकतः मुक्तिः स्पृशति–एकतः कहतां जीव वस्तु सर्वकाल मुक्त छे इसो अनुभव आवै छे, और किसो छे, एकतः जगत् त्रितयं स्फुरति–एकतः कहतां जीवको स्वभाव स्वपर ज्ञायक रूप इसो विचारतां, जगत्–कहतां समस्त ज्ञेय वस्तु तिहिको, त्रितय कहतां अतीत अनागत वर्तमान काल गोचर पर्याय, स्फुरति कहतां एक समय मात्र काल विषैं ज्ञान माहैं प्रतिबिम्ब रूप छे। एकतः चित् चकास्ति–एकतः कहतां वस्तुको स्वरूप सत्ता मात्र विचारतां, चित् कहतां शुद्ध ज्ञानमात्र, चकास्ति कहतां इसो शोभै छे। भावार्थ इसो जो व्यवहार मात्र करि ज्ञान समस्त ज्ञेयको जानै छे निश्चयकरि नहीं जानै छे, आपणा स्वरूप मात्र छे, जिहितैं ज्ञेयसो व्याप्यव्यापक रूप नहीं छे।

भावार्थ–ज्ञानी जीव आत्माको अनेक स्वरूपसे जानते हैं। विभाव परिणमनकी अपेक्षा कषायरूप, संसारमें एकेंद्रियादि पर्यायरूप व स्वभावकी अपेक्षा परम वीतराग व सदा ही मुक्त रूप पहचानते हैं। व्यवहारसे सर्व ज्ञेयोंका जाननेवाला व निश्चयसे आप आपको जाननेवाला ऐसा मानते हैं। स्याद्वादीके ज्ञानमें अनेकरूप आत्माका स्वरूप झलकता है तथापि वे एक शुद्ध भावका ही अनुभव करते हैं। योगसारमें कहा है—

अप्पा दंसणु णाणु मुणी अप्पा चरणु वियाणि। अप्पा संजम सील तउ अप्पा पच्चक्खाणि ॥८०॥

भावार्थ–आत्मा ही दर्शन है, ज्ञान है, आत्मा ही चारित्ररूप है, आत्मा ही संयम, शील, तप व प्रत्याख्यान है। जो कुछ है सो एक आत्मा ही है ऐसा अनुभव करो।

सवैया ३१ सा—विभाव शकति परणतिसों विकल दीसे, शुद्ध चेतना विचारते सहज संत है॥ करम संयोगसों कहावे गति जोनि वासि, निहचै स्वरूप सदा मुकत महन्त है॥ ज्ञायक स्वभाव धरे लोकाऽलोक परकासि, सत्ता परमाण सत्ता परकाशवन्त है॥ सो है जीव जानत जहांन कौतुक महान, जाकी कीरति कहान अनादि अनन्त है॥ ४६॥

मालिनी–जयति सहजतेजःपुंजमज्जत्त्रिलोकीस्खलदखिलविकल्पोऽप्येक एव स्वरूपः।
स्वरसविसरपूर्णाच्छिन्नतत्त्वोपलम्भः प्रसभनियमितार्चिश्चिच्चमत्कार एषः॥१३॥

खण्डान्वय सहित अर्थ–एषः चिच्चमत्कारः जयति–अनुभवको प्रत्यक्ष छे ज्ञान मात्र जीव वस्तु सर्वकाल विषैं जैवंतो प्रवर्तो। भावार्थ इसो–जो साक्षात् उपादेय छे। किसो छे, सहजतेजःपुंजमज्जत्त्रिलोकीस्खलदखिलविकल्पः–सहज कहतां द्रव्यके स्वरूप छे इसो, तेजः कहतां केवलज्ञान तिहि विषैं, मज्जत् कहतां ज्ञेयरूप मग्न छे। इसो त्रिलोकी कहतां समस्त ज्ञेय वस्तु तिहि करि, स्खलत् कहतां उपज्या छे, अखिलविकल्पः कहतां अनेक

प्रकार पर्याय भेद इसो छे ज्ञानमात्र जीव वस्तु, अपि कहतां तौ फुनि, एक एव स्वरूपः कहतां एक ज्ञानमात्र जीव वस्तु छे और किसो छे। स्वरसविसरपूर्णा छिन्नतत्त्वोपलंभः— स्वरस कहतां चेतना स्वरूप तिहिको, विसर कहतां अनंतशक्ति तिहिकरि, पूर्णा कहतां समस्त छे इसो, अच्छिन्न कहतां अनंतकाल पर्यन्त शाश्वतो छे इसो, तत्व कहतां जीव वस्तु स्वरूप तिहिको, उपलंभः कहतां हुई छे प्राप्ति जिहिको इसो छे, और किसो छे। प्रसभनियमित्तार्चिः—प्रसभ कहतां ज्ञानावरणी कर्मको विनाश होतां प्रगट हुई छे। नियमितं कहतां होती थी तेती, अर्चिः कहतां केवल ज्ञानस्वरूप जिहिको इसो छे। भावार्थ इसो—जो परमात्मा साक्षात निरावरण छे।

भावार्थ—स्वात्मानुभवरूप साधनके द्वारा यह आत्मा ज्ञानावरणादि कर्मोसे छूटकर केवलज्ञानी अरहंत होजाता है। फिर सदा इसी ही स्वभावमें मग्न रहता है। यद्यपि यह ज्ञान सर्व ज्ञेयोंको एक काल जानता है तथापि सदा एक शुद्ध स्वरूप ही रहता है।

परमात्मप्रकाशमें कहते हैं—

केवलदंसणु णाणु सुहु वीरिउ जो जि अणंतु, सो जिणदेउ वि परमुणि परमप्पासु मुणंतु ॥३३०॥

भावार्थ—जो केवल दर्शन ज्ञान सुख वीर्यमई है सोई जिनदेव है सोही परमात्मा का प्रकाश है।

सवैया ३१ सा—पंच परकार ज्ञानावरणको नाश करि, प्रगटि प्रसिद्ध जग मांहि जगमगी है ॥ ज्ञायक प्रभामें नाना ज्ञेयकी अवस्था धरि, अनेक भई पैं एकताके रस पगी है ॥ याही भांति रहेगी अनादिकाल परयन्त, अनन्त शकति फेरि अनन्तसों लगी है ॥ नरदेह देवलमें केवल स्वरूप शुद्ध, ऐसी ज्ञान ज्योतिकी सिखा समाधि जगी है ॥ ५० ॥

मालिनी छन्द- अविचलितचिदात्मन्यात्मनात्मानमात्म-
न्यनवरतनिमग्नं धारयद्ध्वस्तमोहम्।
उदितममृतचन्द्रज्योतिरेतत्समन्ता-
ज्ज्वलतु विमलपूर्णं निःसपत्नस्वभावम् ॥ १४ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—एतत् अमृतचंद्रज्योतिः उदितं—एतत् कहतां प्रत्यक्षपने विद्यमान छे। अमृतचंद्रज्योतिः कहतां दोई अर्थ छे। अमृत कहतां मोक्ष इसो छे, चंद्र कहतां चंद्रमा तिहिको, ज्योति कहतां प्रकाश, उदितं कहतां प्रगट हुओ। भावार्थ इसो जो शुद्ध जीव स्वरूप मोक्षमार्ग इसो अर्थ प्रकाश्यो। दूजो अर्थ इसो जो अमृतचंद्र कहता नाम छे टीकाको कर्ता आचार्यको तिहिको, ज्योतिः कहतां बुद्धिका प्रकाश, उदितं कहतां शास्त्र पूर्ण हुओ। शास्त्रको आशीर्वाद कहिजै छे। निःसपत्नस्वभावं समंतात् ज्वलतु—निःसपत्न कहतां नहीं छे कोई शत्रु जिहिको इसो छे, स्वभावं कहतां अबाधित स्वरूप, समंतात्

कहतां सर्वकाल सर्व प्रकार, ज्वलतु कहतां परिपूर्ण प्रताप संयुक्त प्रकाशमान होउ, किसो छे, विमलपूर्ण—विमल कहतां पूर्वापर विरोध इसो मल तिहितें रहित तथा पूर्ण कहतां अर्थ करि गंभीर इसो छे। ध्वस्तमोहं—ध्वस्त कहतां मूल तहि उखाड्यो छे। मोहं कहतां भ्रांति जिहि इसो छे। भावार्थ इसो—जो इहि शास्त्र विषे शुद्ध जीवको स्वरूप निःसंदेहपनै कह्यो छे। और किसो छे, आत्मना आत्मनि आत्मानं अनवरतनिमग्नं धारयन्—आत्मना कहतां ज्ञान मात्र शुद्ध जीव करि, आत्मनि कहतां शुद्ध जीव विषैं, आत्मानं कहतां शुद्ध जीवको, अनवरतनिमग्नं धारयन् कहतां निरंतर अनुभव गोचर करतो होतो। किसो छे आत्मा—अविचलितचिदात्मनि—अविचलित कहतां सर्वकाल एकरूप इसो छे, चित् कहतां चेतना सोई छे आत्मस्वरूप जिहिको, इसो छे। नाटक समयसार विषै अमृतचन्द्र सूरि कह्यो जो साध्य साधक भाव सो संपूर्ण हुओ। नाटक समयसार शास्त्र पूरो हुओ। आशीर्वाद कहिजे छे।

भावार्थ—यहां यह कहा है कि यह ग्रन्थ पूर्ण हुआ। इसमें मोक्षमार्गका कथन है, शुद्ध जीवका प्रकाश है। यह सदा ही निरंतर प्रकाशमान रहो, इसको सब कोई सदा पढ़ते सुनते रहो व आत्मानुभव करते हो। इस सं० वृत्तिके कर्ता श्री अमृतचंद्र आचार्य हैं, उन्होंने यह आशीर्वाद दिया है।

सवैया ३१ सा—अक्षर अरथमें मगन रहे सदा काल, महा सुख देवा जैसी सेवा काम गविकी ॥ अमल अवाधित अलख गुण गावना है, पावना परम शुद्ध भावना है भविकी ॥ मिथ्यात तिमिर अपहारा वर्धमान धारा, जैसे उभै जामलों किरण दीपे रविकी ॥ ऐसी है अमृतचंद्र कला त्रिधारूप धरे। अनुभव दशा ग्रंथ टीका बुद्धि कविकी ॥ ५१ ॥

दोहा—नाम साध्य साधक कह्यो, द्वार द्वादशम ठीक। समयसार नाटक सकल, पूरण भयो सटीक॥५१॥

शार्दूलविक्रीडित छन्द—यस्माद्वैतमभूत्पुरा स्वपरयोर्भूतं यतोऽत्रान्तरं
रागद्वेषपरिग्रहे सति यतो जातं क्रियाकारकैः।
भुञ्जाना चयतोऽनुभूतिरखिलं खिन्ना क्रियायाः फलं
तद्विज्ञानघनौघमग्नमधुना किञ्चिन्न किञ्चित्किल ॥ १५ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—किल तत् किंचित् अखिलं क्रियायाः फलं अधुना तत् विज्ञानघनौघमग्नं खिन्नं न किंचित्—किल कहतां निहचासों, तत् कहतां जिहिको औगुण कहिसैगो इसो जो, किंचित् अखिलं क्रियायाः फलं कहतां कछू एक पर्यायार्थिक नय करि मिथ्यादृष्टी जीव कहु अनादिकाल लेइ करि नानाप्रकार भोग सामग्री तिहिकै भोगवतां, मोह रागद्वेष रूप अशुद्ध परिणति तिहितै कर्मको बंध अनादिकाल तहि योंही निवही, अधुना

कहतां सम्यक्तकी उत्पत्ति तहिं लेइ करि, ततःविज्ञानघनौघमग्नं कहतां शुद्ध जीव स्वरूपके अनुभव विषै समायो होतो। खिन्नं कहतां मिट्यो तो, न किंचित् कहतां मिटतां कांयो छे ही नहीं। जो थो सो रह्यो किसो छे क्रियाको फल, यस्माद् स्वपरयोः पुराद्वैतं अभूत्–यस्मात् कहतां जिहि क्रिया फल थकी, स्वपरयोः कहतां यह आत्मस्वरूप यह पर स्वरूप इसो, पुरा कहतां अनादिकाल तहि लेइकरि, द्वैतं अभूत् कहतां द्विविधापनों हूओ। भावार्थ इसो–जो मोह रागद्वेष स्वचेतना परिणति जीवकी इसो मान्यो और क्रियाफल तहिं कांयो हूओ। यतः अत्र अंतरं भूतं–यतः कहतां जिहि क्रिया फल थकी। अत्र कहतां शुद्ध जीव स्वरूप विषै, अंतरं भूतं कहतां अंतराय हूओ। भावार्थ इसो–जो जीवको स्वरूप तो अनंत-चतुष्टयरूप छे अनादि तहि लेइ अनंतकाल गयो जीव आपणा स्वरूपको न पायो चतुर्गति संसारको दुःख पायो, फुनि क्रियाका फल थकी और क्रिया फल तहि कायो, हूओ। यतः रागद्वेषपरिग्रहे सति क्रियाकारकैः जातं–यतः कहतां जिहि क्रियाका फलथकी। रागद्वेष कहतां अशुद्ध परिणति तिहिंते, परिग्रहे कहतां तिहिरूप परिणाम इसो, सति कहतां होतेसंते, क्रियाकारकैः जातं कहतां जीव रागादि परिणामहको कर्ता छे तथा भोक्ता छे इत्यादि जेता विकल्प उपना तेता क्रियाका फलथकी उपना, और क्रियाका फलथकी कांयो हूओ। यतः अनुभूतिः भुंजाना–यतः कहतां जिहि क्रिया फलथकी, अनुभूतिः कहतां आठ कर्मके उदयको स्वाद, भुंजाना कहतां भोग्यो। भावार्थ इसो–जो आठ ही कर्मके उदय जीव अत्यंत दुखी छे सो फुनि क्रियाका फलथकी।

भावार्थ–यहांपर यह बताया है कि अनादिकालसे यह जीव रागद्वेष मोहमें पड़ा हुआ था। मैं कर्ता मैं भोक्ता इसी दुनियामें जकड़ा था। जिस दोषसे इसने आठ कर्म बांधे और चारों गतिमें भ्रमण कर खूब कष्ट पाया। इस सबका कारण अज्ञान था, इसको भेदज्ञान हुआ नहीं कि मैं कौन हूं व रागद्वेष कौन हैं इससे घोर आपत्तिमें पड़कर अपना बुरा किया। अब श्री गुरुके उपदेशके प्रतापसे या मिथ्यात्वके चले जानेसे वह सब भ्रम मिट गया और यह जीव अपने ज्ञानमई स्वभावमें जैसा था वैसा लीन होगया। तब मानो ऐसा भाया कि कुछ था ही नहीं। सर्व दुःखका कारण एक भ्रम था सो चला गया। स्वानुभव होगया। अपनेको सिद्ध समान अनुभव किया। परमातमप्रकाशमें कहा है–

जेहउ णिम्मलु णाणमउ, सिद्धिहि णिवसइ देउ। तेहउ णिवसइ बंभु परु, देहहं मं करि भेउ ॥२६॥

भावार्थ–जैसा निर्मल ज्ञानमई परमात्मा सिद्ध अवस्थामें है वैसा ही परब्रह्म संसार अवस्थामें इस देहके भीतर है, निश्चयसे दोनोंमें कोई भेद नहीं है ऐसा अनुभव कर।

दोहा–अब कवि कुछ पूरब दशा, कहे आपसों आप। सहज हर्ष मनमें धरे, करे न पश्चाताप ॥ ५६ ॥

सवैया ३१ सा—जो मैं आप छांडि दीनो पररूप गहि लीनो, कीनो न बसेरो तहां जहां मेरा स्थल है ॥ भोगनिको भोगि व्है करमको करता भयो, हिरदे हमारे राग द्वेष मोह मल है ॥ ऐसे विपरीत चाल भई जो अतीत काल, सो तो मेरे क्रियाकी ममता ताको फल है ॥ ज्ञानदृष्टि भासी भयो क्रीयासों उदासी वह, मिथ्या मोह निद्रामें सुपनकोसो छल है ॥ ५४ ॥

उपजाति छन्द—स्वशक्तिसंसूचितवस्तुतत्त्वैर्व्याख्या कृतेयं समयस्य शब्दैः

स्वरूपगुप्तस्य न किञ्चिदस्ति कर्त्तव्यमेवामृतचन्द्रसूरेः॥ १६ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—अमृतचंद्रसूरेः किंचित् कर्तव्यं न अस्ति एव—अमृतचंद्रसुरेः कहतां ग्रंथकर्ताको नाम छे तिहिको, किंचित् कहतां नाटक समयसारको, कर्तव्यं कहतां करिवो, न अस्ति एव कहतां नहीं छे। भावार्थ इसो—जो नाटक समयसार ग्रन्थकी टीकाको कर्ता अमृतचन्द नाम आचार्य छता छै तथापि महान् छै। बड़ा छै, संसार तहि विरक्त छै। तिहि तहि ग्रन्थ करिवाको अभिमान नहीं करे छे। किसो छे अमृतचन्दसूरि, स्वरूपगुप्तस्य—कहतां द्वादशांका रूप सूत्र अनादि निधन छे, कोईको कीयो नहीं छे इसो जानि आपको ग्रन्थको कर्तापनो नहीं मान्यो छे जिहि इसो छे। इसो क्यों छे जिहितै, समयस्य इयं व्याख्या शब्दैः कृता—समस्य कहतां शुद्ध जीव स्वरूपकी, इयं व्याख्या कहतां नाटक समयसार नाम ग्रन्थरूप बखान, शब्दैः कृता कहतां वचनात्मक छै ये शब्दराशि त्यांह करि, करी छे। किसा छे शब्दराशि, स्वशक्तिसंसूचितवस्तुतत्त्वैः—स्वशक्ति कहतां शब्द माहै छे अर्थ सूचिवाकी शक्ति तिहि करि संसूचित कहतां प्रकाशमान हुवा छे, वस्तु कहतां जीवादि पदार्थ त्यांहका, तत्त्वैः कहतां जिसो क्यों द्रव्य गुण पर्यायरूप, उत्पाद व्यय ध्रौव्य रूप अथवा हेय उपादेय आप वस्तुको निहचो त्यांह करि इसा छे शब्दराशि।

भावार्थ—यहां संस्कृत कलशके कर्ता अमृतचन्द आचार्य अपनी लघुता बताते हैं कि मैं इस व्याख्याका कर्ता नहीं हूं। इस सबरचनाको मूल कारण शब्द हैं, शब्दोंसे ही यथार्थ तत्व झलक रहा है। मेरा कुछ कर्तव्य नहीं है, मैं तो आत्मा अपने स्वरूपमें मग्न हूं। तथा यह आगमका सार जो तत्वज्ञान है वह प्रवाहरूपसे अनादि अनन्त है। इसका कर्ता कोई नहीं होसक्ता है।

दोहा—अमृतचंद्र मुनिराजकृत, पूरण भयो गरंथ। समयसार नाटक प्रगट, पंचम गतिको पंथ ॥५५॥

इतिश्री अमृतचंद्र कृत समयसारकी राजमल्लीय टीका समाप्त।

कवि बनारसीदासजी कृत-

चतुर्दश गुणस्थानाधिकार।

दोहा–जिन प्रतिमा जिन सारखी, नमैं बनारसी ताहि ॥
जाकै भक्ति प्रभावसों, कीनो ग्रंथ निवाहि ॥ १ ॥

चौपाई–जिन प्रतिमा जन दोष निकंदे। सीस नमाइ बनारसि बंदे ॥ फिरि मन मांहि विचारी ऐसा। नाटक ग्रंथ परम पद जैसा ॥ २ ॥ परम तत्व परिचे इस मांही। गुण स्थानककी रचना नांही ॥ यामैं गुण स्थानक रस आवे। तो गरंथ अति शोभा पावे ॥३॥

सवैया ३१ सा–जाके मुख दरससों भगतके नैन नीकों, थिरताकी बानी बढे चंचलता विनसी ॥ मुद्रा देखि केवलीकी मुद्रा याद आवे जहां, जाके आगे इंद्रकी विभूति दीसे तिनसी ॥ जाको जस जपत प्रकाश जगे हिरदेमें, सोइ शुद्ध मति होइ हुति जो मलिनसी ॥ कहत बनारसी सुमहिमा प्रगट जाकि, सो है कि जिनकी चवि सु विद्यमान जिनसी ॥ ४ ॥ जाके उर अंतर सुदृष्टिकी लहर लसि, विनसी मिथ्यात मोह निद्राकी ममारखी ॥ सैलि जिन शासनकी फैलि जाके घट भयो, गरवको त्यागि षट दरवको पारखी ॥ आगमके अक्षर परे है जाके श्रवणमें, हिरदे भंडारमें समानि वाणि आरखी ॥ कहत बनारसी अलप भव थीति जाकि, सोई जिन प्रतिमा प्रमाणे जिन सारखी ॥ ५ ॥

दोहा–यह विचारि संक्षेपसों, गुण स्थानक रस चोज। वर्णन करे बनारसी, कारण शिव पथ खोज ॥६॥ नियत एक व्यवहारसों, जीव चतुर्दश भेद। रंग योग बहु विधि भयो, ज्यों पट सहज सुपेद ॥ ७ ॥

सवैया ३१ सा–प्रथम मिथ्यात दूजो सासादन तीजो मिश्र, चतुरथ अव्रत पंचमो व्रत रच है ॥ छट्टो परमत्त नाम, सातमो अपरमत नाम आठमो अपूरव करण सुख संच है ॥ नौमो अनिवृत्तिभाव दशम सूक्षम लोभ, एकादशमो सु उपशांत मोह बंच है ॥ द्वादशमो क्षीण मोह तेरहो संयोगी जिन, चौदमो अयोगी जाकी थिती अंक पंच है ॥ ८ ॥

दोहा–बरने सब गुणस्थानके, नाम चतुर्दश सार।
अब बरनों मिथ्यातके, भेद पंच परकार ॥ ९ ॥

सवैया ३१ सा–प्रथम एकांत नाम मिथ्यात्व अभि ग्रहीक, दूजो विपरीत अभिनिवेशिक गोत है ॥ तीजो विनै मिथ्यात्व अनाभिग्रह नाम जाको, चौथो संशै जहां चित्त भोर कोसो पोत है ॥ पांचमो अज्ञान अनाभोगिक गहल रूप, जाके उदै चेतन अचेतनसा होत है ॥ येई पांचों मिथ्यात्व जीवको जगमें भ्रमावे, इनको विनाश समकीतको उद्योत है ॥१०॥

दोहा–जो एकांत नय पक्ष गहि, छके कहावे दक्ष। सो इकंत वादी पुरुष, मृषावंत परतक्ष ॥ ११ ॥ ग्रन्थ उकति पथ उथपे, थापे कुमत स्वकीय। सुजस हेतु गुरुता गहे, सो विपरीती जीय ॥ १२ ॥ देव कुदेव सुगुरु कुगुरु, गिने समानजु कोय। नमे भक्तिसु सवनकूं, विने मिथ्यात्वी सोय ॥ १३ ॥ जो नाना विकलप गहे, रहे हिये हैरान। थिर व्है तत्व न सद्दहे, सो जिय संशयवान ॥ १४ ॥ जाको तन दुख दहलसे, सुरति होत नहि रञ्च। गहलरूप वर्ते सदा, सो अज्ञान तिर्यंच ॥ १५ ॥ पंच भेद मिथ्यात्वके, कहे जिनागम जोय। सादि अनादि स्वरूप अब, कहूं अवस्था दोय ॥ १६ ॥ जो मिथ्यात्व दल उपसमें, ग्रंथि भेदि बुध होय। फिरि आवे मिथ्यात्वमें, सादि मिथ्यात्वी सोय ॥१७॥ जिन्हे ग्रंथि भेदी नहीं, ममता मगन सदीव। सो अनादि मिथ्यामती, विकल बहिर्मुख जीव ॥१८॥ कह्या प्रथम गुणस्थान यह, मिथ्यामत अभिधान। कलपरूप अब वर्णवूं, सासादन गुणस्थान ॥१९॥

सवैया ३१ सा–जैसे कोउ क्षुधित पुरुष खाई खीर खांड, वोन करे पीछेके लगार स्वाद पावे है ॥ तैसे चढि चौथे पांचे छठे एक गुणस्थान, काहूं उपशमीकूं कषाय उदे आवे है ॥ ताहि समैं तहांसे गिरे प्रधान दशा त्यागि, मिथ्यात्व अवस्थाको अधोमुख व्है धावे है ॥ बीच एक समै वा छ आवली प्रमाण रहे, सोइ सासादन गुणस्थानक कहावे है ॥२०॥

दोहा–सासादन गुणस्थान यह, भयो समापत बीय।
मिश्रनाम गुणस्थान अब, वर्णन करूं तृतीय ॥ २१ ॥

सवैया ३१ सा–उपशमि समकीति कैतो सादि मिथ्यामति, दुहूंनको मिश्रित मिथ्यात आइ गहे है ॥ अनंतानुबंधी चोकरीको उदै नाहि जामें, मिथ्यात समै प्रकृति मिथ्यात न रहे है ॥ जहां सदहन सत्यासत्य रूप सम काल, ज्ञान भाव मिथ्याभाव मिश्र धारा वहे है ॥ याकी थिति अंतर मुहूरत उभयरूप, ऐसो मिश्र गुणस्थान आचारज कहे है ॥ २२ ॥

दोहा–मिश्रदशा पूरण भई, कही यथामति भाखि।
अब चतुर्थ गुणस्थान विधि, कहूं जिनागम साखि ॥ २३ ॥

सवैया ३१ सा–केई जीव समकीत पाई अर्ध पुदगल, परावर्तकाल तांई चोखे होई चित्तके ॥ केई एक अंतर महूरतमें गंठि भेदि, मारग उलंघि सुख वेदे मोक्ष वित्तके ॥ ताते अंतर महूरतसों अर्ध पुद्गललों, जेते समै होहि तेते भेद समकितके ॥ जाहि समै जाको जब समकित होइ सोइ, तबहीसों गुण गहे दोष दहे इतके ॥ २४ ॥

दोहा–अध अपूर्व अनिवृत्ति त्रिक, करण करे जो कोय। मिथ्या गंठि विदारि गुण, प्रगटे समकित सोय ॥ २५ ॥ समकित उतपति चिन्ह गुण, भूषण दोष विनाश। अतीचार जुत अष्ट विधि, वरणो विवरण तास ॥ २६ ॥

चौपाई–सत्य प्रतीति अवस्था जाकी । दिन दिन रीति गहे समताकी ॥
छिन छिन करे सत्यको साको । समकित नाम कहावे ताको ॥ २७ ॥

दोहा–कैसो सहज स्वभावके, उपदेशे गुरु कोय । चहुगति सैनी जीवको, सम्यक् दर्शन होय ॥ २८ ॥ आपा परिचे निज विषें, उपजे नहिं संदेह । सहज प्रपंच रहित दशा, समकित लक्षण एह ॥ २९ ॥ करुणावत्सल सुजनता, आतम निंदा पाठ । समता भक्ति विरागता, धर्म राग गुण आठ ॥ ३० ॥ चित्त प्रभावना भावयुत, हेय उपादे वाणि । धीरज हरष प्रवीणता, भूषण पंच वखाणि ॥ ३१ ॥ अष्ट महामद अष्ट मल, षट आयतन विशेष । तीन मूढता संयुकत, दोष पचीसों एष ॥ ३२ ॥ जाति लाभ कुल रूप तप, बल विद्या अधिकार । इनको गर्वजु कीजिये, यह मद अष्ट प्रकार ॥ ३३ ॥

चौपाई–अशंका अस्थिरता वंछा । ममता दृष्टि दशा दुरगंछा ॥
वत्सल रहित दोष पर भाखे । चित प्रभावना मांहि न राखे ॥ ३४ ॥

दोहा–कुगुरु कुदेव कुधर्म घर, कुगुरु कुदेव कुधर्म । इनकी करे सराहना, इह षडायतन कर्म ॥ ३५ ॥ देव मूढ गुरु मूढता, धर्म मूढता पोष । आठ आठ षट् तीन मिलि, ये पचीस सब दोष ॥ ३६ ॥ ज्ञानगर्व मति मंदता, निष्ठुर वचन उदगार । रुद्रभाव आलस दशा, नाश पंच परकार ॥ ३७ ॥ लोक हास्य भय भोग रुचि, अग्र सोच थिति मेव । मिथ्या आगमकी भगति, मृषा दर्शनी सेव ॥ ३८ ॥

चौपाई–अतीचार ये पंच प्रकारा । समल करहि समकितकी धारा ॥
दूषण भूषण गति अनुसरनी । दशा आठ समकितकी वरनी ॥ ३९ ॥
दोहा–प्रकृती सातों मोहकी, कहूं जिनागम जोय ।
जिन्हका उदै निवारिके, सम्यक दर्शन होय ॥ ४० ॥

सवैया ३१ सा–चारित्र मोहकी चार मिथ्यातकी तीन तामें, प्रथम प्रकृति अनंतानुबंधी कोहनी ॥ बीजी महा मान रस भीजी मायामयी तीजी, चौथे महा लोभ दशा परिगृह पोहनी ॥ पांचवी मिथ्यातमति छटी मिश्र परणति, सातवी समै प्रकृति समकित मोहनी ॥ येई षट् विंग वनितासी एक कुतियासी, सातो मोह प्रकृति कहावे सत्ता रोहनी ॥ ४१ ॥

३१ सा–सात प्रकृति उपशमहि, जासु सो उपशम मण्डित । सात प्रकृति क्षय करनहार, क्षायिक अखण्डित ॥ सात मांहि कछु उपशम करि रक्खे । सो क्षय उपशमवंत, मिश्र समकित रस चक्खे । षट् प्रकृति उपशमे वा क्षपे, अथवा क्षय उपशम करे । सातई प्रकृति जाके उदै, सो वेदक समकित धरे ॥ ४२ ॥

दोहा–क्षयोपशम वर्ते त्रिविधि, वेदक चार प्रकार। क्षायक उपशम जुगल युत, नौधा समकित धार ॥ ४३ ॥ चार क्षपे त्रय उपशमे, पण क्षय उपशम दोय। क्षै पट् उपशम एकयों, क्षयोपशम त्रिक होय ॥ ४४ ॥ जहां चार प्रकृति क्षपे, द्वै उपशम इक वेद। क्षयोपशम वेदक दशा, तासु प्रथम यह भेद ॥ ४५ ॥ पंच क्षपे इक उपशमे, इक वेदे जिह ठोर। सो क्षयोपशम वेदकी, दशा दुतिय यह और ॥ ४६ ॥ क्षय पट् उपशम एकविदे, उपशम वेदक होय ॥ ४७ ॥ उपशम क्षायककी दशा, पूरव पट् पदमांहि। कहि अब पुन रुक्तिके, कारण वरणी नांहि ॥ ४८ ॥ क्षयोपशम वेदकहि क्षै, उपशम समकित चार। तीन चार इक इक मिलत, सब नव भेद विचार ॥ ४९ ॥ अब निश्चै व्यवहार, सामान्य अर विशेष विधि। कहूं चार परकार, रचना समकित भूमिकी ॥ ५० ॥

सवैया ३१ सा–मिथ्यामति गंठि भेदि जगी निरमल ज्योति। जोगसों अतीत सो तो निहचै प्रमानिये ॥ वहै दुंद दशासों कहावे जोग मुद्रा धारी। मति श्रुति ज्ञान भेद व्यवहार मानिये ॥ चेतना चिन्ह पहिचानि आपा पर वेदे, पौरुष अलप ताते सामान्य बखानिये ॥ करे भेदाभेदको विचार विसतारूप, हेय ज्ञेय उपादेय सो विशेष जानिये ॥ ५१ ॥

दोहा–तिथि सागर तेतीस, अन्तर्मुहूरत एक वा। अविरत समकित रीत, यह चतुर्थ गुणस्थान इति ॥ अब वरनू इकवीस गुण, अर बावीस अभक्ष। जिन्हके संग्रह त्यागसों, शोभे श्रावक पक्ष ॥ ५२ ॥

सवैया ३१ सा–लज्जावंत दयावंत प्रसंत प्रतीतवंत, पर दोषकों ढकैया पर उपकारी है ॥ सौम्यदृष्टी गुणग्राही गरिष्ट सबकों इष्ट, सिष्ट पक्षी मिष्टवादी दीरघ विचारी है ॥ विशेषज्ञ रसज्ञ कृतज्ञ तज्ञ धरमज्ञ, न दीन न अभिमानी मध्य व्यवहारी है ॥ सहज विनीत पाप क्रियासों अतीत ऐसो, श्रावक पुनीत इकवीस गुणधारी है ॥ ५३ ॥

छंद–ओरा घोरवरा निशि भोजन, बहु बीजा बैंगण संधान ॥ पीपर वर उंबर कठुंबर, पाकर जो फल होय अजान ॥ कंद मूल माटी विष आमिष, मधु माखन अरु मदिरा पान ॥ फल अति तुच्छ तुषार चलित रस, जिनमत ये बावीस अखान ॥ ५४ ॥

दोहा–अब पंचम गुणस्थानकी, रचना वरणू अलप।
जामें एकादश दशा, प्रतिमा नाम विकलप ॥ ५५ ॥

सवैया ३१ सा–दर्शन विशुद्ध कारी बारह विरत धारि, सामाइक चारी पर्व प्रोषध विधी वहे ॥ सचित्तको परहारी दिवा अपरस नारि, आठो जाम ब्रह्मचारी निरारंभी व्है रहे। पाप परिग्रह छंडे पापकी न शिक्षा मण्डे, कोउ याके निमित्त करे सो वस्तु न गहे ॥ ये ते देशव्रतके धरैया समकिती जीव, ग्यारह प्रतिमा तिने भगवंतजी कहे ॥ ५६ ॥

दोहा—संयम अंश जगे जहां, भोग अरुचि परिणाम। उदै प्रतिज्ञाको भयो, प्रतिमा ताको नाम ॥ ५७ ॥ आठ मूल गुण संग्रहे, कुव्यसन क्रिया नहिं होय। दर्शन गुण निर्मल करे, दर्शन प्रतिमा सोय ॥ ५८ ॥ पंच अणुव्रत आदरे, तीन गुणव्रत पाल। शिक्षाव्रत चारों धरे, यह व्रत प्रतिमा चाल ॥ ५९ ॥ द्रव्य भाव विधि संयुकत, हिये प्रतिज्ञा टेक। तजि ममता समता गहे, अन्तर्मुहूरत एक ॥ ६० ॥

चौपाई—जो अरि मित्र समान विचारे। आरत रौद्र कुध्यान निवारे ॥

संयम सहित भावना भावे। सो सामाइकवंत कहावे ॥ ६१ ॥

दोहा—प्रथम सामायिककी दशा, चार पहरलों होय। अथवा आठ पहरलों, प्रोषह प्रतिमा सोय ॥ ६२ ॥ जो सचित भोजन तजे, पीवे प्रासुक नीर। सो सचित्त त्यागी पुरुष, पंच प्रतिज्ञा गीर ॥ ६३ ॥

चौपाई—जो दिन ब्रह्मचर्य व्रत पाले। तिथि आये निशि दिवस संभाले ॥ गहि नव वाडि करे व्रत राख्या। सो षट् प्रतिमा श्रावक आख्या ॥ ६४ ॥ जो नव वाडि सहित विधि साधे। निशि दिन ब्रह्मचर्य आराधे ॥ सो सप्तम प्रतिमा धर ज्ञाता। सील शिरोमणी जगत विख्याता ॥६५॥ तियथल वास प्रेम रुचि निरखन, दे परीछ भाखे मधु बैन ॥ पूरब भोग केलि रस चिंतन, गरुव आहार लेत चित चैन ॥ करि सुचि तन सिंगार बनावत, तिय परजंक मध्य सुख सैन ॥ मनमथ कथा उदर भरि भोजन, ये नव वाडि कहे जिन बैन ॥६६॥

दोहा—जो विवेक विधि आदरे, करे न पापारंभ।

सो अष्टम प्रतिमा धनी, कुगति विजै रणथंभ ॥ ६७ ॥

चौपाई—जो दशधा परिग्रहको त्यागी। सुख संतोष सहित वैरागी ॥

सम रस संचित किंचित ग्राही। सो श्रावक नौ प्रतिमा वाही ॥ ६८ ॥

दोहा—परकों पापारंभको, जो न देई उपदेश।

सो दशमो प्रतिमा सहित, श्रावक विगत कलेश ॥ ६९ ॥

चौपाई—जो स्वच्छंद वरते तजि डेरा। मठ मंडपमें करे वसेरा ॥

उचित आहार उदंड विहारी। सो एकादश प्रतिमा धारी ॥ ७० ॥

दोहा—एकादश प्रतिमा दशा, कहीं देशव्रत मांहि। वही अनुक्रम मूलसों, गहीसु छूटे नांहि ॥ ७१ ॥ षट प्रतिमा ताई जघन्य, मध्यम नव पर्यंत। उत्कृष्ट दशमी ग्यारवीं, इति प्रतिमा विरतंत ॥ ७२ ॥

चौपाई—एक कोटि पूरव गणि लीजे। तामें आठ वरष घटि दीजे ॥

यह उत्कृष्ट काल स्थिति जाकी। अंतर्मुहूर्त जघन्य दशाकी ॥ ७३ ॥

दोहा–सत्तर लाख क्रिरोड़ मित, छप्पन सहज किरोड़। येते वर्ष मिलायके, पूरव संख्या जोड़ ॥ ७४ ॥ अंतर्मुहूर्त द्वै घड़ी, कछुक घाटि उतकिष्ट। एक समय एकावली, अंतर्मुहूर्त कनिष्ट ॥ ७५ ॥ यह पंचम गुणस्थानकी, रचना कही विचित्र। अब छठे गुणस्थानकी, दशा कहूं सुन मित्र ॥ ७६ ॥ पंच प्रमाद दशा धरे, अट्ठाइस गुणवान। स्थविर कल्प जिन कल्प युत; है प्रमत्त गुणस्थान ॥ ७७ ॥ धर्मराज विकथा वचन, निद्रा विषय कषाय। पंच प्रमाद दशा सहित, परमादी मुनिराय ॥ ७८ ॥

सवैया ३१ सा–पंच महाव्रत पाले पंच सुमती संभाले, पंच इंद्रि जीति भयो भोगि चित चैनको ॥ षट आवश्यक क्रिया दर्वीत भावित साधे, प्रासुक धरामें एक आसन है सैनको ॥ मंजन न करे केश लुंचे तन वस्त्र मुंचे, त्यागे दंतवन पै सुगंध श्वास वैनको ॥ ठाडो करसे आहार लघु मुंजी एक वार, अठाइस मूल गुण धारी जती जैनको ॥ ७९ ॥

दोहा–हिंसा मृषा अदत्त धन, मैथुन परिग्रह सान। किंचित त्यागी अणुव्रती, सब त्यागी मुनिराज ॥ ८० ॥ चले निरखि भाखे उचित, भखे अदोष अहार। लेय निरखि, डारे निरखि, सुमति पंच परकार ॥ ८१ ॥ समता वंदन स्तुति करन, पडकोनो स्वाध्याय। काऊत्सर्ग मुद्रा धरन, ए षडावश्यक भाय ॥ ८२ ॥

सवैया ३१ सा–थविर कलपि जिन कलपि दुविध मुनि, दोउ वनवासी दोउ नगन रहत हैं ॥ दोउ अठावीस मूल गुणके धरैया दोउ, सरवस्त्रि त्यागी व्है विरागता गहत है ॥ थविर कलपि ते जिन्हके शिष्य शाखा संग, बैठिके समामें धर्म देशना कहत है ॥ एकाकी सहज जिन कलपि तपस्वी घोर, उदैकी मरोरसों परिसह सहत हैं ॥ ८३ ॥ ग्रीषममें धूप थित सीतमें अकंप चित्त, भूख धरे धीर प्यासे नीर न चहत है ॥ डंस मसकादिसों न डरे भूमि सैन करे, वध बंध विथामें अडोल व्है रहत हैं ॥ चर्या दुख भरे तिण फाससों न थरहरे, मल दुरगंधकी गिलानी न गहत हैं ॥ रोगनिको करे न इलाज ऐसो मुनिराज, वेदनीके उदै ये परिसह सहत हैं ॥ ८४ ॥

छंद–येते संकट मुनि सहे, चारित्र मोह उदोत। लज्जा संकुच दुख धरे, नगन दिगंबर होत, नगन दिगंबर होत, श्रोत्र रति स्वाद न सेवे। त्रिय सनमुख दग रोक, मान अपमान न वेवे। थिर व्है निर्भय रहै, सहे कुवचन जग जेते। भिक्षुक पद संग्रहे, लहे मुनि संकट येते ॥ ८५ ॥

दोहा–अल्प ज्ञान लघुता लखे, मति उत्कर्ष विलोय। ज्ञानावरण उदोत मुनि, सहे परीसह दोय ॥ ८६ ॥ सहे अदर्शन दुर्दशा, दर्शन मोह उद्योत। रोके उमंग अलाभकी, अंतरायके होत ॥ ८७ ॥

सवैया ३१ सा—एकादश वेदनीकी चारित मोहकी सात,—ज्ञानावरणकी दोय एक अंतरायकी ॥ दर्शन मोहकी एक द्वाविंशति बाधा सब, केई मनसाकि केई वाक्य केई कायकी ॥ काहूंको अलप काहू बहुत उनीस ताई, एकहि समैमें उदै आवे असहायकी ॥ चर्या थिति सज्या मांहि, एक शीत उष्ण मांहि, एक दोय होहि तीन नांहि समुदायकी ॥८८॥

दोहा—नाना विधि संकट दशा, सहि साधे शिव पंथ। थविर कल्प जिनकल्प धर, दोऊ सम निग्रंथ ॥ ८९ ॥ जो मुनि संगतिमें रहै, थविर कल्प सो जान ॥ एकाकी ज्याकी दशा, सो जिनकल्प बखान ॥ ९० ॥

चौपाई—थविर कल्प धर कछुक सरागी। जिन कल्पी महान वैरागी ॥ इति प्रमत्त गुणस्थानक धरनी। पूरण भई जथारथ वरनी ॥९१॥ अब वरणो सप्तम विसरामा। अपरमत्त गुणस्थानक नामा ॥ जहां प्रमाद क्रिया विधि नासे। धरम ध्यान स्थिरता परकासे ॥९२॥

दोहा—प्रथम करण चारित्रको, जासु अंत पद होय।
जहां आहार विहार नहीं, अप्रमत्त है सोय ॥ ९३ ॥

चौपाई—अब वरणूं अष्टम गुणस्थाना। नाम अपूरव करण बखाना ॥ कछुक मोह उपशम करि राखे। अथवा किंचित क्षय करि नाखे ॥ ९३ ॥ जे परिणाम भये नहि कबही। तिनको उदै देखिये जबही ॥ तब अष्टम गुणस्थानक होई। चारित्र करण दूसरो सोई ॥ ९४ ॥ अब अनिवृत्ति करण सुनि भाई। जहां भाव स्थिरता अधिकाई ॥ पूरव भाव चलाचल जेते। सहज अडोल भये सब तेते ॥ ९५ ॥ जहां न भाव उलट अधि आवे। सो नवमो गुणस्थान कहावे ॥ चारित्र मोह जहां बहु छीजा। सो है चरण करण पद तीजा ॥ ९६ ॥ कहूं दशम गुणस्थान दुशाखा। जहां सूक्ष्म शिवकी अभिलाखा ॥ सूक्ष्म लोभ दशा जहां लहिये। सूक्षम सांपराय सो कहिये ॥ ९७ ॥ अब उपशांत मोह गुणठाना ॥ कहों तासु प्रभुता परमाना ॥ जहां मोह उपसममें न भासे। यथाख्यात चारित्र परकासें ॥ ९८ ॥

दोहा—जहां स्पर्शके जीव गिर, परे करे गुण रद्द।
सो एकादशमी दशा, उपसमकी सरहद्द ॥ ९९ ॥

चौपाई—केवलज्ञान निकट जहां आवे। तहां जीव सब मोह क्षपावे।
प्रगटे यथाख्यात परधाना। सो द्वादशम क्षीण गुण ठाना ॥ १०० ॥

दोहा—षट साते आठे नवे, दश एकादश थान। अन्तर्मुहूरत एकवा, एक समै थिति जान ॥ १०१ ॥ क्षपक श्रेणि आठे नवे, दश अर वलि बार। थिति उत्कृष्ट जघन्य भी, अन्तर्मुहूरत काल ॥ १०२ ॥ क्षीणमोह पूरण भयो, करि चूरण चित चाल। अब संयोग गुणस्थानको, वरणूं दशा रसाल ॥ १०३ ॥

सवैया ३१ सा—जाकी दुःख दाता घाती चोकरी विनश गई, चौकरी अघाती जरी जेवरी समान है ॥ प्रगटे तब अनन्त दर्शन अनन्त ज्ञान, वीरज अनन्त सुख सत्ता समाधान है ॥ जाके आयु नाम गोत्र वेदनी प्रकृति ऐसी, इक्यासी चौरासी वा पच्यासी परमान है ॥ सोहै जिन केवली जगतवासी भगवान, ताकी ज्यों अवस्था सो सयोग गुणथान है ॥ १०४ ॥

३१ सा—जो अडोल परजंक मुद्राधारी सरवथा, अथवा सु काउसग मुद्रा थिर पाल है ॥ क्षेत्र सपरस कर्म प्रकृतीके उदे आये, विना डग भरे अन्तरिक्ष जाकी चाल है ॥ जाकी थिति पूरव करोड़ आठ वर्ष घाटि, अन्तर मुहूरत जघन्य जग जाल है ॥ सोहै देव अठारह दूषण रहित ताको, बनारसि कहे मेरी वंदना त्रिकाल है ॥ १०५ ॥

छन्द—दूषण अठारह रहित, सो केवली संयोग । जनम मरण जाके नहीं, नहि निद्रा भव रोग । नहि निद्रा भय रोग, शोक विस्मय मोहमति । जरा खेद पर खेद, नांहि मद वैर विषै रति । चिंता नांहि सनेह नांहि, जहां प्यास न भूख न ॥ थिर समाधि सुख, रहित अठारह दूषण ॥ १०६ ॥

छन्द—वानी जहां निरक्षरी, सप्त धातु मल नांहि । केश रोम नख नहि बढे, परम औदारिक मांहि, परम औदारिक मांहि, जहां इन्द्रिय विकार नसि । यथाख्यात चारित्र प्रधान थिर शुकल ध्यान ससि ॥ लोकाऽलोक प्रकाश, करन केवल रजधानी । सो तेरम गुणस्थान, जहां अतिशयमय वानी ॥ १०७ ॥

दोहा—यह सयोग गुणथानकी, रचना कही अनूप ।
अब अयोग केवल दशा, कहूं यथारथरूप ॥ १०८ ॥

सवैया ३१ सा—जहां काहू जीवकों असाता उदै साता नांहि, काहूकों असाता नांहि साता उदै पाईये ॥ मन वच कायासों अतीत भयो जहां जीव, जाको जस गीत जग जीत रूप गाईये ॥ जामें कर्म प्रकृतीकि सत्ता जोगि जिनकिसी, अंतकाल द्वै समैमें सकल खपाईये ॥ जाकी थिति पंच लघु अक्षर प्रमाण सोइ, चौदहो अयोगी गुणठाना ठहराईये ॥ १०९ ॥

दोहा—चौदह गुणस्थानक दशा, जगवासी जिय मूल ।
आश्रव संवर भाव द्वै, बंध मोक्षको मूल ॥ ११० ॥

चौपाई—आश्रव संवर परणति जोलों । जगवासी चेतन है तोलों ॥ आश्रव संवर विधि व्यवहारा । दोऊ भवपथ शिवपथ धारा ॥ १११ ॥ आश्रवरूप बंध उतपाता, संवर ज्ञान मोक्ष पद दाता ॥ जो संवरसों आश्रव छीजे । ताकों नमस्कार अब कीजे ॥ ११२ ॥

सवैया ३१ सा—जगतके प्राणि जीति व्है रह्यो गुमानि ऐसो, आश्रव असुर दुखदानि महाभीम है ॥ ताको परताप खंडिवेको परगट भयो, धर्मको धरैया कर्म रोगको हकीम

है ॥ जाके परभाव आगे भागे परभाव सब, नागर नवल सुख सागरकी सीम है ॥ संवरको रूप धरे साधे शिव राह ऐसो, ज्ञान पातसाह ताकों मेरी तसलीम है ॥ ११२ ॥

चौपाई—भयो ग्रंथ संपुरण भाखा। वरणी गुणस्थानककी शाखा ॥ वरणन और कहांलों कहिये। जथा शक्ति कहि चुप व्है रहिये ॥ १ ॥ लहिए पार न ग्रन्थ उदधिका। ज्यौंज्यौं कहिये त्यौंत्यौं अधिका ॥ ताते नाटक अगम अपारा। अलप कवीसुरकी मतिधारा ॥ २ ॥

दोहा—समयसार नाटक अकथ, कविकी मति लघु होय।
ताते कहत बनारसी, पुरण कथै न कोय ॥ ३ ॥

सवैया ३१ सा—जैसे कोऊ एकाकी सुभट पराक्रम करि, जीते केहि भांति चक्री कटकसों लरनो ॥ जैसे कोऊ परवीण तारू भुज भारू नर, तिरे कैसे स्वयंभु रमण सिंधु तरनो ॥ जैसे कोउ उद्यमी उछाह मन मांहि धरे, करे कैसे कारिज विधाता कोसो करनो ॥ तैसे तुच्छ मति मेरी तामें कविकला थोरि, नाटक अपार मैं कहांलों यांहि वरनो ॥ ४ ॥

सवैया ३१ सा—जैसे वट वृक्ष एक तामें फल है अनेक, फल फल बहु बीज बीज बीज वट है ॥ वट मांहि फल फल मांहि बीज तामें वट, कीजे जो विचार तो अनन्तता अघट है ॥ तैसे एक सत्तामें अनन्त गुण परयाय, पर्यायें अनन्त नृत्य तामेंऽनन्त ठट है ॥ ठटमें अनन्त कला कलामें अनन्त रूप, रूपमें अनन्त सत्ता ऐसो जीव नट है ॥ ५ ॥ ब्रह्मज्ञान आकाशमें, उड़े सुमति खग होय। यथा शक्ति उद्यम करे, पार न पावे कोय ॥ ६ ॥

चौपाई—ब्रह्मज्ञान नभ अन्त न पावे। सुमति परोक्ष कहांलो धावे ॥
जिहि विधि समयसार जिनि कीनो। तिनके नाम कहूं अब तीनो ॥ ७ ॥

सवैया ३१ सा—प्रथम श्रीकुन्दकुन्दाऽचार्य गाथा बद्ध करे, समैसार नाटक विचारि नाम दयो है ॥ ताहीके परम्परा अमृतचन्द्र भये तिन्हे, संसकृत कलसा समारि सुख लयो है ॥ प्रगटे बनारसी गृहस्थ सिरीमाल अब, किये है कवित्त हिए बोध बीज बोयो है ॥ शबद अनादि तामें अरथ अनादि जीव, नाटक अनादि यों अनादिहीको भयो है ॥ ८ ॥

चौपाई—अब कछु कहूं जथारथ वानी। सुकवि कुकवि विकथा कहानी ॥ प्रथमहि सुकवि कहावे सोई। परमारथ रस वरणे जोई ॥ ९ ॥ कलपित वात हिए नहि आने। गुरु परंपरा रीत बखाने ॥ सत्यारथ सैली नहि छंडे। मृषा वादसों प्रीत न मंडे ॥ १० ॥

दोहा—छंद शब्द अक्षर अरथ, कहे सिद्धांत प्रमान।
जो इहविधि रचना रचे, सो है कवि सुजान ॥ ११ ॥

चौपाई—अब सुनु कुकवि कहों है जैसा। अपराधी हिय अन्ध अनेसा ॥ मृषा भाव रस वरणे हितसों। नई उकति जे उपजे चित्तसों ॥ १२ ॥ ख्याति लाभ पूजा मन आने

परमारथ पथ भेद न जाने ॥ वानी जीव एक करि बूझे। जाको चित जड ग्रंथ न सूझे ॥१३॥ वानी लीन भयो जग डोले। वानी ममता त्यागि न बोले ॥ है अनादि वानी जगमांही। कुकवि वात यह समुझे नांही ॥ १४ ॥

सवैया ३१ सा–जैसे काहु देशमें सलिल धारा कारंजकि, नदीसों निकसी फिर नदीमें समानी है ॥ नगरमें ठोर ठोर फैलि रहि चहु ओर। जाके ढिग वहे सोई कहे मेरा पानी है ॥ त्योंहि घट सदन सदनमें अनादि ब्रह्म, वदन वदनमें अनादिहीकी वानी है ॥ करम कलोलसों उसासकी वयारि वाजे, तासों कहे मेरी धुनी ऐसो मूढ प्राणी है ॥ १५ ॥

दोहा–ऐसे हैं कुकवि कुधी, गहे मृषा पथ दोर। रहे मगन अभिमानमें, कहे औरकी और ॥ १६ ॥ वस्तु स्वरूप लखे नहीं, वाहिज दृष्टि प्रमान। मृषा विलास विलोकिके, करे मृषा गुण गान ॥ १७ ॥

सवैया ३१ सा–मांसकी गरंथि कुच कंचन कलश कहे, कहे मुख चंद जो सलेषमाको घरु है ॥ हाड़के सदन यांहि हीरा मोती कहे तांहि, मांसके अधर ऊठ कहे बिंब फरु है ॥ हाड दंड भुजा कहे कोल नाल काम जुधा, हाडहीके थंभा जंघा कहे रंभा तरु है ॥ योंही झूठी जुगति बनावे औ कहावे कवि, येते पर कहे हमे शारदाको वरु है ॥ १८ ॥

चौपाई–मिथ्यामति कुकवि जे प्राणी। मिथ्या तिनकी भाषित वाणी ॥
सिध्यामति सुकवि जो होई। वचन प्रमाण करे सब कोई ॥ १९ ॥

दोहा–वचन प्रमाण करे सुकवि, पुरुष हिये परमान।
दोऊ अंग प्रमाण जो, सोहे सहज सुजान ॥ २० ॥

चौपाई–अब यह बात कहूंहू जैसे। नाटक भाषा भयो सु ऐसे ॥ कुंदकुंदमुनि मूल उधरता। अमृतचंद्र टीकाके करता ॥ २१ ॥ समेसार नाटक सुखदानी। टीका सहित संस्कृत वानी ॥ पंडित पढे अरु दिढमति बूझे। अलप मतीको अरथ न सूझे ॥ २२ ॥ पांडे राजमल्ल जिनधर्मी। समयसार नाटकके मर्मी ॥ तिन्हे गरंथकी टीका कीनी। बालबोध सुगम करि दीनी ॥२३॥ इहविधि बोध वचनिका फैली। समै पाइ अध्यातम सैली ॥ प्रगटी जगमांही जिनवाणी, घरघर नाटक कथा बखानी ॥ २४ ॥ नगर आगरे मांहि विख्याता। कारण पाइ भये बहुज्ञाता ॥ पंच पुरुष अति निपुण प्रवीने। निसिदिन ज्ञान कथा रस भीने ॥ २५ ॥

दोहा–रूपचंद पंडित प्रथम, दुतिय चतुर्भुज नाम। तृतिय भगोतीदास नर, कोरपाल गुण धाम ॥ २६ ॥ धर्मदास ये पंच जन, मिलि बैठहि इक ठोर। परमारथ चरचा करे, इनके कथा न और ॥ २७ ॥ कबहूं नाटक रस सुने, कबहूं और सिद्धंत। कबहूं बिंग

बनायके, कहे बोध विरतंत ॥ २८ ॥ चितचकोर अरु धर्म धुर, सुमति भगौतीदास। चतुर भाव थिरता भये, रूपचंद परकास ॥ २९ ॥ इसविधि ज्ञान प्रगट भयो, नगर आगरे माहिं। देस देसमें विस्तरे, मृषा देशमें नाहिं ॥ ३० ॥

चौपाई—जहां तहां जिनवाणी फैली। लखे न सो जाकी मति मैली ॥
जाके सहज बोध उतपाता। सो ततकाल लखे यह बाता ॥ ३१ ॥

दोहा—घटघट अन्तर जिन वसे, घटघट अन्तर जैन।
मत मदिराके पानसो, मतमाला समुझैन ॥ ३१ ॥

चौपाई—बहुत बढ़ाई कहांलों कीजे। कारिज रूप बात कहि लीजे ॥ नगर आगरे मांहि विख्याता। बनारसी नामे लघु ज्ञाता ॥ ३३ ॥ तामें कवित कला चतुराई। कृपा करे ये पांचों भाई ॥ ये प्रपंच रहित हित खोले। ते बनारसीसों हंसि बोले ॥३४॥ नाटक समयसार हित नीका। सुगम रूप राजमल टीका ॥ कवित बद्ध रचना जो होई। भाखा ग्रन्थ पढे सब कोई ॥ ३५ ॥ तब बनारसी मनमें आनी। कीजे तो प्रगटे जिनवानी ॥ पंच पुरुषकी आज्ञा लीनी। कवित बंधकी रचना कीनी ॥ ३६ ॥ सोरहसे तिरोणवे बीते। आसु मास सित पक्ष वितीते ॥ तेरसी रविवार प्रवीणा। ता दिन ग्रन्थ समापत कीना ॥३७॥

दोहा—सुख निधान शक बंधनर, साहिब साह किराण। सहस साहि सिर मुकुट मणि, साह जहां सुलतान ॥ जाके राजसु चैनसो, कीनों आगम सार। इति भीति व्यापे नही, यह उनको उपकार ॥ ३९ ॥ समयसार आतम दरव, नाटक भाव अनन्त। सोहै आगम नाममें, परमारथ विरतंत ॥ ४० ॥

इति श्री परमागम समयसार नाटक श्री अमृतचन्द्र आचार्यकृत कलश, पांडे राजमलकृत भाषा टीका, बनारसीदासकृत कवित्त एवं त्रिविध नाम ग्रन्थ समाप्त।

इस राजमल्लीय टीकाको प्रसिद्ध करानेके लिये लिखकर पूर्ण किया। मिती आश्विन सुदी १४ गुरुवार वीर सं० २४५५ वि० सं० १९८६ ता० १७ अक्टूबर सन् १९२९।

तुच्छबुद्धि—ब्रह्मचारी सीतलप्रसाद,
धाराशिव उर्फ उसमानाबाद निजाम राज्य—जिला शोलापुर (दक्षिण)।

लेखककी प्रशस्ति।

दोहा—अग्रवाल शुभ वंशमें, जन्म लखनऊ जास। पिता सु मक्खनलाल हैं, पुत्र तृतिय हूं तास ॥१॥ उन्निससै पैंतिस वरस, विक्रम संवत जान। जन्म सु कार्तिक मासमें, सीतल नाम बखान ॥२॥ बत्तिस वय अनुमानमें, तज प्रपंच दुखदाय। श्रावक व्रत निज शक्ति सम, धरे आत्म सुखदाय ॥ ३ ॥ भ्रमण करत साधत धरम, वर्षाऋतु इक थान। बसत ज्ञान संग्रह करण, संगति लखि सुखदान ॥४॥ विक्रम छ्यासी उन्निसे, उन्निस उन्तिस माहिं। धाराशिव वर्षाऋतु, रहा आन सुख छांहि ॥ ५ ॥ दो सहस्र ऊपर भये, जैनी नृप करकंडु। उत्तर दिश पर्वत तले, गुफा मांहि गुण मंडु ॥६॥ पार्श्वनाथ जिन बिम्बसो, पर्यंकासन धार। ध्यानमई पाषाणमय, रच्यो हस्त नौ सार ॥ ७ ॥ दर्शन पूजन जासको, करत पाप क्षय होय। स्वानुभूति निजमे जगे, सुख उपजै दुख खोय ॥८॥ हूमड़ जाति शिरोमणी, नेमचंद गुणवान। भ्राता माणिकचंद हैं, गृही धर्मरत जान ॥९॥ हीराचन्द सुश्रेष्ठि हैं, औ शिवलाल बखान। नेमचन्द अध्यातम प्रिय, जाति खण्डेला जान ॥ १० ॥ श्रेष्ठि नेम पुत्री गुणी, माणिकबाई नाम। धर्म प्रेम वात्सल्ययुत, धरत शांत परिणाम ॥ ११ ॥ इत्यादिक साधर्मि यह, काल शास्त्र रस पान। करत जात आनंदसे, बढ़त ज्ञान अमलान ॥१२॥ नूतन मंदिर एक है, ऋषभदेव भगवान। पार्श्वनाथको जीर्ण हैं, मंदिर दूजो जान ॥ १३ ॥ थिरता लखिके ग्रन्थ यह, लिखो स्वपर सुखदाय। जग प्रकाश हो भवि पढ़ें, निज रुचि अनुपम पाय ॥१४॥ राजमल्ल ज्ञानी भये, टीका रची महान। समयसार कलशानकी, भाषामय सुखदान ॥१५॥ कुन्दकुन्द आचार्यकृत, समयसार अविकार। प्राकृतमयका भाव लहि, सुधा चंद्र गुणकार ॥१६॥ संस्कृत कलशे भर दिये, अध्यातम रस सार। पान करत ज्ञानी जना, लहैं तृप्ति अविकार ॥ १७ ॥ राजमल्लकी बुद्धिको, हो प्रकाश चहुं थान ॥ लिखो ग्रन्थ हित जानके, ज्ञान ध्यान सुख खान ॥१८॥ आश्विन सुदि चौदस दिना, वार बृहस्पति जान। नेमचंद्रके थानमें, कियो पूर्ण अघ हान ॥ १९ ॥ पढ़ो पढ़ावो भविक जन, अध्यातम रुचि धार। भेद ज्ञान पावो विमल, अहो आत्म सुखकार ॥ २० ॥ करो मनन निज तत्त्वको, हों अनुभूति निजात्म। निजमें थिरता पायके, पावो पद परमात्म ॥ २१ ॥ निज सुख निजमें ही बसे, निजसे प्रापत होय। निजको ही दीजे सदा। निज ज्यों तिरपत होय ॥ २२ ॥ आपी मारग मोक्षका, आपी मोक्ष स्वरूप। जिन आपी आपी लखा, आपी हुआ अनूप ॥ २३ ॥ निश्चय आपी आपको, शरण परम सुखदाय। व्यवहृति पंच परम गुरु, हैं सहाय गुणदाय ॥ २४ ॥ अर्हत्सिद्धाचार्यको, उपाध्याय यतिनाथ। वार वार बन्दन करूं, हस्त जोड़ दे माथ ॥ २५ ॥

श्री० ब्र० सीतलप्रसादजीकृत-

ग्रंथ

समयसार टीका	२॥)
पंचकल्याणक दीपिका	२।)
प्रवचनसार टीका	३)
पंचास्तिकाय टीका	३।=)
नियमसार टीका	१।॥)
समाधिशतक टीका	१।)
इष्टोपदेश टीका	१।)
गृहस्थ धर्म	१॥)
सुलोचना चरित्र	॥=)
आत्मधर्म	।=)
तत्त्वभावना	१।॥)
निश्चयधर्मका मनन	१।)
चार प्रांतोंके प्रा० जैनस्मारक	२=)
आध्यात्मिक सोपान	।॥)

मिलनेका पता

दिगम्बर जैनपुस्तकालय-सूरत।